कन थोरे कांकर घने

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लौ रहे, ऐसे मन धीरा।।
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी।।
उनकी नजर न आवते, कोई राजा-रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।।
साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।
आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।।
हरि का मर्म न पाइया, कारन का ऊबे।
करें भरोसा पुत्र का, साहब बिसराया।
बूड़ गए तरबोर को, कहुं खोज न पाया।।
साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी
हम बड़ करि मुए, बूड़े बिना पानी।।
तबके बांधि तेई नर, अजहूं नहिं छूटे।
पकरि पकरि भलि भांति से, जमपूतन लूटे।।
काम को सब त्यागि के, जो रामहिं गावै।
दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।।

बाबा मलूकदास--यह नाम ही मेरी हृदय-वीणा को झंकृत कर जाता है। जैसे अचानक वसंत आ जाए! जैसे हजारों फूल अचानक झर जाए!

नानक से मैं प्रभावित हूं; कबीर से चकित हूं; बाबा मलूकदास से मस्त। ऐसे शराब में डूबे हुए वचन किसी और दूसरे संत के नहीं है।

नानक में धर्म का सारसूत्र है, पर रूखा-सूखा। कबीर में अधर्म को चुनौती है--बड़ी क्रांतिकारी, बड़ी विद्रोही। मलूक में धर्म की मस्ती है; धर्म का परमहंस रूप; धर्म को जिसने पीया है, वह कैसा होगा। न तो धर्म के सारतत्त्व को कहने की बहुत चिंता है, न अधर्म से लड़ने का कोई आग्रह है। धर्म की शराब जिसने पी है, उसके जीवन में कैसी मस्ती की तरंग होगी, उस तरंग से कैसे गीत फूट पड़ेंगे, उस तरंग से कैसे फूल झरेंगे, वैसे सरल अलमस्त फकीर का दिग्दर्शन होगा मलूक में।

झिर-झिर कर झरे फूल
 बरस गया हरसिंगार।
मेघ ये बरसते हैं
बूंद-बूंद रिसते हैं
 सजल मेघ बनकर सखी

बिखर गया हरसिंगार।

दूर-दूर छोरों तक

महंमे दे गंध दान

बिथुर गया हरसिंगार।

फूलों की अंजुली भर

कन-कन को सुरभित कर

बन कर सखी वीतराग

निखर गया हरसिंगार।

जैसे वृक्ष फूलों में झर जाता है, ऐसे बाबा मलूकदास अपने वचनों में झरे हैं। न किसी का समर्थन है, न किसी का विरोध है। जो भीतर भर गया है, उसका सहज प्रवाह है। जिन्हें मस्त होना है; जिन्हें डूबना है; जिन्हें न तो धर्म की कोई तार्किक व्याख्या करना है, न अधर्म के साथ कोई संघर्ष करना है; जिन्हें उस अपने भीतर पड़ी वीणा के तारों को झंकृत कर लेना है, जिसके झंकृत हुए बिना न तो सत्य को कोई जानता है और न असत्य से कोई संघर्ष संभव है।

मलूक वे ज्यादा सुंदर सरोवर और कहीं न मिलेगा। जिन्हें प्यास है और जो प्यास को बुझाने को आतुर है, और जल के संबंध में विवेचना की जिन्हें चिंता नहीं है; जो कहते हैं: हम प्यासे हैं और हमें प्रयोजन नहीं कि जल की व्याख्या क्या है, हम जल चाहते हैं...।

और प्यास मिटाने का जला को व्याख्या थोड़े ही समझनी पड़ती है। कितना ही तुम जान लो कि जल कैसे बनता है; कितना ही कोई समझा दे कि ऑक्सीजन और उदजन से मिलकर बनता है; तुम्हारे हाथ में सूत्र दे दे "एच टू ओ' का कि यह रहा जल का सूत्र--तो भी प्यास तो नहीं बुझती। प्यास तो जल से बुझती है। और प्यास बुझाने के लिए, जल कैसे निर्मित हुआ है, वह जानना तो जरूरी ही नहीं है। प्यास बुझाने के लिए तो झुकना और जल का अंजुली में भर लेना जरूरी है।

मलूक वैसे सरोवर हैं; तुम अगर झुके, तो तृप्त हो कर उठोगे। तुम अगर राजी हुए और तुम हृदय के द्वार खोले, तो मलूक की तरंगें तुम्हें झंकृत कर जायेंगी; तुम नाच उठोगे। उस नाच में ही रूपांतरण है। तुम्हारे भीतर भी गीत का आविर्भाव होगा और उस गीत के जन्म में ही परमात्मा है।

शेख ने काबा, बरहमन ने दैर

दर-ए-मैखाना हमने ताका है।

मौलवी है, वह काबा की तरफ देख रहा है। ब्राह्मण है, वह मंदिर की तरफ देख रहा है, काशी की तरफ देख रहा है। "देर-ए-मैखाना हमने ताका है'। लेकिन जो मस्त हैं, वे मधुशाला की तरफ देखते हैं। परमात्मा उनके लिए न काबा है, न काशी। परमात्मा उनके लिए मधुशाला है।

मलूकदास पियक्कड़ हैं। उनके शब्द-शब्द में शराब है, उनके शब्द-शब्द में रस है; अगर तुम डूबे तो उबर जाओगे। तो समझने की चेष्टा कम करना, पीने की चेष्टा ज्यादा करना। बुद्धि से संबंध मत जोड़ना। मलूकदास का बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। सरल बालक की भांति उनके वचन हैं।

उनका एक ही वचन लोगों का पता है, शेष वचनों का कोई स्मरण नहीं है। वह वचन बहुत प्रसिद्ध हो गया है उसकी बड़ी गलत व्याख्या हो गई।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम।।

यह खूब प्रसिद्ध हुआ--गलत कारणों से प्रसिद्ध हुआ। आलसियों ने प्रसिद्ध कर दिया। जिन्हें भी काम से बचना था, उन्हें इसमें आड़ मिल गई। आदमी बड़ा बेईमान है। मलूक का अर्थ कुछ और ही था। मलूक यह नहीं कह रहे हैं कि कुछ न करो। यह तो कह ही नहीं सकते हैं। मलूक यह कह रहे हैं कि परमात्मा को करने दो--तुम न करो।

अजगर करै न चाकरी--सच है। किसने अजगर को नौकरी करते देखा? लेकिन अजगर भी सतत काम में लगा रहता है। पंछी करै न काम--सच है। पंछी दफ्तर में क्लर्की नहीं करते, न मजिस्ट्रेट होते, न स्कूलों में मास्टरी करते, न दुकान चलाते हैं। लेकिन काम में तो चौबीस घंटे लगे रहते हैं। सुबह सूरज निकला नहीं कि पंछी काम पर निकले नहीं। सांझ सूरज ढलेगा, तब काम रुकेगा। अर्जित करेंगे दिन भर, तब रात विश्राम करेंगे।

काम तो विराट चलता है। काम तो छोटी-छोटी चींटी भी करती है। काम से यहां कोई भी खाली नहीं है। फिर क्यों कहा होगा मलूक ने "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै काम'? मलूक का अर्थ है: इस काम में कहीं कर्ता का भाव नहीं है; "मैं कर रहा हूं,' ऐसी कोई धारणा नहीं है। जो परमात्मा कराये! जिहि विधि राखै रास! जो करा लेता है, वही कर रहे हैं। करने वाला वह है, हम सिर्फ उपकरण मात्र है।

दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम।

तो न तो हम कर्ता हैं, न हम भोक्ता है। न हम कर्ता हैं और न हम करने में सफल या असफल हो सकते हैं। वही करता है--वही हो सफल, वही हो असफल। ऐसी जिसकी जीवन-दृष्टि हो, उसके जीव में तनाव न रह जायेगा, चिंता न रह जायेगी।

यह सूत्र तनाव को मिटाने का सबसे बड़ा सूत्र है। यह सूत्र काफी है--मनुष्य के जीवन से सारी चिंता छीन लेने के लिए। चिंता ही क्या है? चिंता एक ही है कि कहीं मैं न हार जाऊं। चिंता एक ही हैं कि कहीं और कोई न जीत जाए। चिंता एक ही हैं कि मैं जी पाऊंगा पा नहीं? चिंता एक ही है कि कोई भूल-चूक न हो जाए। चिंता एक ही है जिस मंजिल पर निकला हूं, वह मुझे मिलकर रहे।

जिसने समझा। "सबके दाता रात', उसकी सारी चिंता गई। अहंकार गया, तो चिंता गई। कर्ता का भाव गया, तो बेचैनी गई। फिर चैन ही चैन है। फिर असफलता में भी सफलता

है; निर्धनता में भी धन है। फिर मृत्यु में भी महाजीवन है। और अभी तो सफलता में भी असफलता ही हाथ लगती है।

तुमने देखा नहीं। सफल आदमी किसी बुरी तरह असफल हो जाता है! सफलता के शिखर पर पहुंच कर कैसा उदास हो जाता है! सफलता तो मिल गई, और क्या मिला? सफलता तो हाथ आ गई, सारा जीवन हाथ से निकल गया। और सफलता बड़ी थोथी है। सफलता सफलता लाती कहां है? धन इकट्ठा कर लिया जीवन भर गंवाकर--और तब पता चलता है कि धन को खाओगे, पीओगे, ओढ़ोगे--क्या करोगे? और मौत करीब आने लगी। धन मौत से बचा न सकेगा। तब याद आती है कि ध्यान ही कर लिया होता, ठीक था। क्योंकि ध्यान ही है एक सूत्र, जो अमृत से जोड़ देता है।

बन गए राष्ट्रपति कि प्रधानमंत्री; पहुंच कर पद पर क्या होगा? मौत सब छीन लेगी। तुमने जो दूसरों से छीना है, मौत तुमसे छीन लेगी। मौत सब छीना-झपटी समाप्त कर देती है। मौत बड़ी समाजवादी है, सबको समान कर देती है--गरीब और अमीर को, हारे को और जीते को, सबको एक साथ मिट्टी में मिला देती है, एक जैसा मिट्टी में मिला देती है। जीते के साथ कुछ भेद नहीं करती, हारे के साथ कुछ भेद नहीं करती। गोरे के साथ कुछ भेद नहीं करती; काले के साथ कुछ भेद नहीं करती। मौत परम समाजवादी है।

पा कर क्या होगा? जैसे रात कोई सपना देखे और सुबह आये और नींद टूटे और सपना खो जाये, ऐसे एक दिन मौत आती है और सब सपने टूट जाते हैं; पाया न पाया सब बराबर हो गया। लेकिन पाने की दौड़ में उस जीवन को गंवा दिया, जिसके माध्यम से उसे जाना जा सकता था--जिसे मौत नहीं छीन सकती है।

मलूक के इस सूत्र का अर्थ था...यह अपूर्व सूत्र है...इसका अर्थ था कि अगर तुम निश्चिंत होना चाहो, तो छोटा-सा काम है बस; जरा-सी तरकीब है; जरा-सी कला है--और कला यह है: अपने को हटा लो और परमात्मा को करने दे जो कराए। कराए तो ठीक, न कराए तो ठीक। पहुंचाए कहीं तो ठीक, न पहुंचाए तो ठीक। तुम सारी चिंता उस पर छोड़ दो। जिस पर इतना विराट जीवन ठहरा हुआ है, चांदत्तारे चलते हैं, ऋतुएं घूमती हैं, सूरज निकलता है, डूबता है; इतना विराट जीवन का सागर, इतनी लहर जो सम्हालना है, तुम्हारी भी छोटी लहर सम्हाल लेगा।

इसका यह अर्थ नहीं कि तुम कुछ भी न करो। लहराना तो तुम्हें होगा, लेकिन उसे तुम अपने भीतर लहरने दो। तुम अपनी लहर को अपना अहंकार मत बनाओ। तुम अपनी लहर को उसके हाथ में समर्पित कर दो।

एक यह छोटा-सा सूत्र मलूकदास का लोगों को पता है और वह भी गलत कारणों से पता है; वह भी आलसी दोहराते हैं जो कुछ नहीं करना चाहते; जो कर्ता होना तो नहीं छोड़ते, लेकिन धर्म की झंझट छोड़ देते हैं। और असली बात कर्म छोड़ना नहीं है; असली बात कर्ता का भाव छोड़ना है।

और अदभुत सूत्र हैं मलूकदास के, लोगों की याददाश्त में नहीं रहे। आज जिन सूत्रों से हम मलूकदास पर बात शुरू करेंगे, वे सूत्र अपूर्व हैं। पहली तो बात, वे संन्यास के संबंध में हैं। दुनिया में बहुत मनीषी हुए, वे सभी संसार से शुरू करते हैं बात; मलूकदास ने संन्यास से शुरू की है बात।

स्वाभाविक भी है कि संसार से शुरू हो बात, क्योंकि जहां हम उलझे हैं, उसके ही बात करो। बीमार से स्वास्थ्य की बात क्या अर्थ होगा? बीमारी की बात करो। वही भाषा है उसकी, वही वह समझेगा भी। स्वास्थ्य तो पीछे आयेगा, जब बीमारी छूटेगी। इसलिए आमतौर से संतों के वचन संसार से शुरू होते हैं; फिर धीरे-धीरे फुसला कर संन्यास की बात आती है। धीरे-धीरे सरका-सरका कर संन्यास को तुम्हारे भीतर आरोपित किया जाता है।

मलूकदास से संन्यास शुरू करते हैं। कारण बहुत खूबी का है। मलूकदास कहते हैः बीमारी की बात ही क्या करनी? स्वास्थ्य की बात समझ में आ जाए, तो बीमारी टिकती नहीं। बीमारी इसलिए टिकी है कि हम बीमारी ही बीमारी की बात कर रहे हैं। बीमारी इसलिए टिकी है कि हमारा सारा ध्यान बीमारी पर टिका है। बीमारी इसलिए टिकी है कि हम बीमारी से आंख नहीं हटाते। या तो कुछ लोग बीमारी में रस ले रहे हैं। जिनको हम भोगी कहते हैं, उनकी नजर भी बीमारी पर टिकी है--एकटक, एकजुट! या कुछ लोग जिनको हम योगी कहते हैं, बीमारी से भागने में संलग्न हैं; लेकिन नजर भी बीमारी पर टिकी है, कि बीमारी कहीं पकड़ न ले! कुछ हैं जो बीमारी में डूबे हैं, कुछ हैं जो बीमारी से भागे हैं; लेकिन दोनों का मन बीमारी में उलझा है।

मलूक कहते हैंः कुछ संन्यास की बात हो, कुछ पार की बात हो, कुछ चांदत्तारों की बात हो। जमीन पर आंखें गड़ाए-गड़ाए ही तो हम कीड़े-मकोड़े हो गए हैं। इसलिए बात शुरू करते हैं संन्यास से।

मेरे पास लोग आ कर अकसर पूछते हैंः आप एकदम से संन्यास में उतार देते हैं लोगों को! संन्यास से ही बात शुरू करनी है। बहुत रह चुके संसारी तो तुम। और अगर जन्मों-जन्मों तक संसारी रह कर भी तुम नहीं समझे कि संसार व्यर्थ है, तो अब और कुछ बात कहने से समझ जाओगे, इसकी आशा व्यर्थ है।

तुम्हारे हाथ में कंकड़-पत्थर हैं। अगर तुम जन्मों के अनुभव से नहीं समझे कि ये कंकड़-पत्थर है, तो जब इनको बार-बार कंकड़-पत्थर कहने से तुम समझोगे, ऐसी आशा नहीं हो सकती। अब तो कुछ हीरों की बात हो। शायद हीरों की बात से ही तुम्हें खयाल आये कि तुम जिन्हें ढो रहे हो--कंकड़-पत्थर हैं। शायद हीरों की बात से ही तुम्हारे जीवन में पहली बार तुलना उठे, तुम विचार करो कि मेरे पास जो है, वह पत्थर है या हीरा; क्योंकि हीरे की तो यह रही व्याख्या। तुम शायद अपनी आंख खोलो और अपने कंकड़-पत्थरों को एक बार पुनः देखो, इनमें कोई भी हीरा नहीं है।

हीरे की परख मिलनी चाहिए; कंकड़-पत्थर की निंदा से कुछ भी न होगा। हीरे की परख आ जाए, तो तुम खुद ही इन कंकड़-पत्थरों को छोड़ दोगे, हीरों की तलाश में लग जाओगे।

तलाश तो तुम खूब करते हो; परख तुम्हारे पास नहीं है। दौड़ते नहीं हो, ऐसा नहीं है; गलत दिशाओं में दौड़ते हो। तो चलो, ठीक दिशा की बात हो।

इसलिए मैं भी संन्यास की बात करता हूं और मेरा मलूकदास से बहुत ताल-मेल है, गहरी आत्मीयता है। एक ही जैसी तरंग है। मेरी भी दृष्टि यही है कि असार छोड़ने से नहीं छूटता, सार के अनुभव से छूटता है। श्रेष्ठ को पा लो, अश्रेष्ठ छूट जाता है। अश्रेष्ठ को छोड़ने से श्रेष्ठ नहीं मिलता।

त्यागियों ने तुम्हें कुछ और ही समझाया है। वे कहते हैं: संसार छोड़ो तो परमात्मा मिलेगा। मैं तुमसे कहता हूं: तुम परमात्मा पाने में लग जाओ, संसार की फिक्र ही छोड़ दो। तुम परमात्मा की थोड़ी-सी भी अनुभूति में उतर गए, तो संसार छूटने लगेगा। जिस मात्रा में परमात्मा का प्रकाश आयेगा, उसी मात्रा में संसार का अंधकार अलग हो जायेगा।

अंधेरे से मत लड़ो--दिये को जलाओ। और अंधेरे की निंदा बहुत हो चुकी। कब तक अंधेरे की निंदा करते रहोगे? अंधेरे की निंदा व्यर्थ है। अंधेरे का कोई कसूर भी नहीं है। दीया जलाओ। एक छोटा दीया जला लो। इस अंधेरी रात की बहुत निंदा मत करो। अंधेरे की हजारों वर्षों तक निंदा करने से भी कुछ नहीं होता: निंदा से दीया नो नहीं जलता। एक छोटा दीया जला लो। और छोटे दिये के हलते ही अंधेरा नष्ट हो जाता है--जन्मों-जन्मों का अंधेरा भी नष्ट हो जाता है। अंधेरा यह तो नहीं कह सकता कि मैं बहुत प्राचीन हूं, तुम छोकरे, अभी-अभी पैदा हुए दीये से बुझूंगा? अंधेरे की कोई सामर्थ्य ही नहीं है; अंधेरा नपुंसक है।

संसार नपुंसक है। संसार को कोई बल नहीं है। तुम जरा संन्यास का स्वाद ले लो; एक बूंद तुम्हारे ओंठ से लग जाए संन्यास की, तो संसार जायेगा।

एक धारणा है संन्यास की कि संसार छोड़ो, तब संन्यास। एक और धारणा है जिस पर मैं काम में लगा हूं कि तुम संन्यासी हो जाओ; संसार छूटेगा, अपने से छूट जायेगा। छूटे, न छूटे, अंतर ही नहीं पड?ता; तुम उसके भीतर रहते भी उसके बाहर हो जाओगे।

तुमने मुझसे बहुत बार पूछा है: "संन्यास क्या, संन्यास की परिभाषा क्या? ये सूत्र तुम्हें परिभाषा देंगे।

"दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

एक अकीदा ले रहे, ऐसे मन धीरा।।'

दर्द दीवाने बावरे...संन्यासी की पहली परिभाषा, कि जो प्रभु के विरह और मिलन की पीड़ा में मस्त है। समझना--विरह और मिलन की पीड़ा में मस्त। दर्द दीवाने बावरे...। प्रभु को पाया है, तब तक दर्द है--यह तो सच है। प्रभु को पा कर भी बहुत दर्द होता है। दर्द का गुण बदल जाता है, दर्द नहीं बदलता। मीठा हो जाता है दर्द। दर्द का दंश चला जाता है, बड़ी मिठास आ जाती है, मधुमय हो जाता है। प्रभु के विरह में एक दर्द है, जैसे कांटा चुभता है; प्रभु के मिलन में भी एक दर्द है, जैसे घाव पर किसी ने फूल रख दिया। मगर दर्द दोनों हैं।

संन्यासी इस दर्द मग मस्त है और संसारी इस दर्द को भुलाने की चेष्टा मग लगा है। संसारी का अर्थ है: जो इस बात को भुलाने की चेष्टा में लगा है कि प्रभु के न मिलने से कोई दर्द होता है। संसारी इस खोज में लगा है कि मैं किसी तरह प्रभु को भुलाने में पूरी तरह समर्थन हो जाऊं। पीठ किये है प्रभु की तरह। जीवन क्या है, जीवन का सत्य क्या है--इस सबकी तरफ पीठ किये है। खिलौनों से खेल रहा है। पीठ करने का कारण है।

यह याद भी आ जाये कि प्रभु है, तो पीड़ा शुरू हो जाती है। इस याद के साथ ही तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात होता है। और प्रभु है, तो फिर तुम क्या कर रहे हो--धन बटोर कर? अगर प्रभु है, तो दुकान चला कर तुम क्या कर रहे हो? अगर प्रभु है, तो पद-प्रतिष्ठा पा कर तुम क्या कर रहे हो? अगर प्रभु है, तो फिर सारी जीवन-ऊर्जा उसी की दिशा में लगा दो, क्योंकि उसी को पाने से कुछ पाया जायेगा और तो कुछ भी पाने से कुछ न होगा। मगर प्रभु है, यह बात ही पीड़ादायी है। प्रभु है और मुझे तो मिला नहीं, तो पीड़ा तो होगी। प्रभु है और मैं क्या करता रहा जन्मों-जन्मों तक, मैं कहां भटकता रहा, मैं किन दुःख स्वप्न में खोया रहा? प्रभु है और मैंने उसके द्वार पर दस्तक भी न दी! तो पीड़ा होगी।

इस पीड़ा से बचने की जो कोशिश करता है, वह संसारी है। इस पीड़ा में जो मस्त हो जाता है; जो कहता है: धन्यभागी मैं, चलो यह भी क्या कम है कि मुझे प्रभु-विरह की पीड़ा हुई! प्रभु-विरह आ गया, तो मिलन भी आता ही होगा; पतझड़ आ गई, तो वसंत भी ज्यादा दूर ही होगा--प्रभु-विरह की पीड़ा में जिसे मस्ती आ गई, जो नाच उठा; यद्यपि उसके नाच में आंसू मिले होगे--मिश्रित होंगे आंसू, लेकिन अब बड़ी पुलक से भरे होंगे, बड़े उत्साह से भरे होगे, आंसू बस, आंसू ही न होंगे अब।

संसार को पाकर तुम हंसो भी, तो हंसी में कुछ खास हंसी नहीं होती, क्योंकि तुम्हारी हंसी में भी मौत हंसती है। और प्रभु को खोया है, प्रभु को खोये बैठे हैं, ऐसी पीड़ा में तुम रोओ भी, तो तुम्हारे आंसुओं में रुदन नहीं होता; मिलन की छाया पड़ने लगती है, मिलन के प्रतिबिंब बनने लगते हैं।

दर्द-दीवाने बावरे, अलमस्त फकीर।

जो प्रभु के विरह और मिलन के दर्द में मस्त है--संन्यासी। जो कहता है: प्रभु मुझे मिला नहीं, लेकिन यह भी क्या है कि मुझे याद आ गई कि प्रभु मुझे मिला नहीं। अगर यह हो गया तो मिलन भी होगा। विरह की रात कितनी लंबी हो सकती है? आखिर की सुबह भी होगी। विरह है, तो मिलन है। विरह ही नहीं, तो फिर मिलन का कोई उपाय नहीं।

संसारी वही है, जो यह भुलाने की कोशिश कर रहा है कि मैं परमात्मा से बिछुड़ गया हूं। वह हजार तरह से नकार रहा है। पहले तो वह कहता है: परमात्मा इत्यादि कुछ है नहीं; सब व्यर्थ की बात है। ऐसा कह कर वह मन को सांत्वना देता है। वह यह कहता है: परमात्मा है ही नहीं, इसलिए करने योग्य यही संसार है; और तो कुछ करने योग्य है ही नहीं।

परमात्मा नहीं है, ऐसा कह कर हम उस विरह से अपने को बचा रहे हैं, जो परमात्मा की मौजूदगी स्वीकार करते ही जीवन में खड़ा हो जायेगा; एक तूफान की भांति, एक आंधी की भांति आयेगा और हमें झकझोर देगा। हम पतझड़ से बच रहे हैं।

लेकिन ध्यान रहे। पतझड़ बसंत के लिए मार्ग बनाता है। सूखे पत्ते गिरते हैं, तो नई कोंपल के आने के लिए द्वार खुलता है। नहीं तो कोंपल के लिए आने के लिए द्वार कहां? सूखे पत्ते अड्डा जमाए रहें, तो ये पत्ते पैदा न हो सकेंगे। सूखे पत्ते स्थान खाली कर देते हैं, तो नये पत्ते आते हैं। रात सुबह के लिए आयोजन करती है। रात के अंधेरे में ही सुबह निर्मित होती है। रात्रि के गर्भ में ही सुबह का जन्म है।

संसारी वह जो कहता है: मुझे कोई विरह इत्यादि नहीं। है ही नहीं ईश्वर तो विरह क्या होगा? अगर मुझे विरह इत्यादि है भी, तो धन का विरह हो रहा है कि धन होना चाहिए, वह नहीं है; पत्नी का विरह हो रहा है, पत्नी मायके गई है; कि पति का विरह हो रहा है कि पति ने मुझे छोड़ दिया; कि बेटे का विरह हो रहा है कि बेटा नहीं जन्मा; कि पद का विरह हो रहा है कि पद मिलना था, मैं योग्य था--और नहीं मिला। इस तरह के हमारे हजार विरह हैं। एक विरह से बचने के लिए हमने हजार थोथे विरह पैदा कर लिए हैं और इनमें से कोई भी विरह मिलन नहीं लाता। यह तुमने देखा।

धन का विरह होता है, तो आदमी पीड़ित होता है और धन जब मिल जाता है तो कोई तृप्ति नहीं आती। ये विरह नपुंसक हैं, क्योंकि इनके बाद मिलन नहीं आता। पद न हो तो पीड़ा होती है, यह सच है; लेकिन पद के मिलने से तुमने कब किसी को सुखी देखो? कोई पद के मिलने से सुख नहीं आता। निश्चित ही विरह झूठा रहा होगा। पुराना पत्ता तो गिर गया, नया पत्ता पैदा नहीं होता; तो पुराना पत्ता प्लास्टिक का रहा होगा, झूठा रहा होगा। धोखा था, मान्यता थी, आभास था। अगर पुराना पत्ता सच था, तो उसके गिरने से नये पत्ते को जगह मिलनी चाहिए थी।

अलेक्जेंडर दुःखी मरा, रोते हुए मरा, क्योंकि सारी दुनिया तो जीत ली, लेकिन अपना जीवन गंवा दिया। पूछो बड़े से बड़े धनपतियों से। अगर वे ईमानदार हों, तो वे कहेंगे कि जीवन में राख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिला; राख मिली। सब चुका कर बैठे हैं, हार कर बैठे हैं।

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

और जो प्रभु के मिलन-विरह में दुःखी हो रहा है, लेकिन दुःख में मस्ती है। दर्द-दीवाने बावरे? जो दुःख नहीं मान रहा है; अब कैसे दुःख! प्रभु का विरह भी सुख है। प्रेमी की याद भी परम आनंद है। रो रहा है, लेकिन आंसुओं में उसके आने की पगध्वनि है।...अलमस्त फकीरा। रो रहा है, लेकिन मस्ती है। रो रहा है, लेकिन निर्द्वंद्व है, अलमस्त है।

फकीरा का अर्थ होता है: जिसके पास अपना कुछ भी नहीं। इसका ठीक वही अर्थ होता है, जो जीसस के इस वचन का है--जीसस ने कहा: धन्य हैं दरिद्र, क्योंकि प्रभु का राज्य उनका ही होगा। धन्य हैं दरिद्र!

किन दरिद्रों की बात कर रहे हैं ईसा? उन दरिद्रों की, जो कहता है: हमारा अपने पास कुछ भी नहीं है; जो है, सब परमात्मा का है, हमारा क्या है; जिनकी कोई मालकियत का दावा नहीं है। खयाल करना फर्क। यह भी हो सकता है कि तुम सब धन छोड़ कर फकीर हो जाओ। लेकिन धन छोड़कर भी तुम यह दावा करते रहो कि वे लाखों तुम्हारे थे, तुमने त्यागे, तुमने बड़ा कृत्य किया! तो तुम फकीर नहीं हो! तुम अभी धन का हिसाब रखे हो।

फकीर का अर्थ है: जिसने यह जाना कि मेरा यहां क्या हो सकता है! मैं नहीं था, तब यह संसार था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी यह संसार रहेगा। मेरे न होने, होने से कुछ भी तो अंतर नहीं पड़ता। तो मैं थोड़े दिन के लिए बीच में आ जाता हूं और दावे कर लेता हूं!

तुम देखते हो, जमीन पर लोग लकीरें खींच कर दावे कर लिए हैं कि यह मेरी जमीन, यह मेरा देश! सीमाएं खींच ली हैं। जमीन को पता ही नहीं है कि किसकी जमीन। तुम आये और तुम चले जाओगे। तुम जमीन से पैदा हुए और जमीन में डूब जाओगे और खो जाओगे, और बीच में तुमने थोड़ी देर को बड़े सपने देखे, दावे कर लिए!

दावेदार जो नहीं है, वही दरिद्र, वही फकीर। जो कहता है, मेरा तो कुछ था ही नहीं, तो त्याग कैसे हो सकता है? इसको समझना।

भोगी है, तो वह कहता है: मेरे पास लाखों रुपये हैं। और त्यागी है, तो कहता है, मैंने लाखों छोड़ दिये हैं। मगर दोनों एक बात में राजी हैं कि लाखों उनके थे या उनके हैं। फकीर वह है, जो कहता है: मेरा कुछ भी नहीं। उपयोग कर लेता हूं, लेकिन मेरा नहीं है। उपयोग छोड़ दूं, लेकिन मेरा नहीं है। है तो सब परमात्मा का। सबै भूमि गोपाल की। सब उसका है।

दर्द-दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

जिसने कह दिया, सब उसका है, मेरा कुछ भी नहीं, उसका अहंकार अपने आप विसर्जित हो जायेगा। क्योंकि अहंकार के लिए सहारे चाहिए। मेरा मकान, मेरा धन, मेरा पद, मेरी प्रतिष्ठा--मैं के लिए मेरे का सहारा चाहिए। अगर मेरे की बैसाखियां अलग कर लो, तो मैं तत्क्षण गिर जाता है। मैं बिलकुल लंगड़ा है।

तुम में से बहुत लोग सोचते हैं: अहंकार कैसे छूटे? अहंकार न छूटेगा; जब तक मेरा न छूटे, तब तक मैं न छूटेगा। मेरा जाए, तो फिर तुम मैं को बचाना भी चाहो, तो न बचा सकोगे। मेरा मेरा मेरा--इसका जो जोड़ है, वही मैं है। इसलिए तुम्हारे पास जितना मेरा कहने को होगा, उतना बड़ा मैं होगा।

तुम देखते हो एक आदमी पद पर पहुंच गया, तो उसका मैं खूब फूल जाता है! फिर यही आदमी पद पर न रहा, तब तुम उसे देखने जाओ; उसको मैं बिलकुल सिकुड़ जाता है, जैसे गुब्बारे में से हवा निकल गई हो! वह सारा फैलाव गया। वह सिकुड़ गया।

तुम्हारे पास धन है, तुम एक तरह से चलते हो। तुम्हारे पास धन नहीं है, तुम्हारी चाल में से प्राण निकल जाते हैं।

मैंने सुना है: दो फकीर एक नाला पार कर रहे थे। छोटा-सा नाला था। एक फकीर तो छलांग लगा गया और निकल गया उस पर। दूसरा फकीर बड़ा चकित हुआ, क्योंकि नाला यद्यपि

छोटा था, फिर भी काफी बड़ा था और छलांग...। उसने कभी सोचा भी न था कि कोई आदमी लगा सकेगा इतनी बड़ी छलांग। उसने भी लगाने की कोशिश की, लेकिन बीच में ही गिर गया। वह बड़ा हैरान हुआ। पानी से कपड़े तरह-बतर हो गए। बाहर निकला किसी तरह, उसने अपने मित्र से पूछा कि भाई, तुमने यह छलांग लगानी कहां सीखी! इतने दिन साथ रहे हो गए, मुझे बताया भी नहीं तुमने कभी! इतनी लंबी छलांग! तुम तो अगर ओलम्पिक प्रतियोगिता में जाओ तो विश्व-रिकार्ड तोड़ दो। मगर साखी कहां? उसने कहा, इसका सीखने इत्यादि से कोई संबंध नहीं।

पर तुम छलांग इतनी लगाए कैसे? मैं भी लगाया; बीच में गिर गया!

उसने फकीर से कहा, इसका राज है कि मेरे जेब में रुपये हैं। जब जेब में रुपये होते हैं तो आदमी में गरमी होती है! उसने कहा, तुम्हारे जेब में क्या है? खाली जब छलांग लगाओगे कैसे?

आदमी के पास रुपये हों, तो उसकी देखते हैं चला! उसकी सींग निकल आते हैं। रुपये न हों तो सिकुड़ जाता, ऊंचाई कम हो जाती है। गुब्बारा फूट जाता है; हवा निकल जाती है।

फकीर अर्थ है: जिसने यह कहा कि मेरा कुछ भी नहीं है। यह कहते ही उसने कह दिया: मैं कुछ भी नहीं हूं। तो फकीर का पहला परिधिगत अर्थ तो होता है कि मेरा कुछ नहीं गहरा केंद्रगत अर्थ होता है कि मैं कुछ नहीं।

जिसके पास कुछ भी नहीं है, स्व भी नहीं, वही फकीर। फिर स्वभावतः मस्ती का क्या कहना! जितना तुम्हारे पास है उतनी चिंता है, उतना द्वंद्व है, उतनी फिक्र है, उतनी सुरक्षा करनी, व्यवस्था करनी। जब तुम्हारा कुछ भी नहीं है, फिर कैसी चिंता, फिर कैसा द्वंद्व, फिर कैसी सुरक्षा? फिर तुम सो सकते हो--पैर पसार कर।

एक प्रधानमंत्री संन्यस्थ हो गया। जंगल चला गया। सम्राट उसे बहुत चाहता था। धीरे-धीरे खबरें आने लगी कि वह परम ज्ञानी हो गया। तो सम्राट उसके दर्शन करने को गया। लेकिन पुराना मंत्री था सम्राट का ही, तो अनजानी अपेक्षाएं भी थी। जब सम्राट वहां पहुंचा, तो वह प्रधानमंत्री पैर फैलाए एक वृक्ष के नीचे बैठा था, नंग-धड़ंग; एक ढपली बजा रहा था। न तो उसने ढपली बजाना बंद किया, न उठ कर नमस्कार किया, न पैर सिकोड़े। यह जरा सीमा के बाहर थी बात। यह जरा अशिष्ट था। सम्राट ने कहा, और सब तो ठीक है। मैंने सुना है, तुम ज्ञानी हो गए; मगर यह कैसा ज्ञान? तुमने पैर भी न सिकोड़े! तुमने ढपली भी अपनी बंद नहीं की। तुम उठ कर खड़े भी नहीं हुए। आखिर मैं तुम्हारा पुराना मालिक हूं। कम से कम पैर सिकोड़ो। शिष्टाचार तो न भूल जाओ।

वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, जाने दो जी। अब क्या पैर सिकोड़ने? पैर सिकोड़ता था, क्योंकि भीतर द्वंद्व था; पद को बचाना था। तुम्हारे लिए पैर सिकोड़े थे, इस भूल में तुम पड़ना भी मत; अपने ही लिए पैर सिकोड़े थे। और तुम्हारे लिए उठ-उठ खड़ा होता था, इस झंझट में तुम पड़ना ही मत; इस भ्रांति में मत रहना। अपने लिए ही उठ-उठ कर खड़ा होता था। भय था, पद को बचाना था। प्रतिष्ठा बचानी थी। धन बचाना था, नौकरी बचानी थी।

अब किसलिए उठना जी? किसके लिए उठना? अब तो जब उठना होगा उठेंगे, नहीं उठना होगा नहीं उठेंगे। अब कैसा शिष्टाचार और कैसा आचार? वे सब बातें थी, बकवास थीं; भीतर तो अहंकार था।

फकीर का अर्थ होता है: जिसके पास अब अपना कुछ भी नहीं।

अलमस्त शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो होता है: अपनी मस्ती में डूबा हुआ है, असीम मस्ती में डूबा हुआ। और दूसरा अर्थ होता है: निर्द्वंद्व; जिसके भीतर अब कोई द्वंद्व न रहा। अब कोई नहीं उठती। अब जो है, ठीक है। अब जैसा है, बिलकुल ठीक है। अब जिसके भीतर, अस्तित्व में कुछ भेद होना चाहिए तब वह सुखी होगा--ऐसा भाव नहीं उठता। वह सुखी है ही। जैसा जगत चलता हो चलता रहे, उसके सुख में कोई अंतर नहीं पड़ता।

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

एक अकीदा ले रहे, ऐसे मन धीरा।।

और संन्यासी का अर्थ है: जो एक पर आस्था ले आया। एक अकीदा ले रहे...जिसने एक पर आस्था जमा ली--और एकजुट आस जमा ली; जिसने उस एक पर अपना सब समर्पित कर दिया; जिसने उस एक पर सब न्योछावर कर दिया, सब भेंट कर दिया।

एक अकीदा ले रहे, ऐसा मन धीरा।

और फिर जो प्रतीक्षा का रहस्य जानता है...ऐसे मन धीरा। उस एक पर जिसने सब छोड़ दिया और जो प्रतीक्षा करने को अनंत रूप में तैयार है। क्योंकि तुम्हारे छोड़ते ही सब नहीं मिल जाता। छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते छूटता है। तुम जब कहते हो: मैंने सब छोड़ दिया तब भी सब नहीं छूटता; कुछ न कुछ बचा रह जाता है। पर्त-पर्त बचाव है। बड़ी गहराई तक तुम्हारा अहंकार छाया है। जितना तुम जानते हो उतना तुम्हारा अहंकार नहीं, उससे बहुत ज्यादा है। तुमने तो ऊपर-ऊपर की भनक सुनी है, भीतर अचेतन तक गहरे में जड़ चली गई हैं अहंकार की। तुम पत्ते समर्पित कर देते हो, फूल समर्पित कर देते हो, शाखाएं काट डालते हो, वृक्ष काट डालते हो; लेकिन जड़े छिपी हैं--गहरे अंतसचेतन में। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जिस दिन तुम सब समर्पित कर देते हो, वस्तुतः सब समर्पित हो जाता है, उस दिन क्रांति घटती है। पर उसकी प्रतीक्षा करनी जरूरी है।

तो प्रभु को पाने के लिए दो उपाय है--प्रार्थना और प्रतीक्षा। प्रार्थना का अर्थ है: दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम। प्रार्थना का अर्थ है: तुम जो करोगे होगा। तुम जैसा करोगे, वैसा होगा। तुम जब करोगे, तब होगा। और प्रतीक्षा का अर्थ है: मैं राजी हूं; मैं प्रतीक्षा करूंगा; जल्दी नहीं है। तुम अगर अनंत तक भी प्रतीक्षा कराओगे, तो मैं प्रतीक्षा करूंगा। जल्दबाजी किसकी हो?

जल्दबाजी भी अहंकार की है। जल्दबाजी भी अहंकार का हिस्सा है। अधैर्य अहंकार की छाया है। अहंकारी जल्दी चाहता है--अभी हो जाए। उसका कारण भी समझने जैसा है।

अहंकारी इतनी जल्दी क्यों चाहता है? क्योंकि उसे पता है: मौत आ रही है। मौत के आने के कारण जल्द बाजी है। समय जा रहा है। एक दिन गया, एक दिन कम हुआ। दो दिन गए , दो दिन कम हुए।

तुम देखते हो, पश्चिम के मुल्कों में ज्यादा जल्दबाजी है--बजाय पूरब के मुल्कों के! कारण? कारण है ईसाइयत की धारणा कि एक ही जीवन है। जब एक ही जीवन है, तो घबड़ाहट ज्यादा है। मौत आ रही है और एक ही जीवन है; अभी भोग भी नहीं पाये, कुछ भी नहीं पाये, यह मौत की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी। यह ब्लड-प्रेशर बढ़ा; यह हार्ट-अटैक होने लगा; ये मौत के दो कदम पास पड़ने लगे; यह द्वार पर दस्तक साफ होने लगी; ये मौत की छायाएं दिखाई पड़ने लगीं। और अभी तो कुछ कर भी नहीं पाये और अभी कुछ हो भी नहीं पाया और एक ही जीवन है। तो घबड़ाहट--बेचैनी!

पूरब के मुल्कों में इतनी बेचैनी नहीं है। अनंत जीवन है। यह जीवन गया, कुछ गया नहीं; और जीवन आयेगा। यह ऋतु खो गई, कोई हर्जा नहीं; और ऋतु आयेगी। इस वसंत में फूल न खिले, अगले वसंत में खिलेंगे; वसंत आता रहेगा।

ऋतु शब्द बना है ऋतु से। वेद में शब्द है--ऋत्। ऋत् का अर्थ होता है, जो सदा लौटा-लौटा कर आ जाए; जो आता ही रहे; जो जाता है और आता है; जिसके जाने में आना छिपा है; जो इधर गया, उधर से आयेगा। जो अंतहीन परिभ्रमण है संसार का--उसका नाम ऋत्। ऋत् उसी से बना है। इस बार नहीं बो पाये बीज और वर्षा रीत गई, वर्षा चली गई, मेघ घुमड़े और बिदा हो गए--घबड़ाना मत; यह खाली आकाश खाली न रहेगा; फिर मेघ उठेंगे, फिर आषाढ़ आयेगा, फिर गरजेंगे बादल, फिर दामिनी दमकेगी। फिर तुम बो लेना बीज।

तो पूरब में प्रतीक्षा है। इसलिए पूरब में समय की बहुत धारणा नहीं है। पश्चिम में बड़ी समय की धारणा है, बड़ा समय-बोध है। अगर तुम किसी पश्चिमी से कह दो; मैं पांच बजे आता हूं और पांच मिनिट देर हो जाओ, तो वह नाराज होता है। अब हिंदुस्तान में पांच बे का मतलब छः बजे भी होता है, चार बजे भी होता है; चलता है। पांच बजे को मतलब कोई पांच बजे ही नहीं होता। और तुमने कहा: सोमवार को आयेंगे, मंगल को आये, तो भी चलता है। यहां कुछ इतना समय-बोध नहीं है। कुछ ऐसी पकड़ नहीं है समय पर।

घड़ी पश्चिम में बनी, पूरब में हनीं बनी। पूरब में अधिकतर लोग घड़ी पहनते है--केवल आभूषण की तरह; ऐसा मेरा अनुभव है। कम से कम स्त्रियां तो निश्चित आभूषण की तरह पहनती है। साज-सिंगार है। घड़ी का बोध नहीं है। वह पश्चिमी बुद्धि नहीं है, भीतर, जो आतुर है, एकदम जल्दी से सब हो जाए, समय पर हो जाए, एक मिनिट न चूक जाए। मिनिट-मिनिट बचाना है। फिर करना क्या है--मिनिट-मिनिट बचा कर? करने को कुछ भी नहीं है। जाना कहां है?

मैंने सुना है: एक जंगली इलाके में, एक आदिम इलाके में रेलगाड़ी को पटरियां बिछाई जा रही थी। जो प्रधान आफिसर था, रेलगाड़ी का पटरियां बिछा रहा था, उसने एक दिन देखा कि एक आदिम आदमी, एक आदिवासी वृक्ष के नीचे बड़े आनंद से लेटा हुआ, एक चट्टान

पर सिर टिकाए; काम देख रहा है। लोग काम कर रहे हैं, वह मजे से लेटा है। वह आफिसर उसके पास गया, उसे बोला, तुम क्या करते हो? उसने कहा कि मैं लकड़ियां काटता हूं और शहर बेचने जाता हूं। कितना समय लगता है आफिसर ने पूछा। उसने कहा कि दो दिन जाने में लगते हैं, दो दिन आने में लगते, दो दिन कम से कम बेचने में लग जाते हैं--कभी एक दिन भी दो दिन, कभी तीन दिन भी। तो उसने कहा: ऐसे तो पूरा सप्ताह ही खराब हो जाता है! अब तुम देखो ट्रेन बनी जा रही है, जल्दी ही, अलग वर्ष से तुम्हें दिक्कत न रहेगी। घंटे में पहुंच जाओगे, घंटे में आ जाओगे।

लेकिन यह आदमी प्रसन्न न दिया। तो आफिसर ने पूछा, तुम प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते! उसने कहा, वह तो ठीक है: घंटे में चला गया, घंटे में आ गया; फिर सात दिन क्या करूंगा? और एक झंझट। अभी तो एकाध दिन बचता है; छः दिन का थका-मांदा आता हूं; देखो, आज लेटा हूं, विश्राम कर रहा हूं। एक दि ठीक है। जब बच जाता है, तो मजे से विश्राम कर लेता हूं मगर एक घंटे चले गए, एक घंटे में आ गए--फिर? फिर उन सात दिनों का क्या होगा?

उसकी चिंता स्वाभाविक है।

पश्चिम में लोग समय को बचा लेते हैं, फिर नहीं जानते कि क्या करें? फिर उस समय का क्या हो? फिर उस समय का क्या उपयोग है?

समय के संबंध में एक अधैर्य है, वह भी अहंकार का हिस्सा है। और अहंकार स्वभावतः मौत से डरता है। क्योंकि मौत सिर्फ अहंकार को मारती है, तुम्हें नहीं मारती।

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

एक अकीदा लौ रहे, ऐसे मन धीरा।।

एक भरोसा कर लिया प्रभु पर, की उसकी प्रार्थना और छोड़ दिया सब उस पर--ऐसा संन्यास है। और फिर अनंत प्रतीक्षा की तैयारी: ऐसा नहीं है कि अनंत प्रतीक्षा करी होगी। बड़ी विरोधाभासी बात है, खूब मन में सम्हाल कर रख लेना।

जितनी जल्द बाजी करोगे, उतनी देर लगेगी। और जितना धैर्य रखोगे, उतना जल्दी हो जायेगा। जो जितना प्रतीक्षा करने को राजी है, उतनी ही जल्दी घटना घट जाती है। अगर तुम अनंत प्रतीक्षा करने को राजी हो, तो इसी क्षण परमात्मा मिलेगा। तुम्हारी प्रतीक्षा का भाव ही परमात्मा के मिलने के लिए द्वार बन जाता है।

...ऐसे मन-धीरा

संन्यास का अर्थ है: प्रार्थना।

संन्यास का अर्थ है: निरहंकार

संन्यास का अर्थ है: उसके मिलन में, उसके विरह में मस्ती।

संन्यास का अर्थ है: उसके आगमन की अनंत प्रतीक्षा।

प्रेम पिलाया, पीवते, बिसरे सब साथी।

आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी।।

कहते हैं मलूकः प्रेम पिलाया पीवते, बिसरे सब साथी। संसार भूल गया, जब से उसके प्रेम के प्याले से दो बूंद भी पी ली है। जब से उसके प्रेम का प्याला पिया जब से उसकी प्रार्थना में लगे, जब से मस्त हुए उसकी याद में, जब से उसका स्मरण आया--तब से सब साथी बिसर गए। फर्क समझना।

संसार छोड़ना नहीं है--प्रभु को चखना है। प्रभु को चलते हो संसार विस्मृत होने लगता है। संसार को छोड़ने की जो चेष्टा में लगता है, और प्रभु को चखता नहीं है, उससे संसार छूटता नहीं; लौट-लौट कर आ जाता है; नये-नये ढंग में आ जाता है। और दमन ही होता है भीतर। वासनाएं भीतर कुलबुलाती हैं। वासना के कीड़े भीतर अंधेरे में सरकते हैं; सब तरफ से झांकते हैं, सब तरफ से संसार में खींच लेने की कोशिश करते हैं।

तुम अगर अपने तथाकथित त्यागी के जीवन में उतर कर देख सको, तो बहुत हैरान हो जाओगे; उसकी दशा भोगी से भी बुरी है! भोगी तो कम से कम भोग रहा है, इसलिए उतना चिंतित-परेशान नहीं है। त्यागी भोग भी नहीं रहा है, और परमात्मा उसे मिला नहीं है। उसकी दशा त्रिशंकु की है; वह बीच में अटक गया है; न यहां का रहा--न वहां का: धोबी का गधा, न घर का न घाट का। संसार छोड़ दिया, इस आशा में कि प्रभु मिलेगा; लेकिन संसार छोड़ने से प्रभु के मिलने का कोई भी संबंध नहीं है। असल में संसार तो प्रभु का ही है। इसको छोड़ने से प्रभु के मिलने का क्या संबंध हो सकता है?

संसार को समझने से प्रभु को मिलने का संबंध है, छोड़ने से नहीं। भागने से नहीं, जागने से। और जागना बड़ी अलग प्रक्रिया है। और निश्चित रूप से यही है। कि जब तुम्हें प्रभु का थोड़ सा स्वाद लगा जाए, तो संसार पर तुम्हारी पकड़ अपने से छूटने लगती है। तुम्हें असली हीरे मिल जाए, तो नकली कांच के टुकड़ों को कौन ढोता है! किसलिए? किस कारण?

प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूरत, मैगल माता हाथी।।

जैसे हाथी मस्त होकर झूमता है, मदमस्त होकर झूमता है, ऐसे कहते हैं मलूकदासः आठ पहर यों झूमत...। संन्यासी आठों पहर झूमता रहता है। उसका नृत्य भीतर चलता ही रहता है। वह मगन है। उसके भीतर एक गुनगुन चलती ही रहती है।

मैं सांसों के दो तारे लिए फिरता हूं
मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूं
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूं
जग पूछ रहा उनको जो जग की गाते
मैं अपने मन का गान किया करता हूं।
मैं निज उर के उदगार लिए फिरता हूं
में निज उर के उपहार लिए फिरता हूं
है यह अपूर्ण संसार, न मुझको भाता

मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूं।
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं हैं हाय जहां पर दाना
फिर मूढ न क्या जग जो इस पर भी सीखे
मैं सीख रहा हूं सीखा ज्ञान भुलाना
मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूं
मैं मादकता निश्शेष लिए फिरता हूं
जिसको सुनकर जग झूम उठे, लहराए
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूं।

संन्यासी के संबंध में तथाकथित त्यागियों के कारण बड़ी गलत धारणा बन गई है। संन्यास से हम समझते हैं: कोई उदास, हारा-थका, पराजित, रोता-सा आदमी जिसके चेहरे पर कभी हंसी नहीं आती; जिसके जीवन में कभी कोई मस्ती का दर्शन नहीं होता; जहां रस की धारा नहीं बहती। त्यागी से हमने अर्थ समझा है, कोई आदमी जो मरुस्थल जैसा सूख गया; सूखा-साखा दरख्त, जिस पर अब नई कोंपलें नहीं फूटतीं; वसंत आता है, तो खाली लौट जाता है; पक्षी जिस पर अब घोंसला भी नहीं बनाते; जिसकी छाया भी खो गई है; जिसकी छाया में कोई यात्री विश्राम भी नहीं करता। ऐसे सूखे-साखे आदमी को हम कहते हैं विरक्त--जिसमें रस बिलकुल सूख गया। यह संन्यासी की विकृत धारणा है। संन्यासी तो सदा मस्ती में होगा। उसका नृत्य तो सदा चलता होगा। उसकी धु तो आठों पहर रहेगी। तुम उसके पास सदा ही उत्सव पाओगे। जिसकी हवा में उत्सव हो और जिसके आसपास तरंगें उल्लास की हों, वहीं जानना की संन्यास घटित हुआ है। उदास और रोते हुए लोग संन्यासी नहीं हैं--संन्यास के धोखे में हैं। संसार उन्होंने त्याग दिया, यह सच है; लेकिन परमात्मा के प्याले से एक बूंद भी उनके कंठ में नहीं उतरी। आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी।
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।

संन्यासी को न तो अमीर दिखाई पड़ता है--न कोई गरीब। क्यों? क्योंकि जिसको यही दिखायी पड़ गया कि सभी उसका है, फिर कौन अमीर और कौन गरीब! उसके लिए तो अमीर भी गरीब हैं और गरीब भी गरीब हैं। क्योंकि दोनों ही धन के पीछे दीवाने हैं। दोनों ही निर्धन हैं दोनों को असली धन का कोई अभी संदेश नहीं मिला है।

उनकी नजर न आवते, कोई राजा-रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।।

और जैसे ही प्रभु के प्रेम के प्याले से थोड़ी सी भी घूंट पी ली, फिर सारे मोह के बंधन छूट जाते हैं। क्यों? क्योंकि मोह में हम उसी प्रेम को खोजते थे। मिलता नहीं था, तो पकड़ते थे। तुमने जिन-जिन को पकड़ रखा है--किसलिए?--सोचना इसलिए कि शायद आज नहीं मिला, कब मिले, परसों मिले।

हम परमात्मा के प्यासे हैं; पत्नी को पकड़ बैठे हैं, कि पति को पकड़े बैठे हैं, मित्र को पकड़ बैठे हैं, कि बेटे को कि बाप को कि मां को पकड़ बैठे हैं। सोचते हैंः शायद परमात्मा मिल जायेगा। इसलिए तो हमारे सभी संबंधों में विषाद है और सभी संबंधों में क्रोध है। तुम अपी पत्नी से वस्तुतः कभी प्रसन्न नहीं हो सकते, क्योंकि तुम इतनी बड़ी मांग कर रहे हो जो उस गरीब के पास है नहीं। तुम मांग रहे हो कि वह देवी हो, परमात्मा जैसी हो। पत्नी तुमसे मांग रही है कि तुम परमात्मा जैसे होओ। वह हो नहीं सकता; जो नहीं हो सकता; तो फिर बेचैनी है, क्रोध है; वैमनस्य है, कलह है; हजार तरह के उपद्रव हैं। लेकिन अगर गौर से देखोगे, तो तुम्हारी पत्नी चाहती है कि तुम परमात्मा जैसे होओ। तुम्हारी पत्नी जब नाराज होती है कि तुम धूम्रपान मत करो, तो वह क्या कह रही है? वह कहती है कि धूम्रपान करे मेरा पति! कि तुम जब जाते जुआ खेलने, तो तुम्हारी पत्नी रोती है, पीड़ित होती है, क्योंकि वह सोचते है कि उसका पति! उसने पति में परमात्मा खोजना चाहा है। यह बात जरा जंचती नहीं कि परमात्मा जुआ खेलने चले! शायद उसे भी साफ न हो कि क्यों वह तुमसे इतनी नाराज है। आखिर अगर एक दफा खेल भी आये, तो क्या हर्ज है? अगर तुमने थोड़ी सिगरेट पी भी ली, तो क्या हर्ज है; कि कभी शराब भी पी ली, तो ऐसा क्या बिगड़ गया? नहीं, उसकी धारणा! तुम्हें थोड़े ही चाहा है उसने; चाह में परमात्मा को खोजना चाहा है। उसे भी शायद साफ न हो।

तुम भी पत्नी में कुछ अपूर्व खोज रहे हो--कुछ दिव्य, कुछ शाश्वत। वह नहीं मिलता। मिलता हैः एक साधारण स्त्री--साधारणर् ईष्या, वैमनस्य, क्रोध, घृणा से भरी। मन व्यथित हो जाता है, जैसे धोखा हुआ; जैसे किसी ने धोखा दे दिया। तुमने चाहा था--एक अपूर्व सौंदर्य, जो कभी न कुम्हलाया--और यह पत्नी कुम्हलाने लगी। तुमने चाहा था--कुछ परलोक का, वह मिलता नहीं, तो तुम उदास होने लगते हो। उदास हो जाते हो, तो तुम किसी दूसरी स्त्री में खोजते हो, किसी दूसरे पुरुष में खोजते हो।

मगर परमात्मा को खोजना हो, तो यह कोई उपाय नहीं है। जिन्होंने परमात्मा की तरफ सीधी नहर उठाई, जो थोड़े से भी सीमा को छोड़ कर असीम की तरफ सरके और सीमा में जिन्होंने जरूरत से ज्यादा मांग न की--सीमा की शर्त हैं, सीमा की सीमाएं हैं--जिन्होंने असीम की मांग न की और असीम को जिन्होंने सीधा खोजने का प्रयास किया, उनके जीवन में मोह के बंधन अपने-आप छूट जाते हैं। जितना गठबंधन परमात्मा से हो जाता है, उनके और सब गठ-बंध अपने-आप खुल जो हैं। बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

साहेब मिल साहेब भए...। और परमात्मा से मिलने का सबसे बड़ा अपूर्व जो परिणाम है, वह यह है कि परमात्मा से जो मिला, वह परमात्मा हो गया। इससे छोटे में मन राजी होगा भी नहीं। इससे छोटे में बेचैनी रहेगी। तुम छोटे आंगन में न समा सकोगे। तुम्हें यह पूरा आकाश चाहिए। तुम्हारी नियति यह पूरा आकाश है। तुम्हें विराट चाहिए, विभु चाहिए। तुम जब तक

साहब ही न हो जाओ, तुम जब तक मालिकों के मालिक न हो जाओ, तब तक तुम अतृप्त रहोगे। अतृप्ति जलती रहेगी, काटती रहेगी भीतर--छुरे की धार की तरह, तुम्हारे प्राणों को सताती रहेगी।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

तमाई बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया मलूक ने इसका अर्थ होता है: तम, अंधेरा, तामसिकता, क्षुद्रता। इसका अर्थ होता है वासना। इसका अर्थ होता है: मूलतः अब भीतर कोई अंधेरा न रहा, दीया जलने लगा।

साहेब मिल साहेब गए, कुछ रही न तमाई।

अब कोई अंधेरा न रहा।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।

यह सूत्र बड़ा अनूठा है।

बुद्ध ने कहा है अपने भिक्षुओं को, श्वास को देखना--अनापानसतियोग या सतिपत्थान। श्वास को देखना। क्यों? क्योंकि बुद्ध ने कहा है, श्वास को देखते-देखते तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा कि श्वास तुम नहीं हो। तुम वहां हो, जहां श्वास भी नहीं जाती। श्वास शरीर के लिए जरूरी है, तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। श्वास आत्मा और शरीर के बीच सेतु है, जोड़ है। इसलिए श्वास टूट जाती है, तो आत्मा और शरीर का संबंध छूट जाता है। लेकिन इससे मृत्यु नहीं घटती, इससे केवल संयोग छूट जाता है। श्वास के प्रति जागे रहो; अगर श्वास को देखते रहो--भीतर आई, बाहर गई, भीतर आई, बाहर गई--इसके प्रति होश को प्रगाढ़ करते जाओ, बुद्ध ने कहा, तो एक दिन पाओगे कि तुम श्वास नहीं हो। जिस दिन यह जाना कि मैं श्वास नहीं हूं, उसी दिन तुम मृत्यु के बाहर हो गये, अमृत का दर्शन हो गया।

यह मलूक की पंक्ति कहती है:

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन जाई।।

--जहां श्वास नहीं पहुंचती, उस घर में पहुंच गए। जहां श्वास नहीं पहुंचती, वहीं अमृत का वास है। जहां तक श्वास जाती है, वहां तक संसार है। जहां श्वास नहीं जाती, वहीं परमात्मा हो जाते हो। ऐसा नहीं कि तुम परमात्मा का दर्शन करते हो कि अहो, कैसे सुंदर! तुम ही परमात्मा हो जाते हो।

जब तक इतनी भी दूरी रही कि तुम देखने वाले और परमात्मा दृश्य रहा, तक बेचैनी रहेगी। इतनी दूरी भी सही नहीं जाती। यही तो प्रेम की पीड़ा है। तुम जिसे प्रेम करते हो, उससे दूरी नहीं सही जाती। लेकिन इस जगत में कुछ भी करो, दूरी तो रहेगी। कितना ही तुम पत्नी को प्रेम करो, पति को प्रेम करो, दूरी तो रहेगी। तुम दो हो, दूरी तो रहेगी। मिल जाओगे क्षण भर को, लेकिन क्षण भर का मिलन होगा, फिर दूरी खड़ी हो जायेगी--और भी प्रगाढ़ हो कर खड़ी हो जायेगी; पहले से भी ज्यादा दूरी मालूम होगी।

ऐसा होता है, तुम रास्ते से निकल रहे हो, अंधेरी रात है। धीरे-धीरे अंधेरे मैं चलते-चलते तुम्हें थोड़ा-थोड़ा दिखाई भी पड़ने लगा है। फिर एक अचानक तेज प्रकाश वाली कार तुम्हारे पास से निकल गई, एकदम रोशनी हो गई। कार के जाने पर तुम पाओगे; अंधेरा और भी ज्यादा हो गया; अब कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। पहले अंधेरे में चलते-चलते थोड़ा दिखाई भी पड़ता था; अब यह कार और तुम्हें चकाचौंध से भर गई, कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

जब भी पति और पत्नी क्षण भर को प्रेम के आवेग में मिलते हैं, तो उसके बाद और भी दूर हो जाते हैं--पहले से भी ज्यादा दूर। यही तो दुःख है संभोग का। संभोग के बाद सभी लोग विषाद से भर जाते हैं। यह तो पास आना चाहा था, और दूर फिक गए। यहां तो अद्वैत सध नहीं सकता। अद्वैत तो सध सकता है सिर्फ परमात्मा से, क्योंकि वहां देह का सवाल नहीं है। देह दो कर रही है। देह अलग-अलग कर रही है। देह के पार को जानते ही भेद समाप्त हो जाते हैं।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

जल-सा तरल बनूं
सूरज की किरण-डोर पकड़
गगन चढ़ूं
बाष्प बन विचरूं
फिर बरसूं
चंदा की शीतल छाया छू
हिमखंड बनूं
फिर पिघलूं, बहूं
चाहे चहां ढलूं
चाहे जो रूप-रंग
आकृति ग्रहण करूं
जो हूं अंततः वही रहूं!

इस प्रार्थना की जरूरत नहीं है। जो हम हैं, हम वही रहते हैं। अनंत-अनंत काल में अनंत-अनंत भटकावों में पड़ने के बाद भी साहब हमारे भीतर मौजूद है, हम वही के वही हैं। इसलिए तो साहेब मिल साहेब भए।

अगर हम साहब से अलग होते, तो मिल कर एक नहीं हो सकते थे। साहब के साथ एक हैं ही। इसीलिए स्मरण आते ही, बोध आते ही तत्क्षण भेद गिर जाते हैं। साहब के साथ हमारी एकता शाश्वत है। हम परमात्मा से कभी अलग हुए नहीं। हम परमात्मा से अलग हो नहीं सकते हैं। जैसे सागर में लहर अलग नहीं हो सकती, कितनी ही उछले-कूदे, कितने ही रूप धरे, दूर आकाश में उठ जाये उत्तुंग, जहाजों को डूबा दे, पक्षियों के साथ होड़ करे, सूरज को छूने की चेष्टा करे--लेकिन सागर से दूर नहीं हो सकती, सागर से अलग नहीं हो सकती;

सागर की ही है, फिर गिर पड़ेगी, फिर सागर में खो जायेगी। यह जो बल है लहर का, वह भी सागर का बल है। हम तो लहरें हैं। जिस दिन लहर जाग कर देखती है, उस दिन वह कहेगीः अरे, तो मैं लहर--सागर हो गई! मगर लहर सागर थी।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।

कहते हैं मलूकः वही डूबता है, जो अपने को भूल कर परमात्मा को नहीं याद करता। हम अपने को याद कर रहे हैं, और परमात्मा को भूले हैं।

दुनिया में दो ही ढंग हैं जीने के। अपने को याद करो, परमात्मा को भूलो--यह ढंग, कहो संसारी का ढंग। अपने को भूलो, परमात्मा को याद करो--दूसरा ढंग, कहो संन्यासी का ढंग। अपने को नंबर दो रखो और परमात्मा को नंबर एक, फिर देर न लगेगी--साहेब मिल साहेब भए। अपने को नंबर एक रखो और परमात्मा को नंबर दो, तो तुम ही नास्तिक हो।

तुमने देखा आस्तिक भी मंदिर में प्रार्थना करने जाता है तो परमात्मा को नंबर दो रखता है, नंबर एक नहीं! वह परमात्मा से कहता है; जो मैं चाहता हूं, वह तू कर। वह यह नहीं कहता कि जो तू करे, वह मुझे स्वीकार। वह यह ही कहता कि तेरी मरजी में स्वीकार, मैं आनंद से स्वीकार करने आया हूं। वह कहता है कि देखो, मेरे लड़के को नौकरी नहीं मिल रही, नौकरी लगवा दो; कि मेरी पत्नी बीमार है और मैं कितना भक्ति-भाव कर रहा हूं; सुनो सब कुछ, बहरे मत बनो, इसे ठीक कर दो। नंबर एक वह खुद ही है, परमात्मा की भी सेवा लेना चाहता है। मालिक वही है। मालिक अपने को समझ रहा है, परमात्मा का भी उपयोग करना चाहता है। यह आस्तिकता नहीं है।

आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।

वही डूबता है, जो अपने को तो भूलता नहीं और परमात्मा को भूला रहता है।

हरि का मर्म न पाइया, कारन कर डूबे।

और इसीलिए डूबता है कि हरि का मर्म न पा सका। जिसने अपने को भूला और परमात्मा को याद दिया, उसकी बड़ी और गति है।

तुम रहो यदि साथ मैं तो पार क्या, मझधार क्या है

हर लहर तट है मुझे तो, सिंधु की ललकार क्या है

फिर भरे तूफान में मेरी अपने करों से

तुम डुबाओ, तट न पाऊं, यह कभी संभव नहीं है।

फिर तो परमात्मा अगर डुबाए भी, तो भी तट मिल जाता है। यह थोड़ा समझना।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा और जो अपने को खो देगा, वह पा लेगा। बड़ा विरोधाभासी वचन है, पर बड़ा बहुमूल्य भी। जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा।

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

और वे लोग भी जिनको तुम धार्मिक कहते हो--करें भरोसा पुन्न का साहब बिसराया--उसको भी साहब से कुछ मतलब नहीं है। वे भी भरोसा करते हैं कि देखो हमने इतना दान दिया, इतना पुण्य किया, इतनी मस्जिदें बनवा दीं, इतने मंदिर, इतने गुरुद्वारे, इतने ब्राह्मणों को भोजन करवाया, इतने अस्पताल खोल दिये, इतने स्कूल चलाए, हमने इतना पुण्य किया। इस पुण्य के बल पर वे सोचते हैं कि पा लेंगे सत्य को, तो भ्रांति है उनकी। क्योंकि वह पुण्य भी अहंकार की ही घोषणा है। यह पुण्य भी अहंकार का ही आभूषण है। यह पुण्य भी जंजीर है। माना कि सोने कि है, मगर है जंजीर ही। पाप होगी जंजीर लोहे की, पुण्य होगी जंजीर सोने की; मगर इससे क्या फर्क पड़ता है, जंजीर तो जंजीर है, दोनों बांध लेती हैं।

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

यह आदमी जो कहता है: मैंने पुण्य किया, यह भी तो कर्ता बन रहा है। कर्ता बन रहा है कि चूका, कि आपे से घिरा, कि फिर सागर में मर्म को नहीं समझ पाया। एक ही पुण्य है इस जगत में और वह पुण्य है: यह जानना कि मैं कर्ता नहीं हूं, परमात्मा कर्ता है। और एक ही पाप है इस जगत में--यह जानना कि मैंने किया और परमात्मा कर्ता नहीं है, कर्ता मैं हूं।

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

बूड़ गए तरबोर को, कहूं खोज न पाया।।

ऐसे लोग कितना ही खोजते रहें, कभी खोज न पायेंगे। इतनी खोज ऐसी है, जैसे कोई चम्मच से ले कर और सागर को नापने चले। अहंकार की छोटी-सी चम्मच--तुम अथाह सागर को नापने चले हो!

मैंने सुना है: यूनान के सागरत्तट पर एक आदमी एक छोटा सा गड्ढा खोद कर बैठा था और एक चम्मच हाथ में ले कर भाग कर जाता, सागर से पानी भरता और आ कर गड्ढे में डालता। अरस्तू घूमने निकला था। उसने यह देखा। वह घूम रहा था सुबह। बार-बार उसने देखा। वह थोड़ा हैरान हुआ। उसे बड़ी बेचैनी भी हुई। किसी के काम में बाधा तो नहीं डालनी चाहिए। लेकिन फिर जिज्ञासा को रोक न सका, तो उसने पूछा कि भई, तुम यह क्या कर रहे हो? चम्मच से पानी भर-भर कर इस गड्ढे में डाल रहे हो! उसने कहा, मैंने तय किया है कि सागर को उलीच कर रहूंगा। अरस्तू हंसा। उसने कहा कि भाई पागल हो जाओगे? पागल तुम हो ही, नहीं तो ऐसा विचार ही कैसे उठता! यह छोटा-सा गड्ढा, यह जरा-सी चम्मच, इतने विराट सागर को...जरा हिसाब तो लगाओ!

और वह पागल खूब खिल-खिल कर हंसने लगा। तो अरस्तू ने पूछा कि तुम हंसते क्यों हो? बात क्या है? उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि अगर मैं पागल हूं, तो तुम कौन हो! मैंने सुना है कि छोटी सी खोपड़ी से परमात्मा को समझने की चेष्टा में लगे हो। तुम अपने छोटे से तर्क की चम्मच से अथाह को थाह पाने चले हो!

कहते हैं, अरस्तू बहुत उदास हो गया। बात तो सच थी। अरस्तू यूनान का सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक था और सबसे बड़ा तार्किक। कहते हैं, पश्चिम के तर्कशास्त्र का वही पिता है। तो

जिसने भी यह गड्ढा खोदने का नाटक किया होगा, वह आदमी अदभुत रहस्यवादी संत रहा होगा। रहा होगा बाबा मलूकदास जैसा कोई! ठीक ऐसा ही कोई अलमस्त आदमी रहा होगा। चेताने की चेष्टा करता होगा अरस्तू को कि इस छोटी-सी खोपड़ी में भर न सकोगे विराट को। और तर्क की जरा सी चम्मच!

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

बूड़ गए तरबोर को, कहुं खोज न पाया।।

यह अथाह है। यह जो सत्य है, चारों तरफ से तुम्हें घेरे हुए, अथाह है। इसे तुम पुण्य की चम्मच से न खोज पाओगे। इसे तुम अहंकार के छोटे से तराजू पर न तौल पाओगे। इसे तो तौलना हो, इसे तो जानना हो, पहचानना हो, तो एक ही उपाय है: इसमें डूब जाओ! इसमें गल जाओ! इसके साथ एक हो जाओ!

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी।

हम बड़ा हम बड़ करि मंए, बूड़े बिन पानी।।

और कहते हैं मलूक कि साधुओं के सत्संग में भी बैठने जाते हो, तो वहां भी सत्संग नहीं करते तुम।

साध मंडली बैठिके, मूढ जातिब खानी। वहां भी तुम यही फिक्र करते हो कि मैं ब्राह्मण हूं, कि मैं क्षत्रिय हूं, कि मैं राजा हूं, कि मैं ज्ञानी हूं, कि मेरे पास इतना धन, कि मेरे पास इतना पद! वहां भी तुम मूढता की बातें करते हो। साधुओं के सत्संग में बैठ कर भी तुम सत्संग नहीं कर पाते।

साधु के पास बैठने से थोड़े ही सत्संग होता है। अगर तुम्हारे पास अहंकार की चादर चारों तरफ लिपटी हो, तो साधु बरसता रहेगा और तुम बिना भीगे रह जाओगे। सत्संग तो तभी होता है, जब तुम सब चादरें उतार कर रख दो--नग्न; सब द्वार-दरवाजे खोल दो--निर्भय। सत्संग तो तभी होता है, जब तुम किसी सदगुरु की तरंग को, अपने भीतर जाने दो, अपने हृदय को उसके साथ नाचने दो, जब तुम उसकी तरंग के साथ एक हो जाओ; जब कुछ घड़ियों को तुम मिट जाओ, भूल जाओ।

गुरु के पास तो पहला पाठ सीखना है मिटने का, ताकि फिर एक दिन तुम उस महागुरु के साथ मिट सको। गुरु समझो कि एक छोटा सा सरोवर है, इसमें तुम जैसे झरोखा है, अगर तुम इसमें उतार जाओ तो किसी दिन विराट आकाश में पहुंच जाओगे।

साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी। वहां भी तुम अपने अहंकार की ही चर्चा में लगे रहते हो! चर्चा जरूरी नहीं कि तुम प्रकट रूप से करते हो।

यहां लोग हैं। वे खबर भेजते हैं कि हम आना तो चाहते है सुनने, लेकिन पीछे नहीं बैठ सकते। खबर भेजता हैं: आगे बैठने का इंतजाम होना चाहिए। क्यों? जो आगे आये, वह आगे बैठ जाये। जो पीछे आये, वह पीछे बैठ जाये। उन्हें यह बात खलती है कि उनको पीछे

बैठना पड़े। अगर ऐसा कोई आ भी जाये, कुछ कहे भी न तो पीछे बैठा-बैठा तड़फता रहेगा कि पीछे बैठा हूं। सुन नहीं पायेगा कि क्या हो रहा है। यहां क्या घट रहा है, उसमें लीन भी नहीं हो पायेगा, डूब भी नहीं पायेगा। मजबूत लोहे की चादर उसके चारों तरफ जकड़ी है।

कुछ लोग खबर भेजते हैं कि वे नीचे नहीं बैठ सकते, फर्श पर नहीं बैठ सकते। क्यों? क्या तकलीफ है? किसी को कलेक्टर होने की बीमारी है; किसी को कमिश्नर होने की बीमारी है; किसी को मेयर होने की बीमारी है; किसी को मिनिस्टर होने की बीमारी है। बीमारियां इतनी हैं! तो मैं उनसे कहता हूं, आओ ही मत, क्योंकि बेकार होगा आना। नाहक चल कर आओगे-जाओगे, इतनी तकलीफ, इतना समय गंवाओगे, इस बीच कुछ और कर लेना। उपमंत्री हो, तो इस बीच थोड़े चढ़ कर मंत्री बन जाना। डिप्टी कलेक्टर हो, तो कलेक्टर बनने की कोशिश में लगा देना इतना समय। तो कुछ सार होगा। यहां आने से क्या फायदा होगा? वह जो तुम्हारे भाव है, वह तुम्हें वंचित कर देगा। साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी।

हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी।।

और ऐसे, मलूक कहते हैं, तुम बिनना पानी के डूब मरोगे। चुल्लू भर पानी की भी जरूरत न होगी। हम बड़ कर मुए, बूड़े बिना पानी।

तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे।

और जन्मों से तुम बंधे हो इसी मूढ़ता से और अभी तक नहीं छूटे! अब तो चेतो; अब तो जागो! अजहूं चेत गंवार!

तबके बांधे तेई नर...कब के बंधे हो! कितना दुःख पाया! कितनी पीड़ा झेली! कितने दंश, कितने कांटे! लहूलुहान हो गए तुम्हारे पैर। हृदय तुम्हारा छिन्न-छिन्न हो गया है। कहीं कोई शांति नहीं, कहीं कोई आनंद नहीं। फिर भी इस अहंकार को पकड़े हो! कब जाओगे?

तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे। कितने जन्मों-जन्मों से यह तुम्हें पकड़े हुए लिए जा रहा है! और भी तुम्हें पकड़े रहेगा। अगर आज नहीं छोड़ा, तो कल कैसे छोड़ोगे? क्योंकि जब भी समय आता है, आज की तरह आता है।

मैंने सुना, एक होटल में, होटल ठीक नहीं चलती थी तो मैनेजर ने एक तरकीब की; उसने एक तख्ती लगा दी होटल पर कि भोजन मजे से करिये, आपको पैसे न चुकाने पड़ेंगे। आपके नाती-पोते चुका सकते हैं। हम आपके नाती-पोतों से ले लेंगे, आप फिक्र न करें।

बड़ी भीड़ हो गई। मुल्ला नसरुद्दीन भी पहुंच गया--अपनी पत्नी, बच्चों, मोहल्ले के बच्चों को भी ले कर और मित्रों को भी लेकर कि आओ। जो भी श्रेष्ठतम भोजन उपलब्ध हो सकता था, खूब डट-डट कर उसने खिलवाया। अब कोई कमी न थी। अब नाती-पोतों की नाती-पोते जानेंगे, क्या लेना-देना उसका! जब बाहर निकलने लगा, तो मैनेजर ने आ कर छः सौ रुपये का बिल उसके हाथ में दे दिया। छः सौ रुपये, और उसने कहा, बिल कैसा! तख्ती को देखो। उसने कहा, वह तो ठीक है। यह आपके बाप-दादे जो भोजन कर गए थे, उसका बिल है। आज का बिल तो हम नाती-पोतों सो ले लेंगे।

ऐसे पीछे से बंधे, आगे से बंधे हम सरकते रहते हैं। तुमने अपने पिछले जन्मों में जो किया है, उससे भी नहीं छूट पाये हो। अभी जो कर रहे हो, वह कल तुम्हें और बांध लेगा।

तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे।

पकरि पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे।।

और कितनी दफे मौत ने तुम्हें लूटा और भलीभांति पकड़-पकड़ कर लूटा, फिर भी तुम अब तक नहीं समझ पाये! कितनी बार मरे, कितनी बार जन्मे; कितनी बार फिर पैदा होते ही फिर उसी दौड़ में लग गए! कितनी बार धन इकट्ठा किया, कितनी बार गंवाया! कितनी बार पत्नी-पति के राग-रंग में पड़े, कितनी बार राग-रंग टूटा! मौत आई--सब छीनती गई। फिर भी तुम जागते नहीं।

तबके बांधे तेइ न, अजहुं नहिं छूटे।

पकरि पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे।।

हार गए यमदूत भी तुमसे। खूब भलीभांति से पकड़-पकड़ कर खूब तुम्हें पीटते, मारते, खींचते! मगर जैसे ही तुम यमदूतों के हाथ से छूटते हो, तुम फिर उसी काम में लग जाते हो।

काम को सब त्यागी के, जो रामहिं गावै।

दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।।

कहते हैं मलूक: काम को सब त्यागी के, जो रामहिं गावै, एक काम भर कर लो, जो तुमने कभी नहीं किया। अब तक तुम कामवासना में ही पड़े रहे, तुमने सारी ऊर्जा कामवासना में लगा दी, कामना में लगा दी। वही ऊर्जा का थोड़ा सा हिस्सा राम के गुणगान में लगाओ। काम से थोड़ी सी ऊर्जा मुक्त करो, राम से डुबाओ।

दो दिशाएं हैं--काम और राम। काम का अर्थ है: अंधे की तरह अहंकार की बातों का मान कर चले जाना। राम का अर्थ है: विराट को सुनना, अनंत की तरफ आंखें उठाना, शाश्वत को गुनगुनाना। जो रामहिं गावै...थोड़ा राम का गीत गुनगुनाओ, थोड़ी राम की मस्ती में लगो।

दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।

और जिसने राम का गीत गाना सीख लिया, जिसने भजा अल्लाह को, जिसने थोड़ी सी गुनगुन की भीतर प्रभु की, उसे वह मिल जाता है जो लक्ष्य है और किसी तरह से साधे नहीं सधता।

तेहि अलख लखावै। जो दिखाई नहीं पड़ता आंखों से, वह दिखाई पड़ता है फिर। जो कानों से सुनाई नहीं पड़ता, वह मधुर, अपूर्व संगीत सुनाई पड़ता है फिर। तो हाथ से छुआ नहीं जाता, वह प्राणों से छुआ जाता है फिर। तेहि अलख लखावै। असंभव संभव हो जाता है राम के साथ।जो नहीं होता किसी भी तरह, वह संभव हो जाता है। अकेले-अकेले संभव हो संभव नहीं होता, असंभव की तो बात ही छोड़ दो।

जो लहर अकेले ही जीने को कशिश कर रही है, विक्षिप्त हो जायेगी। और जो लहर सागर के साथ जीने लगी, जिसने सागर के साथ संबंध घोषित कर दिया और कहा, तुम्हारी हूं;

तुम्हीं गुनगुनाना मुझसे...रामहिं गावै, अब मैं नहीं गाती, तुम ही गाओ मुझसे; अब तुम्हीं धड़को मेरी धड़कन में; तुम्हीं उठो लहर बन कर; तुम्हीं छुओ चांदत्तारों को; तुम्हीं नाचो; मैं हटती हूं, मैं तुम्हें द्वार दरवाजा देती हूं...रामहिं गावै...तेहि अलख लखावै--फिर उसे जो अलक्ष्य है, वह भी उसका लक्ष्य बन जाता है। जो नहीं मिल सकता है, वह भी मिलता है। जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कभी पा सकेंगे, वह कल्पनातीत भी हमारे ऊपर झरत जाता, बरस जाता।

जरा राम की तरफ आंख उठाओ, तो राम तुम्हारी तरफ आंख उठाये।

मैं समझता हूं तेरी इश्वागिरी को साकी।

काम करती है नजर, नाम है पैमाने का।।

कुछ पीने-पिलाने की जरूरत नहीं, बस उसकी नजर से थोड़ी नजर मिल जाए, काम करती है नजर, नाम है पैमाने का। उस परम प्रियतम की आंखें से थोड़ी आंख मिल जाए, बस एक दरस--सब हो गया! परम कीमिया तुम्हारे हाथ आ गई। उस एक झलक में ही, उसकी आंख से तुम्हारी आंख के मिल जाने में ही, तुम समझ लोगे कि जब तक भूल-चूक कहां हो रही थी।

और ध्यान रखना, परमात्मा तुम्हारी तरफ सादा से देख ही रहा है। उसकी नजर तुम पर गड़ी है। सिर्फ तुम्हीं उसकी तरफ नहीं देख रहे। इसलिए तुम्हारे ही लौटने की बात है। और जब तक तुम उसे न देखोगे, तब तक भूल-चूक होती रहेगी; तुम कंकड़-पत्थरों को हीरे समझोगे।

जो शै है फना उसे बका समझा है

जो चीज है कम उसे सिवा समझा है

है बहरे जहां में उम्र मानिंदे हबाब

गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

जो शै है फना, उसे बका समझा है। जो कुछ नहीं है, उसे सब कुछ समझ बैठे हैं। जो मिटने को ही है, उसे जीव समझ बैठे हैं। जो चीज है कम, उसे सिवा समझा है। जो सीमित है, उसे असीम मान बैठे हैं। जो चुक जायेगी। आज नहीं कल, उस पर ऐसा भरोसा किये बैठे हैं, जैसे कभी न चुकेगी। यह जिंदगी चुक जायेगी, ये हाथ खाली रह जायेंगे। इसे ऐसे समझे बैठे हैं, जैसे हमें मरना ही नहीं है; जो और लोग मरते हैं, हम थोड़े ही मरते हैं। हम तो दूसरों को मरघट तक पहुंचा आते हैं। हम तो कभी मरते नहीं।

खयाल रखना, जब भी कोई अर्थी निकले, जानना तुम्हारी ही अर्थी है। जब भी कोई मरता है, तुम्हीं मरते हो। हर मौत तुम्हारी ही मौत की खबर लाती है।

जो चीज है कम उसे सिवा समझा है

है बहरे जहां में उम्र मानिंदे हबाब।

जैसे पानी का बुलबुला, ऐसी है जिंदगी। मानिंदे हबाब!

गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

पानी का बुलबुला उठता है; सूरज की किरणें पड़ती हैं, इंद्रधनुष के रंग फैल जाते हैं। अभी है, अभी गया--ऐसी ही जिंदगी है--खूब इंद्रधनुषी! हाथ कुछ भी नहीं आता। इंद्रधनुष को पकड़ो, हाथ खाली के खाली रह जाते हैं; दूर से बड़े सुहावने, पास से शून्य।

है बहरेजहां में उम्र मानिंदे हबाब

गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

ईश्वर की तरफ थोड़ी आंख उठे, तो तुम्हारे पास कसौटी आये, तौलने का तराजू आये, मापदंड मिले। तो फिर उस एक छोटी सी किरण से जो उसकी आंख से तुम्हारी आंख में उतर जायेगी, तुम इस सारी जिंदगी को नाप लोगे। एक क्षण में तुम्हें अहसास हो जायेगा--सब असार है। फिर जरूरी नहीं कि तुम इसे छोड़कर भाग जाओ। अगर परमात्मा यही मरजी है कि इसमें रहो, की इसी में बढ़ो, तो तुम इस में ही रहोगे, इसी में ही बढ़ोगे। अगर उसकी मरजी है कि हटा ले तुम्हें यहां से, तो तुम हट जाओगे। लेकिन अब न अपनी मरजी से रहोगे, न अपनी मरजी से जाओगे। जिहि विधि राखे राम! फिर तुम उसी विधि से रहने लगोगे।

जिहि विधि राखे राम--यही संन्यास का मूल सूत्र है, क्योंकि यह समर्पण का मूल सूत्र है। संन्यास यानी समर्पण।

मलूकदास ने संन्यास की यह जो व्याख्या की है, इस पर खूब ध्यान करना। इसमें कुंजी छिपी है, जिससे जीवन के मंदिर के द्वार खोले जा सकते हैं।

आज इतना ही।

क्रांतिद्रष्टा संत गूंगी प्रार्थना काम पक जाए, तो राम

नाचो--गाओ--डूबो प्रभु-मिलन

दूसरा प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः दिनांक १२ मई, १९७७

प्रश्न-सार

बाबा मलूकदास जैसे अलमस्त फकीरों की परंपरा क्यों नहीं बन पाती?

प्रार्थना में क्या कहें? प्रभु-कृपा कैसे उपलब्ध हो?

शरीर और मन के संबंध तृप्त नहीं करते, क्या करूं?

कुछ समझ में नहीं आता?

जब खो ही गये, तो परमात्मा से मिलन कैसा?

पहला प्रश्नः मलूक बाबा जैसे पियक्कड़ों की परंपरा तो क्या, संगी-साथी भी कम सुनाई पड़ते हैं! पियक्कड़ों के साथ पीने में सदा से क्या भय और एतराज रहा है? कृपा करके कहें।

परंपरा आंखवालों की बनती ही नहीं; परंपरा अंधों की बनती है। अंधों के पीछे जो अंधों की कतार है, उसका काम है--परंपरा। आंखवाले तो अकेले होते हैं। आंखवालों की भीड़ नहीं होती। भेड़ें चलती हैं भीड़ में। "सिंहों के नहिं लेहड़े'।

संतों की कोई जमात नहीं है। जमात के पीछे ही, भीड़ के पीछे ही भय छिपा है। भेड़ चलती है भीड़ में--भय के कारण। अकेले होने का साहस नहीं है। दूसरों के संग-साथ में भय छिपा रहता है। अकेले होते ही भय उभर आता है।

समाज है इसीलिए--कि आदमी भयभीत है। जैसे-जैसे आदमी निर्भय होगा वैसे-वैसे समाज तिरोहित होगा। व्यक्ति होंगे फिर; समाज जैसी चीज शिथिल होती जायेगी।

समाज का अर्थ ही यही है अकेले हम बहुत अधूरे हैं, चलो, हाथ में हाथ डाल लें। एक भ्रम पैदा करें--कि अकेले नहीं हैं।

तुमने देखाः एक अकेला आदमी गुजरता हो मरघट से, तो डरता है। दूसरा आदमी साथ हो जाए, तो डर कम हो जाता है। दूसरा भी इतना ही डर रहा था। दोनों डरे हुए हैं; दोनों अलग-अलग डरे हुए हैं। लेकिन दोनों साथ होकर सोचते हैं कि शायद कोई आश्वासन मिल गया।

दो डरे हुए आदमियों के साथ होने से क्या फर्क पड़ता है? डर दुगुना हो जाना चाहिए; और क्या होगा! लेकिन भ्रम पैदा होता है--कि चलो, दूसरा है। दूसरे की मौजूदगी से एक आभास पैदा है कि जरूरत पड़ेगी, तो कोई संग-साथ है। इसलिए हम परिवार बनाते हैं। अकेले में भय है। समाज बनाते हैं। राष्ट्र बनाते हैं। राज्य बनाते हैं। समूहों पर समूह निर्मित करते हैं। लेकिन सब के पीछे गहरे में भय है।

संत तो अकेला है। और संत के पीछे और संत के साथ तो केवल वे ही हो सकते हैं, जिनकी अकेले होने की हिम्मत है। फर्क को समझना। ऐसा नहीं कि बुद्ध के साथ लोग नहीं चले। चले--हजारों लोग चले। लेकिन वही लोग चले, जो भीड़ की तलाश में न थे; जिन्हें अकेले होने की हिम्मत थी। संतत्व का अर्थ ही है; अकेले होने का साहस।

अगर तुम बुद्ध के पास गये होते, तो तुम पातेः दस हजार भिक्षु बैठे है। ऊपर से तो ऐसा ही दिखेगा कि यह भीड़ है। मगर तुम भ्रांति में पड़ गये। यह भीड़ नहीं है। यहां एक-एक आदमी अपनी वजह से बैठा है। ऊपर से तो भीड़ दिखाई पड़ती है, क्योंकि दस हजार लोग बैठे हैं, लेकिन ये दस हजार में एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो नौ हजार नौ सौ निन्यानबे के कारण बैठा है। अगर नौ हजार नौ सौ निन्यानबे चले जायेंगे, तो उठ जायेगा उनके साथ--ऐसा नहीं है। अपने कारण बैठा है। यहां एक-एक अकेला बैठा है। यहां दस हजार एक बैठे हैं। इसको खयाल में लेना।

तुम दस आदमियों के साथ ध्यान में बैठ सकते हो। लेकिन जैसे ही तुम ध्यान में जाओगे, वहां दस इकट्ठे न रह जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग हो गया। ध्यान में उतरने ही अलग-अलग हो गया। आंख बंद होते ही भीड़ खो गई। तुम बचे। तुम अकेले बचे; दूजा कोई न रहा।

यह जो भीड़ से जुड़ा हुआ आदमी है, परंपरा से जकड़ा हुआ आदमी है, वह ध्यान भी नहीं कर पाता, क्योंकि ध्यान में अकेला होना पड़ेगा। ध्यान तो मार्ग है--संतत्व का।

तुम पूछते हो: बाबा मलूकदास जैसे पियक्कड़ों की परंपरा क्यों नहीं बनी? परंपरा बन नहीं सकती।

कभी-कभी कोई बिरला व्यक्ति उस ऊंचाई तक उठता है। ऐसे तारे कभी-कभी उगते हैं और खो जाते हैं। फिर सदियों प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

तुम भी ऐसे तारे बन सकते हो, अगर भय छोड़ो। तुम भी ऐसे ज्योति पिंड बन सकते हो, अगर भीड़ से नाता छोड़ो।

तुम खयाल करते हो: तुमने कहां-कहां अपने को भीड़ से बांध रखा है? कोई कहता है: मैं हिंदू। कोई कहता है: मैं मुसलमान। कोई कहता है: मैं ईसाई। कोई कहता है: मैं सिक्ख। कोई कहता कि मैं भारतीय; कोई कहता; मैं चीनी; कोई कहता: मैं जापानी। कोई कुछ कहता; कोई कुछ कहता। हजार-हजार समूहों से हमने संबंध बांध रखा है।

एक आदमी न मालूम कितने समूहों से बंधा है! इन सारे बंधनों के ऊपर उठते ही तुम भी संतत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

संतों की भीड़ नहीं होती--और न संतों की कोई जमात होती है।

फिर मलूकदास जैसे लोगों की जमात तो और भी मुश्किल है। इतने मस्त लोगों के साथ तो तुम चलने में घबड़ाते हो। इनकी मस्ती तुम्हें और भी भय से भर देती है।

मस्ती से बड़ा भय है। क्यों? क्योंकि मस्ती के लिए एक अनिवार्य शर्त है कि तुम अपना नियंत्रण छोड़ो। डोलना हो--मस्त हाथी की भांति, तो नियंत्रण न रख सकोगे। शराबी की भांति चलना हो तरंग में, तो फिर नियंत्रण न रहेगा। और नियंत्रण गया--कि अहंकार गया।

अहंकार नियंत्रण है। अहंकार पूरे समय बैठा हुआ है--नियंत्रण जमाये। अहंकार तानाशाह है तुम्हारे भीतर। अहंकार जो कहता है, वही तुम कहते हो। जो कहता है: मत करो, वह तुम नहीं करते। अहंकार तुम्हें चलाता है, तो तुम चलते हो। अहंकार बिठाता है, तो बैठते हो।

मस्त आदमी का क्या अर्थ होता है? मस्त आदमी का अर्थ होता है: अब कोई चलानेवाला नियंत्रण भीतर न रहा। अब तो छोड़ दिया सब परमात्मा पर। जहां उसकी मरजी हो, ले जाए। डुबाना हो--डुबा दे; हम गीत गुनगुनाते डूब जायेंगे। मिटना हो--मिटा दे; हम मुस्कुराते मिट जायेंगे। जो उसकी मरजी; जैसी उसकी मरजी।

अहंकार कहता है: हिसाब से चलो; कदम-कदम फूंक कर रखो; कहीं भटक मत जाना। होशियारी रखो; चालाकी रखो। तो मस्तों के साथ नहीं चल पाते।

बाबा मलूकदास तो पियक्कड़ हैं। पियक्कड़ के साथ जाने का मतलब ही यह होता है कि तुम भी पीने की हिम्मत जुटाओगे। नहीं तो पियक्कड़ के साथ बैठने का क्या सार? और खतरा यह है कि पीने वालों के साथ बैठो, तो सत्संग के परिणाम होते हैं। शराबियों के पास बैठोगे, शराब पीने लगोगे। संतों के पास बैठोगे, शराब पीने लगोगे।

सत्संग का अर्थ ही क्या है? सत्संग का अर्थ है कि तुम संत की बीमारी के लिए खुले हो। अगर संतत की बीमारी तुम्हारे तरफ आने लगेगी, तो तुम प्रतिरोध न करोगे। तुम कहोगे: आओ, द्वार खुले हैं।

संतों से लोग डरते हैं! डर के कारण पूजा भी कर लेते है। पूजा--डर का ही एक उपाय है। पैर छू कर--और भोगे! बैठते नहीं है--पास में। पैर छूते हैं और कहते हैं: बाबा, बख्शो। पैर छूकर यह कहते हैं कि आप भले, हम भले; आपकी कृपा बनी रहे। आपका आशीर्वाद बना रहे। लेकिन संतों के पास ज्यादा देर रुकते नहीं। खतरा है।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे-बैठे सहना--सौंदर्य को
धुली धुली दुखा का
बिखरा बिखरा हुआ रूप
हलके हलके बादल
खुली-मुंदी हलकी धूप
कठिन है
झांक कर रह जानना
इन्हीं खिड़की से
वृक्षों पर नये पत्ते
पत्तों की हर-हर
पड़े बिस्तर पर सुनना
बाहर बरसा की झड़ी
कठिन है
बहुत कठिन है।

पुकार आती है। बाहर निकला सूरज--पुकार आती है। वसंत आया, फूल झरे-पुकार आती है गंध लाती--हजार हजार संदेश। कहती: आओ बाहर। फिर कठिन है पड़े रहना--द्वार-दरवाजे बंद किए।

जैसे प्रकृति बुलाती है।...सुनते हैं--इन पक्षियों को! ऐसे परमात्मा भी बुलाता है--संतों से।

संतों के पास अगर अपने को रखोगे, तो उनके हृदय की धड़कन में तुम्हें परमात्मा की गूंज सुनाई पड़ेगी।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे बैठे सहना--सौंदर्य को
चलना पड़ेगा; उठना पड़ेगा; साथ होना पड़ेगा।

जब पुकार आयेगी, तो तुम पुकार को झुठला न सकोगे। इसलिए लोग होशियार हैं--दूर ही रहते हैं। दूर रहने के हजार बहाने खोज लेते हैं। कोई दूर रहता कह कर--कि संतत्व में कुछ धरा नहीं है; परमात्मा इत्यादि सब बातें हैं; बकवास है। स्वर्ग, नरक, मोक्ष--कुछ होते नहीं हैं। कहां की आत्मा? कैसी आत्मा? बस मनुष्य तो मिट्टी है। दो दिन का खेल है--खेल को। फिर गये--सो गये।

कोई नास्तिक बन कर संतों के पास आने से बचता है। यह एक तरकीब है--नकारात्मक तरकीब है। यह भी तरकीब बचने की है--खयाल रखना। नास्तिक संतों से बचने के उपाय खोज रहा है। अपने चारों तरफ बागुड़ लगा रहा है--कि है ही नहीं, तो जाना क्यों? जब यही बात पक्की मन में बिठा ली, दृढ़ कर लिया विचार--कि ईश्वर नहीं, स्वर्ग नहीं, मोक्ष नहीं, समाधि नहीं, सब पाखंड है; सब वितन्डा है--जब ऐसा पक्का कर लिया, जाने का भाव ही न उठेगा। और अगर कभी भूल-चूक से पहुंच भी गए, तो कानों में इतना सीसा भरा है--इन धारणाओं का--कि कुछ सुनाई पड़ेगा। अगर संत को कभी देखा, भी तो जो गलत है, वही दिखाई पड़ेगा; सही दिखाई ही न पड़ेगा। आंखें तुमने पहले से तैयार कर रखी हैं--गलत को देखने के लिए।

एक दूसरी तरकीब भी है, जो आस्तिक की तरकीब है। तुम यह तो जानते हो, कि नास्तिक शायद बचने की कोशिश कर रहा है, लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं: आस्तिक भी बचने की कोशिश कर रहा है। आस्तिक भी उपाय खोजता है कि न जा पाए संत के पास। उसके उपाय क्या हैं? एक उपाय उसका--कि वह मुर्दा संतों की पूजा करता है। राम में कोई खतरा नहीं है। कृष्ण में कोई खतरा नहीं है। क्राइस्ट में अब कोई खतरा नहीं है। कबीर, नानक में अब कोई खतरा नहीं है। जब जिंदा थे, तब खतरा था।

मरा संत क्या करेगा! तुम तो मरे मरे हो ही, तुम्हारा संत भी मरा हुआ! दो मुरदों के बीच खूब बन जाती है; दोस्ती बन जाती है। मुरदा संत तुम्हें बदल नहीं सकते। इसलिए आस्तिक मुरदा संतों को पूजता है; और जिंदा संतों से बचता है। क्योंकि जिंदा संत खतरनाक हैं; चिनगारी हैं। गिरेगी, तो तुम्हारा घास-फूस जल जायेगा।

कबीर ने कहा है: जो घर फूंके अपना, चले हमारे संग। तुम्हारा घर फूंक जायेगा। तो राख की पूजा...। राख को तुम कहते--विभूति। राख की पूजा करो। राख को लगाते तिलक की तरह, टीके की तरह।

जीवित संत अंगारा है; तुम राख पूजते।

तो या तो उपाय है कि मुरदा संतों को पूजो। या अगर कभी भूल-चूक जिंदा संत के पास पहुंच जाओ, तो कहो कि महाराज आऊंगा कभी। माना कि आप बिलकुल ठीक हैं...। यह माना कि आप बिलकुल ठीक हैं--बचने की तरकीब है। क्योंकि जब मान ही लिया कि बिलकुल ठीक हैं, तो अब करने को क्या बचा? बेचैनी गई। मान ही लिया कि आप बिलकुल ठीक हैं। मान नहीं लिया--कि मैं पापी; मैं पतित; आप महान। कहां आप, कहां मैं! मैंने

स्वीकार ही कर लिया सब कि आप जो कहते हैं, सब अक्षरशः ठीक है। मगर अभी मेरा समय नहीं आया है। जब मेरा समय आयेगा, तब आऊंगा।

तो पैर में दो फूल चढ़ा कर चले आये!

पूजा भी उपाय है--संत से बचने का।

संत के पास वही पहुंचता है, जो सारे उपाय बचने के छोड़ देता है। जो कहता है कि चलो, साहस से एक बार आंख खोल कर देखें कि संतत्व क्या है। कौन जाने, जिस जीवन-निधि को हम खोज रहे और-और, अलग-अलग दिशाओं में, संतत्व में ही छिपी हुई पड़ी हो। कौन जाने...।

न तो संत के पास न-कार में भर कर जाना, और न अ-कार से भर कर जाना। न नास्तिक की तरह जाना, न आस्तिक की तरह जाना। संत के पास तो खुला हृदय ले कर जाना; खुली आंख लेकर जाना; दर्पण हो कर जाना--कि जो है, वह दिखाई पड़ जाए। और जो है--वह दिखाई पड़ जाए, तो निश्चित ही...।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे-बैठे सहना--सौंदर्य को
धुली धुली दुखा का
निखरा बिखरा हुआ रूप
हलके हलके बादल
खुली-मुंदी हलकी धूप
कठिन है
बहुत कठिन है
झांक कर रह जाना
इन्हें खिड़की से
वृक्षों पर नये पत्ते
पत्तों की हर-हर
पड़े-पड़े बिस्तर पर सुनना
बाहर बरसा की झड़ी
कठिन है
बहुत कठिन है।

जब तुम परमात्मा की झर-झर सुनोगे--संत के हृदय में; परमात्मा कल-कल नाद सुनोगे--संत के हृदय में; जब तुम संत के हृदय के पास कान लगा कर बैठ जाओगे, वही तो शिष्यत्व का अर्थ है।...

शिष्यत्व का अर्थ नहीं है: पूजन। शिष्यत्व का अर्थ है: श्रवण, सुनने की क्षमता। शिष्यत्व का अर्थ है: जो है, उसे वैसा ही देखूंगा; बदलूंगा नहीं; व्याख्या न करूंगा। अपने को बीच

में न लाऊंगा; अपने को हटा कर देखूंगा। एक बार तो सहीः खिड़की से झांक कर देख लूं कि बाहर क्या हो रहा है। एक बार तो देख लूं कि मनुष्य के भीतर क्या हो सकता है--क्या संभावना है? जिसके भीतर हुआ है, उसके भीतर एक बार झांक कर देख लूं, तो अपनी भी सुधि आ जाए।

तो लोग संतों से डरते हैं। फिर पियक्कड़ों संतों से तो और भी ज्यादा संत भी दो तरह के हैं। एक ती संत हैं, जिनको हम कहें--मर्यादा, समाज, संस्कृति, सभ्यता--उसके अनुकूल। जैसे हम राम को कहते हैंः मर्यादा पुरुषोत्तम। तो एक तो संत होते--राम जैसे; जो रत्ती भर समाज की मर्यादा से हटते नहीं।

एक संत होते हैं--क्रांति-द्रष्टा; कृष्ण जैसे; जिनके जीवन में कोई मर्यादा नहीं होती। यह कुछ संयोग की बात नहीं कि इस देश ने राम को आंशिक अवतार कहा और कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा। जिन्होंने जाना, उन्हें यह कहना ही पड़ा। जो परंपरा के अनुकूल चलता है; वह अंश ही है--पूरा नहीं। जो परंपरा को ध्यान में रख कर चलता है--लीक-लीक, उसमें अभी अंश ही परमात्मा उतरा है--पूरा परमात्मा नहीं।

पूरा परमात्मा तो जब उतरेगा, जब कैसी मर्यादा? कैसी सीमा? बाढ़ की तरह उतरेगा। पूरा परमात्मा कुछ नल की टोंटी नहीं है--कि तुमने खोला और अब तुम्हारी मर्यादा में उतरा! पूरा परमात्मा तो बाढ़ की तरह हैं--कि बादल खुल गये, और हुई मूसलाधार वर्षा; कि भर गये नदीत्तालाब, सर-सरिताएं; कि कंप गई--सारी पृथ्वी।

तो एक तो संत का सौम्यरूप है; राम उसके प्रतीक हैं। एक संत का क्रांतिरूप है; कृष्ण उसके प्रतीक हैं। मलूक कृष्ण की धारा में आते हैं। वह पियक्कड़ों की धारा है।

राम का उपयोग इतना ही है--कि अगर तुम में हिम्मत न हो, तो चलो मूसलधारा वर्षा में स्नान नहीं कर सकते हो, कोई हरजा नहीं है। अपने घर की नल की टोंटी के नीचे बैठ कर ही कम से कम स्नान तो कर लो। आज नल की टोंटी के नीचे स्नान करोगे, तो शायद स्नान का रस लग जाए। तो कल शायद हिम्मत जुटा कर नग्न खड़े हो सको--वर्षा के नीचे; और आनंदित हो सको--निसर्ग में।

परंपरागत संत की इतनी ही उपयोगिता है कि वह तुम्हें किसी दिन क्रांतिकारी संत के पास पहुंचा दे। वह सीढ़ी है; सीढ़ी से ज्यादा नहीं है। अंततः तो किसी न किसी दिन बाबा मलूकदास जैसे किसी आदमी के हृदय में झांक कर देखना होगा। वहां परमात्मा अपने पूरे रूप में प्रकट होता है।

मयाल-ए-सोज ए गमहा ए निहानी।

देखते जाओ भड़क उठी है सम्मे से जिंदगानी देखते जाओ।

जब कभी कोई मलूक जैसा व्यक्ति पैदा होता, तो उसकी जीवन की मशाल पूरी भड़क उठी है सम्मे जिंदगानी देखते जाओ। मगर उतनी विराट लपट को शायद तुम न झेल पाओ; शायद वैसी आंच को तुम न झेल पाओ; तुम अंधेरे के आदी हो, तो कोई हरजा नहीं है। छोटा-सा दीया जलाओ। राम ऐसे ही छोटे दीये हैं।

जो संतत तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल पड़ता है, वह मिट्टी का दीया है, जिसे तुमने जला लिया है। रोशनी भी होती है। फिर एक मशाल भी है--दोनों छोरों से जलती हुई मशाल है; रोशनी उससे भी होती है। रोशनी का पूरा मजा तो मशाल में है। मगर चलो, स्वाद। कम से कम अंधेरे से रोशनी में आये। छोटे टिमटिमाते दीये को रोशनी ही सही; फिर भी भली है।

मलूकदास जैसे व्यक्ति, जिस भाषा में बोलते हैं, वह भाषा भी घबड़ा देती है--पंडित को, पुरोहित को। विशेषकर उनको, जो अपने को धार्मिक मानते हैं और धार्मिक नहीं हैं, उनके पैरों के नीचे की जमीन खिंच जाती है। उनके पैरों के नीचे संदूक हो जाती है। वे घबड़ा उठते हैं।

मलूक जैसे व्यक्तियों का विरोध होने लगता है। उनके पास आना तो दूर, उनसे दूर ले जाने के सब उपाय होने लगते हैं।

वह आ रहा है असा टेकता हुआ वाइज।

बहा दे इतनी कि साकी कहीं न थाह मिले।।

वह जो धर्मगुरु चला आ रहा है--अपनी लकड़ी टेकते हुए...। मलूक जैसे संत तो कहतेः हे प्रभु, इतनी शराब बहा दे कि यह डूब ही जाए। इसके कहीं थाह भी न मिले।

उठे कभी घबरा के तो मयखाने से हो आये।

पी आये तो फिर बैठा रहे याद-ए-खुदा में ए रियाज।।

एक ऐसी परम दृष्टि है, जहां जीवन का अखंड रूप में देखा जाता; जहां जीवन के साधारण सुख और परमात्मा के विराट सुख में विरोध नहीं है। जहां जीव के साधारण सुख में भी परमात्मा के ही परम सुख की किरण है। जहां हमें इस जगत में जो सौंदर्य प्रकट हो रहा है, उस सौंदर्य को भुलाने के लिए नहीं, उस सौंदर्य में गहरे उतर जो का नियंत्रण है। फूल में भी परमात्मा है; काश! तुम फूल में गहरे उतर सको! हरे-हरे नये-नये आये पत्तों में भी परमात्मा ही आया है; काश, तुम पत्तों में गहरे उतर सको! तुममें भी परमात्मा ही विराजमान है।

जहां-जहां तुमने सुख की थोड़ी झलक भी पाई है--झूठी ही सही--सपना ही सही; लेकिन जहां भी तुमने सुख की थोड़ी-सी झलक पाई है, वहां परमात्मा ही करीब था। उसकी ही सुगंध आई थी।

वह तो क्रांतिद्रष्टा संत है, उसके लिए सृष्टि में और स्रष्टा में विरोध नहीं है। यह सृष्टि भी स्रष्टा का ही रूप है। यह तथाकथित साधु-संन्यासी को, तथाकथित महात्मा को, तथाकथित धर्मगुरु को बहुत खटकने-अखरने वाली बात है।

धर्मगुरु का तो सारा व्यवसाय इसमें है, कि वह तुम्हें संसार के विरोध में खड़ा कर दे। परमात्मा के पास तो नहीं पहुंचा पाता, लेकिन संसार के विरोध में खड़ा कर देता है। संसार को तुम्हारे भीतर से मिटा भी नहीं पाता, लेकिन विषाक्त कर देता है। परमात्मा का सुख तो उठाता ही नहीं, इसी जीवन का जो थोड़ा बहुत सुख उतरता था, वह भी उतरना बंद हो जाता है। तुम बिलकुल रूख-सुख जाते हो।

मस्ती से भरे हुए संतों की धारणा बड़ी और है। वे तुमसे कहते हैं: छोड़ने को यहां कुछ भी नहीं है; पाने को सब कुछ है। वे तुमसे कहते हैं: छोड़ने की बात ही गलत शुरुआत है। संसार छोड़ना नहीं है; प्रभु को पाना है। फिर उसको पाने से जो छूट जाए--छूट जाए। उसको पाने से जो अपने से छूट जाए--छूट जाए।

गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यू न पीजिये

जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ बली नहीं।।

अगर परमात्मा ही पिला रहा हो, तो फिर क्यों न पीजिये! जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ वली नहीं। परमात्मा जो पिलाये--पीयो। परमात्मा जो दिखाये--देखो। परमात्मा जैसा नचाये--नाचो।

यह जो परमात्मा का परम स्वीकार है, इसके कारण मलूकदास जैसे लोगों को समाज की प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। मलूकदास जैसे लोगों को समाज का विरोध झेलना पड़ता है।

समाज की बड़ी टुच्ची धारणाएं हैं, जिनको कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन समाज इन्हीं धारणाओं से जीता है और घबड़ाता है कि वहीं वे धारणाएं छूट न जाए। उन धारणाओं से कुछ मिला भी नहीं है; कुछ पाया भी नहीं है। लेकिन उन धारणाओं में इतने दिन रहे हैं कि छूट जाए धारणा, टूट जाए धारणा, तो प्राण कंपते हैं।

ऐसा ही समझो कि जैसे कोई आदमी बहुत दिन तक जंजीरों में रह गया हो, बहुत दिन तक कारागृह में रहा हो, फिर उसकी तुम जंजीरें तोड़ो, तो उसे बेचैनी होती है। वे जंजीरें तो अब उसके आभूषण बन गई हैं। वे जंजीरें तो अब उसके शरीर का हिस्सा हो गई हैं।

ऐसा हुआ: फ्रांस की क्रांति में वेस्टाइल के किले को क्रांतिकारियों ने तोड़ दिया और उसे किले में बंद कारागृह में बड़े पुराने कैदी थे। कोई चालीस साल से बंद था, कोई तीस साल से बंद था, कोई तो ऐसा था कि पचास साल से बंद था। उस किले में केवल आजीवन जिनको सजाएं मिली थीं, ऐसे हजारों कैदी थे। उन्होंने उन सबको छुट्टी दे दी; बाहर निकाल दिया। सोचा था क्रांतिकारियों ने कि वे बड़े प्रसन्न होंगे। लेकिन वे बड़े नाराज हुए। उनमें से तो कुछ ने साफ इनकार कर दिया--बाहर जाने से। उन्होंने कहा: हम चालीस साल से, पचास साल से यहां हैं; बूढे हो गये हैं, अब कहां जायेंगे? अब तो हमें याद भी नहीं है कि हम किस को खोजेंगे! किसी घर में। निवास करेंगे? और अब तो हम सब काम-धाम भी भूल गये हैं। अब हम काम-धाम इस बुढापे में क्या करेंगे? और फिर हमें हमारी कोठरी रास आती है। पचास साल जो कोठरी के अंधेरे में गया हो, बाहर की रोशनी तिलमिलायेगी।

और तुम चकित होओगे जानकर...।फिर भी क्रांतिकारी तो जिद्दी, उन्होंने बाहर निकाल ही दिया; जबरदस्ती बाहर निकाल दिया। दुनिया में तुम किसी आदमी को जबरदस्ती स्वतंत्र नहीं कर सकते। जबरदस्ती परतंत्र तो कर सकते हो, लेकिन जबरदस्ती स्वतंत्र नहीं कर सकते। कैसे करोगे?

आधी रात होते-होते अनेक उनमें से लौट आये। और उन्होंने कहा कि उन्हें नींद ही नहीं आती! एक ने तो कहा कि मेरी जंजीरें मुझे वापस लौटा दो। क्योंकि उनके बिना मुझे लगता

है, मैं नंगा-नंगा हूं। मैं सो ही नहीं सकता। तुम थोड़ा सोचोः पचास साल जिस आदमी के हाथ में लोहे की मजबूत जंजीरें, पैर में मजबूत बेड़ियां पड़ी हों; वह उन्हीं के साथ सोया--पचास साल तक। अब करवट लेता है, तो खाली-खाली लगता है। न जंजीर बजती, न आवाज होती! न वजन मालूम होता। नींद उसकी टूट-टूट जाती है। आदत!

साधारण आदमी आदत से जीता है। और क्रांतिद्रष्टा संतों का एक ही आग्रह हैः आदम से जागो; होश से जीओ।

और मजा यह है कि यह कुछ ऐसा होश है कि एक तरफ होश बढ़ता है और एक तरफ मदमस्ती बढ़ती है। यह कुछ ऐसा होश है कि पुरानी बेहोशी चली जाती है और एक नये तरह की, एक अभिनव तरह की बेहोशी आती है। पुराना अज्ञान चला जाता है और एक नये तरह की निर्दोषता का आविर्भाव होता है।

अब तुम्हें धन के कारण मस्ती नहीं आती; न पद के कारण मस्ती आती है; अब तुम्हें अकारण मस्ती आती है। तुम मस्ती में डोलते ही रहते हो। जैसे मस्त हाथी डोलता हो--कहां मलूक ने; कि जैसे शराबी पी कर चलता हो--ऐसा जिसने परमात्मा को पी लिया है, उसकी चौबीस घड़ियां मस्ती में डूबी हुई बीतती हैं।

मगर ऐसा आदमी समाज के लिए बहुत झंझट का कारण हो जायेगा। क्योंकि इतने मस्त आदमियों को गुलाम नहीं बनाया जा सकता। इतने मस्त आदमी मस्ती से जीते हैं। इतने मस्त आदमियों को तुम भेड़ें नहीं बना सकते। ऐसे मस्त आदमी सिंहों की तरह जीते हैं। और समाज भेड़ें चाहता है। राजनेता, पंडित, पुरोहित भेड़ें चाहता हैं; ऐसे आदमी नहीं चाहते। इतने खतरनाक आदमी झेलने की क्षमता अभी समाज की नहीं है।

समाज अभी संतों को झेलने के योग्य नहीं हो पाया है। अभी संतों का कोई समाज नहीं हो पाया है। अभी धर्म के नाम पर पाखंड जीता है, धर्म के नाम पर सत्य नहीं।

अभी तुम उस संत की पूजा करते हो, जो तुम्हारे आंगन में समा जाता है। तुम उस संत से तो भयभीत हो जाते हो, जो तुम्हारे आंगन को तोड़ दे; तुम्हारी दीवालों को उखाड़ दे; तुम्हें खुले आकाश के नीचे ले आये।

इसलिए मलूक जैसे लोगों के पीछे कोई परंपरा नहीं बनती; संगी-साथी भी पैदा मुश्किल से होते हैं--कभी-कभार।

समाज इनसे भयभीत रहा है। अक्सर तुम भय के कारण पूजा भी करते हो।

तुम्हारी पूजा में भी भय ही होता है।

सभी दुनिया की भाषाओं में एक बहुत ही अरुचिपूर्ण, कुरुचि से भरा हुआ शब्द उपयोग में आता है, वह हैः ईश्वर भीरु--गाड फीयरिंग। धार्मिक आदमी को हम कहते हैंः ईश्वर भीरु। यह कोई बात हुई! धार्मिक आदमी और ईश्वर से भयभीत?

महात्मा गांधी कहते थेः मैं किसी से नहीं डरता--सिवाय ईश्वर के। मगर ईश्वर से डरते हैं! सबसे डरो; कम से कम ईश्वर से तो न डरो। क्योंकि जिससे डर होगा, उससे प्रेम न हो

सकेगा। भय के साथ प्रेम का संबंध नहीं है। जहां भय है, वहां प्रेम मर जाता है। जिससे भय है, उससे घृणा हो सकती है, प्रेम कैसे होगा?

तुमने किसी से भयभीत होकर प्रेम किया है? कोई तुम्हारी छाती पर छुरा रख दे, उससे तुम प्रेम करोगे? हां, तुम बतला सकते हो कि मैं तुम्हारे प्रेम में हूं। लेकिन उससे तुम प्रेम करोगे?

मैंने सुना हैं...। आदमियों की बीमारियां जंगलों जंगलों तक पहुंच जाती हैं। एक बार जंगल में जानवरों ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। जैसे आदमी करते हैं। तो सब तरह के खेल--कबड्डी, और वालीबाल, और फूटबाल--और जो जो जंगली जानवर कर सकते थे, उन्होंने सब खेलों का आयोजन किया। सिंह भी आया। बैठा देखता रहा। और प्रतियोगिता में तो उसने भाग न लिया; बड़े आनंद से देखता रहा; लेकिन आखिरी प्रतियोगिता थी, लतीफे सुनाने की। चुटकुले सुनाने की, उसमें वह भी भाग लेना चाहता था। उसने सोचाः कम से कम एक में तो मैं भी भाग लूं।

पहले एक खरगोश खड़ा हुआ; उसने एक लतीफा सुनाया। लेकिन खरगोश की जान कितनी? भीड़-भड़क्का और जानवरों को देख कर बहुत घबड़ा गया। आधा ही लतीफा सुना पाया और उसको पसीना बह गया; वह बैठ गया। फिर लोमड़ी ने सुनाया। लोमड़ी कुशल; पुरानी राजनीतिज्ञ; उसने लोगों को खूब हंसाया। ऐसे और भी जानवर कहे।

आखिर में सिंह खड़ा हुआ। सन्नाटा छा गया। अब उत्सुक हुए कि सिंह कौन सा लतीफा सुनाता है--देखें। माइक के पास आकर लतीफा तो दूर उसने बड़ी जोर से सिंह-गर्जना की। इतने जोर से...। एक तो वैसे ही सिंह-गर्जना--और फिर लाउड स्पीकर पर! छोटे-मोटे प्राणियों के तो प्राण निकल गये। खरगोश सामने ही बैठा था, प्रतियोगिता में पहले नंबर भाग लेने आया था, वह तो वहीं ढेर हो गया। कई प्राणी एकदम बेहोश हो गये। जो बचे उनकी भी छातियां धड़क गई।

दहाड़ने के बाद सिंह ने कहा, अब मूर्खो हंसो। हंसते क्यों नहीं? यही लतीफा था। हंसो। हंसी किसी को भी नहीं आ रही है। हंसी का कोई कारण नहीं है। लेकिन हंसना पड़ा। जब सिंह कहे...। तो लोग हंसने लगे। ऐसे हंसने लगे कि कई जानवरों को खांसी आने लगी--हंसी के मार। मगर जब तक सिंह कहे ना कि रुको, तब तक रुक भी नहीं सकते!

स्वभावतः पहला पुरस्कार सिंह को गया।

जहां शक्ति है और जहां शक्ति के साथ जबरदस्ती है, वहां भय पैदा होता है। भय में तुम हंस भी सकते हो। अब सिंह कहता है कि हंसो मूर्खो, हंसो। यही लतीफा था। हंसी किसी को भी नहीं आ रही है। लेकिन यह कोई हंसी होगी! इसमें हंसी होगी? इसमें सिर्फ एक धोखा होगा, एक प्रवंचना होगी; कि अभिनय होगा, एक पाखंड होगा।

ईश्वर से भयभीत--तो फिर प्रेम कैसे करोगे? और अगर ईश्वर से तुम भयभीत हो, तो भीतर गहरे में तुम्हारे घृणा होगी। तुम बदला लेना चाहोगे।

नीत्शे ने कहा है कि ईश्वर मर गया। और यह भी कहा है कि और किसी ने नहीं, आदमी ने ही उसकी हत्या कर दी है। नीत्शे से लोग बहुत नाराज हैं--कि उसने ऐसी अभद्र बात कही। लेकिन मेरे देखे, मेरे समझे नीत्शे ने जो कहा, वह स्वाभाविक परिणाम है--ईश्वर-भीरुता का। जब आदमी इतने दिन तक डराया गया है ईश्वर से, तो कोई तो हिम्मतवर आदमी कहेगा--कि मारो गोली; खतम करो ईश्वर को; बहुत हो गया भय।

अगर उस दिन जंगल के जानवरों में कोई एकाध भी हिम्मतवर होता, तो खड़े होकर कहता कि बंद करो यह बकवास। यह कोई चुटकुला है? यह कोई लतीफा हुआ?

नीत्शे ने यह भी कहा है कि ईश्वर मर गया है और आदमी अब स्वतंत्र है। अब आदमी जो चाहे, कर सकता है। क्योंकि अब तक आदमी ने ईश्वर के डर से ही बहुत कुछ नहीं किया है।

आदमी बदला नहीं है; सिर्फ भय के कारण ग्रसित है। और जब महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति भी कहे हैं कि मैं और किसी से नहीं डरता, सिर्फ ईश्वर से डरता हूं, तो जाहिर होती है बात कि ऐसे व्यक्तियों को भी ईश्वर की कोई प्रतीति नहीं है। प्रतीति हो नहीं सकती।

ईश्वर यानी प्रेम। प्रेम में कहां भय है! प्रेम में कैसा भय? प्रेम कोई तलवार थोड़े ही है। प्रेम में फुसलावा हो सकता, मनुहार हो सकती; प्रेम में कोई जबरदस्ती थोड़ी ही है।

लेकिन आदमी अब तक ऐसे ही मानता रहा है--कि भय के कारण।...तो तुमने जो एक समाज बना रखा है, उसमें सारी व्यवस्था भय के कारण है। तुम नैतिक हो, तो भय के कारण। तुम चोरी नहीं करते--तो भय के कारण। तुम झूठ नहीं बोलते--तो भय के कारण। तुम्हारे सब सदगुण भय पर टिके हैं! इसलिए तुम्हारे सब सदगुण दो कौड़ी के हैं।

जब मलूक जैसे व्यक्ति जगत में आते हैं, तो वे कहते हैं: छोड़ो भय; आओ, प्रेम की बात करें। छोड़ो भय--आओ, मस्त हों। छोड़ो भय--आओ, प्रेम के गीत गुनगुनाये। आनंद में, प्रेम में। प्रभु--प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आओ, प्रभु के हाथ में हाथ डालें, प्रभु को आलिंगन में लें। नाचें प्रभु के साथ--रास रचायें।

जब ऐसी कोई बात कभी कोई संत कहते हैं, तुम घबड़ा जाते हो। क्योंकि तुम्हारे भय के जन्मों-जन्मों के जाल, जंजीरें, तुम्हारी आदतें, तुम्हारी धारणायें, तुम्हारे संस्कार--सब एकदम घबड़ा कर ठिठक कर खड़े हो जाते हैं--कि यह तो बात खतरनाक है।

तुम जानते हो कि तुमने भय छोड़ा, तो तुम्हारी सब नीति गई; तुम्हारा। सब आचरण गया। सब झूठा है, इसलिए जाने का डर है।

मलूक एक नये तरह का आचरण जगत में लाते हैं--एक आचरण, जो प्रेम पर निर्भर है; एक आचरण, जो आनंद पर निर्भर है। तुम बुरा इसलिए नहीं कर सकते, क्योंकि तुम इतने आनंदित हो कि बुरा कैसे कर सकोगे! तुम बुरा नहीं कर सकते, क्योंकि इतने प्रेम से प्लावित हो कि बुरा कैसे कर सकोगे!

प्रेम ही एकमात्र नीति है; और प्रेम ही एकमात्र चरित्र है।

इस प्रेम की मस्ती से जो सुगंध उठती है, उस सुगंध को बहुत कम लोग ही जान पाते हैं। क्योंकि तुम्हारे नासापुट खराब हो गये हैं।

मैंने सुना है कि देहात--दूर देहात से मछलियां बेचने एक आदमी गांव आया था--शहर आया था। जब वह मछलियां बेच कर वापस जा रहा था, भरी दुपहरी थी; बड़ी तेज धूप थी और सूरज आग बरसा रहा था। वह एक सड़क पर भूखा-प्यासा, थका-मांदा बेहोश हो कर गिर पड़ा।

वह सड़क उस गांव की, उस शहर की गंधियों की गली थी, जहां सुगंध बेचने वालों के दुकानें थीं। एक गंधी भागा; उसने अपनी तिजोड़ी से बड़ा बहुमूल्य इत्र निकाला, जिस इत्र की यह खूबी थी कि खूबी थी कि बेहोश आदमी को सुंघा दो, तो वह होश में आ जाए।

उसने ले जाकर, वह इत्र, उस आदमी के जो बेहोश पड़ा था, उसकी नाक पर रखा। वह आदमी तो और जोर से हाथ-पैर फेंकने लगा और बड़ी बेचैनी उसके चेहरे पर उतर आई। वह गंधी तो बड़ा हैरान हुआ।

भीड़ आ गई थी। एक आदमी भीड़ में खड़ा था उसने कहाः ठहरो भाई, तुम उसको मार डालोगे। तुम्हें पता नहीं, यह कौन है। यह मछुआ है। तुम्हारी इस बहुमूल्य गंध का इसको क्या पता? यह गंध तो इसे दुर्गंध जैसी लगेगी। यह तो एक ही गंध जानता है--मछली की गंध। उसी को सुगंध मानता है। ठहरो।

उस आदमी के पास उसकी टोकरी, और गंदी टोकरी में गंदे कपड़े, और उन गंदे कपड़ों में ही बांध कर वह मछलियां लाया था, वे पड़ी थीं। वह आदमी भागा; पास के नल से उसने थोड़-सा पानी लिया; उन गंदे कपड़ों पर पानी छिड़का; टोकरी पर पानी छिड़का। लौटकर टोकरी और वे गंदे कपड़े उसकी मुंह पर रख दिये।

मछली की बंध उठी। लोग तिलमिला गये। मगर वह आदमी होश में आ गया। और उस आदमी ने आंखें खोल देखकर कहाः धन्यवाद, किसने यह कृपा की! किसीने मेरी मछलियों की बंध मेरे पास ला दी? अन्यथा मैं मर जाता।

अगर मछलियों की बंध में ही जीवन भर जिये हो, तो इत्र की गंध तुम्हें दुर्गंध मालूम होगी। तुम उसे न सह पाओगे। और आदमी ऐसी ही मछलियों की गंध में जीया है।

बाबा मलूकदास जैसे लोग उस पर इत्र को जगत में ले आते हैं, जिसकी एक झलक, जिसकी एक लहर तुम्हें जगा दे--सदा के लिए जगा दे। मगर तुम्हारे नासापुट खराब है।

इसलिए न तो संगी-साथी मिलते, न परंपरा बनती।

लेकिन अपने भीतर खोजबीन जारी रखना। अगर तुम कभी बाबा मलूकदास जैसे किसी आदमी के साथ पड़ जाओ, तो चाहे लाख तकलीफ मालूम पड़े तुम्हें--पुराने संस्कार छोड़ने में; छोड़ना। लाख अड़चनें मालूम पड़े--तुम्हारी पुरानी आदतों के टूटने में--तोड़ना। क्योंकि उन आदतों से न कभी कुछ मिला है, न कुछ कभी मिलेगा। लेकिन ऐसे व्यक्ति के पास अगर तुम रम जाओः अगर ऐसे व्यक्ति के पास तुम टिक जाओ, तो तुम्हारे भीतर वैसे

सूरज का उदय हो सकता है, जिसके उदय हुए बिना कोई कभी न तृप्त हुआ है--न हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः

तुझे क्या सुनाऊं में दिलरुबा,

तेरे सामने मेरा हाल है।

तेरी इक निगाह की बात है,

मेरी जिंदगी का सवाल है।।

सच है, ऐसा ही है। परमात्मा की एक निगाह की ही बात है। उसकी एक निगाह--और हमारे लिए पूरी जिंदगी; ऐसी ही बात है।

जिसने पूछा है--स्वामी वाहिद काजमी ने--ठीक ही पूछा है।

तुझे क्या सुनाऊं मैं दिलरुबा, तेरे सामने मेरा हाल है। परमात्मा से कहने को भी तो हमारे पास कुछ नहीं है। जो हम कह सकते हैं, वह तो वह जानता ही होगा। और जो हम ही नहीं जानते हैं, उसे तो हम कैसे कहेंगे।

सच तो यह है कि जो हम नहीं जानते हैं, वह भी जाता होगा। इसलिए परमात्मा के सामने कहने का तो कुछ सवाल ही है। जो लोग परमात्मा के सामने बैठकर कुछ कहते हैं, बड़ी नासमझी करते हैं। प्रार्थनाएं चुप होनी चाहिए। केवल चुप प्रार्थनाएं ही सुनी जाती हैं। बोलते--कि चूके।

प्रार्थना करने में बोलना ही मत। क्योंकि तुम जो भी बोलोगे, गलत बोलोगे। तुम सही तो बोल ही हनीं सकते। सही का तो तुम्हें पता ही नहीं है। सही की तो तुम्हें पहचान ही नहीं है। तुम प्रार्थना में कहोगे क्या?

तुम अवाक रह जाना; मौन रह जाना। तुम बोलना ही मत। तुम गूंगे हो जाना। तुम्हारी गूंगी प्रार्थना ही पहुंचती है। मैं इसे दोहरा दूं--सिर्फ गूंगी प्रार्थनाएं ही परमात्मा तक पहुंचती हैं; मुखर प्रार्थनाएं नहीं पहुंचतीं--पहुंच ही नहीं सकती।

पहली तो बातः तुम्हारी भाषा परमात्मा नहीं समझता। तुम्हारी भाषा तुम्हारी भाषा है; आदमी को ईजाद है। परमात्मा तो मौज की भाषा समझता है। मौन अस्तित्व की भाषा है। हिंदी बोलो, तो हिंदुस्तानियों की भाषा है। अरबी बोलो, तो अरबस्थानियों की भाषा है। चीनी बोलो, तो चीनियों की भाषा है। ये आदमियों की भाषाएं हैं; उनकी सीमाएं हैं।

मौन अस्तित्व की भाषा है। मौन की भाषा ही परमात्मा समझता है।

तो तुम ठीक कहते होः तुझे क्या सुनाऊं मैं दिलरुबा, तेरे सामने मेरा हाल है। सुनाना ही मत; बोलना ही मत। रो सको तो रोना। आंसू ज्यादा कुशलता से कह देंगे, जो तुम न कह पाओगे। नाच सको, तो नाचना। नाच सुगमता से कह देगा, जो भाषा न कह पायेगी। नहीं तो चुप बैठ जानना, गूंगे हो जाना। गूंगी प्रार्थनाएं पहुंच जाती है।

तेरी इक निगाह की बात है, मेरी जिंदगी का सवाल है।--यह भी सच है। उसकी एक निगाह की बात है; उसकी एक निगाह काफी है। उसकी एक किरण काफी है--मुरदों को जिला ने

देने को। लेकिन उसकी आंख तुम पर उठे, इसके लिए तुम्हें कुछ करना होगा। आंख ऐसे ही उठेगी।

तुम तो जो कर रहे हो, वे कुछ ऐसे उपाय हैं कि उसकी आंख कभी उठ ही न सके। या तो अगर उठे भी, तो तुम बच जाओ। अगर वह देखे भी, तो तुम्हारी पीठ उसकी तरफ है। उसकी आंख तभी कारगर होगी, जब तुम्हारी आंख से मिल जाए। इसे समझना।

अगर तुम परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़े हो, तो वह देखता भी रहे, तो क्या होगा? पीठ पर तुम्हारे, आंखें नहीं हैं। और हम सब परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़े हैं। संसार की तरफ हमारी आंख है और परमात्मा की तरफ पीठ है।

दूसरे की तरफ हमारी आंख है, स्वयं की तरफ पीठ है। बाहर की तरफ आंख है, भीतर की तरफ पीठ है। नीचे की तरफ आंख, ऊपर की तरफ पीठ है। और हमारी आंखें जड़ हो गई हैं बाहर की तरह; भीतर की तरफ जाती ही नहीं।

आंख बंद कर लो, तो भी आंख भीतर नहीं जाती; फिर भी बाहर ही भटकती रहती है। आंख बंद कर लो, तब भी तुम दुकान नहीं देखते हो। आंख बंद कर लो, तो भी पत्नी, पति बच्चे, मित्र, शत्रु--वही दिखाई पड़ते हैं। मुकदमा, अदालत, बाजार--वही सब दिखाई पड़ता है। आंख बंद कर लो, तो भी रुपये, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा--वही दिखाई पड़ती है। गहरी नींद में जब तुम सो जाते हो, तब भी तुम भीतर नहीं देख पाते। तब भी सपनों का जाल फैलता रहता है।

तुम हर हालत में बाहर हो--आंख खुली है, तो बाहर; आंख बंद है, तो बाहर। भीतर कब आओगे? भीतर आओगे, तो परमात्मा से आंख मिल सकती है; क्योंकि परमात्मा कही और नहीं, तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। तुम लौटो घर।

तुम जरा मुड़ो--भीतर की तरफ; प्रतिक्रमण करो; प्रत्याहार करो; लौटो भीतर की तरफ; परमात्मा की तरफ आंख करा। उसकी आंख तुम्हारी आंख में मिल जाए, तो बस, एक पल का मिलन काफी है। फिर तुम दुबारा लौट न सकोगे--बाहर की तरफ। बंधे रह जाओगे--कीलित--हिल न सकोगे। फिर बाहर कुछ बचता ही नहीं खोजने को। जिसके हम बाहर खोज रहे थे, वह भीतर मिल गया।

यह सुरागी फरोग-ए-मय ये गुलरंग, यह जाम।
चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं।।

जीवन में जो अपूर्व मस्ती आती है, आनंद आता है, जीवन में जो मदहोशी आती है--चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं। वह उसके आंख की कृपा है। वह सिर्फ उसकी आंख का तुम्हारी आंख से मिल जाना है।

मेल नहीं हो रहा है। उसकी आंख तो तुम्हें देखे चली जा रही है।

यह बात सुनी होगी--बचपन से सुनी होगी--कि परमात्मा तुम्हें देख रहा है; कि हर घड़ी देख रहा है; कि तुम जहां हो, वही देख रहा है; कि तुम जो कर रहे हो, वही देख रहा है। तुम उससे हट कर कहीं जा नहीं सकते।

मैंने सुनी है एक सूफी कहानी। एक सदगुरु के पास दो युवक आये और उन्होंने कहा, हमें परमात्मा से मिला दें। हमें उसकी आंख में आंख डाल कर देख लेना है।

उस फकीर ने दोनों की तरफ देखा और दो कबूतर, जो उसके पास ही घूम रहे थे, उसके ही पाले हुए कबूतर थे; उठा कर दोनों को एक-एक कबूतर दे दिया और कहां कि एक काम करो; यह तुम्हारी परीक्षा है। तुम ऐसी जगह चले जाओ, जहां तुम्हें कोई न देख रहा हो, वहां इन कबूतरों को मार डालना। और जब तुम ऐसी जगह पा लो, जहां तुम्हें कोई नहीं देख रहा है और कबूतर को मार डालो, तो लौट आना। फिर आगे की बात शुरू होगी।

दोनों युवक उठे; भागे। एक तो गया पास की गली में; देखा: कोई भी नहीं है; दोपहर थी; लोग सोये थे। गरमी की दोपहर--कौन निकलता है घर से! चारों तरफ देखकर, जल्दी से उसने, दीवाल की आड़ में खड़े होकर कबूतर की गरदन मरोड़ दी। लौट कर आ गया; उसने चरणों में कबूतर रख दिया। कहा कि पास गली में ही मार लाया। यह भी कोई बड़ी बात थी! यह कैसी परीक्षा?

गुरु ने कहा, तुझसे मेरा मेल न बैठ सकेगा। तू किसी और को खोज। मैं तुझे परमात्मा की आंख में आंख डालने का उपाय न बात सकूंगा।

दूसरा युवक तो महीनों तक लौटा। कहते हैं: साल बीतने लगा, तब वह आया। तब तो उसे पहचानना ही मुश्किल हो गया। दाढ़ी बढ़ गई थी; रूखे बाल। कपड़े जो पहने था, फट गये थे। धूल-धंवास से भरा हुआ। पहचानना मुश्किल था; काला पड़ गया था; और कबूतर जिंदा ले आया था। गुरु के चरणों में कबूतर रख दिया और उसनने कहा कि मुझे क्षमा करें; मैं हार गया। यह परीक्षा मैं पास न कर सका; और यह परीक्षा मैं पास न कर सकूंगा। साल भर जो भी मैं कर सकता था, मैंने कर के देख लिया। ऐसी जगह न पा सका, जहां कोई भी न देख रहा हो, अंधेरी गलियों में गया, तलघरों में उतरा; वीरानों में चला गया; रेगिस्तानों में गया। तलघरों के भीतर जाकर अंधेरे से अंधेरे में खड़ा हो गया, लेकिन वहां भी कबूतर देख रहा था! टक-टक उसकी आंखें! तो मैंने कबूतर की आंखों पर पट्टियां बांध दी। लेकिन मैं देख रहा था। तो फिर मैंने अपनी आंखों पर भी पट्टियां बांध लीं। लेकिन तब मुझे याद आया कि परमात्मा तो देख ही रहा है। मैं ऐसी जगह कहां खोजूंगा, जहां परमात्मा न देख रहा हो? यह तो आपने बेबूझ पहेली दे दी। यह कबूतर अपना वापस ले लें; मुझे क्षमा कर दें। मैं हार गया; मैं दुखी हूं कि एक छोटा-सा काम न कर सका, जो आपने दिया था। मैं अयोग्य हूं; मैं अपात्र हूं।

गुरु ने उसे गले लगा लिया और कहा कि तू रुक; काम हो गया; तू परीक्षा में पार उतर गया। तेरा पहला साथी हार गया। वह तो घड़ी भर में मार कर आ गया था! घड़ी भी न लगी थी। वह तो बगल की गली में मार कर आ गया था। उसे तो कुछ तो कुछ होश ही न था; उसे तो कुछ समझ ही न थी कि यह क्या कर रहा है। तुझे होश है; तुझे समझ है। तेरी आंख परमात्मा की तरफ है; मिलन हो जायेगा। इतना ही जिसे याद है कि परमात्मा देख रहा है, फिर बहुत कठिनाई नहीं है। प्रतीक्षा करो।...

पहली बातः भीतर की तरफ मुड़ो; और दूसरी बातः प्रतीक्षा करो।

मय कशो! मय की कमी-बेशी पर नाहक जोश है।

यह तो साकी जानता है, किसको कितना होश है।।

नाहक शिकायतें मत करो कि मेरे प्याले में बहुत कम डाला; दूसरे के प्याले में बहुत ज्यादा भर दी है शराब।

मय कशो! मय की कमी-बेशी पर नाहक जोश है

यह तो साकी जानता है, किसको कितना होश है।।

उसे पता है कि तुम्हारी कितनी जरूरत है अभी; तुम कितनी पी सकोगे, तुम कितनी झूल सकोगे।...तो अपनी तैयारी बढ़ाये जाओ। जैसे-जैसे तुम्हारी पात्रता बढ़ती है, तुम्हारा पात्र गहरा होता है, वैसे-वैसे उसकी शराब तुममें ज्यादा उतरने लगेगी। अपनी आंख साफ किये जाओ, जैसे-जैसे तुम्हारी आंख साफ होने लगेगी, वैसे-वैसे उसकी आंख तुम्हारी आंख में झांकने लगेगी। जिस दिन तुम्हारी आंख परिपूर्ण शुद्ध हो जाती है, उस दिन चकित हो कर हैरान होओगे कि तुम्हारी आंख और उसकी आंख दो नहीं है--एक ही है।

बड़े अपूर्व संत एकहार्ट ने कहा है कि जब मैंने परमात्मा को वस्तुतः देखा, तो मैं चकित हो गया, क्योंकि मैंने उसे बाहर नहीं देखा; मैंने देखा कि वह मेरी आंख से झांक रहा है। वहीं देख रहा है। वही मेरे भीतर देखनेवाला है; वही द्रष्टा है।

परमात्मा कभी दृश्य नहीं बनता; परमात्मा तो तुम्हारे भीतर छिपे हुए द्रष्टा का नाम है। तुम्हारी आंख से भी जो देख रहा है, वह परमात्मा ही है। लेकिन यह तो आंख की परम शुद्धि की बात है--जब आंख पूरी तरह मुड़ी होती है, और आंख पर से सारे बादल हटा दिये गये होते हैं।

अगर कभी-कभी क्षण भर को झलक मिल जायेगी--उसकी आंख की। अशुद्ध आंखों को भी कभी-कभी उसकी क्षण भर को झलक मिलती है। नहीं तो फिर तो कोई उपाय ही न था।

अंधों को भी कभी-कभी उसकी किरण दिखाई पड़ती है। बहरों के कान में भी कभी-कभी उसकी आवाज पड़ जाती है। क्योंकि वस्तुतः तुम बहरे नहीं हो; बहरे बने हुए हो। और वस्तुतः तुम अंधे नहीं हो; आंख बंद किये बैठे हो। लेकिन कभी-कभी भूलचूक से तुम्हारी भी आंख खुल जाती है; और भूलचूक से तुम्हारे कान भी सुन लेते हैं।

परमात्मा से मिलने के पहले--इसके पहले कि उसकी शराब तुम्हारे जीवन में उतरे, कई बार छोटी-छोटी झलकें आयेंगी।

देखा कि वे मस्त निगाहों से बार-बार।

जब तक शराब आये, कोई दौर हो गये।।

परम समाधि के पहले बहुत से दौर हो जायेंगे। कई बार तुम बहुत करीब आ जाओगे; करीब से करीब आ जाओगे। क्षणभर को एक ज्योति चमकेगी और खो जायेगी, जैसे बिजली चमकती है अंधेरा रात में।

अब बिजली को रोशनी में कोई रास्ता नहीं खोज सकता। आई--और गई। लेकिन रास्ता दिख तो जाता है। एक क्षण का तो सब रोशन हो जाता है; सारा जंगल रोशन हो जाता है। एक बात तो पक्की हो जाती है--कि रास्ता है। फिर अंधेरा छा जाता है। फिर टटोलना पड़ेगा। फिर खोजना पड़ेगा। लेकिन एक बात तो आस्था बन गई कि रास्ता है; और वही आस्था अंततः मंजिल तक पहुंचा देती है।

इसके पहले कि सुबह हो, बहुत बार बिजली कौंधेगी। लेकिन आदमी ने क्या किया है। बिजली कौंधती भी है, तो उसे झुठला देता है।

मेरे पास अनेक बार लोग आते हैं, जिनके जीवन में बिजली कौंधी है और उन्होंने उसे झुठला दिया। उन्होंने सोच लिया--कि मन की कल्पना होगी। उन्होंने सोच लिया कि मालूम होता है; मैं पागल हो रहा हूं! उन्होंने अपने को समझा लिया है। न केवल समझा लिया है, उन्होंने खींचत्तान कर अपने को वापस अपनी स्थूल दुनिया में वापस बुला लिया है।

न मालूम कितनी बार तुम्हें मौके आते हैं, जब तुम बहुत करीब होते हो रोशनी के। लेकिन तुम्हारे जीवन भर के अनुभव और रोशनी का अनुभव इतने विपरीत हैं...।और तुम्हारे जीवन के अनुभव का बहुमूल्य है, बहुमत है।

जैसे एक आदमी ने निन्यानबे अनुभव तो संसार के किये और फिर एक अनुभव परमात्मा का आया। तो निन्यानबे की भीड़ के कारण एक अनुभव झुठला दिया जाता है।

फिर एक और तकलीफ है कि जब बिजली चमकती है, तो तुम्हारे हाथ से नहीं चमकती। अगर कोई कहे: फिर से चमकाओ, तो तुम नहीं चमका सकते। पुनरुक्ति नहीं हो सकती। यह कोई टॉर्च तो नहीं है तुम्हारे हाथ की--कि बटन दबा दी; जला ली--बुझा ली। यह विराट की बिजली है। चमकती है, तब चमकती है।

समझो कि तुम बैठो हो और तुमने देखा: परम प्रकाश तुम्हारे भीतर--तुम्हारे बाहर! तुम भागे और तुमने अपनी पत्नी से कहा कि मुझे प्रकाश दिखाई पड़ा है। तो उसने कहा, तो बैठो, मुझे दिखला दो। अब यह कोई टॉर्च तो नहीं है! भी मजबूरी है; वह पूरा किया नहीं जा सकता।

तो इस कारण बहुत बार अनुभव करने के बाद भी हम उन अनुभवों को झुठला देते हैं या कल्पना मान लेते हैं।

आज से खयाल रखो: जब भी जीवन में कुछ अपूर्व घटे, जिसको न तो तुम समझा सको, और न समझ सको, तो उसे संजो कर रखना। उसे फेंक मत देना। यह दोहरता न हो, तो कल्पना मत कह देना। वह फिर-फिर न आये, तो इनकार मत कर देना।

यह अनुभव ऐसा अपूर्व है कि फिर-फिर आता नहीं। इसे सम्हाल कर रखते जाना। एक अनुभव हुआ, फिर महीनों बीत जायेंगे, दूसरा अनुभव होगा; उसे भी सम्हाल कर रख लेना। ऐसे धीरे-धीरे अनुभव की संपदा बढ़ती जायेगी।

इन्हीं अनुभव के छोटे-छोटे इट-पत्थर-गारे से परमात्मा का मंदिर निर्मित होता है। फिर जैसे-जैसे तुम जानने लगोगे कि मेरे मांगने से नहीं होता, तो मांगोगे नहीं--और ज्यादा होगा।

जब तुम देखोगे कि बिना मांगे खूब होता है, तो फिर तुम मांगोगे ही क्यों! फिर रोज-रोज होगा। जब तुम बिलकुल जान लोगे यह बात--कि मेरी जरा सी द्रष्टा बाधा बन जाती है, तो तुम बिलकुल निष्चेष्ट हो जाओगे।

अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।

दास मलूका कहि गये, सबसे दाता राम।।

फिर तो तुम अजगर जैसे हो जाओगे। फिर तो तुम पंछियों जैसे हो जाओगे। फिर तो तुम कहोगे: परमात्मा देनेवाला है, मैं मांगूं ही क्यों!

दास मलूका कहि गये, सबके दाता रात। वह देता ही है, तो मांगना क्या? मांग कर और भिखारी क्यों बनना?

जैसे जैसे तुम्हारी मांग और वासना क्षीण होती जायेगी, तुम पाओगे: अनुभव रोज बरसने लगा। फिर ऐसी घड़ी आ जाती है, जब अनुभव जाता ही नहीं; रोशनी तुम्हें घेरे ही रखती है; उस घड़ी को ही हम संतत्व कहते हैं। जब सत्य तुम्हारे भीतर चौबीस घड़ी बरसता रहता है, तब तुम संत हुए।

तीसरा प्रश्न: मैंने सैकड़ों संबंध बनाये--शारीरिक और मानसिक दोनों, लेकिन आखिर में बढ़ती हुई तृप्ति के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आया। मैं कुछ पकड़ नहीं पाती; सब हाथ से फिसल-फिसल जाता है और मैं बेबस और भयभीत खड़ी देखती रहती हूं; ऐसा क्यों है?

तुम्हारा कुछ कसूर नहीं। इस जगत के सारे अनुभव पानी के बुलबुले जैसे हैं, कुछ कभी मिलता नहीं। मृगमरीचिकायें हैं; इंद्रधनुष हैं। दूर से खूब सुंदर; दूर के ढोल बड़े सुहावने। मुट्ठी बांधो, कुछ भी हाथ न आयेगा। तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। शारीरिक संबंध या मानसिक संबंध--इनसे कुछ भी मिला नहीं। इतना ही मिलता है इनसे--कि इनमें कुछ सार नहीं। मगर यह बड़ी बात है। ये असार है--ऐसा अनुभव इनसे मिलता है। यह कोई छोटी शिक्षा नहीं है! क्योंकि जिसने असार देख लिया है, उसको सार देखने में ज्यादा देर न लगेगी। असार को असार की भांति देख लेना, सार को सार की भांति देखने का पहला कदम है।

इतना भी साफ हो गया कि इस संसार के सारे संबंध बनते हैं, जाते हैं; हाथ खाली के खाली रह जाते हैं--बड़ा गहरा अनुभव है। इस अनुभव को स्मरण में रखो। अब बार-बार इनको दोहराये मत जाओ। क्योंकि पुनरुक्ति से कुछ बढ़ेगा नहीं। इनसे कुछ सीखो।

अनुभव से जब तुम कुछ सीखते हो, तो ज्ञान निर्मित होता है। और अनुभव को जब तुम दोहराये चले जाते हो, तो मूढ़ता और जड़ता निर्मित होती है।

दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो अनुभव से सीखते हैं। अनुभव से जो सीख ले, वही समझदार है।

एक दिन क्रोध किया: दूसरे दिन क्रोध किया; हजार बार क्रोध किया, अब तक सीखा नहीं! इतने बार क्रोध करके पाया कि कुछ भी नहीं मिलता, तो अब तो रुको! अब तो जाने दो--इस क्रोध को। अगर हजार बोर क्रोध करके भी तुमने इतनी सी बात सीख ली कि क्रोध में

कुछ सार नहीं, तो वे हजार बार का क्रोध भी तुम्हें बहुत कुछ दे गये; वे भी व्यर्थ न गये; उससे भी तुमने कुछ निचोड़ लिया; कुछ इत्र उनसे भी निचोड़ लिया। अब तुम क्रोध से मुक्त हो जाओ।

हजार बार काम-वासना में उतरे और कुछ भी न पाया, तो अब जाओ। और फर्क समझ लेना: मैं यह नहीं कह रहा हूं कि काम-वासना को त्यागो। मैं कह रहा हूं--जागो।

त्यागने का तो मतलब यह है कि अभी भी रस लगा है। रस लगे का मतलब है--अभी भी आशा बंधी है। आशा बंधे होने का मतलब है कि क्या पता: अब तक नहीं मिला, आगे मिल जाये; कल मिल जाए; परसों मिल जाए। तो फिर त्यागना पड़ता है। लेकिन जब तुम जाग कर देख लेते हो कि मिलता ही नहीं; मिल ही नहीं सकता...।

जैसे एक आदमी रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहा हो--वर्षों से--और एक दिन जाग कर देखे कि अरे, मैं पागल हूं; रेत के निचोड़ ने से तेल कैसे निकलेगा? तिल निचोड़ने से तेल मिलता है। तो फिर त्याग करेगा रेत का? बात खतम हो गई। झाड़ कर उठ बैठेगा। हाथ-पैर से झाड़ देगा रेत; फिर लौट कर भी नहीं देखेगा। बात खतम हो गई। त्याग क्या है इसमें?

जिस दिन तुम्हें लगे: क्रोध में कुछ भी नहीं, काम में कुछ भी नहीं, उठ खड़े हो गये; बात खतम हो गई। त्याग ही। तुम व्रत थोड़े ही लोगे जा कर--कि ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, उसने तो बता दिया कि अभी समझ आई नहीं। व्रत में ही ना समझी छिपी है। ना समझो के सिवाय कोई व्रत लेता ही नहीं। समझदार क्यों व्रत लेगा? समझदारी पर्याप्त है; व्रत की कोई जरूरत नहीं है।

इतनी बात समझ में आ गई कि यहां कुछ भी नहीं है, बात खतम हो गई। अब व्रत किसके खिलाफ लेना है? व्रत तो अपने खिलाफ लिया जाता है। डर है। कि कल शायद फिर लगने लगे कि है कुछ, तो फिर क्या करूंगा? तो व्रत का बंधन बना लो। कसम खा लो--भीड़ में जाकर--बाजार में--बीच बाजार में खड़े होकर--कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। ताकि फिर डर लगे कि अब लोगों से कह चुका; प्रतिष्ठा का सवाल है। अहंकार पर चोट लगे; घबड़ाहट हो कि अब अगर भूलचूक की, तो लोग क्या कहेंगे?

मगर यह तो कुछ जागना न हुआ। जागरणशील व्यक्ति को व्रत की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अव्रती बनाता हूं। तुम्हारे जीवन से सारे व्रत समाप्त हो जाने चाहिए, क्योंकि कोई व्रत क्रांति नहीं लाता। समझ क्रांति लाती है।

तो पूछा है--कुसुम ने यह सवाल, मैंने सैकड़ों संबंध बनाये--शारीरिक और मानसिक, लेकिन आखिर में बढ़ती हुई अतृप्ति के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आया।

कुछ तो हाथ आया; वह समझ हाथ आई कि अतृप्ति बढ़ती जाती है। तो उन सारे अनुभवों को धन्यवाद दो। उनके बिना यह कैसे समझ में आता! उन सारे अनुभवों को धन्यवाद दो। उनके बिना यह कैसे समझ में आता! उन सारे अनुभव के प्रति कृतज्ञ अनुभव करो। और

जब जाग कर जियो--कि उन अनुभवों को बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं है। अर्थहीन हो गये वे। अब उस पुनरुक्ति से बचो: अब उसी-उसी चाक को पकड़ कर मत घूमते रहो।

इस संसार में सभी क्षण-भंगुर है। और इस मन के द्वारा क्षण-भंगुर से ज्यादा किसी चीज से कोई संबंध नहीं जुड़ता। शाश्वत से जुड़ना हो, तो मन के पार जाना जरूरी है।

इस दिल-ए-मायूसी की वीरानसाजी कुछ न पूछ।

इसने जब और जो चमन ताका बयांबा हो गया।।

जहां भी यह मन देखेगा, वही विकृति हो जायेगी। जहां यह मन अपनी छाप छोड़ेगा, वहीं राख घुट जायेगी।

इस दिल-ए-मायूसी की वीरानसाजी कुछ न पूछ।

इसने जब और जो चमन ताका बयांबा हो गया।।

तुमने अगर फूल भी देखे, तो कुम्हला जायेंगे। तुमने हरे-भरे वृक्ष को देखा--सूख जायेगा।

इस मन के द्वारा शाश्वत से कोई संबंध ही नहीं जुड़ता। इस मन का संबंध हो क्षण भर का है। क्षण भर है; अभी है, अभी नहीं है।। अभी सब ठीक; अभी सब गलत। अभी प्रेम--अभी घृणा। अभी करुणा--अभी क्रोध। अभी लुटाने को तैयार थे, अब लूटने को तैयार हो गये। इस मन के साथ इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। और इस मन के फैलाव का नाम संसार है।

तो जाओ। कहीं ऐसा न हो, जैसा कि अधिकतर होता है। जीवन भर लोग जीते हैं, मगर सीखते कुछ भी नहीं।

चुन लिये औरों ने गुलहा-ए-मुराद।

रह गये दामन ही फैलाने में हम।।

चुन लिये औरों ने गुलहा-ए-मुराद।

रह गये दामन ही फैलाने में हम।।

कहीं ऐसा न हो कि दूसरे तो फूल चून लें और तुम दामन ही फैलाते रहो और मौत आ जाए। किन फूलों की बात कर रहा हूं? उन फूलों की बात कर रहा हूं, जो इस जीवन के प्रत्येक अनुभव में से निःसृत होते हैं।

क्रोध किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल चूना। काम किया ; पाया--व्यर्थ है; एक फूल और चुना। लोभ किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल और चूना। चुनते गये फूल। इन्हीं सारे फूलों की माला एक दिन बन जाती है। उसी माला को ही तो परमात्मा के चरणों में अर्पित करना है।

अगर नहीं चुने फूल; फिर-फिर क्रोध में उतरे, फिर-फिर वासना में उतरे, तो बस, दाम ही फैलाने में समय बीत जायेगा।

तो कुसुम को कहता हूं: जाग। देखा सब; देखना जरूरी था। सिर्फ एक बात का खयाल रखना कि कुछ भी नहीं मिलता, व्यर्थता मिलती है और जीवन में बेचैनी बढ़ती है--यह तेरा

अनुभव होना चाहिए। ऐसा न हो कि जल्दबाजी हो। ऐसा न हो कि लोभ के कारण यह प्रश्न लिखा हो, तो चूक हो जायेगी।

अकसर ऐसा भी हो जाता है। संतों की वीणा पढ़ते, संतों के वचन सुनते लोभ जगता है। और उनकी वाणी के प्रभाव में ऐसा लगता है कि ठीक ही तो कहते हैं। मगर उनके ठीक से कुछ भी न होगा।

मेरा ठीक, तुम्हारा ठीक नहीं है। तुम्हारा ठीक ही तुम्हारा ठीक है। मेरा बोध, मेरा बोध है; तुम्हारा बोध नहीं बनेगा। मैं लाख कहूं कि क्रोध में कुछ भी नहीं, और तुम सुन भी लो, समझ भी लो, बुद्धि से बात जंच भी जाए, मगर इससे कुछ सार न होगा; जब तक कि तुम्हारे जीवन के अनुभव से यह निष्पत्ति न निकले।

तो बस, एक ही बात खयाल रखना: जल्दबाजी मत करना।

मेरे साथ इतना स्मरण रखना सादा जरूरी है कि लोभ में मत पड़ना। हां तुम्हें लग गया हो कि कोई सार नहीं है--शारीरिक संबंधों में, तो बात खत्म हो गई। मेरे कहने से मत कर लेना अन्यथा फिर लौट कर आयेगी यह वासना। फिर डुलायेगी; फिर खींचेगीत्तानेगी। और दमन शुरू हो जायेगा। और दमन के मैं बिलकुल विपरीत हूं। जागरण ठीक; दमन तो रोग लाता है।

नहीं यहां कुछ मिलने को है, इसलिए जल्दबाजी भी करते की जरूरत नहीं है। कुछ मिलता ही नहीं है, तो फिर घबड़ाना क्या!

तुम्हारे तथाकथित महात्मा बड़े घबड़ाये होते हैं। घबड़ाहट भी क्या? यहां कुछ मिलने को तो है नहीं। तुम रेत से ही तेल निचोड? रहे हो; और थोड़ी देर निचोड़ो। कुछ मिलने को नहीं है; कुछ खोने को नहीं है। मगर तुम्हारे ही भीतर यह किरण उतर आये, कि यह रेत है, तभी छोड़ देना; उसके पहले मत छोड़ना। अधकच्चे मत गिर जाना वृक्ष से, नहीं तो कड़वे रह जाओगे।

इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा बड़े कड़वे रह जाते हैं। जीवन का माधुर्य नहीं होता, कड़वाहट होती है। क्रोध से भरे होते हैं; निंदा से भरे होते हैं; क्योंकि जिस-जिस बात को छोड़ दिया है, वह छूटी तो नहीं थी अभी। छोड़ बैठे हैं। अभी भी राग है; अभी भी भीतर रंग उठता है; अभी भी वासना उद्वेलित होती है। उस वासना से लड़ने के लिए रोज उस वासना को गाली देना पड़ता है।

अगर तुम किसी महात्मा को सुनने जाओ और वह कामिनी और कांचन को ही गाली देने की बात कर रहा हो, तो समझ लेना कि कामिनी-कांचन उसके पीछे अभी भी पड़े हैं। नहीं तो क्या जरूरत है--चौबीस घंटे कामिनी-कांचन के पीछे पड़े रहने की!

वक्त की कुछ पीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा?

उम्र की इन सीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा?

पत्थरों को सर झुकाने का चला है सिलसिला।

पाप की परछाइयों में पुण्य है फूला फला।।

रामनामी ओढ़ने के बाद आखिर क्या मिलेगा?

दूरियों को पास लाने की बड़ी है कशमकश।

बर्फ में बरसों सुलाने की हुई है पेशकश।।

श्यास की इन सरदों के बाद आखिर क्या मिलेगा।

वक्त की कुछ पीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा।।

क्या मिलने को है यहां? जैसे दिन गये, अभी और दिन जायेंगे। जैसे वक्त बीता, और वक्त बीतेगा। समय में कुछ मिलता ही नहीं। समय एक सपना है, जो सिर्फ बीतता है--मिलता कुछ भी नहीं।

मगर अगर इतनी ही बात मिल जाए--कि समय में कुछ नहीं मिलता, तो हीरा हाथ लगा; तो बड़ा बहुमूल्य हीरा हाथ लगा। फिर इसी हीरे के सहारे तो तुम परमात्मा तक पहुंच सकते हो। मगर कच्चा न हो हीरा। हीरा कच्चा हो--तो कोयला। कोयला पक जाए--तो हीरा।

तुम्हें पता है न कि कोयला और हीरा दोनों एक ही तरह की चीजें हैं। उनमें फर्क कच्चे और पक्के का है। हीरे और कोयले का रसायन बिलकुल एक जैसा है। दोनों एक ही तत्व से बने हैं। जिसको तुम हीरा कहते हो, वह हजारों-हजारों साल पृथ्वी के अंतर्गर्भ में दबा हुआ कोयला है। दबता--दबता--दबता--दबता--उस दबाव के कारण इतना मजबूत और सख्त हो गया है कि अब हीरा है। कोयला ही था पहले। कोहिनूर भी कोयला था; लाखों वर्षों की प्रक्रिया और दबाव के बाद हीरा बन गया है।

कोयला और हीरा में फर्क नहीं है। पक जाए, तो हीरा। तो पक जाने का खयाल रखो। तुम्हारे काम पक जाए, तो राम। तुम्हारा क्रोध पक जाए, तो करुणा।

जिंदगी पकने का एक अवसर है।

चौथा प्रश्नः ओम। समझ में कुछ नहीं आता; प्रभुश्री समझायें। राम तो बस, राम ही हैं; राम किसके गीत गाये?

जिस दिन ऐसा समझ में आ जायेगा--कि राम तो बस, राम ही हैं; राम किसके गीत गये--उस दिन एक गीत तुमसे उठेगा, जो सिर्फ गीत होगा; किसी का गीत नहीं--बस, गीत होगा। एक सुगंध उठेगी--अनिर्वचनीय; एक सौंदर्य जगेगा--अव्याख्य।

राम का गीत तो तभी तक गाना पड़ता है, जब तक राम से दूरी है। फिर तो राम ही तुम्हारे भीतर गायेंगे; अपना ही गीत गायेंगे--स्व-गीत।

यह सारा जो विराट चल रहा है, यह राम अपना ही गीत गा रहे हैं। वृक्ष मैं राम हरे हैं; पक्षियों के कंठ में राम अनेक-अनेक ध्वनियों में प्रकट हुए हैं। सरिताओं में, सागरों की कलकल में राम का कलकल नाद है।

यह सारा नाद ब्रह्मनाद है। यह अनाहत ही चल रहा है। जिस दिन पहचानोगे, उस दिन पाओगेः राम अपना ही गीत गा रहे हैं। और किसका गीत गाने को है?

राम अपना ही नाच नाच रहे हैं। राम गुनगुना रहे हैं। लेकिन जब तक यह पहचान नहीं हुई, तब तक तुम्हें लगता हैः राम अलग--तुम अलग। तब तक राम का गीत गाना है। जब तक

दूरी है, तब तक राम का गीत गाना है। ऐसा राम का गीत गाते-गाते देर मिट जायेगी। जिस दिन दूरी मिट जायेगी, तुम राम के गीत हो जाओगे, तुम राम हो जाओगे। वही तो मलूक ने कहाः साहब--साहब हो गये। थे वही--वही हो गये। थोड़े देर बीच में भूल गये थे--कि मैं कौन हूं। थोड़ी देर आत्म-विस्मरण हो गया था।

परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, सिर्फ आत्म-विस्मरण हो गया है।

तुम पूछे होः समझ में कुछ नहीं आता। समझ में आने की बात भी नहीं है। समझ से तो सावधान। समझ--यानी बुद्धि की।

हृदय की समझ जगाओ। हृदय को समझ--यानी प्रेम; बुद्धि की समझ--यानी तर्क; बुद्धि की समझ--यानी विचार। हृदय की समझ--यानी श्रद्धा।

तुम कहते होः समझ में कुछ नहीं आता। बुद्धि से समझने की कोशिश कर रहे होओगे, तो कुछ भी समझ में न आयेगा। क्योंकि ये बुद्धि अतीत बातें हो रही हैं; ये मलूकदास--ये बुद्धि के बाहर गये हुए लोग हैं। यह मस्ती, यह शराब--ये बुद्धि से बाहर जाने के उपाय हैं। यह बुद्धि से समझ में आयेगा न। यह गणित नहीं है, जिसे तुम हल कर लोगे। यह पहेली नहीं है, जिसको तुम सुलझा लोगे। यह जीवन का रहस्य है, इसे तुम जीयोगे, तो ही जानोगे। इसका स्वाद लोगे, तो जानोगे। चखो।

समझ में कुछ नहीं आता, प्रभुश्री समझायें। लाख समझायें, तो भी समझ में न आयेगा। समझ की यह बात नहीं। कुछ समझ से पार चलो।

समझ पर ही अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है। समझ पर हो सत्य समाप्त नहीं हो जाता है। समझ ज्यादा से ज्यादा तुम्हें मंदिर के द्वार तक ला सकती है; मंदिर के भीतर न ले जा सकेगी। मंदिर के भीतर जाना हो, तो समझ को वही छोड़ देना होगा, जहां तुम जूते छोड़ आते हो; वहीं समझ भी रख आनी पड़ेगी; बुद्धि वहीं रख आनी पड़ेगी। भीतर तो निबुद्धि होकर जाओगे, बालक ही तरह निर्दोष होकर जाओगे, तो ही पहुंचोगे।

जीसस ने कहा हैः जो बच्चों की भांति सरल हैं, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे और दूसरे नहीं।

तो तुम पूछते होः समझायें। रोज तो समझा रहा हूं। समझ से समझ में आयेगा भी नहीं। फिर भी समझता हूं। समझाने से इतना भी समझ में आ जाये कि समझाने से समझ में नहीं आता, तो कुछ बात बनी। तो तुम द्वार पर आ कर खड़े हो गये।

एक दिन तो थक जाओगे--समझने से, समझाने से। एक दिन तो घबड़ा जाओगे--समझने से, समझाने। एक दिन तो कहोगे कि अब बहुत हो गई बुद्धि; अब बुद्धि को छोड़ते हैं। एक दिन तो बुद्धि बोझरूप हो जायेगी। और वह बड़े सौभाग्य का क्षण है, बुद्धि बोझरूप हो जाती है; अभी उठती है प्रार्थना; तभी उठता है प्रेम; तभी उठती है पूजा।

जिसकी जिल्लत में भी इज्जत है, सजा में भी मजा।

कुछ समझ में नहीं आता कि मुहब्बत क्या है।।

कुछ समझ में नहीं आता...! प्रेम समझ में थोड़े ही आता है। प्रेम तुमसे बड़ा है; समझ में आयेगा कैसे? तुम्हारी मुट्ठी बहुत छोटी है; प्रेम बड़ा आकाश है--मुट्ठी बांधी कि खो जायेगा। अगर आकाश चाहिए हो मुट्ठी में, तो मुट्ठी मत बांधना। खुले हाथ में तो आकाश होता है, बंद हाथ में आकाश खो जाता है।

हृदय को खोलो। खुला हुआ हृदय--और तुम समझ पाओगे। एक और ही तरह की समझ; एक दूसरी तरह की ही समझ; एक पृथक ढंग की ही समझ।

प्रार्थना में लगो। राम को गुनगुनाओ; राम के की गीत गाओ। असली बात तो गीत गाना है--राम तो बहाना है। तुम गीत गा सको, इसके लिए राम की खूंटी का सहारा ले लो। तुम गुनगुना सको; तुम नाच सको; तुम्हारे हृदय में छिपी हुई मुस्कुराहट ओठों तक आ जाये और तुम्हारे भीतर भरा हुआ मधुकलश छलकने लगे...।

बस, राम तो बहाना है। राम से कुछ लेना थोड़े ही है; राम से कुछ देना थोड़े ही है। इसलिए कोई भी नाम काम दे देगा। अल्लाह के गीत गाओ; खुदा के गीत गाओ; कि राम के, कि कृष्ण के--इसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता।

गीत गाना सीख लो। प्रार्थना उठने लगे। जीवन से एक ऐसा संबंध बनने लगे, जो बुद्धि का नहीं है--हृदय का है।

समझो; गुलाब का फूल खिला। तुम उसके पास जा कर खड़े हुए। बुद्धि का संबंध तो यह है कि तुम सोचोः अरे! बड़ा सुंदर गुलाब! कहां से आया? ईरान से आया?--कहां से आया? ऐसा गुलाब कभी देखा नहीं; इतना सुंदर! इतना बड़ा फूल! बहुत देखे गुलाब, मगर ऐसा गुलाब नहीं देखा। ऐसी बहुत सी बातें सोचने लगो, विचार करने लगो, तो गुलाब से यह बुद्धि का संबंध हुआ।

खिला गुलाब; तुम गुलाब के पास आये। आंखें भर गई गुलाब से। नासापुट भर गये--गुलाब की गंध से। तुम नाचने लगे। ऐसा गुलाब कभी मिला नहीं था! तुम गीत गुनगुनाने लगे। तुमने गुलाब की स्तुति में एक गीत गाया; कि तुम नाचे; कि तुमने बांसुरी बजाई। यह संबंध दूसरे ढंग का हुआ; यह बुद्धि का न हुआ।

कभी नाचे हो--गुलाब के फूल के चारों तरफ--मगन हो कर--कि ऐसा फूल खिला? तुमने प्रभु को धन्यवाद दिया है? रोये हो कभी; आनंद के आंसू बहाये हो कभी--गुलाब के पास खड़े हो कर? तो एक दूसरे तरह का संबंध बना।

रात को आकाश में चांद देखा, तो सोचते लगे कि चांद की लंबाई-चौड़ाई कितनी है। मिट्टी-पत्थर है--क्या है? खाई-खड्डे है--क्या है? वैज्ञानिक सोचता है; चूक जाता है। जो आदमी चांद पर चल कर आये हैं, वे भी चूक गये। क्योंकि वह सब सोच-विचार का संबंध है। और भी तरह के लोग इस जमीन पर हुए हैं; कवि हुए हैं, रहस्यवादी हुए हैं; चांद पर वे कभी नहीं गये। चांद निकला--पूरा चांद निकला--और वे नाचे।

पूर्णिमा की रात और तुम नाचो ना, तो जरूर तुम्हारे भीतर कुछ मुरदा जैसा है। पूर्णिमा की रात और तुम आकाश को एकटक देखते न रह जाओ; भाव विह्वल न हो उठो...! सागर जैसी

चीज भी, जड़ चीज लहराने लगती है--पूर्णिमा को रात और तुम बिना लहराये रह जाते हो! सागर उत्तुंग तरंगें होने लगता है, और तुम्हारे भीतर कोई मदमस्ती नहीं आती।

बुद्धि ने खूब पथराया है तुम्हें। आंखों ने देखने की क्षमता खो दी है। हृदय में अंकुरण नहीं होता। पूरे चांद की रात तुम अगर नाच सको, तो एक तरह का संबंध बना। और मैं तुमसे कहता हूं कि जो आदमी चांद पर चलकर आये हैं, उनसे गहरा संबंध बना। चांद पर चलने से क्या होगा? तुम चांद के ज्यादा करीब पहुंच गये; तुमने चांद की आत्मा को छुआ।

जिन्होंने इस देश में कहा था कि चांद में देवता का निवास है, वे ज्यादा सच थे। चांद से देवता का निवास उसी क्षण हो जाता है, जिस क्षण चांद तुम्हारे हृदय को आंदोलित कर देता है। उस क्षण चांद फिर चांद नहीं रह गया--चंद्रदेव हो गया।

सूरज को जिन्होंने नमस्कार किया था किया था इस देश में; पानी का अर्ध्य चढ़ाया; सुबह-सुबह नदी के तट पर खड़े होकर ओंकार की ध्वनि की, उन्होंने ज्यादा सूरज को समझा था। वह समझ और ढंग की है। खयाल कर लेना। वह समझ वैज्ञानिक नहीं है; बुद्धिगत नहीं है। उन्होंने देखा, सूरज में--जीवन को उगते। सूरज हमारा जीवन है; उसके बिना हम न हो सकेंगे। हम सूरज की किरणें हैं। हम सूरज के बिना एक क्षण न हो सकेंगे।

जो हमारा स्रोत है, उसको देख कर हम नाचें न! और जो हमारा स्रोत है, उसको देख कर हम झुकें न, तो चूक हो गई। यह एक और तरह देखना है; यह एक और तरह का समझना है।

तो मैं तुमसे यही कहूंगा...। और जिसने पूछा है यह प्रश्न, उनका नाम है--स्वामी प्रेम सागर! तुम्हें नाम ही दिया--प्रेम सागर! अभी भी तुम समझने की बातें कर रहे हो? अब तो समझने की नासमझी छोड़ो। अब तो प्रेम की ना-समझी पकड़ो।

तुम मुझे दे दो महकती गंध जीवन के लिए
मांगता हूं आज कुछ अनुबंध जीवन के लिए
याचना मेरी धरोहर सी रहे बनकर सदा
तुम मुझे दो आज यह सौगंध जीवन के लिए
दर्द में डूबी हुई मन की सतह को ढूंढ दें
चाहता है ऐसे सहज संबंध जीवन के लिए
जी बिना बोले गुजर जाती तुम्हारे पास से
तुम मुझे दे दो वही मकरंद जीवन के लिए
जिंदगी का गीत भी अब तक अधूरा ही पड़ा
नेह में डूबे हुए छंद जीवन के लिए
तुम मुझे दे दो महकती गंध जीवन के लिए।

अब तो प्रभु से उस गंध को मांगी, जो जीवन को मंहका दे। अब तो प्रभु से छंद को मांगो, जो तुम्हारी जिंदगी को गीत बना दे।

अभी तो राम का गीत होगा--शुरुआत--बारहखड़ी--क, ख, ग,। अभी तो राम का गीत होगा। अभी तो राम तुम्हें पराया मालूम पड़ेगा, तो उसके गीत गाओगे। अभी तो भक्त बनोगे--भगवान दूर। फिर धीरे-धीरे करीब आओगे। फिर बहुत करीब आओगे। फिर एकदम भगवान के आरपार हो जाओगे। और तब तुम न पहचान सकोगे कि कौन भक्त है--और कौन भगवान। तब भी गीत उठेगा, लेकिन तब राम ही अपना गीत आयेंगे; तब प्रभु ही नाचेंगे। इसके पहले कि प्रभु तुम्हारे भीतर नाच सकें, और तुम प्रभु में नाच सको, नाच तो सीख लो।

आखिर प्रश्नः

जब हम होते तब तू नहीं,

अब तू ही है मैं नाहीं।

तो फिर मिलन कहां हुआ? कैसा हुआ? और किससे किसका हुआ?

मिलन और मिलन में भेद है। दो कंकड़ों को पास रख दो; बिलकुल पास रख दो--सटाकर पास रख दो। तो एक तरह का मिलन हुआ। दोनों अभी अलग-अलग हैं; सिर्फ परिधि छूती है। बाहर का जरा-सा हिस्सा छूता है। भीतर दोनों अलग-अलग हैं मिलकर भी टूटे हैं। दो तो अभी दो हैं, तो मिले कहां?

फिर पानी की दो बूंदों को पास ले आओ। सुबह जाओ; घास के पत्तों पर जमी हुई ओस की बूंदों को पास ले आओ। पास आती बूंदें--पास आई--आई, जब तब बिलकुल पास न आई, तब तक दो हैं। जैसे ही पास आ गई, एक हो गई।

एक यह भी मिलन है। यहां अद्वैत हो गया। दो दो न रहे। यही वास्तविक मिलन है; क्योंकि दो कंकड़ पास आकर भी कहां पास थे? एक दूसरे के प्राण में नहीं डूबे थे। एक दूसरे के केंद्र से मिले नहीं थे। बाहर-बाहर परिधि-परिधि मिली थी। ये जो दो बूंद ओस की आकर पास खो गई, ये जो शबनम की दो बूंदें एक दूसरे में लीन हो गई, अब पहचानना भी मुश्किल है कि कौन-कौन है। अब तुम उन्हें दुबारा न कर सकोगे--पुराने ढंग से--कि यह पुरानी नंबर एक, यह नंबर दो। अब तो मेल हो गया।

परमात्मा दूसरे ढंग का मिलन है। जैसे दो ओस की बूंदें मिलती--ऐसा। इस संसार का प्रेम दो कंकड़ जैसा प्रेम है। जैसे पति-पत्नी मिलते, मित्र मिलते। ये सब दो कंकड़ करीब आते--बस; बहुत करीब आ जाते, तो भी दूर बने रहते, अलग बने रहते, थलग बने रहते।

परमात्मा ऐसे है, जैसे बूंद सागर में उतरती है। लीन हो गई। सच है; इसलिए संतों ने कहा है कि जब तक मैं हूं, तब तक तू नहीं। और जब तू होता है, तो मैं नहीं होता। एक ही बचता है।

कबीर ने कहा हैः प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय। ये दो जहां नहीं समाते, उस गली में ही समा जाने का नाम भक्ति है। भक्त और भगवान एक हो जाते हैं।

इसलिए तुम्हारा पूछना--कि तो फिर मिलन कहां हुआ, एक अर्थ में ठीक है। अगर तुम पहले मिलन का हिसाब रखते हो, तो दूसरा मिलन मिलन नहीं। अगर तुम दूसरे को मिलन

कहते हो, तो पहला मिलन मिलन नहीं। तुम समझ लो; तुम्हें जो कहना हो। शब्दों में कुछ सार नहीं है।

कैसा हुआ? किसका हुआ? कहां हुआ?

तुम मिलन शब्द के ये दो अर्थ खयाल में ले लो। दो कंकड़ों का मिलन; अगर तुम उनको मिलन मानते हो, तो फिर परमात्मा से मिलन को मिलन नहीं कहना चाहिए। अगर तुम कहते हो, मिलन की वही परिभाषा है--और किसी ढंग का मिलन स्वीकार नहीं होगा, तो फिर परमात्मा और भक्त का मिलन मिलन नहीं कहा जा सकता; लीनता कहो; विसर्जन कहो; नाम से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

अगर तुम कहते हो कि दूसरा मिलन ही वास्तविक मिलन है, क्योंकि पहले मिलन में तो मिल हुआ कहां! दो तो दो ही बने रहे। पास आ गये; मिलन कहां हुआ? अगर दूसरे का मिलन कहते हो, तो भी चलेगा। तो फिर पहले को मिलन मत कहो; संग-साथ कहो--मिलन मत कहो। संबंध कहो--मिलन मत कहो।

मगर भाषा में अब तक दोना प्रयोग होते रहे हैं। मिलन के दोनों अर्थ हैं: तक संबंध का--और एक विसर्जन का।

भाषा पर मत अटकना; शब्दों पर मत अटकना; सार को ग्रहण करना।

जहां भी भाषा बाधा बने, वहां स्मरण रखना। जहां शब्द बहुत अतिशय हो जाए, वहां खयाल रखना।

यह परमात्मा की यात्रा--भाषा के बाहर यात्रा है; यह शब्दातीत है। यहां शब्द पीछे छोड़ जाने हैं। इसलिए शब्दों के साथ बहुत माथा-पच्ची मत करना अन्यथा तुम कभी भी इस परम निगूढ़ सत्य को न समझ पाओगे।

इसलिए परमात्मा के संबंध में जितन शब्द उपयोग किये गये हैं--सब विरोधाभासी हैं। कहते हैं--परमात्मा से मिलन--लेकिन विरोधाभासी बात है, क्योंकि न तो मिलने वाला बचा, न वह बचा--जिससे मिलना है। दोनों खो गये।

कहते हैं: परमात्मा बहुत दूर; और यह भी कहते हैं कि परमात्मा बहुत पास; दोनों बातें कैसे साथ होंगी? कहते हैं: परमात्मा को खोजना है; और यह भी कहते हैं कि परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। ये दोनों बातें साथ कैसे होंगी? पर ये दोनों बातें साथ हो रही हैं।

हमारी भाषा द्वंद्वात्मक है; हमारी भाषा में हर चीज में द्वंद्व है। और परमात्मा का अस्तित्व निर्द्वंद्व है। निर्द्वंद्व के लिए, द्वंद्वातीत के लिए हमारी भाषा समर्थ नहीं है--प्रकट करने में। इसलिए जो भी हम बोलते हैं--परमात्मा के संबंध में, उसे बच्चे की तुतलाहट समझना। जो भी कहां गया है, परम से परम ज्ञानियों ने भी जो कहां हैं, वह बच्चों की तुतलाहट है। ऐसा स्मरण रहे, तो तुम्हारे मन में व्यर्थ की झंझटें खड़ी न होंगी और व्यर्थ के प्रश्न न उठेंगे।

निशब्द हो गया चित्त ही उसके प्रति खुलता है।

आज इतना ही।

परमात्मा को रिझाना है

तीसरा प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रात; दिनांक १३ मई, १९७७

ना वह रिझै जप तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टांगे, ना काया के पखारे।।
दया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुःख सब का जाने, ताहि मिलें अविनासी।।
सहै कुसब्द बादहू त्यागे, छांड़ै गर्व-गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना।।
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरत।
अचसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे।।
जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिरानो जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।
राम जी के गाव गाव, राम जी के तू रिझाव।
राम जी के चरन कमल, चित्त मांहि लाव रे।।
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनंद मगन होइके तैं हरिगुन गाव रे।
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।

बाबा मलूकदास भक्त हैं--ज्ञानी नहीं; प्रेमी हैं--ध्यानी नहीं। सत्य को उन्होंने हृदय के माध्यम से, हृदय के द्वारा जाना है।

जीवन के सत्य को पहचानने की दो व्यवस्थाएं हैं: एक बुद्धि का जागरण हो; सोयी हुई चेतना जागे--बुद्ध का मार्ग। मस्तिष्क के विकार दूर हों, विचार दूर हों; बुद्धि निर्मल बने--दर्पण बने। वैसे सत्य यदि जाना जाए, तो सत्य का नाम परमात्मा नहीं। परमात्मा प्रेमी के द्वारा दिया गया नाम है। इसलिए बुद्ध के मार्ग पर परमात्मा की कोई जगह नहीं है। न महावीर के मार्ग पर परमात्मा की कोई जगह है। परमात्मा शब्द सार्थक नहीं है--ध्यान की व्यवस्था में।

दूसरा मार्ग है: हृदय के विकार दूर हों, हृदय की संवेदनशीलता बढ़े; हृदय की भावना प्रगटे; प्रेम जगे।

बुद्धि जगे, तो जो मिलता है, उसे हम कहते हैं--सत्य। हृदय जगे, तो जो मिलता है, उसे हम कहते हैं--प्रभु।

मिलता तो एक ही है; नाम दो हैं। दो अलग ढंग से खोजे गये मार्ग से, एक ही सत्य को दो अलग ढंग से देखा गया है; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए परमात्मा और सत्य की बात में कोई विरोध नहीं है। लेकिन पहुंचने वाले अलग-अलग द्वार से आये हैं।

परमात्मा तक जो आया है--वह प्रेमी की पगडंडी से आया है। सत्य तक जो आया है, वह बुद्धि के राज-पथ से आया है। और ध्यान रखनाः बुद्धि को मैं कह रहा हूं--राज-पथ और प्रेम को मैं कह रहा हूं--पगडंडी। सकारण।

बुद्धि का राज-पथ है--साफ-सुथरा है; सीधा है; विधि-विधान हैं; तर्क युक्त है। महावीर के वचन अति तर्कयुक्त हैं। वैसे ही बुद्ध के वचन हैं। बुद्ध से विवाद करके जीतना संभव नहीं है। बुद्ध की बात माननी ही पड़ेगी। बुद्ध की बात तर्कातीत नहीं है। तर्कातीत की चर्चा ही नहीं की है। जो तर्क में आ सके, उसका ही निर्वचन हुआ है। तो बुद्ध से नास्तिक भी राजी हो जायेगा। अनेक नास्तिक राजी हुए। कितना ही बुद्धिमान व्यक्ति हो, कितनी ही बुद्धि का विलास हो, बुद्ध के पास आ कर झुक जायेगा।

भक्त की भाषा अटपटी है; तर्क के पार है; प्रेम की है; पगडंडी की तरह है--इरछी-तिरछी है। कब बायें घूम जाती है, कब दायें घूम जाती है--कहना मुश्किल है। विरोधाभासी है। केवल वे ही समझ पायेंगे, जो श्रद्धा का सूत्र पकड़ कर चलेंगे।

बुद्ध के मार्ग पर--बुद्धि के मार्ग पर श्रद्धा अनिवार्य नहीं है। बुद्धि के मार्ग पर सुविचार अनिवार्य है। श्रद्धा पीछे आयेगी; अनुभव के बाद आयेगी; अनुभव से आयेगी। पहले अपेक्षा नहीं है।

प्रेम के मार्ग पर श्रद्धा पहली सीढ़ी है। प्रेम--श्रद्धा से ही शुरू होता --अतक्र्य श्रद्धा; अनुभव पीछे होगा। अनुभव श्रद्धा से निकलेगा।

बुद्धि के मार्ग पर जो अंतिम है--प्रेम के मार्ग पर वह प्रथम है। बुद्धि के मार्ग पर भी समर्पण होता है, लेकिन अंत में। मंजिल जब बिलकुल करीब आ जाती है, तब समर्पण होता है।

बुद्धि का रास्ता राज-पथ की तरह है--साफ-सुथरा है। असुरक्षा नहीं है। प्रेम का रास्ता पगडंडी की तरह है; बीहड़ से गुजरता है; सुरक्षा नहीं है।

प्रेमी के लिए साहसी होना जरूरी है। प्रेम साहस मांगता है। जो बुद्धि में बहुत कुशल हैं, इतना साहस नहीं जुटा पाते। प्रेम के रास्ते पर पागल जाते हैं। प्रेम के रास्ते पर पहला ही चरण समर्पण का है--अपने को मिटा डालने का है।

मलूकदास प्रेमी हैंः इस बात को पहले खयाल में ले लेना।

फिर मैंने कहाः बुद्धि का मार्ग राज-पथ जैसा है, क्योंकि बुद्धि सभी के पास है--और एक जैसी है। बुद्धि के नियम एक जैसे हैं। दो और दो--चार मेरे लिए ही नहीं होते, तुम्हारे लिए भी दो और दो चार होते हैं। और दो और दो चार, भारत में ही नहीं होते, तिब्बत में भी होते हैं, जापान में भी होते है, चीन में भी होते हैं। चांदत्तारों पर भी अगर आदमी होगा, तो दो और दो चार ही होंगे। कहीं भी होगा आदमी, कहीं भी बुद्धि होगी, तो दो और दो चार होगे।

बुद्धि के नियम सार्वभौम हैं--यूनिव्हर्सल हैं। इसलिए हजारों लोग बुद्धि के मार्ग पर साथ-साथ चल सकते हैं। सहमति हो जायेगी। प्रेम के मार्ग पर भीड़-भाड़ नहीं चलती। प्रेम के मार्ग पर अकेला चलना होता है, इसलिए--पगडंडी।

मेरा प्रेम, बस, मेरा प्रेम है। उस जैसा प्रेम दुनिया में कहीं भी नहीं है तुम्हारा प्रेम--तुम्हारा प्रेम है; उस जैसा प्रेम न पहले कभी हुआ है, न फिर कभी होगा।

प्रेम वैयक्तिक है। प्रेम का स्वाद व्यक्ति का स्वाद है। प्रेम गणित जैसा नहीं। है--कि दो और दो चार। प्रेम काव्य है। प्रेम में निजता है। हर प्रेमी का प्रेम उसके हस्ताक्षर लिए होता है। इसलिए--पगडंडी।

इसलिए बुद्ध के वचन, शंकराचार्य के वचन, महावीर के वचन में तालमेल बिठाया जा सकता है। कोई अड़चन नहीं है। लेकिन मलूकदास, मीरा और चैतन्य में तालमेल बिठाना बहुत कठिन मालूम होगा।

प्रेम की निजता है। प्रेम का अनूठापन है--अद्वितीयता है, इसलिए--पगडंडी। छोटा सा, संकरा सा रास्ता है। कबीर तो कहते हैं: इतना संकरा है कि--तामे दो न समाय। एक ही चल पाता है। इसलिए जब तक भक्त रहता है, भगवान नहीं हो पाता। दो के लायक भी जगह नहीं है। प्रेम गली अति सांकरी। अब भक्त मिट जाता है, तो भगवान हो जाता है। जगह ही इतनी है! दो के लायक भी स्थान नहीं है। इसलिए--पगडंडी। बड़ी छोटी, संकीर्ण पगडंडी।

प्रेम के मार्ग पर केवल मतवाले जाते हैं--दीवाने जाते हैं। इसलिए मैंने कहां कि मलूकदास पियक्कड़ हैं। शराबी हैं। प्रेम का नशा चाहिए।

बुद्धि होशियारी से चलती है; प्रेम लड़खड़ा के चलता है। प्रेम में एक मस्ती है; बुद्धि में साफ-सुथरापन है। प्रेम में एक रस है; बुद्धि रूखी-सुखी है। बुद्धि का राज-पथ मरुस्थल से गुजरता है। प्रेम की पगडंडी हरे जंगलों, फूलों, पक्षियों के कलरव से; झीलों, सरोवरों के पास से गुजरती है।

प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय करना होता है कि क्या उसके हृदय के साथ, क्या उसके व्यक्ति के साथ, क्या उसकी बुद्धि के साथ मेल खाता है। और कोई दूसरा निर्णायक नहीं हो सकता है। प्रत्येक को अपने भीतर ही निर्णय करना होता है। जिस बात से तुम्हारे भीतर उमंग उठ आती हो, जिस बात को सुन कर तुम्हारे भीतर रोमांच हो जाता हो, जिस बात को सुनकर तुम्हारे भीतर श्रद्धा उमड़ती हो--वही तुम्हारा मार्ग है। उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

और भूल कर भी दूसरे के मार्ग मत चलना। क्योंकि दूसरे के मार्ग से कोई कभी नहीं पहुंचता; अपने ही मार्ग से पहुंचता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं: स्वधर्मे निधनं श्रेयः--अपने धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है। उसका यह मतलब मत समझना कि--हिंदू धर्म में या मुसलमान धर्म में। उसका अर्थ होता है: जो तुम्हारी निजता है, स्वधर्म है...। अगर भक्ति तुम्हारी निजता है, तो उसमें मर जाना भी

बेहतर है। अगर ज्ञान तुम्हारी निजता है, तो उसमें मर जाना बेहतर है। पर धर्मों भयावहः--दूसरे का धर्म बहुत भयानक है; भूल कर मत जाना। और इसीलिए बड़ा उपद्रव है--जगत में। तुम अपनी सुनते ही नहीं! तुम अपनी गुनते ही नहीं। दूसरे जैसा कहते हैं, वैसा मान कर चल पड़ते हो।

यह संयोग की बात है कि तुम जैन घर में पैदा हुए, कि हिंदू घर में पैदा हुए। इससे धर्म तय नहीं होता। तुम्हें धर्म तो तय करना पड़ेगा।

धर्म इतना सस्ता नहीं, कि जन्म से तय हो जाए। धर्म के लिए तो स्वयं निर्णय लेना होता है। जिसने स्वयं निर्णय नहीं लिया, वह चलता रहता है--दूसरी की मान कर; पर-धर्म मान कर चलता रहता है। और उसका जीवन व्यर्थ है; उसकी मृत्यु व्यर्थ है। अवसर खो जाता है। धर्म की शुरुआत ही तब होती है, जब तुम निर्णय लेते हो कि मेरा स्वयं का मार्ग क्या है।

मैं ऐसे जैनों को जानता हूं, जो नाचना चाहेंगे। लेकिन महावीर के सामने नाचने की मनाही है। जो हाथ में दीये जला कर गुनगुनाना चाहेंगे; जो वीणा उठा कर गीत गाना चाहेंगे। लेकिन महावीर के सामने उसकी मनाही है। नग्न महावीर के सामने बांसुरी बजाओगे--भली लगेगी भी नहीं!

मैं ऐसे हिंदुओं को भी जानता हूं, जो राधा-कृष्ण की मूर्ति के सामने बांसुरी बजाते हैं, लेकिन उनकी बुद्धि को यह बात पटती नहीं है। बजाते हैं; गाते हैं; गुनगुनाते हैं; बुद्धि को बात पटती नहीं है। झूठा प्रपंच करते रहते हैं। किसी घर में पैदा हो गये हैं, तो ढोते हैं--बोझ की तरह।

और धर्म अगर बोझ की तरह ढोया जाया, तो तुम्हें क्या खाक मुक्त करेगा? धर्म जब पंख बनता है, तो मुक्त करता है। धर्म जब आनंद और उल्हास होता है, तब मुक्त करता है। धर्म जब तुम चुनते हो, तब मुक्त करता है।

जिन लोगों ने महावीर के पास आ कर शरण ली थी, उन्होंने चुना था। अब उनके घर में जो बच्चे पैदा हो कर जैन हो रहे हैं, उन्होंने चुना नहीं है। जो मीरा के साथ दीवाने हो कर नाचे थे, उन्होंने चुना था। अब तुम परंपरागतरूप से मीरा के गीत गुनगुना रहे हो; न न उनमें प्राण रह गया, न श्वास रह गयी; लाश ढोये चले जा रहे हो।

दुनिया में इतना अधर्म है, उसका मौलिक कारण यही है कि लोग अपने स्व-धर्म की चिंता ही नहीं कर रहे हैं। जन्मगत धर्म के साथ बंधे हैं।

इधर हम जो प्रयोग कर रहे हैं, वह यही है ताकि तुम फिर से स्व-धर्म की चिंता कर सको। फिर से चुनो। चुनाव अभी हुआ ही नहीं है।

जन्म से तय कुछ होता ही नहीं है। जन्म से शरीर मिलता है--आत्मा नहीं। आत्मा तो तुम लेकर आते हो--लंबी-लंबी यात्रा से। उस लंबी यात्रा में न मालूम क्या-क्या तुमने सीखा है। क्या-क्या तुमने किया है। उस सारी सिखावन के आधार पर निर्णय होगाः कौन-सी बात तुम्हें रुची है। जो बात तुम्हें रुच हाय, वही तुम्हारा स्व-धर्म है। फिर बस छोड़ कर--हिसाब-किताब--स्व-धर्म के पीछे चल पड़ना। अगर स्व-धर्म भटका भी दे, तो भी पहुंच जाओगे।

और पर-धर्म अगर पहुंचा भी दे, तो नहीं पहुंच पाओगे। इसे खयाल में लेना; यह सूत्र बहुमूल्य है।
स्व-धर्म में अगर तुम डुब भी जाओ, तो भी पहुंच जाओगे। लेकिन पर-धर्म में अगर तुम सुरक्षा से चलते भी रहो, तो भी कहीं न पहुंचोगे। दूसरे के माध्यम से कोई पहुंचता नहीं है। न तो दूसरे के द्वारा तुम भोजन कर सकते हो; न दूसरे की आंख से देख सकते हो; न दूसरे के पैर से चल सकते हो। तो दूसरे की आत्मा से कैसे तुम परमात्मा को झांकोगे? अपनी ही खिड़की की खोलनी पड़ती है।
मलूकदास प्रेम की खिड़की को खोलकर खड़े हैं। इस बात को खयाल में ले कर उनके सूत्रों को समझना।
ना वह रीझै जपत्तप कीन्हें, न आतम को जारे।
ना वह रीझे धोती टांगे, ना काया को पखारे।।
उस परमात्मा को तुम रिझा न सकोगे--न तो जप से, न तप से; न आत्मा को चलाने से--पीड़ा देने से; न छुआ-छूत--शुद्धि के विचार से--वर्ण-धर्म से; और न काया की शुद्धि से।
पहली बात समझने की है: ना वह रीझै...। रीझै शब्द भक्त का है; उसमें भक्ति की कुंजी छिपी है।
परमात्मा को पाना नहीं है; परमात्मा को रिझाना है। समझोः इसका अर्थ हुआ--कि परमात्मा है: इस पर तो भक्त को संदेह ही नहीं है। परमात्मा के होने में तो श्रद्धा है ही।
परमात्मा के लिए भक्त प्रमाण नहीं मांगता। भक्त यह नहीं कहता कि सिद्ध करो: परमात्मा है। जो कहे: सिद्ध करो--परमात्मा है, उसके लिए भक्ति का मार्ग नहीं है। भक्त के लिए परमात्मा ही है। और अब चीजें असिद्ध हैं, सिर्फ परमात्मा सिद्ध है। यह बात बिना किसी प्रमाण के उसे स्वीकार है। ज्ञानी को अखरेगी यह बात--कि यह क्या अंधापन हुआ! लेकिन ज्ञानी के लिए जो आंख है, वह भक्त के लिए आंख नहीं है। और ज्ञानी के लिए जो अंधापन है, वह भक्ति के लिए आंख है।
श्रद्धा बड़ी कला है। श्रद्धा कोई छोटी-छोटी घटना नहीं है। श्रद्धा का अर्थ होता है: संदेह से प्राण व्यथित नहीं होते।
हर बच्चा श्रद्धा लेकर पैदा होता है। श्रद्धा स्वाभाविक है। जब बच्चा अपनी मां के स्तन पर मुंह रखता है और दूध पीना शुरू करता है, तो श्रद्धा से--संदेह से नहीं। संदेह हो, तो मुंह अलग कर ले। पता नहीं--जहर हो। पहले प्रमाण चाहिए। स्तन से पोषण मिलेगा--इसका प्रमाण क्या है? इसके पहले तो बच्चे ने कभी स्तन से पोषण पाया नहीं है। पहली दफा स्तन को पीने चला है। प्रमाण कहां है? जिसके स्तन से पीने चला है दूध, वह जहरीली न होगी, इसका सबूत क्या है?
नहीं; बच्चा पानी शुरू कर देता है। एक सहज श्रद्धा है; एक आस्था है, जो अभी संदेह से मलिन नहीं हुई है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, श्रद्धा संदेह से मिलन होने लगेगी। वह अपने

बाप पर भी संदेह करेगा, अपने मां पर भी संदेह करेगा। जैसे-जैसे बड़ा होगा, वैसे-वैसे संदेह भी बड़ा होगा।

संदेह हम सीखते हैं; श्रद्धा हम लाते हैं। कुछ धन्यभागी लोग हैं, जो अपनी श्रद्धा को बचा लेते हैं; नष्ट नहीं हो पाती। बड़ा साहस चाहिए--श्रद्धा को बचाने के लिए। कौन सा साहस?...

संदेह में कोई बड़ा साहस नहीं है। संदेह तो भय के कारण ही पैदा होता है। इसे थोड़ा समझो। संदेह आता है--भय की छाया के कारण। जब तुम डरते हो, तभी तुम संदेह करते हो। संदेह का मतलब होता है: पता नहीं, दूसरा लूट लेगा; चोरी करेगा; मारेगा; क्या होगा! जब तुम भयभीत होते हो, तब संदेह आता है। जब तुम निर्भय होते हो, तब श्रद्धा होती है।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, भय भी होगा। परिचित होगा उनसे, जो अपने नहीं हैं। परिवार के बाहर जायेगा। लोग लूट लेंगे कभी; लोग मार देंगे कभी; कभी लोग धोखा देंगे। धीरे-धीरे संदेह बढ़ेगा। धीरे-धीरे शंकालु दृष्टि पैदा होगी। धीरे-धीरे अपने संदेह में घिरा रहने लगेगा। सजग होकर चलेगा--कि कोई लूट न ले; कोई धोखा न दे दे। और ऐसे धीरे-धीरे मनुष्यता पर भरोसा खो देगा; अस्तित्व पर भरोसा खो देगा। इस भरोसा खो देने को कोई बड़ी गुणवत्ता नहीं कहा जा सकता। यह तो इसी बात का सबूत है कि भय बहुत घना हो गया है।

निर्भय व्यक्ति ही श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं। और श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं कहना ठीक नहीं; निर्भय व्यक्ति अपनी श्रद्धा को खंडित नहीं होने देते। जिस श्रद्धा को जन्म के साथ लेकर आये थे, उसे बचाये रखते हैं--धरोहर की तरह।

परमात्मा पर श्रद्धा का इतना ही अर्थ है--जैसे मां पर श्रद्धा। मां से तुम्हारा जन्म हुआ है, इसलिए मां से जो मिलेगा, वह पोषण होगा। इस अस्तित्व से हमारा जन्म हुआ है, इसलिए अस्तित्व हमारा शत्रु नहीं हो सकता। यह अस्तित्व हमारी मां है।

इस अस्तित्व को ही हमने अगर शत्रु मान लिया, तो हद हो गयी! जिससे हम पैदा हुए हैं, वह हमारे विपरीत हो सकता है। और जिसमें हम फिर पुनः लीन हो जायेंगे, यह हमसे विपरीत नहीं हो सकता। हम उसी के फैलाव हैं। जैसे सागर में तरंगें हैं, ऐसे हम परमात्मा की तरंगें हैं। भक्त को यह बात प्रगाढ़ रूप से प्रकट है। इसके लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है। ऐसा उसे स्पष्ट अनुभव होता है। और इस अनुभव में कोई खामी मुझे दिखायी नहीं पड़ती; कोई भूलचूक दिखायी नहीं पड़ती।

ये वृक्ष पृथ्वी पर भरोसा किये हैं; पृथ्वी में जड़ें फैला रहे हैं। जानते हैं कि पृथ्वी रसवती है; मां हैं। ये वृक्ष आकाश में सिर उठा रहे हैं; ये सूरज को छूने के लिए चले हैं; जानते हैं कि सूरज पिता है; उसकी किरणों में प्राण है; जीवन है। इस श्रद्धा के बल पर ही ये जी रहे हैं। किसी वृक्ष को अश्रद्धा हो जाये, वह मरना शुरू हो जायेगा। डर हो जाए पैदा--कि पता नहीं: पृथ्वी से रस मिलेगा कि मौत; कि सूरज है भी, कि नहीं--ऐसा भयभीत हो जाए वृक्ष, तो सिकुड़ जायेगा--अपने में बंद हो जायेगा। खंडित होने लगेगी। उसकी जीवन धारा। जीवन के रास-स्रोत सुख जायेंगे।

भक्त रसपूर्ण है। भक्त की पहली शर्त है--कि परमात्मा है। इसमें वह प्रमाण नहीं मांगता। इसलिए कहते हैं मलूकः ना वह रीझे...। इसलिए यह तो सवाल ही नहीं उठाना कि है परमात्मा या नहीं। यह भक्त के लिए सवाल नहीं है।

अगर यह सवाल तुम्हें उठता हो, तो भक्ति तुम्हारा मार्ग नहीं है। फिर तुम्हारा मार्ग ज्ञान है। फिर तुम्हें संदेह कर कर के ही लंबी यात्रा करनी पड़ेगी--संदेह की। इतना संदेह करना पड़ेगा कि धीरे-धीरे ऐसी घड़ी आ जाए कि तुम्हें संदेह पर भी संदेह हो जाए, तब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी; उसके पहले नहीं। वह बड़ी लंबी यात्रा है। संदेह पर भी जब तुम्हें संदेह पैदा हो जायेगा, जब संदेह पर संदेह आ आयेगा, तब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी।

भक्त की श्रद्धा कुंवारी है; मौजूद है; है ही; उसे लाने की जरूरत नहीं है। परमात्मा है--इसलिए अब सवाल क्या है! सवाल यह है कि परमात्मा को कैसे रिझायें?

ज्ञानी का सवाल है--कि परमात्मा है या नहीं।

केशवचंद्र रामकृष्ण के पास गये, तो उन्होंने पूछा--परमात्मा है या नहीं? वह ज्ञानी का सवाल है। और रामकृष्ण खूब हंसने लगे। उन्होंने कहा, यह सवाल कभी मुझे कभी उठा ही नहीं! परमात्मा है या नहीं?--इसका उत्तर मैंने कभी खोजा नहीं, क्योंकि यह सवाल मुझे कभी उठा नहीं। परमात्मा तो है ही । उसके अतिरिक्त और कौन है! जो है--वह परमात्मा का रूप है।

केशवचंद्र बहुत विवाद करने लगे। तर्कनिष्ठा व्यक्ति थे। और रामकृष्ण बड़े प्रफुल्लित होने लगे; बड़े आनंदित होने लगे। और जब विवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचने लगा, तो रामकृष्ण ने उठ कर केशव को गले लगा लिया। केशव तो बहुत हैरान हुए--कि यह मामला क्या है! वे तो खंडित कर रहे थे। उन्होंने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं परमहंसदेव? लोग कहते हैं कि आप पागल हैं, क्या सच ही कहते हैं? क्योंकि मैं तो खंडित कर रहा हूं। रामकृष्ण ने कहा खंडन? सुन कौन रहा है! मैं तुम्हें देख रहा हूं। तुम्हें देख कर मुझे परमात्मा का भरोसा आ रहा है। ऐसी प्रतिभा, परमात्मा के बिना हो कैसे सकती है?

फर्क समझना। इतनी प्रतिभा--कि परमात्मा को भी खंडित कर सके, परमात्मा के बिना कैसे हो सकती है? तुम्हारे भीतर अपूर्व परमात्मा प्रकाश हो रहा है। केशव, तुमने नहीं देखा। मैं देख रहा हूं; रामकृष्ण ने कहा। तुम्हें मैं गले लगाता हूं। तुमने लौट कर नहीं देखा--अपना प्रकाश, वह तुम्हारी मरजी। लेकिन मैं तुम्हारे भीतर बड़ा प्रकाश देखता हूं।

केशवचंद्र हारे हुए लौटे! इसे आदमी से जीतने का उपाय नहीं है। सोचते-विचारते लौटे कि बात क्या है! ऐसा तो कभी उनके जीवन में कोई अनुभव न आया था। वे विवाद कर रहे थे। विवाद का उत्तर दिया जाना चाहिए था। उत्तर दिया भी गया। पर बड़ा अनूठा उत्तर दिया गया--कि तुम्हारे विवाद करने की क्षमता, परमात्मा का सबूत है। तुम्हारे तर्क की यह प्रगाढ़ता, वह त्वरा--परमात्मा का सबूत है।

कहते हैं मलूकदास; ना वह रीझे...। रीझने से बत शुरू होती है। रिझाना है। प्रेमी तो है। जानने की बात नहीं है। है ही। उसका हमें पता नहीं है। वह मौजूद ही है। अब सवाल इतना है कि कैसे उसे रिझायें।

फर्क समझना।

जब ज्ञानी बड़े-बड़े प्रमाण जुटा कर तय कर लेता है कि ठीक सत्य है; तब वह कहता है: अब मैं सत्य को कैसे पाऊं?

भेद समझना।

रिझाने की तो बात उठ ही नहीं सकती--ज्ञानी के मन में। रिझाने जैसा पागलपन--ज्ञानी सोच भी नहीं सकता। ज्ञानी सोचता हैं कि पहले तो सत्य है या नहीं, अगर सिद्ध हो जाता है--तर्क और गणित से--कि है, तो फिर वह पूछता है कि मैं सत्य को कैसे पाऊं।

ज्ञानी की दृष्टि अपने पर होती है। भक्त पूछता है: तुम्हें कैसे रिझाऊं। यह तो वह पूछता ही नहीं--कि तुम्हें कैसे पाऊं। यह तो सवाल ही नहीं है। तुम्हें पाया ही हुआ है। अब बात इतनी ही है कि किस ढंग से नाचूं कि तुम्हारे मन में, मेरे प्रति, प्रसाद बरस जाए--तुम्हारी तरफ से। कैसे तुम्हें प्रसन्न कर लूं--तुम रूठे हो जैसे।

फर्क देखना।

ज्ञानी सोचता है: मैंने किये होंगे पाप-कर्म, इसलिए परमात्मा मुझे नहीं मिल रहा है; सत्य मुझे नहीं मिल रहा है। भक्त कहता है: परमात्मा रूठ कर बैठे हैं। खेल चल रहा है। जैसे प्रेमी रूठ जाता है। परमात्मा रूठ कर बैठे हैं, इन्हें कैसे मनाऊं कैसे रिझाऊं; किस विधि नाचूं; किस विधिगाऊं--कि यह रूठना परमात्मा भूल जाए?

ना वह रीझे जपत्तप किन्हें, ना आतम को जारे।

और कहते हैं मलूक कि तुम कितना ही जप करो--कितना ही तप, उसे रिझा न पाओगे। यह कोई रिझाने की बात हुई! यह तो और रूठा दोगे!

अब कोई आदमी बैठा--और जप कर रहा है। जप यानी विधि। फर्क समझना। भक्त भी भगवान का नाम लेता है। आगे मलूकदास कहेंगे: राम कहो, राम कहो बावरे। लेकिन वह जप नहीं है। जप है--विधि, टेकनीक।

एक आदमी जप करने बैठा है। वह कहता है: राम-राम-राम। इसमें कोई रस नहीं है; कोई प्रेमी नहीं है। दोहराता है इसे--यंत्रवत; एक विधि की भांति। इसे कर रहा है, क्योंकि कहा गया है कि इस तरह मंत्र को दोहराने से विचार शांत हो जायेंगे, मन शून्य होगा--और उस शून्य में परमात्मा के दर्शन होंगे। यह विधि है। अगर उससे कहा गया होता कुछ और, तो वह वही करता।

बहुत विधियां हैं--दुनिया में।

पश्चिम के बहुत बड़े कवि लार्ड टेनिसन ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि मुझे बचपन से ही न मालूम कैसे यह विधि हाथ आ गई कि जब भी मैं अकेला बैठा होता, तो अपना ही नाम दोहराने लगता--टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन । और उसके दोहराने से मुझे बड़ा रस आता।

बड़ी मस्ती छा जाती। मैं किसी से कहता भी नहीं था, क्योंकि लोग पागल समझेंगे। फिर तो धीरे-धीरे रस इतना बढ़ने लगा कि यह दैनिक कृत्य हो गया। घंटों बैठा रहता। और टेनिसन--टेनिसन दोहराता रहता। दोहराते--दोहराते एक घड़ी आ जाती कि बड़ी शांति आ जाती।

अब अपना ही नाम दोहराने से भी अगर शांति मिल जाती है, तो अपना ही नाम दोहरा लेगा। विधि का सवाल है; कोई राम के नाम से क्या लेना-देना है! कोई भी शब्द काम दे देगा। कोई भी शब्द दोहराने से काम हो जायेगा। इसलिए ओंकार दोहराओ, कि राम दोहराओ, कि अल्लाह दोहराओ--या तुम अगर चाहो तो संख्या ही दोहरा सकते हो: दो--दो--दो दोहराते जाओ, उससे भी वही परिणाम होगा।

ज्ञानी के लिए शब्द शब्द में कोई भेद नहीं है। शब्द तो विधि है। लेकिन प्रेमी के लिए बड़ा भेद है। प्रेम के लिए शब्द विधि नहीं; शब्द उसके हृदय का भाव है।

तुम अगर प्रेमी से कहोगे कि दो--दो--दो दोहराने से भी शांति हो जायेगी, ध्यान लग जायेगा, तो प्रेमी कहेगा; मुझे ध्यान नहीं लगाना है; मुझे राम दोहराना है। ज्ञानी को कहोगे कि दो से भी वही काम हो आता है, वह कहेगा: तब ठीक है, कोई हर्जा नहीं है; दो दोहराने लेंगे। फर्क समझने की कोशिश करना।

ज्ञानी के लिए जप विधि है--भक्त के लिए भजन है। भजन में रस है, भाव है। ज्ञानी के लिए वैज्ञानिक तकनीक है, तो करता है। और कोई बेहतर तकनीक मिल जायेगी, तो उसे करेगा। लेकिन भक्त के लिये...? भक्त कहेगा: इससे कोई फर्क नहीं पड़ता...

ऐसा समझो कि एक बेटे से तुम कहो कि तेरी जो मां है, इससे भी सुंदर मां तुझे दे देते हैं। तो वह कहेगा: छोड़ो भी। मेरी मां से सुंदर और कौन मां हो सकती है? यह बात ही मत करो। कितनी ही सुंदर स्त्री को लाकर खड़ा कर दो इससे भी बच्चा उसके पास नहीं चला जायेगा--कि वह उसकी मां से ज्यादा सुंदर है, तो चलो इसे चुन लें। लेकिन तुम अगर वेश्या को खोजने गये हो--बाजार में; रुपये देकर वेश्या लेनी है, तो फिर तुम सुंदर को चुन लोगे, असुंदर को छोड़ दोगे। असुंदर का क्या प्रयोजन है? जब सुंदर मिलती हो--उतने ही दाम में, तो तुम सुंदर को चुन लोगे।

वेश्या का चुनाव गणित से होगा; मां का चुनाव गणित से नहीं होता; गणित के बाहर है। किसी बेटे को अपनी मां असुंदर लगती ही नहीं। किस मां को अपना बेटा असुंदर लगता है? एक-रस भाव है; एक भावना है।

खयाल रखना: कहते हैं मलूकदास: ना वह रीझे जपत्तप किन्हें, तो कितना ही लाख सिर पटको और जपते रहो--राम-राम-राम, लेकिन अगर इसमें रस नहीं है, अगर यह मात्र सूखी विधि है, अगर तुम माला जप रहे हो, और सिर्फ हाथ माला पर फेर रहे हो...।

तुम्हें पता होगा: तिब्बत में उन्होंने ज्यादा अच्छी विधि खोज ली। तुम माला जपते हो; एक सौ आठ गुरिये सरकाओ; समय लगता है। उन्होंने एक सौ आठ आरे वाला चका बना लिया है तिब्बत में, उसको वे प्रार्थना-चक्र कहते हैं। अपना काम करता रहता है आदमी और एक

धक्का मार देता है--उस चके को, वह चका घूम जाता है। जितनी बार वह चका घूम जाता है, उतनी माला का लाभ हो गया! यह विधि है।

एक बार एक तिब्बती लामा मेरे पास मेहमान था। उसके पास मैंने उसका चका देखा। वह रखा रहता। किताब भी पढ़ता रहता, तो बीच-बीच में चके को, जब मनन हो जाता, तो घूमा देता। वह दस-पंद्रह चक्कर लगा कर चका रुक जाता। दस-पंद्रह माला का लाभ हो गया! मैंने उससे कहाः पागल, इसमें तू बिजली क्यों नहीं जोड़ लेता? उसे बात जंची! अगर हाथ से ही चलाने का मामला है, तो बिजली से जोड़ दे। बटन भी तो हाथ से ही दबानी पड़ेगी न। फिर दबा दी। चौबीस घंटे चला दिया, तो लाखों का लाभ हो जायेगा।

एक घर में मैं मेहमान था, उन्होंने बड़ा पुस्तकालय बना रखा है। बस, वे कापियों पर राम-राम, राम-राम लिखते रहते हैं। इकट्ठी करते जा रहे हैं कापियां। कोई साठ पैंसठ साल की उनकी उम्र है; कोई चालीस साल से यह काम कर रहे हैं। सारा घर भर डाला है। वे बड़े प्रसन्न होते हैं; दिखते हैं--कि देखो, कितना राम-राम लिख डाला।

मैं जब उनके घर गया, तो मैंने कहा कि तुमने कितनी कापियां खराब कर डालीः राम जी के सामने मत पड़ जाना कभी, नहीं तो वे कहेंगेः इतने बच्चे...! अगर स्कूल में किताबें बांट दी होतीं, तो काम आ जातीं। तुमने व्यर्थ खराब कर डालीं। यह राम-राम लिखना--यह क्या फिजूल की बात है!

बंगाल में एक बहुत बड़ा व्याकरणाचार्य हुआ, उसके पिता ने उससे कहा कि तू राम-राम कब जपेगा? उसने कहाः बार-बार जपना! एक दफा बहुवचन में कह दूंगा। एक वचन में कहते रहो--राम--राम--राम। लाखों बार कहो। बहुवचन में एक दफा कह दिया, बात खतम हो गयी।

गणित है जहां कहां बात अलग है।

मैंने सुना हैः एक वकील रोज रात को प्रार्थना करता। उसकी पत्नी ने सुना कि प्रार्थना बड़े जल्दी खतम हो जाती है। एक सेकेंड नहीं गलता। बस, वह जल्दी से प्रार्थना करके कंबल ओढ़ कर सो जाता। पत्नी ने कहाः मैं भी करती हूं प्रार्थना, तो कम से कम दो मिनट तो लगते हैं! तुम्हें तो एक सेकेंड नहीं गलता! उसने पूछा वकील से कि तुम इतनी जल्दी प्रार्थना...? उसने कहा कि बार-बार क्या करना। वही की वही प्रार्थना। भगवान भी जानता; मैं भी जानता। मैं कहता हूं--डिट्टो--और सो जाता हूं।

वकील है, तो वकालत के ढंग से सोचता है।

मलूकदास कह रहे हैं कि ऐसे जपत्तप से कुछ भी होगा। तप का अर्थ होता है--तपानाः उपवास करना, धूप में खड़े होना, कि शीत में खड़े होना, कि कांटों पर लेट जाना। मलूकदास कहते हैंः यह भी क्या पागलपन है! तुम अपने को सताओगे, इससे परमात्मा प्रसन्न होगा? कौन मां अपने बेटे को भूखा देख कर प्रसन्न होती है? कौन मां अपने बेटे को धूप में खड़ा देखकर प्रसन्न होती है? कौन मां अपने बेटे को कांटों पर लेटा देखकर प्रसन्न होगी? अगर ऐसी कोई मां होगी, तो पागल होगी।

तुम तपात्तपा कर परमात्मा को रिझाने चले हो? तुम और दूर हुए जा रहे हो। और जितना ही कोई व्यक्ति तपस्वी बनता है, तापता है अपने को, उतना ही अहंकार बढ़ता है--परमात्मा नहीं बढ़ता। उतनी अकड़ बढ़ती है--कि देखो, मैंने इतने उपवास किये, इतने जप किये, इतने तप किये। देखो, कितना मैंने अपने को सताया। उसकी शिकायत और उसका दावा बढ़ता है। वह दावेदार बनता है। अगर परमात्मा उसे मिल जायेगा, तो उसका हाथ पकड़ लेगा--कि बड़ी देर हुई जा रही है; अन्याय हो रहा है। मैं कितने दिन से तपश्चर्या कर रहा हूं। आखिर कब तक? तेरे मोक्ष और कितनी दूर है?

मलूकदास कहते हैं: न होगा जप से, न होगा तप से, क्योंकि परमात्मा अगर प्रेम है, तो यह बात ही बेहूदी है कि तुम अपने को सताओगे, इससे उसे पा लोगे। और अगर तुमने अपने को सता-सता कर परमात्मा को अपने पास बुला भी लिया, तो क्या वह प्रसन्नता से आयेगा? बहुत लोगों का यह तर्क है। तुम इससे समझना। तुम्हारे जीवन में यह तर्क खूब काम करता है। स्त्रियों के मन में यह तर्क बड़ा गहरा बैठा है।

पति से प्रेम नहीं मिलता, तो पत्नी बीमार हो जाती है। स्त्रियों की पचास प्रतिशत बीमारियां झूठी हैं। चाहे उन्हें भरोसा ही क्यों न हो कि ये बीमारियां सच हैं, तो भी झूठी हैं, कल्पित हैं।

मैं बहुत घरों में मेहमान होता रहा। मैं चकित होता कि मुझसे, बैठी पत्नी बात कर रही थी; पति के आने से ही बिस्तर पर लेट गई। और सिर में दर्द शुरू हो गया! मैं थोड़ा हैरान होता कि बात क्या है! और ऐसा भी नहीं कि पत्नी बिलकुल झूठ कह रही हो; पति को देखते ही सिर में दर्द शुरू हो जाता है। पुराना अभ्यास; रोज-रोज का अभ्यास--बस, यह संकेत की तरह काम कर जाता है: पति का हार्न बजा नीचे, गाड़ी का, कि पत्नी के सिर दर्द शुरू हुआ।

यह उसने कैसे सीख लिया है? उसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। उसने पति को और कभी अपने तरफ प्रेम भरे नहीं देखा। जब तक वह बीमार न हो, तब तक पति उसके पास नहीं बैठता। जब तक सिर में दर्द न हो, सिर में हाथ नहीं रखता। सिर पर हाथ रखे, उसकी आकांक्षा है। तो सिर दर्द धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्रक्रिया बन गई है--पति सिर पर हाथ रखे--इसका, इसका उपाय बन गया है।

चौंके होंगे शंकर; निश्चित चौंके होंगे। एक दफा खयाल आया कि बात तो ठीक ही है। अगर देह इसकी अशुद्ध है, तो मेरी कहां शुद्ध है! सच यह है कि वेद यही कहते हैं कि हर आदमी शूद्र की तरह ही पैदा होता है। कोई आदमी ब्राह्मण की तरह थोड़े ही पैदा होता है। ब्राह्मण तो होना होता है। शूद्र की तरह हम सभी पैदा होते हैं। जो ब्रह्म को जान लेता, वह ब्राह्मण हो जाता है। नहीं तो हम सभी शूद्र ही हैं। बात तो याद आयी होगी।

फिर उसने पूछा कि अगर आप कहते हैं कि नहीं, देह के छूने के कारण कोई सवाल नहीं है। तो क्या मेरी आत्मा अशुद्ध है? आत्मा अशुद्ध हो सकती है महानुभाव? सुना तो मैंने यही है कि आत्मा शाश्वत रूप से शुद्ध है। आपसे ही सुना है; आप जैसे बुद्धिमानों से सुना है; ऋषि-

मुनियों से सुना है--कि देह सदा अशुद्ध है और आत्मा सदा शुद्ध है। अब मैं तुमसे यह पूछता हूं कि किसके छूने से आप परेशान हो गये हैं? देह के छूने से? तो देह आपकी भी अशुद्ध है। अशुद्ध अशुद्ध देह से छू गई, तो क्या बिगड़ गया? आत्मा के छूने से अशुद्ध हो गये? तो न तो मेरी आत्मा अशुद्ध है, न आपकी आत्मा अशुद्ध है।

कहते हैं शंकर ने झुक कर प्रमाण किया उस शूद्र को और कहाः तूने मुझे खूब चेताया। जो मैं शास्त्रों से न जान सका, वह तूने मुझे जगाया। मैं अनुगृहीत हूं।

ना वह रीझै धोती टांगे...। तो तुम जब छुआ-छूत...। और मैं ब्राह्मण और वह शूद्र; और मैं हिंदू और वह मुसलमान; और मैं आर्य--और वह म्लेच्छ--ऐसी मूढ़तापूर्ण बातों में पड़ते हो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम परमात्मा को रिझा पाओगे।

ना काया के पखारे...। और लोग हैं कि काया को पखारने में लगे हैं!--हठयोगी नौलि-धौति कर रहे हैं; आसन-व्यायाम कर रहे हैं! सब तरह से लगे हैं उपाय में कि काया शुद्ध हो जाए! काया शुद्ध हो भी जायेगी, तो क्या होगा? और काया शुद्ध हो नहीं सकती। तुम कितना ही काया को शुद्ध करो, काया के होने का ढंग...। भोजन तो करोगे; फिर वही हो जायेगा। और मल-मूत्र तो बनेगा ही। और लहू और मांस-मज्जा तो बनेगी ही। कैसे शुद्ध करोगे इसे? और शुद्ध करने से होगा भी क्या?

अगर परमात्मा को शुद्ध काया ही बनानी होती, तो सोने-चांदी की बना देता! लोहे की बना देता--कम से कम। गरीबों की लोहे की बना देता; अमीरों की सोने चांदी की बना देता। लेकिन मांस-मज्जा-चमड़ी की बनाई। इसको शुद्ध करने से क्या होगा? कैसे यह शुद्ध होगी? नहीं; इस तरह तुम सिर्फ उसका अपमान कर रहे हो।

मलूकदास कहते हैंः यह सब अपमान हैं परमात्मा के। उसने काया जैसी बनाई, वैसी स्वीकार करो। उसकी ही दी हुई काया है। तुमने तो बनाई नहीं। स्वीकार करो। अहोभाव से स्वीकार करो।

दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।

अपना सा दुःख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी।।

तो फिर कैसे उसे रिझायें? कहते हैं मलूक--दया करै...। उसके पाने का सूत्र एक ही है--दया, करुणा, प्रेम। चारों तरफ वही मौजूद है, तो जितना बन सके, उतनी दया करो। जितना बन सके, उतना प्रेम करो। जितना बन सके, उतनी करुणा करो।

दया करै...। और दूसरे पर ही नहीं, अपने पर भी दया रखा।। कहीं ऐसा न हो कि दूसरे पर दया करने लगो और स्वयं पर बहुत कठोर हो जाओ।

महात्मा गांधी ने कहा हैः दूसरों पर तो दया करे, अपने पर कठोर हो। लेकिन यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

अगर तुम दूसरे पर दया करो और अपने पर कठोर हो जाओ, तो तुम ज्यादा देर दूसरों पर दया न कर पाओगे। क्योंकि जो अपने पर दया ही करता, वह कैसे दूसरों पर दया कर पायेगा? वह चोरी-छिपे से दूसरों पर भी कठोर हो जायेगा।

यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। जो आदमी अपने पर कठोर होता है, वह दूसरों पर भी कठोर हो जाता है। तरकीब से कठोर होता है। समझो कि तुम कठोर अपने पर और तुम लंबे उपवास करते हो, तो दूसरा आदमी जो लंबे उपवास नहीं कर सकता, उसके प्रति तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही कि वह हीन है। तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही कि वह पतित है। तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा हो--कि बेचारा! मैं श्रेष्ठ, वह अश्रेष्ठ। इसीलिए तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों की आंखों में तुम सदा अपनी निंदा पाओगे। एक गरूर उनके भीतर होगा--कि मैं इतना कर रहा हूं, तुम कुछ भी नहीं कर रहे! पापी! तुम जाओ, अपने महात्माओं की आंखों में गौर से झांक कर देखना, उनकी आंख में तुम्हारी तरफ इशारा है कि तुम पाप हो। और उनकी भाषा में, उनकी वाणी में, उनके उपदेश में तुम जगह-जगह यह पाओगे कि तुम्हारी निंदा है। और हजार तरह की वे व्यवस्थाएं बनायेंगे, जिसमें कि तुम भी अपने पर कठोर हो जाओ। वे भी तुमसे कहेंगेः दूसरों पर दया करो; अपने पर कठोर हो जाओ। ये दूसरे कौन है?

अगर हम आदमी मान ले और अपने पर कठोर हो जाये, और दूसरे पर दया करे, तो ये दूसरे कौन हैं! दूसरा तो कोई बचा नहीं।

जो दूसरों पर दया करता है और अपने पर कठोर है, उसकी दया थोथी हो जायेगी। इस बात को खयाल में लेनाः तुम दूसरों के साथ वही कर सकते हो, जो तुम अपने साथ कर सकते हो।

जीसस ने कहा हैः प्रसिद्ध वचन हैः अपने पड़ोसी को अपने जैसा प्रेम कर--अपने जैसा। मगर पहले तो अपने को कर, तभी अपने पड़ोसी को कर सकेगा। नहीं तो कैसे करेगा! क्योंकि सबसे निकट के पड़ोसी तुम ही--अपन। यह देह मेरी सबसे करीब है। यह मेरी सबसे करीब की पड़ोसी है। फिर इसके बाद दूसरे पड़ोसी हैं। फिर यह सारा संसार है। इस देह--इस पड़ोसी को पहले प्रेम करो।

जीसस ने कहा हैः अपने शत्रुओं को अपने जैसा प्रेम कर। लेकिन पहले तो अपने को प्रेम कर। जिसने अपने को ही प्रेम नहीं किया, वह किसी को भी प्रेम नहीं कर पायेगा।

तुम ऐसे लोगों को जगह-जगह खोज लोगे। इस तरह के लोग असंभव आदर्श बना कर जीते हैं, खुद पर बड़े कठोर--और तब दूसरे पर भी बड़े कठोर हो जाते हैं। उनकी कठोरता ऐसे ढंग से आती है कि तुम पहचान भी नहीं पाते।

अब जैसे महात्मा गांधी के आश्रम में कोई चाय नहीं पी सकता। कोई एक-दूसरे के प्रेम में नहीं पड़ सकता। अब यह अतिशय कठोरता है। मगर सिद्धांत के नाम पर चलेगा। सिद्धांत बिलकुल ठीक है। और सिद्धांत को मान कर चलना है। सिद्धांत आदमी के लिए है--ऐसा नहीं है; आदमी सिद्धांतों के लिए हो जाता है। महात्माओं के हाथ में आदमी का मूल्य नहीं है, सिद्धांतों का मूल्य है। सिद्धांत को मान कर चलो, तो ही तुम ठीक हो। सिद्धांत को मान कर नहीं चले, तो तुम गलत हो। और तुम गलत हो यही तो सबसे बड़ा अपराध है। तुम्हारे भीतर अपराध की भावना पैदा होगी।

अब जरा समझाः अगर किसी ने चाय पी ली--गांधीजी के आश्रम में तो उसके भीतर पाप की आग जलेगी। वह डरेगा, घबड़ायेगा--कि बड़ा पाप हो गया!

छोटी सी चीज, चाय से--उससे इतना बड़ा पाप जोड़ दिया! खूब तरकीब से आदमी को सता लिया। अब वह रात सो न पायेगा कि कहीं पता न चल जाए। बात कुछ न थी; बात कुछ भी थी। चाय कितनी ही पीयो, क्या पाप हो जाने वाला है! और अगर चाय पीने में पाप हो गया, तो फिर जीना असंभव हो जायेगा। फिर हर चीज में पाप है। फिर उठने-बैठने में पाप है; बोलने-चालने में पाप है।

और ऐसी घटनाएं घटी हैं--मनुष्यजाति के इतिहास में, जब हर चीज पाप हो गई। तुमने तेरापंथी साधु देखे हैं--मुंह पर पट्टी बांधे हुए! बोलने में पाप है, क्योंकि बोलने में गरम हवा निकलती है मुंह से, उससे कीड़े इत्यादि, अगर हवा में हों, तो मर जाते हैं। तो बोलने में पाप है।

सांस लेने पाप हो गया! जीना पाप हो गया! उठना-बैठना पाप हो गया! यह तो बड़ी कठोरता हो गई आदमी के साथ ज्यादती हो गई। लेकिन जो अपने साथ ज्यादती करेगा, वह दूसरे के साथ भी ज्यादती करेगा ही।

जब तुम किसी नियम को पालन कर लेते हो, तो तुम यह मानते हो कि सभी को करना चाहिए। अब जो आदमी रात तीन बजे उठ आता है, वह मानता है--सभी को उठाना चाहिए। क्यों?--क्योंकि वह उठ आता है! अब यह हो सकता है कि उन सज्जन को नींद न आती हो ठीक से। बढ़े हो गये हों। बुढापे में नींद कम हो जाती है। फिर हर आदमी की जीवन व्यवस्था अलग-अलग है।

जब बीमार होता है कोई, तभी हम उसके पास जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब बच्चा बीमार हो, तब बहुत ज्यादा प्रेम मत दिखलाना, अन्यथा, तुम उसे जीवन भर बीमार रखने का उपाय कर रहे हो। जब बच्चा स्वस्थ हो, जब ज्यादा प्रेम दिखलाना ताकि स्वास्थ्य और प्रेम का संबंध हो जाए, बीमारी और प्रेम का संबंध न हो जाये। लेकिन हम उलटा ही करते हैं।

बच्चा स्वस्थ है, तो कौन फिक्र करता है! न मां देखती है; न बाप देखता है; न किसी को लेना-देना है। जब ठीक ही है, तो क्या लेना-देना है? जब बच्चा बीमार होता है, तो मां भी पास बैठी है--बाप भी। बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है देख कर--कि बड़े-बड़े पास बैठे हैं। इशारे पर चलाता है। चाय ले आओ। यह करो; वह करो। डाक्टर भी आता है, तो बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है। वह सबसे ऊंचे पद पर बैठा है। जब तक बीमार रहता है, तब तक यह पद रहता है। जैसे ही बीमारी गयी, यह पद समाप्त हुआ। फिर कोई उसकी फिक्र नहीं करता। फिर उसके अहंकार को तृप्त होने का दुबारा अवसर तभी मिलेगा, जब वह बीमार हो जाए।

धीरे-धीरे बीमारी में रस आ जायेगा।

बहुत लोग बीमारी में रस ले रहे हैं, इसलिए दुनिया इतनी बीमार है। और बहुत लोग दुःख में रस ले रहे हैं इसलिए दुनिया इतनी बहुत दुःखी है।

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैंः सुखी होना है। लेकिन जब मैं उनसे पूछता हूं कि सच सुखी होना है? तो पहले तुमने दुःख में जो-जो नियोजन किया है, इन्व्हेस्टमेंट किया है, उसको हटा लेना पड़ेगा; तुम्हें पूरी प्रक्रिया दुखी पड़ेगी अपने जीवन को--कि तुमने दुःख में कहां-कहां अपने स्वार्थ जोड़ रखे हैं।

अब जिस पत्नी ने जाना ही पति का हाथ--अपने सिर पर तभी है, जब सिर में दर्द हुआ, यह कैसे सिरदर्द छोड़ दे। लाख दो तुम इसे। इस्प्रो, एनासिन; सिरदर्द कैसे छोड़ दे? यह कोई छोटी बात नहीं है। सिरदर्द नहीं छुड़ा रहे हो; तुम इससे इसका प्रेम छुड़ा रहे हो। इसने और कोई प्रेम जाना ही नहीं है, इसी बीमारी के माध्यम से जाना है। यह बीमारी ही इसके प्रेम का द्वार है। यह कैसे छोड़ दे!

तुमने देखा कि लोग अपनी बीमारी की खूब चर्चा करते हैं। क्योंकि बीमारी की चर्चा करते हैं, तभी लोग सहानुभूति प्रकट करते हैं। नहीं तो कोई सहानुभूति प्रकट नहीं करता। तुम किसी स्वस्थ आदमी के पास थोड़े ही सहानुभूति प्रकट करने जाते हो। दुःखी आदमी के पास सहानुभूति प्रकट करते हो। यह मनोवैज्ञानिक अर्थों में लगता हिसाब है।

बच्चा बीमार हो, तो उसकी फिक्र तो करो, लेकिन फिक्र ऐसी अतिशय मत कर देना कि बीमारी में उसे स्वाद पैदा हो जाए। नहीं तो फिर बीमारी से कभी छूट न सकेगा। पत्नी बीमार हो, तो दवा देना, इलाज कर देना, लेकिन इतना अतिशय प्रेम मत उंडेल देना कि बीमारी से ज्यादा मजा तुम्हारे प्रेम में आ जाए। कि बीमारी का कष्ट छोटा पड़ जाए और बीमारी का मजा ज्यादा हो जाए। जिस दिन यह हो गया, उस दिन फिर पत्नी ठीक न हो सकेगी। और तुम जिम्मेवार हुए--बीमारी के लिए।

परमात्मा के साथ भी हम यही तरकीब करते हैं। मलूकदास कहते हैंः ना वह रीझै जपतप किन्हें, न आतम को जारे। और तुम कितना ही जलाओ अपनी आत्मा को, कितना ही सताओ अपने को, इससे तुम उसे रिझा न सकोगे। शायद इन्हीं उपायों के कारण तुमने उसे रूठा दिया है।

अगर तुम परमात्मा के हिस्से हो, तो जब तुम अपने को कष्ट दोगे, तो तुम्हारा कष्ट उसी में पहुंच रहा है। तुम उसी को कष्ट दे रहे हो। इस बात की बड़ी गरिमा है। इसे खूब खयाल में लेना।

जब भी तुमने अपने को कष्ट दिया, परमात्मा को ही कष्ट दिया है, क्योंकि वही है। लहर ने अपने को कष्ट दिया, तो सागर को ही मिलेगा। और अगर हम परमात्मा के हिस्से हैं, तो अपने को सताया, तो हमने परमात्मा को ही सताया।

भक्त कहता हैः अपने को प्रेम करो, क्योंकि तुमने भी परमात्मा का ही हाथ है। अपना आदर करो, समादर करो, अपना सम्मान करो। इस देह में भी पर आत्मा विराजमान है, इस देह का अनादर मत करो। यह देह उसका ही घर है, उसका ही मंदिर है। इस देह की भी पूरी फिक्र करो, देखभाल करो। जैसे मंदिर की देखभाल करते हो, ऐसे देह की देखभाल करो।

भक्त की दृष्टि बड़ी अलग है; तुम्हारे तथाकथित तपस्वी से बड़ी भिन्न है; विपरीत है। इसलिए तुम बहुत हैरान होते हो। तुम देखोगे भक्त को: वह तिलक-चंदन लगाए, बड़े बाल बढ़ाये, सुंदर रेशम के वस्त्र पहने, सुगंधित इत्र लगाये, फूल की माला डाले भगवान की पूजा कर रहा है! तुम्हें लगता है: यह क्या पूजा हो रही है।

भक्त की दृष्टि तुम नहीं समझ रहे हो। भक्त इस देह को अपनी देह नहीं मानता; परमात्मा की ही देह है। तो इस देह को भी नहलाता है, धुलाता है; इत्र छिड़कता है; चंदन लगाता है; फूल की माला पहन लेता है; रेशम के वस्त्र पहन के परमात्मा के सामने नाचता है।

भक्त कहता यह है कि जब तुम परम स्वास्थ्य की दशा में हो, परम सौंदर्य की दशा में हो--अपने में मुग्ध, तभी तुम उसे रिझा पाओगे। उसे रिझाना हो--सुंदर बनो उसे रिझाना हो--सुंदर बनो। उसे रिझाना हो--रसमय बनो। उसे रिझाना हो, तो इस योग्य बनो कि वह रीझे; रीझना ही पड़े। कुछ गाओ मधुर; कुछ गुनगुनाओ मधुर; कुछ जीओ मधुर।

तो भक्त का जीवन है--माधुर्य का जीवन। त्यागीत्तपस्वी का जीवन है--अपने को सताने का जीवन। और ध्यान रखना: त्यागीत्तपस्वी के खिलाफ आधुनिक मनोविज्ञान भी है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है: ये त्यागीत्तपस्वी और कुछ नहीं, मैसोचिस्ट हैं। यह अपने को सताने में रस ले रहे हैं; इन्हें परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। इन्हें हिंसा में रस आ रहा है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे, जिन्हें दूसरों को सताने में रस जाता है, अडोल्फ हिटलर, जिन्हें देख कर मजा आ जाता है--दूसरे को तड़पते देख कर। और दूसरे वे हैं, जिन्हें अपने को सताने में मजा आता है, महात्मा गांधी। इनमें बहुत फर्क नहीं है। इनका फर्क बहुत ऊपरी है।

दूसरों को भूखे रखने में तुम्हें मजा आये, तो कोई भी इसे पुण्य नहीं कहेगा। कहेगा--यह पाप हुआ। और अपने को भूखा रखने में तुम्हें मजा आये, तो लोग इसे पुण्य कहता हैं। यह कैसे पुण्य हुआ? अगर दूसरे को रखने में पाप है, तो अपने को भी भूखा रखने में पाप ही होगा। एकदम से गणित बदल कैसे जायेगा!

आखिर दूसरे को भूखा रखने में पाप क्यों है? अगर उपवास पुण्य है, तो तुमने दूसरे आदमी को उपवास का मौका दे दिया; वह खुद नहीं जुटा पा रहा था, तुम दूसरे आदमी को उपवास का मौका दे दिया; वह खुद नहीं जुटा पा रहा था, तुमने जुटा दिया। बांध कर रख दिया उसको--घर के भीतर--पंद्रह दिन भूखा, तो इसमें पाप कहां है? यह बेचारा खुद कमजोर था; वह साहस नहीं जुटा पाता था; व्रत-नियम नहीं मान पाता था; तुमने उसका सहयोग दे दिया। तुमने इसे परमात्मा के पास ला दिया। परमात्मा खूब रीझ जायेगा इस पर! लेकिन हम जानते हैं कि दूसरे को भूखा रखने में तो पाप है। फिर स्वयं को भूखा रखने में कैसे पुण्य हो जायेगा? जो तुमने दूसरों की देह के साथ किया, वही तो तुम अपनी देह के भी साथ कर रहे हो। और देह तो सभी पराई हैं। दूसरे की देह भी उतनी ही पराई है, जितनी मेरी देह पराई है। तुम्हारी देह जरा देर; मेरी देह जरा पास; लेकिन फर्क क्या है? न तो मैं अपनी देह हूं; न तुम्हारी देह हूं। देह को सताना पुण्य नहीं हो सकता। इसलिए भक्त भोग

लगाता है। उपवास पर उसका जोर नहीं है। भक्त भगवान को भोग लगाता है--स्वादिष्ट भोजन का। और भक्त अपने को भी भोग लगाता है--स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन का। भक्त का जीवन रस का जीवन है; माधुर्य का जीवन है। भक्त का जीवन स्वस्थ मनस का जीवन है।

ना वह रीझै जपत्तप किन्हें, ना आतम को जारे।

ना वह रीझै धोती टांगे, न काया के पखार।।

और कुछ लोग हैं कि अपनी धोती सम्हाल-सम्हाल कर चल रहे हैं। किसी को छू न जाए। ना वह रीझै धोती टांगे...।--कि कही शूद्र को न छू जाए। कि कहीं इसको न छू जाए; कहीं उसको न छू जाए। वही है अगर--तो तुम किसे शूद्र कह रहे हो!

कहते हैं कि शंकराचार्य स्नान करके निकले गंगा से। सुबह का समय होगा; पांच बजे--ब्रह्म-मुहूर्त। गुनगुनाते वेद-मंत्र सीढ़ियां चढ़ रहे हैं और एक आदमी आ कर छू गयाः कौन है? उस आदमी ने कहा, क्षमा करें; शूद्र हूं। शंकर तो नाराज हो गये। भूल गये--अद्वैत। गई बातें वे--कि सारा जगत एक है; कि एक ही ब्रह्म सब कुछ है, बाकी सब माया है। भेद--माया हैः यह भूल गये।

शास्त्र पर व्याख्या करनी एक बात है, जीवन में उस व्याख्या को जीना बड़ी दूसरी बात है।

नाराज हो गये उस शूद्र पर। उस शूद्र ने कहाः क्षमा करें। लेकिन एक बात मैं पूछ लूं। क्योंकि मैं जानता हूं--आप कौन हैं। आप मनीषी--शंकराचार्य हैं। आप महा दार्शनिक शंकराचार्य हैं। महा व्याख्याकार शंकराचार्य हैं। आप से एक बात पूछ लूं। मेरे छूने में गलती क्या हो गई? मेरी देह अशुद्ध है? तो क्या आप सोचते हैं कि आपकी देह शुद्ध है? अगर मेरी देह मल-मूत्र से भरी है, तो आपकी कोई स्वर्ण, चांदी, हीरे-जवाहरातों से भरी है?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी की नींद की जरूरत भी अलग-अलग है। और यह भी खोजा गया है कि हर आदमी के नींद के गहराई के घंटे भी अलग-अलग होते हैं। कुछ लोग दो और तीन के बीच गहरी से गहरी नींद सोते हैं। कुछ लोग चार और तीन के बीच। कुछ लोग पांच और चार के बीच गहरी से गहरी नींद सोते हैं। दो घंटे कम से कम रात में बड़ी गहरी नींद के होते हैं। वे सबके अलग-अलग होते हैं।

अब जिस आदमी का समझो तीन और पांच के बीच गहरे घंटे हों--सोने के, उसको अगर तुम तीन और पांच के बीच उठा दागे, वह दिन भर परेशान रहेगा। उसको पांच के बाद ही उठने में सुगमता है। लेकिन जिस आदमी के गहरे घंटे एक और तीन के बीच पूरी हो गये, वह तीन बजे उठ सकता है। जब वह उठ आता है और कहता है कि उसके उठने से कोई तकलीफ नहीं होती, बल्कि दिन भर ताजगी रहती हो, तो वह कहता है--तुम भी उठो।

व्यक्ति-व्यक्ति के भेद हैं। लेकिन महात्मा भेद नहीं मानते।

विनोबा के आश्रम में तीन बजे रात सभी को उठ आना चाहिए। यह ज्यादती है; यह निहायत ज्यादती है। चिकित्सकों से पूछ सकते हैं कि यह ज्यादती है।

पुरुष और स्त्रियों के नींद में अलग-अलग भेद हैं। पुरुषों की नींद आमतौर से तीन और पांच या ज्यादा से ज्यादा चार और छह के बीच पूरी हो जाती है। जो दो घंटे गहरी नींद के हैं,

उस समय मनुष्य शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है, दो, डिग्री नीचे गिर जाता है। चौबीस घंटे में दो डिग्री नीचे गिर जाता है तापमान, वे उनमें अगर न सो पाये, तो दिन भर गैरत्ताजगी रहेगी; नींद आयेगी; जम्हाई आयेगी; परेशानी होगी।

स्त्रियां आमतौर से पांच और सात के बीच या चार और छह के बीच उस गहरी नींद को लेती हैं। पुरुष घंटे भर पहले उठ सकते हैं। इसलिए पश्चिम में रिवाज ठीक है कि पुरुष सुबह की चाय तैयार करे; स्त्रियां न करें। यह बिलकुल ठीक है। स्त्रियां का घंटे भर बाद उठने का सहज क्रम है।

और जो नींद के संबंध में सही है, वही भोजन के संबंध में सही है। जो एक के लिए भोजन है, दूसरे के लिए जहर हो सकता है, जो एक के लिए पर्याप्त मात्रा है, दूसरे के लिए बिलकुल अपर्याप्त हो सकती है। लेकिन लोग ज्यादती पर उतर जाते हैं। और जो आदमी अपने साथ कठोर है, वह मान लेता है कि मैं ही नियम हूं, इसलिए सब को मेरे जैसा होना चाहिए। यह भ्रांति है; यह हिंसा है।

और तुम्हारे तथाकथित महात्मा काफी हिंसा से भरे हुए लोग हैं।

दया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।

समझना यह सूत्र। को ही लेकर मैंने सारे संसार की धारणा खड़ी की है। धरम मन राखै--मन रहे धर्म में। धरम रहे मन में, घर में रहे उदासी।--घर से भाग न जाए; भगोड़ा न बन जाए। क्योंकि असली बात मन की है; असली बात स्थान की नहीं है; स्थिति की नहीं है--मनःस्थिति की है।

तुम जंगल में चले जाओ--क्या होगा! अगर तुम्हारा मन धर्म में नहीं है, तो जंगल में भी बैठ कर तुम हिसाब-किताब की बातें सोचोगे; दुकान की बातें सोचोगे; बैंक की बातें सोचोगे। सोचोगे कि चले ही जाते। अब लोकसभा के चुनाव हो रहे हैं; लड़ ही लेते। कहां आ गये! कहां फंस गये? किस झंझट में आ गये? ये पहाड़ पर बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? तुम यही सोचोगे न, तो सोच सकते हो। तुम्हारा मन तो तुम्हारा है; जंगल में जाने से कहां मन छूट जायेगा! मन को कहां छोड़ कर भाग पाओगे।

घर से भाग सकते हो; घर बाहर है। मन तो भीतर है। तुम कहां जाओगे, मन साथ चला जायेगा। तुम तो अपने साथ ही रहोगे ना। तुम अपने को छोड़ कर कहां जाओगे? और तुम ही असली प्रश्न। न तो पत्नी है प्रश्न; न पति, न बेटे, बच्चे; न दुकान, बाजार।

धरम मन राखै, घर में रहै उदासी। और यह उदासी शब्द भी समझ लेना। शह शब्द बड़ा विकृत हो गया। इसका मौलिक अर्थ खो गया। गलत आदमियों के हाथ पड़ गया। अच्छे से अच्छे शब्द भी गलत आदमियों के साथ पड़ जाए, खराब हो जाते हैं।

इस शब्द की बड़ी दुर्गति हो गई। तुमने सुना न--कि संग-साथ सोच कर ही करना चाहिए। इस शब्द ने गलत लोगों का संग-साथ कर लिया।----शब्द ने!वह तक नरक में पड़ गया। उदासी का मतलब हो गया--जो उदास है। मौलिक अर्थ उसका बड़ा अदभुत है। इसके मौलिक अर्थ हैः उद् आसीन। उद् आसीन का अर्थ होता है; परमात्मा के पास बैठा हुआ। वही अर्थ

उपवास का भी होता है। उप वास--उसके पास बैठा हुआ। वही अर्थ उपनिषद् का भी होता है--उसके पास बैठा हुआ--उपनिषद्।

परमात्मा के जो पास बैठा हुआ है--वह उदासी--उद् आसीन।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जो परमात्मा के पास बैठा है, वह उदास तो हो ही नहीं सकता। वह तो छलकेगा--वह तो रास भरा हुआ छलकेगा। वह तो नाचेगा।

परमात्मा के पास बैठ कर अगर उदास हो गये, तो फिर छलकोगे कहां! फिर नाचोगे कहां? फिर उत्सव कहां मनाओगे? अगर परमात्मा के पास भी उदास हो गये, तो यह तो परमात्मा का साथ न हुआ--नरक का साथ हो गया। नरक में उदासी हो जाओ तो ठीक।

परमात्मा के पास बैठा हुआ आदमी तो अलमस्त हो जायेगा। उसे तो मिल गई--परम मधुशाला। उसे तो मिल गई ऐसी शराब, जो पीयो तो चुकती नहीं। और पीयो--और एक दफा बेहोशी आ जाए, तो फिर कभी होश नहीं आता लौट कर। गये--सो गये। डूबे--सो डूबे। ऐसा आदमी न केवल खुद अपूर्व उत्फुल्लता से भरा जायेगा, उसके पास भी जो जायेगा, इस पर भी उसकी किरणें पड़ेंगी; उसके छीटे उस पर भी पड़ेंगे। वह भी नाचता हुआ लौटेगा। उसके भीतर भी गीतों का जन्म हो जायेगा। उसके पैरों में भी घूंघर बजने लगेंगे। उसकी वीणा पर भी तार छिड़ने लगेंगे।

तो उदासी शब्द तो बड़ी अजीब हालत में पड़ गया। इसका मतलब होता है--परमात्मा के पास; परमात्मा के पास--इसका मतलब होता है: समाधिस्थ। समाधिस्थ का अर्थ होता है: परम आनंद को उपलब्ध--सच्चिदानंद को उपलब्ध। और उदासी शब्द को जो आम-अर्थ हो गया है, वह यह--कि जो बैठे हैं सिर मारे; आंखों में कीचड़; मुरदे की तरह; मक्खियां उड़ रही हैं! उदासी!

ये तो परमात्मा से सबसे ज्यादा दूर पड़ गये। यह तो उलटी ही बात हो गई!

दया करै, धरम मन राखै, घर मग रहै उदासी। घर में ही रह कर परमात्मा के पास होने की कला है। उसका स्मरण करते रहो--जहां हो--उसके नाम का गीत गाओ; उसकी याद की गहराओ।

धरन मन राखै। शुरू करना होता है--धर्म में मन लगाओ: ऐसी शुरुआत धर्म में मन--इससे शुरुआत होती है। और एक दिन ऐसा आता है कि मन में धर्म समा जाता है; तब अंत आ गया। प्रारंभ और अंत इन दो बातों में समा जाते हैं।

धर्म में मन--पहली सीढ़ी। मन में धर्म--अंतिम सीढ़ी आ गई।

शुरुआत करो--याद करने से, बार-बार याद करने से, पुनः पुनः याद करने से। फिर धीरे-धीरे तुम पाओगे: अब उपाय ही न रहा--भुलाने का। अब याद करने की भी जरूरत न रही--याद बनी ही रहती है--सतत; जैसे श्वास चलती रहती है, ऐसी याद बनी रहती है।

दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।

छोटा-सा सूत्र है। तीन बातें कह दीं: प्रेम बरसाता रहे; ध्यान प्रभु में लगाता रहे और घर में रह कर परमात्मा को खोजता रहे।

अपना सा दुःख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी। और अपना सा दुःख सबका जानै--जो अपना दुःख है, वही सबका दुःख है।--ऐसा जान कर जिए। तो न तो खुद को दुःख दे; कर्ता का भाव उतार कर रख दो।

सहै कुसब्द वादहूं त्यागै...। और संसार की निंदा तो मिलेगी--ऐसे आदमी को। उसे बड़े कुशब्द सहने पड़ेंगे। क्योंकि संसार गलत की धारणा पर जी रहा है। भीड़ भ्रांति में जी रहा है। इसलिए जो भी आदमी सचाई में जीना शुरू करेगा, भीड़ नाराज होगी। कुशब्द सहने पड़ेंगे; अपमान सहना पड़ेगा।

अकारण तो नहीं है कि जीसस को सूली लगती; कि सुकरात को जहर पिला दिया जाता; कि मंसूर के लोग हाथ-पैर काट डालते!

लोग इतने झूठ में जी रहे हैं कि जब भी सत्य मिलेगा, उसके साथ वे दुरव्यवहार करेंगे। यह स्वाभाविक है।

तो कहते मलूकः सहै कुसब्द...। सुन लो; सह जाओ; पी जाओ; फिर भी दया रखो; फिर भी परमात्मा के पास अपना आसान जगाये रहो। डांवाडोल मत होओ। और जो लोग अपमान करें, जो लोग गालियां दें, इनके साथ व्यर्थ विवाद में पड़ने की भी कोई जरूरत नहीं है। तुम इन्हीं विवाद से समझा न पाओगे। ये समझना ही नहीं चाहते हैं, तो तुम समझा कैसे पाओगे! इसलिए इनकी फिक्र ही छोड़ दो। यह जानें, इनका काम जाने। अगर इन्होंने ऐसे ही जीना चाहा है, तो ऐसे जिए। इनकी मरजी। लेकिन तुम अपनी दया को इन पर से मत हटाना। दया को तो जारी रखना। तुम्हारा दया भाव तो बना रहे। तुम्हारा प्रेम तो बरसता रहे। इनके अपमान मिलते रहें, तुम्हारा प्रेम बरसता रहे। यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दीवाना। यह दीवाना मलूक कहता है कि यही रीझ मेरे निरंकार की--यह मेरे परमात्मा को रिझाने की कला है।

अब समझना। मलूक अपने को कहते हैंः दीवाना--पागल! परमात्मा में जो पागल न हो जाए, उसे परमात्मा का कुछ पता ही नहीं। परमात्मा के साथ संबंध जुड़ जाए--और तुम होश सम्हाल लो अपना! तो बात ही फिर हुई नहीं४

होश सम्हाल सकते हो, तभी तक, जब तक परमात्मा से साथ नहीं जुड़ा। परमात्मा से साथ जुड़ने में तो ऐसा हो जाता है, जैसे बूंद में सागर उतर आये। बूंद सागर न हो जायेगी तो और क्या होगा! जैसे अंधे को अचानक आंख मिल जाए; मुरदा अचानक जाग उठे और जी जाए। यह भी कुछ नहीं हैं--तुलनायें।

जब परमात्मा का मिलन होता, तो जन्मों की प्यास तृप्त होती।

सांझ हुई
बंसी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई
खपरेलों पर धुआं उठा
लहरों पर बिछले गीत

पनघट पर मेला जुड़ आया
लहरी चुनरी पीत
शिशुओं चुनरी पीत
शिशुओं ने सज लिए घरौंदे
फूल उठी अंगनाई
सांझ हुई
बंसी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।
तुलसी-चौरे घी के दीपक
सधवाओं ने बाले
नई वधू ने गूंथी वेणी
किस तपसी की माया
कण-कण क्षण हर चीज अभी सब
गलती है मदिराई
सांझ हुई
बंसी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।

एक मदिरा है; लेकिन हम तो जीवन का आनंद भूल गये हैं। हमारे जीवन में तो कभी बंसी बजती नहीं। सांझ हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। सुबह हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। बंसी बजनी ही बंद हो गई है। तो हम। बंसी की भाषा ही भूल गये हैं।

एक मदिरा है; लेकिन हम तो जीवन का आनंद भूल गये हैं। हमारे जीवन में तो कभी बंसी बजती नहीं। सांझ हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। सुबह हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। बंसी बजनी ही बंद हो गई है। तो हम बंसी की भाषा ही भूल गये हैं

हमारा मदिरा से संबंध ही छूट गया है। आनंद से हमारा कोई नाता नहीं सुख कभी छलकता नहीं। हमारी आंखों में कभी सुख की चमक--सुख की बिजली नहीं कौंधती। और हमारे प्राणों में कभी ऐसा नहीं होता--कि हम धन्यभागी है कि जीवन मिला। शिकायत--और शिकायत।

तो इसका अर्थ इतना ही है कि हम परमात्मा के पास बैठना अभी तक नहीं सीखे। अभी तक हमने उदासीन होने की कला नहीं सीखी।

परमात्मा से जितने दूर--उतना दुःख। उसी अनुपात में दुःख। परमात्मा के जितने पास--उतना सुख; उसी अनुपात में सुख।

कण-कण क्षण हर चीज अभी सब
लगती है मदिराई
सांझ हुई
बंसी की धुन पर

झूम उठी पुरवाई।

और परमात्मा के पास बैठ गये कि सांझ हो गई। अब कोई यात्रा न रही। घर आ गये। रात करीब आयी--विश्राम के लिए। अब हम परमात्मा में चादर ओढ़ कर सो जा सकते हैं।

"सहै कुशब्द वादहूं त्यागै, छांड़ै गव गुनामा।' गर्व और गुमान हमें बड़ी तरह बुरी तरह घेरे हुए हैं। धन का गर्व, पद का गर्व, त्याग का गर्व।

मैंने सुना है: एक यहूदी रबाई एक यहूदी सम्राट के साथ प्रार्थना कर रहा है। कोई पवित्र दिन है यहूदियों का और सम्राट पहला आदमी है, जो सिनागाग में, मंदिर में आया है प्रार्थना करने। यह उसका हक है। सम्राट प्रार्थना करता है, और कहता है। हे भगवान, मैं ना कुछ हूं। उसके बाद धर्मगुरु प्रार्थना करता है और कहता है: हे भगवान, मैं ना कुछ हूं। और तभी उन दोनों ने चौंक कर देखा कि वह जो झाड़ू-बुहारी लगाने वाला है मंदिर का, वह भी उनके पास बैठ कर अंधेरे में कहता है कि भगवान, मैं ना-कुछ हूं।

यह बात धर्मगुरु को जंची नहीं! उसने सम्राट से कहा: जरा देखो तो, कौन कह रहा है कि मैं ना कुछ हूं! ना कुछ कहने में भी सम्राट कहे, तो जंचती है बात। धर्मगुरु ने बड़े व्यंग से कहा: जरा देखो तो, कौन कह रहा है कि मैं ना-कुछ हूं! यह पागल, झाड़ू-बुहारी लगाने वाला परमात्मा से कह रहा है--मैं ना-कुछ हूं।

तुम खयाल रखना: आदमी जब अपने को कहे--ना कुछ हूं, तब भी अहंकार ही भीतर काम करता है। सम्राट कहे तो जंचता--कि मैं ना कुछ हूं। इस ना कुछ हूं। इस ना कुछ में भी भीतर वही अहंकार खड़ा है, वही अकड़ खड़ी है--देखो, मैं इतना बड़ा सम्राट और मैं अपने को ना कुछ कह रहा हूं! मैं इतना बड़ा धर्मगुरु और अपने को ना कुछ कह रहा हूं! अब यह झाड़ू-बुहारी लगाने वाला आदमी--यह भी अपने को ना कुछ कह रहा है। यह मजा देखो। यह तो ना कुछ है ही। इसके कहने को क्या है?

इसीलिए तुम त्याग भी नापते हो, तो धन से नापते हो। अगर गरीब आदमी त्याग करे, तो तुम कहते हो: क्या त्यागा! था ही क्या? अमीर त्यागे, तो तुम कहते हो: हां, त्याग हुआ। तो त्याग को भी मापने की कसौटी धन ही है।

तब रोक न पाया मैं आंसू।

जिसके पीछे पागल हो कर

मैं दौड़ा अपने जीवन-भर

जब मृगजल में परिवर्तित हो

मुझ पर मेरा अरमान हंसा

तब रोक न पाया मैं आंसू।

एक दिन ऐसा होगा, जब तुम्हारे जीवन जीवन, जन्मों जन्मों के गर्व और गुमान तुम पर हंसेंगे।

तब रोक न पाया मैं आंसू

जिसने अपने प्राणों को भर

कर देना चाहा अजर-अमर
विस्मृति के पीछे छिप कर मुझ पर
वह मेरा गान हंसा
तब रोक न पाया मैं आंसू।
मेरे पूजन-आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
जब मेरी कमजोरी कह कर
मेरा पूजित पाषाण हंसा
तब रोक पाया मैं आंसू।

आदमी जीवन भर जिस अहंकार को पालता है, पोषता है, उस अहंकार को एक बार गौर से तो देखो। वह अहंकार संगी-साथी नहीं है। वह अहंकार तुम पर हंसेगा; वह तुम्हारी कब्र पर हंसेगा। वह तुम्हारे जीवन भर की व्यर्थता पर हंसेगा। और जिसके लिए तुमने सब समर्पित कर दिया था, अंत में उसी का अट्टहास तुम्हारे प्राणों में तीर की तरह चुभेगा।

इसलिए राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। हम तो कहते हैं: मैं--मैं--मैं। मलूक कहते हैं: राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। पागलो, अगर कहना ही है, तो ये मैं--मैं कहना बंद करो। इस मैं की जगह राम को बसाओ, राम को पुकारो।

अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे। और बहुत चूक हो गई। अब तक चूकता आया। अब तो न चूक। यह मौका मिला फिर जीवन का। इस जीवन को दांव पर लगा के परमात्मा को पा ले। इस जीवन को खोकर भी परमात्मा मिले, तो पा ले। यह सब दांव पर लगाने जैसा है।

अवसर चूक भोंदू...। हे मूढ, अब मत चूक। पायो भला दांव रे। मुश्किल से यह मौका मिलता--आदमी होने का, मनुष्य होने का। यह छोटा सा अवसर है, जन्मों-जन्मों के लिए फिर खो सकता है। पशु-पक्षी परमात्मा की याद नहीं कर सकते हैं। पौधे-पत्थर परमात्मा की याद नहीं कर सकते हैं। सिर्फ मनुष्य उस चौराहे पर खड़ा होता है, जहां से अगर वह चाहे, तो परमात्मा की तरह उठ जाए; और चाहे तो फिर प्रकृति में खो जाए। प्रकृति और परमात्मा का चौराहा है मनुष्य।

अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे।

राम को पुकारने की बात का क्या अर्थ है? जप का तो विरोध किया। लेकिन अब कहते हैं: राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। जप नहीं--प्यार और प्रेम की पुकार।

कहते हैं: तारे गाते हैं।

सन्नाटा वसुधा पर छाया
नभ में हमने कान लगाया
फिर भी अगणित कंठों का यह
राग नहीं हम सुन पाते हैं

कहते हैं: तारे गाते हैं

स्वर्ग सुना करता यह गाना

पृथ्वी ने तो बस यह जाना

अगणित ओस-कणों में

तारों के नीरव आंसू आते हैं

कहते हैं: तारे गाते हैं।

ऊपर देव, तले मानव गण

नभ में दोनों--गायन-रोदन

राग सदा ऊपर को उठता

आंसू नीचे झर जाते हैं

कहते हैं: तारे गाते हैं।

सारा अस्तित्व आ रहा है। सारा अस्तित्व गुनगुना रहा है। एक विराट गीत। काश! तुम प्रेम की आंखों से देख सको, तो फूल गा रहे हैं; चांदत्तारे गा रहे हैं; पक्षी गा रहे हैं। काश! तुम प्रेम भाव से देख सको, तो तुम पाओगे--यह विराट प्रार्थना चल रही है। इस प्रार्थना में तुम भी सम्मिलित हो जाओ। राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे का यही अर्थ है।

तुम इस प्रार्थना में अलग-थलग खड़े न रह जाओ। तुम एक द्वीप बन कर न रह जाओ। इस विराट प्रार्थना में सम्मिलित हो जाओ। और तुम्हें एक अपूर्व अवसर मिला है। क्योंकि पक्षी गा रहे हैं--बेहोशी में; चांदत्तारे गा रहे हैं--मूर्च्छा में। तुम होश में गा सकते हो। तुम धन्यभागी हो।

अगर पशु-पक्षी न पहुंच सके परमात्मा को, तो उनका कोई दोष नहीं। तुम न पहुंचे, तो दोषी हो जाओगे। तुम्हारा उत्तरदायित्व बड़ा हैं।

जिन तोका तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।

जनम सिझाने जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।

जैसे लोहे को अगर पीटना हो, कुछ बनाना हो लोहे से, तो जब गरम हो तभी पीटना चाहिए। जब ठंडा हो जाए, तो फिर व्यर्थ हो जाता है। तो जीवन की जब तक गरमी है, तब तक कुछ कर लो। इस गरमी को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दो।

लोग मरने की राह देखते हैं। लोग कहते हैं; मरते वक्त ले लेंगे--राम का ना। कि मरते वक्त पी लेंगे गंगाजल। कि मरते वक्त सुन लेंगे--वेद के मंत्र--गायत्री। जब लोहा ठंडा हो जाए, तब लाख पीटो, कुछ न बन पायेगा।

जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों। जहां से जन्म हुआ--उस स्रोत की भी तूने स्तुति न की! जिससे सब मिला, उसको तूने धन्यवाद भी न दिया!

जनम सिरानो जाते तेरो--और रोज-रोज राख आती जा रही है, अंगार ठंडा होता जा रहा है। लोहे कैसो ताव रे।--याद रख कि लोहा ठंडा हो जायेगा, तो फिर प्रार्थना व्यर्थ होगी। अभी

कुछ कर ले, जब लोहा गरम हो। जब जीवन उष्मा से भरा हो; कुछ करने की सामर्थ्य हो, तब सारी ऊर्जा को परमात्मा के चरणों में जो रख देता है, उसके जीवन में क्रांति घटती है।

राम जी को गाव-गाव रामजी को तू रिझाव।

राम जी के चरण कमल, चित्त मांहि लाव रे।।

और ध्यान रहे रिझाने पर--जैसे प्रेयसी रिझाती है। जैसे प्रेमी रिझाता है। रिझाना शब्द बड़ा प्यारा है। परमात्मा रूठा है, क्योंकि तुमने जो अब तक किया है, उसमें धन्यवाद भी नहीं दिया है! तुमने परमात्मा का अनुग्रह भी स्वीकार नहीं किया है। शिकायत तो बहुत बार की है, अनुग्रह का भाव प्रकट नहीं किया है।

मंदिर भी गये प्रार्थना करने, तो कुछ मांगने गये हो--धन्यवाद देन नहीं गये हो। जो--उसके लिए धन्यवाद नहीं दिया है; जो नहीं है--उसके लिए शिकायत जरूर की है। और शिकायत का प्रार्थना से क्या संबंध? प्रार्थना का अर्थ तो धन्यवाद होता है। इतना दिया है! इतना दिया है!

तुम जरा हिसाब तो लगाओः कितना तुम्हें मिला है! एक-एक श्वास अमूल्य है।

सिकंदर ने जब सारी दुनिया जीतने का सपना करीब-करीब पूरा कर लिया, तो वह एक फकीर को मिला--भारत से बाहर जाते वक्त। उस फकीर से उसने कहा कि मैंने दुनिया को जितने का सपना पूरा कर लिया। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहाः सिकंदर, तुझे अभी भी होश नहीं आया! अगर तू एक मरुस्थल में भटक जाए और तुझे प्यास लगी हो, तो एक गिलास पानी के लिए तू कितना राज्य का हिस्सा देगा? सिकंदर ने कहा, अगर ऐसी हालत हो कि मैं मर रहा होऊं, तो आधा राज्य दे दूंगा। लेकिन फकीर ने कहा कि समझ कि मैं आधे राज्य में बेचने को तैयार न होऊं। तो सिकंदर ने कहाः पूरा राज्य दे दूंगा। तो वह फकीर हंसने लगा; कहा, फिर सोख एक गिलास पानी के लिए आदमी पूरे साम्राज्य को दे सकता है--पूरी पृथ्वी के साम्राज्य को--जीने के लिए। और जीना मिला है, उसके लिए परमात्मा को तूने धन्यवाद दिया है? मुक्त मिला है। सारे जगत का राज्य देने को तू तैयार है, कि अगर थोड़ी देर और जीने को मौका मिल जाए। लेकिन जीवन तुझे मिला है, वर्षों से तू जी रहा है और तूने कभी धन्यवाद दिया?

एक श्वास लेने के लिए तुम क्या देने को राजी न हो जाओगे!

और ऐसी घड़ी आयी कि सिकंदर जब चला गया, तो वह सोच-विचार में मग्न था। बात तो ठीक थी। वह अपने घर नहीं पहुंच पाया; बीच में उसकी मौत हो गई। और बीच में जब उसकी मौत करीब आयी और चिकित्सकों ने कह दिया कि वह बच न सकेगा। तब वह अपने गांव से केवल चौबीस घंटे के फासले पर था। चौबीस घंटे बाद वह अपनी मां को मिल लेगा, अपनी पत्नी को मिल लेगा, अपने परिवार को मिल लेगा। उसकी आकांक्षा थी। उसने अपने चिकित्सकों से कहा कि भी खर्च हो, उसकी फिक्र न करो। लेकिन मुझे चौबीस घंटे जिला लो। मैं अपने घर तो पहुंच जाऊं। वहां जाकर मर जाऊं। उन्होंने कहा, हम असमर्थ हैं। चौबीस घंटे तो दूर, चौबीस मिनट भी हम न जिला सकेंगे।

सिकंदर ने कहा।ः मैं सब देने को तैयार हूं। तब उस फकीर की बात याद आयी--कि वह ठीक ही कह रहा था। वह कल्पना न थी--मरुस्थल की। वह घटी जा रही है बात। लेकिन क्या करेगा चिकित्सक!

सिकंदर ने कहा कि मैं अपना सारा राज्य देने को तैयार हूं; मुझे चौबीस घंटे बचा लो। मैं अपनी मां की गोद तक पहुंच जाऊं। वह देख तो ले अपने बेटे को--दुनिया जीत कर आ गया। फिर मैं मर जाऊं, कोई बात नहीं। लेकिन चिकित्सक ने कहा, क्षमा करें। हम क्या कर सकते हैं! मौत अब आ ही गई द्वार पर।

घर नहीं पहुंच पाया सिकंदर। चौबीस घंटे का फासला था। सारा राज्य देने को तैयार था। लेकिन तुम्हें यह जीवन मिला, इसके लिए कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया?

जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिरानो जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।
राम जी को गाव-गाव, राम जी को तू रिझाव।
राम जी के चरण कमल चित्त मांहि लाव रे।।

रिझाओ प्रभु को। रिझाने का अर्थ हैः पुकारो हृदय से--रोओ। आंसू बन जाए तुम्हारी प्रार्थनाएं।

यह पपीहे की रटन है।
बादलों की घिर घटाएं
भूमि की लेती बलाएं
खोल दिल देतीं दुआएं
देख किस उर में जलन है?
यह पपीहे की रटन है।
जो बहादे नीर आया
आग का फिर तीर आया
वज्र भी बेपीर आया
कब रुका इसका वन है
यह पपीहे की रटन हैः
यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी
यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है।

जब तुम्हारा प्राण पपीहे की रटन जैसी--पी कहां?--पी कहां?--की पुकार से भर जाए...।

नानक के जीवन में उल्लेख है: वे जवान थे। उस रात क्रांति घटी। वे बैठे हैं। प्रभु का स्मरण कर रहे हैं। आधी रात हो गई। आधी रात भी बीतने लगी। मां उनकी आई और कहा कि उठो अब; सो जाओ। और तब नानक ने कहा: चुप; सुन जरा।

बाहर एक पपीहा पुकार रहा है: पी कहां है? पी कहां? और नानक ने कहा: अगर यह न रुकेगा, तो मैं भी रुकने वाला नहीं। जब इसे आधी रात का पता नहीं चल रहा है, तो मुझे क्या पता चले! जब यह पुकारे जा रहा है, तो मैं भी पुकारे जाऊंगा। आज तो तय किया है कि पपीहा रुकेगा, तो मैं रुकूंगा अन्यथा, मैं रुकने वाला नहीं। इसका प्यारा खो गया है। मेरा प्यारा भी खो गया है। और इसका प्यारा तो शायद इसे मिल भी जायेगा। मेरा प्यारा तो न मालूम मिले--कि न मिले! मुझे तो देर तक पुकारना है। दि हो कि रात, मुझे तो पुकारते ही रहना है।

उस रात वे रात भर पुकारते रहे। उसी रात क्रांति घटी। उसी रात उन्हें पहली झलक मिली परमात्मा की। उसी रात नानक आदमी न रहे; आदमी से ऊपर उठ गये। एक तरंग आई--उन्हें डुबा गई।

यह पपीहे की रटन है

यह न पानी से बुझेगी

यह न पत्थर से दबेगी

यह न शोलों से डरेगी।

यह वियोगी की लगन है

यह पपीहे की रटन है।

ऐसा हो जाए, तो रिझाव पैदा होता है।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।

आनंद मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे।

राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस। अब संसार से और आशा मत रख, कि यहां कुछ मिलेगा। इसी आशा के कारण परमात्मा को हम नहीं पुकारते।

पिया को कैसे पुकारें? अभी रुपैय्या की पुकार तो बंद हो, तो फिर पिया की पुकार शुरू हो। यह रुपैप्या तो अभी सारे प्राणों को पकड़े है। अभी हम कैसे उस परम प्यारे को पुकारें? अभी तो छोटी-छोटी चीजें हमारे पुकार का आधार बनी हैं।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस। इस संसार से न कभी कुछ किसी को मिला हैं, न मिलेगा। यहां सब आशाएं निराशाओ में परिणित हो जाती हैं। और यहां सब कल्पनाएं धूल-धूसरित हो जाती हैं। यह संसार टूटे हुए इंद्रधनुषों का ढेर है। यहां सपने टूटते हैं--पूरे नहीं होते। यहां टूटने को ही सपने बनते हैं; पूरे यहां होने को बनते ही नहीं। संसार मृगमरीचिका है।

कोई नहीं, कोई नहीं

यह भूमि है हाला भरी
मधुपात्र मधुबाला भरी
ऐसा बुझा जो पा सके
मेरे हृदय को प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं।
दिखती हैं बहुत मधुशालाएं
दिखती हैं बहुत मधुबालाएं
दिखते हैं बहुत मधुपात्र
दिखते हैं बहुत मधुकलश
कोई नहीं, कोई नहीं।
यह भूमि है हाला भरी।
मधुपात्र मधुबाला भरी
ऐसा बुझा जो पा सके
मेरे हृदय की प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

लेकिन हृदय की प्यास इस जगत की किसी मधुशाला में बुझती नहीं। कोई मधुपात्र इस प्यास को बुझाता नहीं। कोई मधुबाला इस प्यास को बुझाती नहीं।

सुनता समझता है गगन
वन के विहंगों के वचन
ऐसा समझ जो पा सके
मेरे हृदय उच्छवास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

पुकारते रहो, चिल्लाते रहो। संसार की सब पुकारें सूने आकाश में खो जाती हैं।

ऐसा समझ जो पा सके
मेरे हृदय उच्छवास को
कोई नहीं, कोई नहीं।
मधुरित समीरण चल पड़ा
वन ले नए पल्लव खड़ा
ऐसा फिर जो ला सके
मेरे गए विश्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

अगर तुम जरा ही गौर से देखोगे इस संसार में, तो तुम्हारी आशाएं सब निराशाएं हो जायेंगी।

इस संसार में आस्था उठ जाए, तो परमात्मा में आस्था बैठनी शुरू हो जाती है। इस संसार की तरफ पीठ हो जाए, तो परमात्मा की तरफ मुख हो जाता है। संसार के जो विमुख हुआ, वह परमात्मा के सन्मुख हुआ। या संसार की जिसे समझ आ गई, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ गई, उसे फिर दौड़ नहीं रह जाती यह तृष्णा का लंबा जाल नहीं रह जाता।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।

आनंद गगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे।।

और फिर आनंद मगन हो कर...। उदास हो कर नहीं। संसार से जो उदास हो गया, वह परमात्मा में तो आनंद मगन हो जायेगा। इसलिए उदास हो जाने से कोई उदासी नहीं हो जाता। तथाकथित--कि बैठे हैं; लंबे चेहरे; थके-मांदे; हारे।

नहीं; जैसे ही संसार से कोई निराश हुआ, उसके जीवन में परम आनंद का उत्सव प्रकट होता है। आनंद मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे, तैं हरि को रिझाव रे। राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। और तब परमात्मा से एक संबंध बनना शुरू होता है, जो प्रेमी और प्रेयसी का संबंध है।

छांह तो देते नहीं

मधुमास लेकर क्या करूंगी

बांह तो देते नहीं

विश्वास ले कर क्या करूंगी

टूट कर बिखरी हृदय की

कुसुम-सी कोमल तपस्या

स्वप्न झूठे हो गये हैं

आरती के दीप का

मधुनेह चुकता जा रहा है

फूल जूठे हो गये हैं

आ गई थी द्वार पर

तो साधना स्वीकार करते

अब कहा जाऊं बताओ

तृप्ति तो देते नहीं

यह प्यास ले कर क्या करूंगी

बांह तो देते नहीं

विश्वास लेकर क्या करूंगी।

भक्त तो प्रेयसी है। परमात्मा तो प्रेमी है। वह कहता है: बांह दो; बातों से न होगा। बांह तो देते नहीं, विश्वास ले कर क्या करूंगी?

विचारों और सिद्धांतों से न होगा। तृप्ति तो देते नहीं, छांह तो देते नहीं,

मधुमास ले कर क्या करूंगी?

कन थोरे कांकर घने

आज धरती से गगन तक
मिलन के क्षण सज रहे हैं
चांदनी इठला रही है
स्वप्न सी वंशी हृदय के
मर्म गहरे कर रही है
गंध उड़ती जा रही है
मंजरित अमराइयों में
मदिर कोयल कूकती है
पर अधर मेरे जड़ित हैं
गीत तो देते नहीं
अच्छ्वास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूंगी।

भक्त तो लड़ने लगता है। एक बार प्रेम की पुकार उठती है, तो भक्त को लड़ने लगता है। सिर्फ भक्त ही लड़ सकता है--भगवान से। क्योंकि भक्त को कोई डर नहीं है--भगवान का। प्रेम में कहां भय है!

गीत तो देते नहीं
उच्छ्वास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूंगी
डूबती है सांझ की
अंतिम किरण सी आस मेरी
और आकुल प्राण मेरे
किस क्षितिज की घाटियों में
खो गये प्रतिध्वनित होकर
मौन, मधुमय गान मेरे
चरण हारे, पंथ चलते
मन उदास, तन थक-सा
कौन दे तुम बिन सहारा
सांस तो देते नहीं
उल्लास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास ले कर क्या करूंगी?

भक्त फिर एक वार्ता में लीन होता है। परमात्मा के साथ भक्त की प्रार्थना जप नहीं है--एक वार्ता है; प्रेमी के साथ की वार्ता है; प्रेमी के साथ प्रेमी का रूठना--मनाना है।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसे उल्लेख आते हैं--कि कई बार वे प्रार्थना बंद कर देते। द्वार-दरवाजा बंद कर देते दक्षिणेश्वर का। दो-चार दिन नदारत ही हो जाते। खबर मिली मंदिर के ट्रस्टियों को, उन्होंने रामकृष्ण को बुला कर कहा कहा कि यह क्या मामला है! प्रार्थना तो रोज नियम से होनी चाहिए। यह कोई ढंग हुआ!

उन्होंने कहाः ढंग हो या न ढंग हो। फिर कोई और पुजारी खोज लो। क्योंकि जब मैं नाराज हो जाता हूं, तो फिर मैं प्रार्थना नहीं करूंगा। अभी नाराज हो गया--दो दिन से। इतना चीखा-चिल्लाया--और सुनते ही नहीं! तो चीखने चिल्लाने से क्या सार! मैं मानता हूं; कभी-कभी उनको भी मजबूर कर देता हूं--मुझे मनाने का। जब दो-चार दिन मैं दरवाजा बंद करके रख दो हूं, भोग भी नहीं लगाता, तब वे कहते हैंः रामकृष्ण, आ जा। चल आ जा। अब ठीक।

रामकृष्ण के जीवन में जो परम क्रांति घटी, वह घटी ऐसे ही।--कि एक दिन उन्होंने प्रार्थना शुरू की और वे प्रार्थना करते ही रहे। जो मंदिर में प्रार्थना सुनने आये थे, वे कब के थक गये और चले गये। मंदिर खाली हो गया। भर दुपहरी हो गई। कोई मंदिर में न बचा। सन्नाटा छा गया। मगर वे अपनी प्रार्थना ही किये जा रहे हैं। वे रोये ही चले जा रहे हैं। आखिरी में उन्होंने कहा कि बस, अब आखिरी दिन आ गया; अब तू दर्शन देता--कि नहीं? अब तू प्रकट होता--कि नहीं? या तो प्रकट हो जा, या फिर जो तलवार टंगी है--काली की, यह लेकर मैं अपनी गर्दन काटे देता हूं। बहुत हो गया। तू मानता नहीं है! और किसी चढ़ाव से मानोगे, तो गर्दन चढ़ा देता हूं।

झपट कर तलवार खींच ली और तलवार मारने को ही थे अपनी गर्दन में कि तलवार हाथ से छूट कर गिर गई। विराट प्रकाश फैल गया। रामकृष्ण बेहोश हो गये। छह दिन तक होश न आया। लेकिन उसके बाद जब होश में आये, तो जो आदमी बेहोश हुआ था, वह जा चुका था; दूसरा आदमी आ गया था। यह बात ही और थी। रामकृष्ण विदा हो गये। परमहंस का आविर्भाव हो गया था।

बात यहां तक पहुंच गई; लड़ाई पर यहां तक पहुंच गई कि अब नहीं मानते, तो तलवार से गर्दन काट देता हूं। उसी क्षण घटना घट गई। इसको ही दांव लगाना कहते हैं।

परमात्मा को रिझाना है, मनाना है। परमात्मा को प्रेम पातियां लिखनी हैं। परमात्मा से प्रेम का संबंध बनाना है।

मलूक का सारा गीतों का सार--सारे सूत्रों का सार इतना ही है। यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दीवाना।

रिझाना--इस शब्द को खूब याद रखना। अगर तुम थोड़ा सा भी रिझाने की कला सीख जाओ, तो परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा पास ही है, तुमने पुकारा नहीं। परमात्मा बहुत पास है, तुमने आंख ही उठा कर नहीं देखा। तुमने प्रेम का शब्द ही नहीं उठाया अभी तक।

ये दो मार्ग हैंः एक ज्ञान का मार्ग; एक भक्ति का मार्ग।
भक्ति का मार्ग बड़ा अनूठा मार्ग है।
तुममें जो दीवाने हों, उनके लिए निमंत्रण है।
आज इतना ही।

भक्ति की शराब स्वभाव की उदघोषणा समानुभूति धारणा और भक्ति त्वरा और सातत्य जीवन-उत्सव
चौथा प्रवचन
श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रात;, दिनांक १४ मई १९७७
प्रश्न-सार
भक्ति के लिए शराब की उपमा आप क्यों देते हैं?
मध्ययुगीन संत गरीब और पिछड़ें वर्ग से क्यों आये?
दूसरों के दुःख को अपना मानना कब संभव?
मिलन असंभव क्यों लगता है?
अनेक साधनाएं करके घटना क्यों नहीं घटी?
मृत्यु के रहते उदासी से कैसे मुक्त रहा जा सकता है?
पहला प्रश्नः कृपा करके शराब की तो बात न करें। क्या प्रभु-भक्ति के लिए आप और कोई उपमा नहीं ढूंढ सकते हैं?
शराब से सुंदर कोई उपमा नहीं है। शराब शब्द से चौंकें मत। भक्ति एक अनूठी शराब है; अंगूर की नहीं--आत्मा को। और भक्ति और शराब में कुछ गहरा तालमेल है।
शराब भुलाती है; भक्ति मिटाती है। शराब क्षण भर को करती है वही काम, जो भक्ति सदा के लिए कर देती है। शराब क्षण-भंगुर भक्ति है; और भक्ति है; और भक्ति शाश्वत शराब है।
शराब का इतना आकर्षण है--सदियों से, सदा से; क्योंकि आदमी जब अहंकार से बहुत पीड़ित और परेशान और चिंताओं से बहुत ग्रस्त और संतापों से बहुत बोझिल हो जाता है, तो एक ही उपाय मालूम पड़ता है कि किसी तरह अपने को भूला बैठो। थोड़ी देर को सही।
थोड़ी देर को भूल जाए यह अहंकार, भूल जाए ये चिंताएं, भूल जाए यह विषाद। शराब थोड़ी देर को अहंकार पर पर्दा डाल देती है; तुम्हें याद नहीं रहती है कि तुम कौन हो। थोड़ी देर को डुबकी लगा जाती है। झूठी है डुबकी। फिर लौट आओगे। शराब मिटा नहीं सकती, सिर्फ धोखा दे सकती है। फिर लौटोगे और चिंताएं कम भी न होंगी, शायद इस बीच बढ़ भी जायेंगी। क्योंकि जितनी देर तुम शराब में डुबे रहे, चिंताएं खाली नहीं बैठी रहीं। उनका काम जारी है; उनका उलझाव बढ़ रहा है। उतने समय में उनमें और नए पत्ते निकल आयेंगे,

और नयी शाखायें निकल आयेंगी; तुम और भी चिंतित हो जाओगे। शायद और चिंता में और ज्यादा शराब पी लोगे। एक दुष्टचक्र पैदा होगा।

लेकिन भक्ति की शराब भी, है तो शराब ही। उसमें अहंकार भूलता नहीं, अहंकार विनष्ट ही हो जाता है।

शराब मग विस्मरण है; भक्ति में विसर्जन। फिर तुम लौटकर कभी भी वही न हो पाओगे, जो तुम थे। अहंकार गया--सो गया और अहंकार के साथ गई सारी गांठें--चिंता की, दुःख की, पीड़ा की।

अहंकार ही मूल गांठ है। मैं हूं--यही सारे उपद्रवों की जड़ है। मैं नहीं हूं--ऐसी प्रतीति, परमात्मा है--इस प्रतीति का द्वार बन जाती है। इसलिए मैं तो भक्तों को शराबी कहता हूं। और इससे बेहतर उपमा संभव नहीं है। और मैं ही कह रहा हूं, ऐसा भी हनीं है। बड़े पुराने दिनों से यह बात अनुभव की गई है कि इस पृथ्वी पर शराब ही ऐसा तत्व है, जो थोड़ी सी खबर देता है--उस परलोक की।

कुरान कहता है कि बहिश्त में, स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं। वह भी प्रतीक है। उसका अर्थ है: अपूर्व आनंद के झरने बह रहे हैं, जिनमें डुबकी लगा ली, तो सदा के लिए खो गये। एक बार गोता लग गया, तो खो गये। विस्मरण के झरने बह रहे हैं। शराब के झरने का इतना ही अर्थ होता है।

स्वर्ग अगर आत्म-विस्मरण न हो, तो और क्या होगा?

फिर बाबा मलूकदास के साथ तो और भी इस प्रतिमा का तालमेल है। मलूक कहते हैं कि भक्त ऐसे चलता, संन्यस्त ऐसे चलता, जैसे मस्त हाथी, पागल हाथी। किसी अपूर्व रस से भरा झलकता चलता, छलकता चलता।

कोई किस तरह राज-ए-उल्फत छुपाये।

निगाहें मिली और कदम डगमगाये।

परमात्मा से आंख मिल जाए, तो फिर छिपाओगे कहां? लाख छिपाओ, पता चल-चल जायेगा। उठते-बैठते, बोलते न बोलते, सोते-जागते पता चल जायेगा। कोई कभी छिपा पाया परमात्मा को जानकर? कोई उपाय नहीं है--छिपाने का।

यह तो ऐसे है, जैसे अंधेरा रात में किसी ने दीया जलाया हो, और दीए को छिपाने की कोशिश करे। कैसे छिपायेगा? फूल खिला हो, और फूल सुगंध को छिपाने की कोशिश करे, कैसे छिपेगी?

कोई किस तरह राज-ए-उल्फत छिपाते। यह प्रेम का रहस्य छिपाये छिपता नहीं। निगाहें मिली और कदम डगमगाये। और जब पहली खबर मिलती है कि परमात्मा से कुछ संबंध जुड़ा, वह कदम के डगमगाने से मिलती है। एक मस्ती बहने लगती है। इसलिए मैंने शराब की बात कही।

और तुमसे मैं यह भी कह दूं कि इस संसार में मिलने वाली शराब तुम तब तक छोड़ न सकोगे, जब तक तुम परमात्मा की शराब का स्वाद न ले लो। जिस दिन परमात्मा की

शराब का स्वाद आ गया, सब शराबें फीकी और तिक्त कड़वी हो जाती हैं। फिर कोई शराब जंचती नहीं। जिसने उस परम को पी लिया, फिर और कोई चीज कंठ में उतरती नहीं; फिर रास ही आतीं। फिर सब चीजें छोटी पड़ जाती हैं।

परमात्मा से आंख मिल गई, तो फिर इस जगत में किसी को आंख से आंख मिलाने का भाव चला जाता है। परमात्मा से आंख मिल गई, तो इस जगत में फिर किसी से भी कोई आसक्ति और प्रेम नहीं रह जाता। बड़ा प्रेम आ जाए, तो छोटा अपने से चला जाता है। सूरज निकल आये, तो जो दीया अंधेरे में छिपाये न छिपता था, सूरज के निकलने पर अपने आप छिप जाता है। उसका पता ही नहीं चलता। देखते नहीं, रोज रात आकाश तारों से भर जाता है सुबह तारे कहां चले जाते हैं? क्या तुम सोचते हो: कहीं चले जाते हैं? अपनी जगह हैं। लेकिन सूरज निकल आया है; विराट प्रकाश फैल गया है। उस विराट प्रकाश में छोटे-छोटे टिमटिमाते तारों का प्रकाश खो जाता है। वे अपनी जगह है। जब सूरज विदा हो जायेगा, तब वे फिर टिमटिमाने लगेंगे। अभी भी टिमटिमा रहे हैं, लेकिन बड़े प्रकाश के सामने छोटा प्रकाश छिपा जाता है।

भक्त तो मस्ती में है। भक्त तो बेहोशी में है। और इस बेहोशी का मजा कुछ ऐसा कि बेहोशी बढ़ती है और होश भी बढ़ता है। यही तो चमत्कार है, यही तो रहस्य है! एक तरफ भक्त की बेहोशी बढ़ती है, और एक तरफ भक्त का होश बढ़ता है! एक तरफ अहंकार की तरफ; और आत्मा की तरफ होश आता। एक तरफ भक्त गंवाने लगता, दूसरी तरफ कमाने लगता। अहंकार के सिक्के खोने लगते हाथ से और आत्मा के सिक्के हाथ में पड़ने लगते।

चाल है मस्त, नजर मस्त, अदा में मस्ती।

जैसे आते हैं वो, लौटे हुए मैखाने से।।

मंदिर से भक्त को आते देखो! पूजागृह से भक्त को आते देखो। या पूजागृह की तरफ जाते भक्त को देखो। उसकी धुन सुनो। उसके हृदय के पास थोड़ा कान लगाओ। उसके पास तुम तरंगें पाओगे--शराब की।

भक्त के साथ रहो, तो धीरे-धीरे तुम भी डूबने लगोगे। भक्त का संग-साथ तुम्हें भी बिगाड़ देगा। मीरा ने कहा है: सब लोक-लाज खोई--साध संगत। साधुओं के संग में सब लोक-लाज खो गई।

मीरा राज-घराने से थी; फिर राजस्थानी राज-घराने की! जहां घूंघट उठता ही नहीं। फिर सड़कों पर नाचने लगी। शराब न कहोगे, तो क्या कहोगे? पागल हो उठी। दीवानी हो गई। राहों पर, चौराहों पर नृत्य चलने लगा। जिस राजरानी का चेहरा कभी किसी ने न देखा था, भीड़ और बाजार के साधारण जन उसका नृत्य देखने लगे! घर के लोग अगर परेशान हुए होंगे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। और उन्होंने अगर जहर का प्याला भेजा, तो मीरा से दुश्मनी थी--ऐसा नहीं। मीरा को पागल समझा। और घर की प्रतिष्ठा भी दांव पर लगाए दे रहे है!

लेकिन जिसको परमात्मा की शराब चढ़ जाए, फिर कोई और प्रतिष्ठा मूल्य नहीं रखती।

उर्दू, पर्शियन, अरबी संतों ने बहुत शराब की उपमा का प्रयोग किया है। उमर खय्याम तो जग जाहिर है। और तुम चकित होओगे जान कर कि उमर खय्याम कभी शराब पिया ही नहीं। वह तो परमात्मा की शराब की बात कर रहा है। उमर खय्याम के साथ बड़ा अनाचार हो गया है। फित्जराल्ड ने जब पहली दफा उमर खय्याम का अंग्रेजी में अनुवाद किया, तो फित्जराल्ड ठीक से समझा नहीं कि बात क्या है। वह समझा--कि शराब यानी शराब। जैसा कि प्रश्न पूछनेवाले ने समझ लिया है कि शराब यानी शराब।

फित्जराल्ड के अनुवाद के कारण सारी दुनिया में एक भ्रांति फैल गई है। क्योंकि उसी के अनुवाद से उमर खय्याम जाहिर हुआ। अनुवाद अनूठा है, लेकिन भ्रांतियों से भरा है।

पहली भ्रांति तो यही है...। उमर खय्याम एक सूफी फकीर है, एक अलमस्त फकीर है। बाबा मलूकदास से मिल बैठता, तो दोनों की खूब छनती। दोनों एक दूसरे की बात समझ लेते। शायद कहने की जरूरत भी न पड़ती। शायद बोलते भी न; साथ-साथ डोलते नाचते। कौन कहे! कौन जाने! ऐसे अनूठे लोग मिल जाए, तो उनको भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

उमर खय्याम सूफी फकीर था। शराब की बात में तो वह परमात्मा की बात कर रहा। मधुशाला से मतलब है--परमात्मा का घर। साकी से मतलब है--खुद परमात्मा।

साकिया तशनगी की ताब नहीं,

जहर दे दे अगर शराब नहीं।

और अगर परमात्मा ही पिलाने वाला हो, तो फिर कौन फिक्र करता है। अगर जहर भी पिला दे, तो ठीक।

साकिया तसनगी की बात नहीं। तू फिक्र मत कर। अगर शराब न हो, तो जहर दे दे। जहर दे दे, अगर शराब नहीं। चलेगा। तेरे हाथ से जो मिल जायेगा, वही अमृत है।

वाइज न तुम पियो, न किसी को पिला सको।

क्या बात है तुम्हारे शराब-एत्तहूर की।।

इसलाम कहता है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। पूछना चाहिए कि क्या करोगे, इन शराब के चश्मों का! क्योंकि यहां तो तुम लोगों को सिखाते हो--शराब न पीयो। जो शराब पीते हैं, वे तो नर्क जायेंगे। वे तो बहिश्त जायेंगे नहीं। जाहिर है--गणित साफ है। जो यहां शराब नहीं पीते, शराब छोड़े हुए हैं, जीवन का सब राग-रंग तोड़ा हुआ है, गृहस्थ नहीं है--विरागी हैं, उदासी हैं--वे जायेंगे स्वर्ग। मगर वे करेंगे क्या कहां--शराब के चश्मों का--जिन्होंने कभी पी ही नहीं।

व इल न तुम पियो--धर्म-गुरु न तो तुम पीते हो, न किसी को पिला सको।--और न तुम किसी को पिला सकते हो; क्या बात है तुम्हारी शराब-एत्तहूर की; फिर सार क्या हुआ--तुम्हारे स्वर्ग की शराब का? न तुम खुद पीओगे, न किसी को पिला सकोगे। न पीने की हिम्मत है, न पिलाने की हिम्मत है, और वहां जो लोग होंगे, वे न पीने वाले होगे। कसमें खाये हुए लोग होगे। वहां शराब के चश्मे बहाने से सार भी क्या है!

ये पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर तुम्हें परमात्मा के जीवन में कभी प्रवेश करना हो, तो उदास हो कर प्रवेश मत करना। इस जीवन में जहां, भी जैसे भी, जितना भी, क्षण-भंगुर सही, जो सुख मिलता हो, उसका स्वाद लो। उस स्वाद में भी परमात्मा का स्वाद अनुभव करो। बूंद सही, लेकिन बूंद में से भी है तो सागर ही। क्षण-भंगुर सही, लेकिन क्षण-भंगुर में भी छाया तो पड़ी शाश्वत की।

इसलिए भक्त कहता है: जीवन से भागो मत; जीवन को छोड़ो मत; जीवन को जीओ।

मलूक कहते हैं; घर में रहे उदासी। भागो मत कहीं; बीच बाजार में रहो। घर में रहे उदासी। और उदासी का अर्थ मैंने समझाया--उदास नहीं। उदासी का अर्थ है--उद आसीत--परमात्मा के पास बैठा रहे। रहे बाजार में, लेकिन मन परमात्मा के पास रहे। बैठक उसके पास लगी रहे। शरीर बाजार में रहे और प्राण उसके पास रहें। ऐसे आदमी का नाम उदासी।

नाचो--गाओ--गुनगुनाओ। वसंत है तो खिलो--फूलों जैसे। और जब वृक्ष नाचते हो हवाओं में, तो तुम भी नाचो। और जब सूरज उगे, तो गुनगुनाओ--गीत गाओ, प्रार्थना करा। सब तरह से अपनी जीवन को आनंद से भरो और हर आनंद में परमात्मा का अनुग्रह स्वीकार करो, तो ही तुम किसी दिन स्वर्ग के आनंद को पाने के योग्य बन सकोगे। नहीं तो स्वाद ही नहीं रहेगा!

जरा सोचो तो, तुम्हारे सब उदासी--तथाकथित उदासी और विरागी और संन्यासी--सब स्वर्ग पहुंच जाए, तो स्वर्ग की हालत नरक से भी बदतर हो जाए। हो गई होगी तब तक। तुम्हें नरक में चाहे थोड़े भले आदमी भी मिल जाए--मुस्कुराते, गुनगुनाते, गीत गाते, नाचते, मगर स्वर्ग में कहां मिलेंगे!

स्वर्ग बड़ा उदास हो गया होगा! स्वर्ग में धूल जम गई होगी। स्वर्ग में कोई उत्सव तो नहीं हो रहा होगा।

ये पंक्तियां ठीक ही हैं कि--वाइज, न तुम पीयो, न किसी को पिला सको। क्या बात है तुम्हारी शराब-एत्तहूर की!

पीना तो यहीं सीखी। संसार पाठशाला है। संसार छोटा सा आंगन है, जिसमें तुम उड़ना सीखो, ताकि एक दिन तुम विराट के आंगन में भी उड़ सको।

इस संसार में और परमात्मा में कोई अनिवार्य विरोध नहीं है। यह परमात्मा की ही सीढ़ी है। होना ही चाहिए। उसका है, तो उसकी ही सीढ़ी होगी। उसका हो कर उसके विपरीत कैसे होगा? इन सीढ़ियों का उपयोग करो। निश्चित इसके पार जाना है। सीढ़ियों पर अटक नहीं जाना है। लेकिन इसका उपयोग करो।

तुम्हें बेचैनी शराब शब्द से हुई, क्योंकि तुम्हें लगा--कि शराब तो सांसारिक चीज है।

अगर ठीक से समझो, तो संसार के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरे शब्द ही नहीं हैं। तुम जो भी शब्द उपयोग करोगे, वे सभी सांसारिक होंगे। शास्त्र कहते हैं: परमात्मा को पा लेने का आनंद है--ऐसा--जैसे करोड़ गुना विषयानंद। तो सांसारिक हो गया! संभोग से सुख मिलता है, उसका करोड़ गुना; लेकिन बात संभोग की हो गई।

हम कहते हैं: संसार क्षण-भंगुर; परमात्मा शाश्वत। लेकिन शाश्वत का नाचने का उपाय भी क्षण-भंगुर! हम हैं; यहां जो जरा-सी देर को मिलता, परमात्मा को सदा के लिए मिल जाता। लेकिन हमारी भाषा तो यहीं की होगी।

भाषा मात्र पृथ्वी की है। आकाश को समझाने चलोगे, तो भी पृथ्वी की भाषा का ही उपयोग करना पड़ेगा।

शराब कुछ बुरा शब्द नहीं है। प्यारा शब्द है। अर्थ समझो। अर्थ इतना ही है--कि ऐसी डुबकी लगाओ परमात्मा में--उसके नाम ऐसे डूबो कि तुम्हें अपना स्मरण न रह जाए। मैं हूं--यह भाव खो जाए। और तब तुम समझोगे कि मैं किस शराब की बात कर रहा हूं।

मिरी शराब की क्या कद्र तुझको ऐ वाइज

जिसे मैं पी के दुआ दूं वह जन्नती हो जाए।।

जिस शराब की मैं बात कर रहा हूं, मिरी शराब की क्या कद्र तुझको ऐ वाइज--हे धर्मगुरु, तुझे मेरे शब्द शराब का कुछ भी पता नहीं है; उसकी तुझे कद्र भी नहीं हो सकती। तू समझ ही न पायेगा। जिसे मैं पी के दुआ दूं, वह जन्नती हो जाये। जिसे मैं पी कर दुआ दे दूं, स्वर्ग के पाने का उसे मजा आ जाए।

बाबा मलूकदास उस मस्ती की बात कर रहे हैं कि तुम अगर उस मस्ती की छाया में क्षण भर विश्राम भी कर लो, तो रूपांतरित हो जाओ।

यह बात तुम्हें जानकर हैरानी होगी कि शराब का आविष्कार एक ईसाई संत ने किया। इसी तरह चाय का आविष्कार एक बौद्ध भिक्षु ने किया। दोनों बातें बड़ी प्रतीकात्मक हैं।

बौद्धों की परंपरा है--ध्यान की। चाय जगाती है; नींद को तोड़ती है। प्रतीकात्मक है। झपकी नहीं आने देती। आती हो झपकी, तो झपकी चली जाती है। जम्हाई आती हो, तो जम्हाई चली जाती है।

चाय का संबंध जुड़ा है--बोधिधर्म बोधिधर्म कोई अठारह सौ साल पहले चीन गया। बौद्ध सदगुरु था--अपूर्व! वह टाह नाम के पहाड़ पर वर्षों तक बैठा रहा; ध्यान करता रहा। टाह पहाड़ का नाम था, इसीलिए--टी। और टाह का एक उच्चारण चा भी है चीन में--इसीलिए चाय। उस पहाड़ से इसका संबंध जुड़ा।

कहानी बड़ी मधुर है। कहानी तो कहानी है...। लेकिन है अर्थपूर्ण। एक रात बोधिधर्म जागरण के लिए बैठा है; पूरी रात जागरण करना है; और झपकी आने लगी। तो उसने गुस्से में अपी आंख की दोनों पलकें उखाड़ कर फेंक दी। न रहेगी। पलकें, न झपकी आयेगी। न कुछ झपकने को ही बचेगा, तो झपकी कैसे आयेगी! न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। उसने पलकें उखाड़ कर फेंक दी। और कहानी बड़ी मधुर है; कहते हैं: उन्हीं पलकों से पहली दफा चाय का पौधा पैदा हुआ। वे पड़ी रहीं जमीन में; गल गई और उनसे जो पौधा पैदा हुआ, वह चाय बनी।

उस चाय को अब भी तुम पीते हो, तो नींद टूट जाती है। यह नींद तोड़ने के लिए ही फेंकी थी बोधिधर्म ने।

लेकिन बात सोचने जैसी है। बौद्ध है। बौद्ध है--ध्यान का मार्ग। इसलिए बौद्ध भिक्षु को चाय पीने की मनाही नहीं है। बौद्ध भिक्षु और कुछ न करे, चाय तो जरूर पीता है। चाय तो दिन में कई बार पीता है। सुबह का ध्यान चाय से शुरू होता है; ध्यान का अंत चाय से होता है। तुम शायद चकित होओगे जानकर--कि चाय और बौद्ध भिक्षु! चाय तो नहीं पीनी चाहिए। लेकिन सदियों से बौद्ध भिक्षु पीता रहा है। और उसका उपयोग करता रहा है। और जापान में उन्होंने चाय को बिलकुल ही धार्मिक मूल्य और महत्व दे दिया है। चाय पीने को ही ध्यान की प्रक्रिया बना ली है। चाय बनाना; चाय भेंट करना; चाय पीना; इसमें घंटों लग जाते हैं। और इसको इतने बोधपूर्वक किया जाता है कि चाय की प्रक्रिया से ही ध्यान का काम हो जाता है।

टी सेरेमनी कहते हैं जापान में तो वे--चाय का उत्सव। जिनके पास कोई सुविधा है...। जैसे हिंदुस्तान में लोग घर में छोटा सा मंदिर बना लेते हैं, ऐसे जापान में जिनके घर में थोड़ी सुविधा है, उनका चाय-घर अलग होता है: बगीचे के एक कोने में; दूर एकांत में; जहां लोग ऐसे जाते जैसे मंदिर में जा रहे हैं। क्योंकि ध्यान--जागरण।

और शराब की खोज की कथा है कि एक ईसाई फकीर ने की; डायोनिसस उसका नाम था। यह बात भी ठीक है, क्योंकि ईसाइयत भक्ति का मार्ग है। ये प्रतीक बड़े ठीक हैं।

भक्ति के मार्ग पर--विस्मरण; ध्यान के मार्ग पर--होश। भक्ति के मार्ग पर डूबना है; ध्यान के मार्ग जागना है। अंतिम परिणाम एक ही होता है। अगर तुम ध्यान के मार्ग पर चल-चल कर जागते रहे, जागते रहे, तो एक तरफ तुम जाओगे, और एक तरफ तुम पाओगे--खोते जा रहे हो। तुम्हारा ध्यान जागने पर रहेगा और खोने की घटना छाया की तरह घटेगी।

भक्ति के मार्ग पर तुम खोते जाओगे, और तुम पाओगे: एक तरफ जागरण आ रहा है। एक तरफ खोते जा रहे हो, एक तरफ जागरण आ रहा है। खोना तुम्हारी प्रक्रिया होगी; जागना परिणाम होगा। अंत में खोना और जागना एक साथ घट जाते हैं, जैसे कि एक ही सिक्के के दो पहलू।

भक्त का एक तरफ ध्यान रहता है; ध्यानी का दूसरी तरफ ध्यान रहता है। लेकिन सिक्का तो वही है।

तो चूंकि मैं मलूक की बात रहा हूं, इसलिए शराब का प्रतीक चुना है। उसे समझना।

दूसरा प्रश्न: ऐसा लगता है कि जहां प्राचीन युग के भारतीय संत और प्रज्ञापुरुष श्री संपन्न और श्रेष्ठ कुलों से आया किए हैं, वहां मध्ययुगीन संत प्रायः दरिद्र और पिछड़े वर्गों में ही पैदा हुए हैं। क्या इस ऐतिहासिक तथ्य पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करेंगे?

ऐसा हुआ। होने का कारण भारत की वर्ण व्यवस्था थी। भारत वर्ण व्यवस्था से पीड़ित रहा है। अभी भी छुटकारा नहीं हुआ है। इसलिए भारत में जो पहले संतों की परंपरा हुई, वह ब्राह्मणों की थी। ऋषि-मुनि--वेद और उपनिषद के--ब्राह्मण हैं। श्रेष्ठतम वर्ग ही धर्म के जगत में प्रवेश करने के योग्य था और पात्र था--ऐसी मान्यता थी। इस मान्यता के कारण हजारों, लाखों, करोड़ों लोग परमात्मा से संबंधित होने से वंचित रह गये।

जो भी मनुष्य है, वह परमात्मा को पाने के लिए योग्य है। मनुष्य होने में ही वह योग्यता मिल गई है। अब मनुष्य के अतिरिक्त और किसी योग्यता की जरूरत नहीं। ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है।

लेकिन इस देश की जो धारणा थी, वह यह थी--कि ब्राह्मण ही इतना शुद्ध है कि परमात्मा की तरफ जा सके। इसलिए उसको ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण यानी जो ब्रह्म की तरफ जा सके। बाकी क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को तो काट दिया। ब्रह्म से उनको कोई संबंध नहीं है।

लेकिन यह बात ज्यादा दिन नहीं चल सकती थी। स्वभावतः पहली पहली बगावत हुई--बुद्ध और महावीर के समय में। बगावत क्षत्रियों से आई। वे नंबर दो थे। बगावत हमेशा नंबर दो हो आती है।

ध्यान रखना: लोग सोचते हैं कि बगावत नीचे आती है। बगावत नीचे से कभी नहीं आती। बगावत नंबर दो से आती है। इंदिरा को हटाना हो, तो मोरारजी देसाई हटाते हैं। वे नंबर दो हैं। बगावत हमेशा नंबर दो से आती है। आखिर में जो खड़ा है, उसको तो इतनी आशा भी नहीं होती, भरोसा भी नहीं होता। कि वह हटा पायेगा। वह जो नंबर दो है, वही खतरनाक सिद्ध होता है, क्योंकि नंबर दो को ऐसा लगता है कि बस, एक ही कदम की बात है कि मैं नंबर एक हो सकता हूं। ज्यादा दूर नहीं है मंजिल; इतने करीब है कि अगर मैं चूका, तो मैं ही जिम्मेवार हूं, कोई और जिम्मेवार नहीं है।

इसलिए सबसे बड़ा खतरा, जो पास होते हैं, उनसे होता है; जो दूर होते हैं, उनसे नहीं होता।

ब्राह्मण के निकटतम थे क्षत्रिय। यह नंबर दो का वर्ग था। और क्षत्रियों को लगने लगा--कि यह भी क्या बात है!--कि ब्राह्मण को पा सके? इसके प्रति बगावत करी जरूरी थी।

ब्रह्म उन दिनों में सबसे ऊंची बात थी, जो पाने योग्य थी। और सब तो गौण है। तो क्षत्रियों ने बगावत की: जैन धर्म और बौद्ध धर्म उस बगावत के परिणाम हैं। जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। उनमें एक भी ब्राह्मण नहीं है। बुद्ध क्षत्रिय हैं; और बुद्ध ने अपने चौबीस जन्मों की जो कथाएं कही हैं, उनमें हर बार वे क्षत्रिय हैं। वे किसी भी बार ब्राह्मण ही हैं।

यह बड़ी बगावत थी। इसलिए हिंदू धर्म जितना नाराज जैनों और बौद्धों पर रहा है, उतना नाराज किसी से नहीं है। हो भी नहीं सकता। और एक ऐसा वक्त आया कि क्षत्रियों ने बिलकुल ही ब्राह्मण-केंद्रित धर्म को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर डाला।

यह बगावत क्षत्रियों से आई। लेकिन जब क्षत्रिय ज्ञानी होने लगे..। पहले तो ब्राह्मणों ने उसे बिलकुल स्वीकार नहीं किया। महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया। महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया। महावीर के नाम की भी उल्लेख नहीं किया है--ब्राह्मण शास्त्रों में। कैसे उल्लेख करो! बुद्ध का उल्लेख भी किया है, तो बड़ी चालबाजी से किया है, बड़ी कूटनीति से किया है। बुद्ध का उल्लेख करना पड़ा। क्योंकि बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा कि उस प्रभाव को एकदम अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। महावीर का तो प्रभाव इतना बड़ा नहीं था। छोटा दायरा था महावीर का। उनकी प्रक्रिया ऐसी थी कि बहुत भीड़ उसमें जा नहीं

सकती थी; कठोर थी। बुद्ध की प्रक्रिया सुगम थी, उसमें करोड़ों लोग जा सकते थे। तो करोड़ों लोग गये। यह बात इतनी बड़ी थी कि इनकार तो की नहीं जा सकती थी। मगर बड़ी तरकीब से इनकार की गई।

तो ब्राह्मणों ने एक कथा गढ़ी--कि भगवान ने जब सृष्टि रची तो उसने नरक बनाया, स्वर्ग बनाया। नरक पर शैतान को बिठाया--पहरेदार की तरह। लेकिन हजारों करोड़ों साल बीत गये और नरक में कोई आये ही न! क्योंकि कोई पाप ही न करेः तो शैतान गया भगवान के चरणों में और उसने कहाः मुझे काहे के लिए वहां बिठा रखा है! न कोई कभी आता, न कभी कोई जाता। बंद करो यह दफ्तर। मुझे छुटकारा करो। मैं नाहक बंधा हूं। कोई काम भी नहीं है, कोई धाम भी नहीं है।

तो परमात्मा ने कहाः ठीक, तेरे लिए उपाय करता हूं। तो परमात्मा ने बुद्धावतार लिया! और बुद्धावतार ले कर लोगों को भ्रष्ट किया। जब लोग भ्रष्ट हो गये, नरक जाने लगे। तब से नरक में ऐसी भीड़ है कि क्यू लगा है! जगह नहीं मिलती स्वर्ग की तरफ तो लोग जाते ही नहीं।

तो बड़ी होशियारी की बात है। बुद्ध को दसवां अवतार स्वीकार कर लिया और साथ में एक तरकीब लगा दी कि बुद्ध की मानना मत। माना कि अवतार भगवान के हैं, लेकिन भ्रष्ट करने आये हैं।

देखते हैंः राजनीति कैसे चाल चल सकती है! बुद्ध के प्रति सम्मान भी दिखा दिया। दिखाना ही पड़ा, क्योंकि इतने करोड़ों लोगों ने जिसे पूजा, उसके प्रति अगर सम्मान न दिखाये, तो भी खतरा है। लेकिन सम्मान हार्दिक तो नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मण बड़े क्रुद्ध थे। और उन्होंने शंकराचार्य के समय में बदला लिया। बुद्ध धर्म को उखाड़ फेंका।

यह तो बात ही ब्राह्मणों की कल्पना के बाहर थी कि कोई क्षत्रिय--और घोषणा करे कि हम अवतार हैं; घोषणा करे कि तीर्थंकर हैं! तीर्थंकर--और अवतार--और परमात्मा के वंशज और हकदार तो केवल ब्राह्मण थे। लेकिन जब एक दफा क्षत्रिय चढ़ गये सीढ़ी, तो नंबर दो वैश्य थे। बगावत वहां से शुरू हो गई। उन्होंने कहाः जब क्षत्रिय जा सकता है, तो हमारा क्या कसूर है कि हम नहीं जा सकते!

तो दूसरी क्रांति घटित हुई वैश्यों की तरफ से। तो वैश्य संत पैदा हुए, वणिक संत पैदा हुए। जब एक दफा वैश्य संत होने लगे, तो फिर शूद्र भी करीब आ गया पद के। तो फिर शूद्र संत हुए। फिर रैदास, और गोरा--और शूद्र संत हुए।

मध्ययुग में जो संत हुए, वे वैश्य और शूद्र थे। पहले वैश्य--फिर शूद्र। मगर यह होना जरूरी था। इस तरह मनुष्य ने अपने स्वभाव की उदघोषणा की।

परमात्मा सभी का अधिकार है--जन्मसिद्ध अधिकार है। न तो ब्राह्मण का अधिकार है, न क्षत्रिय का अधिकार है--न वैश्य का, न शूद्र का। सभी का अधिकार है।

परमात्मा के ऊपर किसी का दावा नहीं हो सकता। परमात्मा किसी की मालकियत नहीं है; स्वामित्व नहीं है। इसलिए ऐसा हुआ।

लेकिन अभी भी पुराने ढांचे एकदम छूट तो नहीं गये हैं इसलिए ब्राह्मण कबीर को संत मानने में झिझकता है। इसलिए ब्राह्मण नानक को अवतार मानने में झिझकता है। सिक्ख धर्म का अलग टूट जाना पड़ा। क्योंकि नानक को स्वीकार नहीं किया जा सकता। और फिर रैदास चमार का तो बिलकुल स्वीकार नहीं किया जा सकता।

एक बार मुझे एक नगर में चमारों ने रैदास पर बोलने बुलाया। मैं जिनके घर में ठहरा था, उन्होंने मुझे बहुत समझाया कि वहां जाओ ही मत। कहां चमारों में बोलने जा रहे हैं! वे बड़ धनपति थे। पर मैंने कहा कि उन्होंने बुलाया है, तो मैं जा रहा हूं। वे सब जगह मेरे साथ जाते थे। वे सांझ कहने लगे कि आज जरा काम है। मैंने कहा, मुझे पता है कि का बिलकुल नहीं है। तुम चमारों में जाने में डर रहे हो।

उनकी पत्नी मेरे पीछे लगी फिरती थी, जहां भी मैं जाता था। उस दिन वह भी...। उसने कहा कि नहीं, आप क्षमा करें। ड्राइव्हर के साथ मुझे अकेला भेज दिया। वहां भी मैं चकित हुआ देख कर कि चमारों के अतिरिक्त वहां एक आदमी सुनने नहीं आया था। दस बीस चमार थे। उसी नगर में मैं बोलता था; तो बीस हजार लोग, पच्चीस हजार लोग सुनते थे। एक दिन पहले ही पच्चीस हजार लोगों ने सुना था और दूसरे दिन पच्चीस लोग भी नहीं थे!

अभी भी हमारी धारणाएं तो वही हैं। चमारों की सभा में कौन जाए! और चमारों के साथ कौन बैठे! और यह तो हम मान ही नहीं सकते कि रैदास को भी परमात्मा उपलब्ध हो गया है।

परमात्मा पर हमने दावे कर रखे हैं।

मध्ययुग में बड़ी से बड़ी क्रांति हुई भारत में। निम्न वर्गों से घोषणा आई इस बात की कि कोई भी परमात्मा हो सकता है। तुम क्या करते हो, तुम किसी घर में पैदा हुए हो, तुम्हारा रंग-रूट कैसा है, तुम्हारे पास धन, पद, प्रतिष्ठा है या नहीं, इससे परमात्मा का कोई लेना-देना नहीं है। तुम अगर प्यास से भरे हो और आतुर होकर पुकारोगे, तो परमात्मा सुनेगा। आतुरता सुनी जाती है। प्यास सुनी जाती है। हृदय की आवाज सुनी जाती है।

तीसरा प्रश्नः अपना सा दुःख सबका मानैं, ताहि मिलैं अविनासी। अविनासी से मिलने की बाबा मलूकदास की यह शर्त तो वास्तव में असंभावना जैसी लगती है। कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई बुद्ध और कोई रजनीश इस कसौटी पर भला खरे उतर जाएं, लेकिन क्या यह सचमुच संभव है कि कोई साधारण व्यक्ति सब पराये दुःख को अपना समझ ले?

पहली बातः मलूक के वचन का अर्थ ठीक से समझे नहीं। अपना सा दुःख सब का मानै, ताहि मिलैं अविनासी, इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो सामान्य अर्थ है कि दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानो। यही सीधा-सीधा अर्थ है। अगर इतना ही अर्थ हो इस वचन में, तो प्रश्न बिलकुल ठीक हैः यह असंभव है। कैसे दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानोगे?

दूसरे के सिर में दर्द होता है, इसे तुम अपने सिर का दर्द कैसे मानोगे? और तुम्हारे पैर में बिवाई न पड़ी हो, तो दूसरे के पैर में पड़ी बिवाई की पीड़ा का तुमको पता ही नहीं हो

सकता। कांटा तुम्हें गड़े, तो तुम्हें पता चलता है; दूसरों को गड़े, तो दूसरे को पता चलता है।

दूसरे के दुःख को अपना कैसे मानोगे? और अगर मान लिया जबरदस्ती, तो उसको कोई परिणाम न होगे। ऐसे कहीं अविनाशी मिला है?

यह अर्थ अगर होता, तो बात असंभव हो जाती। फिर क्या अर्थ हो सकता है? अर्थ है...एक घटना से समझो।

रामकृष्ण दक्षिणेश्वर में गंगा पार कर रहे हैं--एक छोटी सी नाव पर पसार, उस तरफ जा रहे हैं। साथ में दो-चार भक्त हैं और माझी है। अचानक बीच मझधार में रामकृष्ण चिल्लाने लगे: मुझे मारो मत। मुझे क्यों मारते हैं? भक्तों ने कहा कि पागल तो नहीं हो गये! कौन मार रहा है! वे तो चौंक कर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, परमहंसदेव, आप कहते क्या हैं! हम--आपको मारेंगे! कौन मार सकता है आपको? कौन मार रहा है आपको?

लेकिन रामकृष्ण की आंखों से आंसू बहे जाते हैं। और रामकृष्ण ने अपनी चादर उघाड़ कर बताई कि मेरी पीट तो देखो। और वहां कोड़े के निशान हैं! लहूलुहान! घबड़ा गये भक्त भी--कि किसने मारा है! लेकिन कोई है भी नहीं यहां मारने वाला; हम ही चार भक्त हैं। और सब एक दूसरे को देख रहे हैं कि कौन मारेगा।

रामकृष्ण ने कहा, उस तरफ देखो। और उस तरफ घाट पर कुछ आदमी एक आदमी को मार रहे हैं। नाव लगी; भक्त उतरे; जाकर उस आदमी के पास पहुंचे जिसको मारा गया है; उसकी कमीज उठाई। ठीक वैसे ही दो कोड़े के निशान उसकी पीठ पर बने हैं। रामकृष्ण की चादर उठाई, बड़े हैरान हो गये। कोड़े के निशान बिलकुल एक जैसे हैं। हूबहू। एक दूसरे कापी हैं।

इसका क्या कहेंगे।

अंग्रेजी में दो शब्द हैं: सिम्पैथी और एम्पैथी। सिम्पैथी का अर्थ होता है--सहानुभूति। मनोविज्ञान इस पर बड़ा विचार करता है। सहानुभूति का तो अर्थ होता है: जब तुम दूसरे का दुःख देखते हो, अनुमान करते हो कि इसके सिर में दर्द है। माथे पर पड़ी सिकुड़ने देखते हो; आंखों में आई उदासी देखते हो; चित्त का विषाद देखते हो, अनुमान करते हो कि इसके सिर में दर्द है। इसके चेहरे का भाव देख कर तुम अनुमान करते हो कि ऐसा भाव जब मुझे होता है ,तब मेरे भीतर भी सिर में दर्द होता है। मगर हो सकता है कि यह आदमी अभिनय कर रहा हो।

आखिर अभिनेता करते ही क्या हैं? सिर में दर्द नहीं होता है और सिर में दर्द दिखा देते हैं। हृदय में प्रेम नहीं होता और प्रेम दिखा देते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन नाटक देखने गया था। और उसकी पत्नी उसे बार-बार कोहनी मारने लगी, और कहने लगी, देखो! क्योंकि वह जो नायिका है, उसको नायक उतना प्रेम करता है! सदा घुटनों पर हाजिर है। देवी, देवी पुकारता है। तो स्वभावतः पत्नी टेहनी मारने लगी कि जरा देखो, इसको कहते हैं--प्रेम। तुमको ऐसी सूझ कभी नहीं आती!

नसरुद्दीन ने कहा, चुप भी रह। तुझको मालूम है, उसको इसके कितने पैसे मिलते हैं? हमसे मुफ्त में ही चलवा रही है काम!

लेकिन, पत्नी ने कहा, तुमको मालूम होना चाहिए कि वे वस्तुतः पति-पत्नी भी हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, हाय राम! अगर ये वस्तुतः भी पति-पत्नी हैं, तब तो निश्चित ही यह अभिनेता मजबूत है; गहरा--बड़ा अभिनेता है। असली पति-पत्नी हैं अगर ये और इतना प्रेत दिखला रहा है...। क्योंकि असली पति-पत्नी के बीच कहां प्रेम! और किसी के बीच हो जाए; असली पति-पत्नी के बीच कहां प्रेम?

तो नसरुद्दीन ने कहा, निश्चित ही यह अभिनेता बड़ा है। इसके अभिनय की कुशलता बड़ी गहरी है। हृदय में बिलकुल नहीं है और दिखला रहा है! और इतनी कुशलता से दिखला रहा है कि जंच रहा है कि होना चाहिए।

अभिनय का अर्थ ही यही है--जो नहीं है, उसे दिखला देना।

तो यह हो सकता है कि दूसरे आदमी के सिर दर्द हो ही ना। वह सिर्फ अभिनय कर रहा हो। पेट में दर्द हो ही न; सिर्फ मुद्रा बना रहा हो--पेट के दर्द की। मगर तुम्हारे पास एक ही उपाय है अनुमान करने का कि तुमको भी अगर ऐसी ही मुद्रा बनी थी, जब पेट में दर्द हुआ था, तो तुम सोचोगेः इसके भी पेट में दर्द है। यह अनुमान है। इस अनुमान में, अगर तुम्हारा लगाव है इस आदमी से, तो सहानुभूति होगी। अगर तुम्हारा बेटा है, तो सहानुभूति होगी। तुम्हारा पिता है, तो सहानुभूति होगी। तुम्हारी मां है, तो सहानुभूति होगी। लेकिन यह सहानुभूति है। यह अनुमान है।

समानुभूति--ऐम्पैथी--बड़ी और बात है। समानुभूति का अर्थ हैः जो इसे हो रहा, ठीक ऐसा तुम्हें हो जाए।

यह कब होता है? यह तब होता है, जब तुम्हें मैं तू का भाव नहीं रह जाता। जब अहंकार की बीच में दीवाल नहीं रह जाती।

रामकृष्ण को यह जो घटना घटी, इसीलिए घटी। बीच में कोई दीवाल ही नहीं है। जब उस आदमी को मारा गया, तो रामकृष्ण को ऐसा नहीं हुआ कि क्यों उस बेचारे को मारते हो। वे चिल्लायेः क्यों मुझे मारते हो? यह फर्क समझना। यह समानुभूति है।

इस सहानुभूति पर बहुत प्रयोग किये गये हैं। तुमने शायद कुछ घटनाएं सुनी हों; जिनको ईसाई फकीर स्टिगमैटा कहते हैं। ऐसा सदियों से होता है और अभी भी ऐसे लोग मौजूद हैं, जिनको यह घटना घटती है।

बवेरिया में एक महिला अभी भी जिंदा है, जिसको स्टिगमैटा उभरते हैं। स्टिगमैटा का अर्थ होता हैः जिस तरह जीसस को सूली पर लगाया गया और उनके हाथ में खीले ठोक गये, पैर में खीले ठोंक गये, और उन्हें सूली पर लटकाया गया; कभी-कभी किन्हीं ईसा के भक्तों को उसी तरह के घाव अनायास हाथ और पैर में उभर आते हैं और खून बहने लगता है। घाव बनाने नहीं पड़ते, उभर आते हैं; हजारों के सामने उभर आते हैं। खून बहने लगता है। और फिर घाव खो जाते हैं; खून बंद हो जाता जै।

बवेरिया में एक महिला है--थेरेसा न्यूमॅन। आज तीस साल से उसका मध्ययन हो रहा है। हर शुक्रवार को, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ में और पैर में घाव उभर आते हैं और खून बहने लगता है। इतनी तीस सालों में इतना खून बहा है, लेकिन जरा भी वह महिला कमजोर नहीं हुई। और बड़ा आश्चर्य तो यह है कि सब तरह के परीक्षण कर लिए गए हैं, डाक्टरों ने सब तरह के परीक्षण किए हैं, कि कोई धोखे-घड़ी न हो जाए। ठीक चौबीस घंटे खून बहता रहता है और चौबीस घंटे के बाद घाव ऐसे भर जाते हैं, ऐसे तिरोहित हो जाते हैं, जैसे हुए ही न हों! दाग भी नहीं छूट जाता। यह एम्पैथी है।

जीसस के साथ इतना तादात्म्य, जीसस के साथ ऐसी भाव-विभोरता--कि जीसस अलग न रहे--मैं जीसस हूं--यह भाव अगर बहुत प्रगाढ़ हो जाए, यह इतना प्रगाढ़ हो जाए, कि बीच में कोई दीवाल न रह जाए; दीवाल क्या बीच में कोई परदा भी न रह जाए, कोई चिलमन भी न रह जाए, तो परिणाम हो जायेगा।

आदमी के मन की बड़ी क्षमता है। तुम वही हो जाते हो, जैसा सोचते हो। तुम्हारे जीवन में वही घटने लगता है, जो तुम्हारे विचार में बीज की तरह पड़ जाता है।

अब अगर किसी को ऐसा प्रगाढ़ भाव हो जाए कि मैं जीसस के साथ एक हूं, तो कोई आश्चर्य नहीं कि इसके शरीर की वही दशा हो जाए, तो जीसस के शरीर की दशा हुई थी। दो हजार साल बाद भी...। इससे जीवन का कुछ लेना-देना नहीं है। इसी स्त्री की भाव-दशा है।

इसको कहते हैं: समानुभूति।

मलूक का यह वचन: अपना सा दुःख सबका मानै, ताहि मिलैं अविनासी--सहानुभूति का ही सूत्र नहीं है; समानुभूति का भी सूत्र है। मलूक यह कह रहे हैं कि तुम दूसरे दो नहीं हैं। यहां एक ही विराजा है। मेरे भीतर जो बोल रहा है और तुम्हारे भीतर जो सुन रहा है, ये दो नहीं हैं। इधर वही बोल रहा है, उधर वही सुन रहा है। यह सारा वार्तालाप--एकालाप है। परमात्मा ही परमात्मा से बोल रहा है। वही वृक्ष में हरा हुआ है; वही फूल में लाल हुआ है; वही पक्षी की तरह आ कर गीत गुनगुना रहा है।

यह सारा जगत एक है; अखंड रूप से एक है। इस अखंड के बोध की तरफ इशारा कर रहे हैं मलूकदास--ताहि मिलैं अविनासी। जिसको इस अखंड की प्रतीति होने लगेगी कि हम एक ही हैं यहां दूसरा कोई है ही नहीं; पराया है ही नहीं; पराया भ्रांति है। न तो कोई स्व है न कोई पर है। उस एक की ही जगह-जगह अनेक-अनेक रूपों में अभिव्यक्ति, अभिव्यंजना हुई है। वह एक ही बहुत-बहुत रूपों में आया है। ये सब रूप उसके हैं; वह बहुरूपिया है।

अपना सा दुख सबका जानै, ताहि मिलैं अविनासी, उसे मिल जायेगा अविनासी। इसमें खयाल रखना कि वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम चेष्टा कर करके दूसरे के दुःख को अपना मानने लगो। वे यह कह रहे हैं कि धीरे-धीरे तुम स्व और पर की दीवालें गिराओ, ताकि जो दूसरे के भीतर है और तुम्हारे भीतर है, वह अलग-अलग न मालूम पड़े।

ये सीमाएं थोथी हैं। ये सीमाएं ऐसी हैं, जैसे हम अपनी जमीन के आसपास एक बागुड़ लगा देते हैं। कहते हैं: यह मेरी जमीन; वह जमीन पड़ोसी की। जमी एक है। तुम्हारे बागुड़ लगाने से जमीन कटती नहीं, अलग नहीं होती।

हिंदुस्तानी की सीमा खींच देते हैं नक्शे पर; कहते हैं: यह हिंदुस्तान, यह पाकिस्तान। एक दिन पहले यह हिंदुस्तान था पूरा, एक दिन बाद हिंदुस्तान पाकिस्तान अलग हो जाते हैं। पंद्रह अगस्त को सीमा खिंच जाती है। जमीन वही की वहीं है; जमीन कटती नहीं, सिर्फ नक्शे पर सीमा हो जाती है। मगर फर्क समझते हो! बड़ा फर्क हो गया। भेद पैदा हो गया। अब अगर पाकिस्तान में कुछ गड़बड़ हो जो, तो तुम प्रसन्न होते हो। पाकिस्तान में दुर्दिन आ जाए, तो तुम प्रसन्न होते हो। भारत में दुर्दिन हो जाए, तो पाकिस्तान में लोग प्रसन्न होते हैं!

पाकिस्तान से बंगलादेश टूट गया, तो भारत बड़ा आह्लादित था। ये सीमाओं के कारण...अन्यथा सब वही का वही है। न कुछ टूटता है, न कुछ जुड़ा है। मगर आदमी बड़े खेल बना लेता है। आदमी खेलने में बड़ा कुशल है और धीरे-धीरे भूल ही जाता है कि खेल "खेल' है।

तुमने देखा न: शतरंज खेलते-खेलते तलवारें खिंच जाती हैं। अब शतरंज में कुछ भी नहीं है। हाथी घोड़े भी झूठे हैं। मगर शतरंज पर भी प्राण दांव पर लग जाते हैं। शतरंज भी तुम ऐसे खेलते हो, जैसे जीवन दांव पर लगा है। शतरंज में दुश्मनियां हो गई हैं; पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुश्मनी चल गई है। और तुम सोचते नहीं कि लकड़ी के खिलौने बना कर रख लिये हैं, या चलो पैसेवाले हुए, तो हाथीदांत के हैं। पर सब खेल-खिलौने हैं।

जैसे समाज में तुमने रेखाएं खींच रखी हैं: ये हिंदू, ये मुसलमान; ये ब्राह्मण ये शूद्र--रेखा पर रेखाएं खींचते चले जाते हो और तब सिकुड़ कर रह जाते हो--छोटे से--मैं। यह मैं सिर्फ रेखा के कारण मालूम पड़ रहा है। रेखा को हटा दो, तो तुम एक तरंग हो--इस विराट सागर की।

अपना सा दुःख सबका मानै, ताहि मिलैं अविनासी--इसका अर्थ है--गहरा अर्थ--कि जो मैं तू के भाव को भूल जाए; जिसे मैं में तू दिखाई पड़े, तू में मैं दिखाई पड़े, उसे अविनाशी मिल जाता है। मिल ही गया। फिर तुम्हें इसमें कुछ असंभावना न दिखाई पड़ेगी।

और जिस दिन तुम दूसरों के दुखों को अपना मान लोगे, उस दिन दूसरों के सुख भी तुम्हारे अपने हो जायेंगे; उस दिन दूसरों का प्रेम तुम्हारा हो जायेगा; दूसरों का आनंद भी तुम्हारा हो जायेगा। तुम नाहक कृपण बने बैठे हो--छोटी-सी सीमा में बंद; सारा विराट का खेल तुम्हारा हो सकता है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे: एक आंगन छोड़ दिया, तो सारा विश्व मेरा हुआ।

सीमा छोड़ो; असीम के साथ नाता जोड़ो। जहां-जहां सीमा दिखे, वहां-वहां समझ लेना कि कुछ भ्रांति हो रही है। क्योंकि यहां कोई भी सीमा नहीं है। सीमा है ही नहीं। हम यहां बैठे हैं

इतने लोग; तुमने श्वास ली, तब तुम्हारी हो गई; तुम कहते होः मेरी श्वास। क्षण भर पहले तुम्हारा पड़ोसी ले रहा था उसी श्वास को। क्षण भर बाद फिर कोई और लेगा।

तुम्हारा क्या है? श्वास भी अपनी नहीं है। श्वास तक अपनी नहीं! मेरी श्वास तुम्हारे भीतर थी; अब मेरे फेफड़ों में है। घड़ी भर बाद--घड़ी क्या, क्षण भर बाद फिर किसी और के फेफड़ों में होगी।

जिस देह को तुम अपना मान रहे हो, वह कल मिट्टी की तरह पड़ी थी। कल फिर मिट्टी की तरह पड़ जायेगी। अभी जो फल वृक्ष पर लगा है, नासपाती लगी है, अभी वृक्ष की है; तुम उसे खा लोगे; चौबीस घंटे बाद तुम्हारी हो जायेगी। पच जायेगी; मांस-मज्जा बनने लगेगीः तुम्हारी हो गई; अब तुम हो गई! अभी चौबीस घंटे पहले नासपाती तुम्हारी न थी। फिर एक दिन तुम मर जाओगे; जमीन में तुम्हारी कब्र बन जायेगी; और उस कब्र पर नासपाती का पेड़ बनेगा! और फिर तुम नासपाती बनोगे और तुम्हारे बेटे-पोते फिर उस नासपाती को खायेंगे।

कहां सीमा है? सब संयुक्त है। अभी तुमने जो नासपती खाई है, कौन जाने, तुम्हारे दादा-परदादा की हो!

हम एक दूसरे को खा रहे हैं; हम एक दूसरे को पचा रहे हैं; हम एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। क्षण भर पहले जो विचार मेरे भीतर था, मैंने तुमसे कह दिया, तुम्हारा हो गया। अब मेरी उस पर कोई मालकियत न रही। तुम मालिक हो गये। तुम किसी और को कह दोगे, वह मालिक हो जायेगा। ऐसे विचारों का संतरण चलता है। ऐसे प्राणों को भी संतरण चलता है; ऐसे ही देह का भी संतरण चलता है। हम सब यहां संयुक्त हैं।

तुम जरा सोचो तोः अगर तुम बिलकुल अकेले छोड़ दिये जाओ, तुम बच जाओगे--एक क्षण भी बच सकोगे? सूरज न निकले, ठंडे हो जाओगे। हवा न आये, गला रुंध जायेगा। भोजन न मिले, मरने लगोगे। पानी न मिले--गये। जुड़े हो।

नदियों में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उनसे ही तुम्हारी प्यास तृप्त होती है। हवाओं में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उससे ही तुम्हें जीवन मिलता है। सूरज की किरणों में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उससे ही तुम्हारे प्राण संचालित होते हैं। सब जुड़ा है। जो देखते हैं ठीक से, वे कहते हैंः सारा अस्तित्व जुड़ा है। एक घास के पत्ते को हिलाओ, और दूर के चांदत्तारे हिल जाते हैं। जब जुड़ा है।

ऐसा ही समझो, जैसे मकड़ी का जाला है। उपनिषद के ऋषियों ने कहा हैः संसार मकड़ी का जाला है। और बड़ी ठीक प्रतीक चुना है। क्योंकि मकड़ी अपने जाले को अपने भीतर से ही निकालती और फैलाती है। तो परमात्मा ने संसार को अपने भीतर से निकाला और संसार हुआ; जाले की तरह है। परमात्मा बड़ी मकड़ी है। और अपना जाला बुन देता है।

फिर तुमने देखाः मकड़ी के जाले को एक तरफ से पकड़ कर जरा सा हिलाओ, पूरा जाला हिल जाता है। दूर तक के छोर हिल जाते हैं। ऐसा ही अस्तित्व है।

तुमने अगर किसी को दुःख दिया, तो तुम हैरान होओगे कि वह दुःख तुम तक ही लौट आयेगा, क्योंकि तुम भी उसी जाले पर बैठे हो। इसलिए कर्म के सिद्धांत की बड़ी अर्थवत्ता है। दूसरे को दुःख मत देना, क्योंकि वह अनजाने अपने को ही दुःख देने की व्यवस्था है। और दूसरे के लिए गड्ढा मत खोदना, क्योंकि तुम ही उस गड्ढे में किसी दिन गिरोगे। दूसरा गिरा, तो भी तुम ही गिरे।

लेकिन हम बच्चों जैसे हैं। छोटे बच्चे को देखा, अगर उसके हाथ से कुछ भूल हो जाती है, तो उस हाथ को दूसरे हाथ से एक चांटा लगा देता है। खुद से कोई भूल हो जाती है, तो खुद को एक चांटा मार लेता है। खुद का ही हाथ है, खुद का ही गाल है। लेकिन सजा दे देता है।

हम भी जब दूसरे को सजा दे रहे हैं, तो अपने ही गाल पर चांटा मार रहे हैं। दूसरा यहां कोई है नहीं।

इस ऐक्य को देख लेना, इस अखंडता को देख लेना, इसको पहचानना; इसको धीरे-धीरे जीना; तो अविनाशी मिल जाता है। असंभव नहीं है।

हां, अगर तुमने सोचा कि ऐसा मान कर चलेंगे, तो भूल ही जायेगी। धर्म के जगत में जो बड़ी भूल होती हैं, वह यही है।

महावीर को दिखाई पड़ाः सब एक है, उस सब एक है से अहिंसा पैदा हुई अहिंसा का अर्थ हैः अब किसकी हिंसा करना! कैसे करना? यहां दूसरा कोई है नहीं, मैं ही हूं। तो सब हिंसा आत्म-हिंसा ही होगी। आत्म-हिंसा कौन करना चाहता है?

तो महावीर कदम फूंक-फूंक कर रखने लगे कि कोई चींटी न दब जाए। कि चींटी को महावीर अपना ही हिस्सा मानने लगे। राम करवट न लेते, कि कहीं रात अंधेरे में करवट ली, कोई कीड़ा-मकोड़ा नीचे पड़ा हो, दब जाये! मांसाहार छोड़ दिया। क्षत्रिय घर से आये थे, तो मांसाहार करते रहे होंगे। मांसाहार छोड़ दिया। मांसाहार तो छोड़ा ही छोड़ा, कच्चे फल भी नहीं लेते थे। जो पका फल अपने से गिर जाए वृक्ष से, वही लेते थे। क्योंकि कच्चे फल को तोड़ने में वृक्ष को थोड़ी पीड़ा तो होगी। अभी वृक्ष देने को राजी नहीं था, यही तो कच्चे का मतलब होता है। अभी झपटना पड़ेगा; तो हिंसा होगी। तो जरा प्रतीक्षा करो; फल तो अपने से ही पक जाते हैं; इतनी जल्दी क्या है! पक कर गिर जाते हैं; वृक्ष खुद ही दे देता है, तब तुम ले लेना।

यह अहिंसा अखंड--ऐक्य भाव से पैदा हुई। फिर जैन भी अहिंसा, करता है; वह भी पानी छान कर पीता है, पैर फूंक कर रखता है। लेकिन उसकी अहिंसा में अखंड का भाव नहीं है। उसकी अहिंसा अहिंसा नहीं है। वह तो डर के मारे कर रहा है--कि कही यह चींटी मर न जाए, नहीं तो नरक में सड़ना पड़ेगा। यह भय है; इसमें कोई बाध नहीं है। अगर उसको पक्का हो जाये कि नियम बदल गये हैं और अब चींटियों को मारने से कोई नरक में नहीं सड़ता है, तो वह सब फिक्र छोड़ देगा। चींटी से कुछ लेना-देना नहीं है; चींटी से कुछ मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। चींटी का दुःख अपना दुःख है--ऐसा उसे दिखा भी

नहीं है। लेकिन चींटी मारने से कहीं मुझे दुःख न झेलना पड़े, बाद में, उस वजह से--परिणाम की फिक्र में वह डरा हुआ है।

इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है, कि जैन युवक जब पश्चिम में जाते हैं, वे सब मांसाहार इत्यादि करने लगते हैं। उसका कारण है। कम से कम अंडे तो खाने ही लगते हैं। देखते हैं कि इतने लोग खा रहे हैं, इतने लोग पी रहे हैं, ये सब नरक जायेंगे? सब बात जंचती नहीं। इतने सब नरक अगर जा रहे हैं, तो कोई हरजा नहीं; हम भी चले जायेंगे इस भीड़-भाड़ में।

वह जो श्रद्धा यहां काम करती थी, पश्चिम में जा कर काम नहीं करती। क्योंकि दिखाई पड़ता है: सभी लोग खा पी रहे हैं। यह तो नहीं हो सकता कि अरबों लोग सब नरक ही जायेंगे! वह श्रद्धा टूटने लगती है। वह श्रद्धा झूठी थी, इसलिए टूटती है।

मेरे पास एक जैन मुनि मिलने आये थे, तो वे कह रहे थे कि जो युवक पश्चिम जाते हैं, वे मांसाहार करने लगते हैं; इसको रोकने का कोई उपाय? मैंने कहा, इसको रोकने का उपाय कुछ भी नहीं है। इससे सिर्फ एक बात जाहिर होती है कि जो यहां रह रहे हैं, उनके भी मांसाहार न करने पर बहुत भरोसा मत रखना। वे सिर्फ परिस्थितिवश नहीं कर रहे हैं। वे भी कर लेंगे। सिर्फ उनको परिस्थिति नहीं मिली है। यहां का संस्कार, यहां की हवा, यहां का पारिवारिक भय उनको रोके हुए हैं। लेकिन बोध से नहीं रुके हैं; भय से रुके हैं। भय से कहीं कोई क्रांति घटती है जीवन में?

तो महावीर की अहिंसा और जैन की अहिंसा में फर्क है। जैन की तो बात ही छोड़ो जैनियों के जो मुनि हैं, उनकी अहिंसा में और महावीर की अहिंसा में भी उतना ही फर्क है। जै मुनि भी डर के मारे पानी छान कर पीता है; रात चलता नहीं; अंधेरे में उठता-बैठता नहीं; भय के कारण। बोध नहीं दिखाई पड़ता। सिकुड़ा-सिकुड़ा है; डरा-डरा है।

और ध्यान रखना: डरने से कोई धार्मिक नहीं बनता। डरने से तो आदमी सिकुड़ता है; संकुचित होता है। फैलने से आदमी धार्मिक बनता है; और फैलाव अभय में आता है--भय में नहीं आता।

तुमने खयाल किया: जब भी तुम भयभीत होते हो, सिकुड़ जाते हो, छोटे ही हो जाते हो। जब तुम निर्भय होते हो, फैल जाते हो, छाती फूल जाती है।

जिसका अभय पूरा हो गया, उसकी छाती इतनी बड़ी हो जाती है जितना बड़ा यह विराट विश्व है। वह पूरे विश्व पर फैल जाता है; वह विश्वमय हो जाता है।

चौथा प्रश्नः यूं मिले थे, मुलाकात हो न सकी। ओठ कांपे मगर बात हो न सकी। तथा आप अपने प्रवचन में अकसर कहते हैं कि इस बात पर ध्यान करो, इसे गुनो--और अभी--यहीं; लेकिन मुझे लगता है: कभी नहीं।

अगर तुम्हें लगता है, तो वैसा ही होगा, जैसा तुम्हें लगता है। मेरे कहे नहीं होगा; तुम्हारे लगने से ही होगा। अगर तुमने कोई निषेधात्मक धारणा बना ली है, तो वही होगा। अगर तुम कहते हो: कभी नहीं होगा, ऐसी तुम्हारी मान्यता है, तो कैसे हो सकता है! तुम्हारी

मान्यता को परमात्मा भी तोड़ नहीं सकता। कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान है, उसकी भी इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हारी मान्यता को तोड़ दे।

अगर तुम यह मान कर बैठे हो कि यह होनेवाला नहीं है; समाधि मुझे लगेगी नहीं; परमात्मा का दर्शन मुझे होगा नहीं; अविनाशी से मिलन मेरा होनेवाला नहीं है; अगर तुमने ऐसी धारणा बना रखी है, तो नहीं होगा।

वही होता है, जिसके लिए तुम धारणा बनाते हो। खयाल रखना इस पर। तुम्हारी धारणा तुम्हारा भविष्य है। तुम्हारी धारणा तुम्हारी नियति है। इसलिए नकारात्मक धारणाएं मत बनाना।

नास्तिक को परमात्मा कभी नहीं मिलता। इसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा नहीं है। नास्तिक यही सोचता है कि अगर होता, तो मिलता। अब तक नहीं मिला, तो नहीं है। नास्तिक को परमात्मा नहीं मिलता--नास्तिकता की धारणा के कारण।

नास्तिकता की धारणा--अगर परमात्मा मिल भी जाए, तो भी उसे देखने न देगी; वह कुछ और देख लेगा; वह व्याख्या कुछ और कर लेगा।

मैंने सुना है: शिरडी के सांई बाबा तो मस्जिद में पड़े रहते थे। किसी को पक्का पता नहीं कि वे हिंदू थे, कि मुसलमान थे। किसी संत का किसको पता चल सकता है?--कि हिंदू, कि मुसलमान? सीमाएं नहीं, वहीं तो संत है।

मस्जिद में आने के पहले एक मंदिर में ठहरना चाहा था उन्होंने, लेकिन मंदिर से पुजारी को पक्का नहीं हुआ कि आदमी कौन है, कैसा है, तो उसने हटा दिया। तो वे मस्जिद में ठहर गये। क्या मंदिर, क्या मस्जिद! सब अपने हैं। मस्जिद में किसी ने हटाया नहीं, तो रुके रहे; वही घर बन गया।

लेकिन एक ब्राह्मण साधु रोज उनके दर्शन करने आता था और दर्शन के बाद ही जाकर भोजन करता था। कभी-कभी ऐसा हो जाता, कि भीड़ होती भक्तों की और दर्शन में देर हो जाती, लेकिन जब तक वह पैर न छू ले, तब तक भोजन न करता। कभी-कभी सांझ भी हो जाती, तब दर्शन हो पाते, पैर छू पाता; लौटता; तब कहीं जा कर भोजन कर पाता।

सांई बाबा ने एक दिन उसे कहा की प्यारे, तू इतना परेशान न हो; मैं वही आ कर तुझे दर्शन दे दूंगा। वह तो सड़ा खुद हुआ। उसने कहा, तो कल मैं वहीं प्रतीक्षा करूंगा। धन्यभाग मेरे कि आप मुझे वहां दर्शन दे देंगे!

दूसरे दिन जल्दी ही सुबह-सुबह नहा-धो कर भोजन तैयार करके बैठ गया अपने द्वार पर--सांई बाबा के दर्शन करने के लिए। कोई आया नहीं; आया एक कुत्ता। और कुत्ता भीतर घुसने की कोशिश करने लगा और वह डंडा लेकर उसको भगाने की कोशिश करे लगा--कि कहीं यह सब अपवित्र न कर दे और कहीं भोजन में मुंह न लगा दे। और सांई बाबा अभी आये नहीं। उसने दो-चार डंडे भी कुत्ते को जमा दिए। कुत्ता बड़ी कोशिश किया; डंडे खाने के बाद भी भीतर घुसने की कोशिश कर रहा था।

जब सांई बाबा नहीं आये, सांझ होने लगी, तो भागा हुआ ब्राह्मण आया। और उसने कहा कि आप आये नहीं! वचन दिया; पूरा नहीं किया। उन्होंने कहा, मैं गया था। और यह मेरी पीठ देख! चार डंडे तूने लगा दिए। और मैं फिर भी घुसने की कोशिश करता था, मगर तू घुसने ही नहीं देता था।

तब तो वह रोने लगा। तब उसे याद आया; तब उसे याद आया--कि उसने गौर से नहीं देखा। कुत्ते में कुछ खूबी तो थी; कुत्ता कुछ साधारण तो नहीं था। अब याद आया; पीछे ले लौट कर याद आया। कुछ बात अजब की थी कुत्ते में; कुछ ध्वनि गजब की थी। कुछ ऐसा ही एहसास हुआ था, जैसा सांई बाबा की उपस्थिति में अहसास होता हैं। लेकिन मैं ना-समझ; मैं मंदबुद्धि; समझा क्यों नहीं! रोने लगा। कहा, क्षमा करें। कल एक बार और मौका दें। अब ऐसी भूल न करूंगा।

साई बाबा ने कहा, तेरी मरजी; कल आयेंगे।

तो वह बैठा--अब वह कुत्ते की राह देखता बैठा। हमारी धारणाएं! अब वह देख रहा है कि कहीं कोई कुत्ता आ जाए। कोई कुत्ता दिखाई न पड़े! दूर दूर तक सन्नाटा। ऐसे कभी-कभी आवारा कुत्ते निकलते भी थे; हिंदुस्तान में कुछ कभी भी नहीं है--आवारा कुत्तों की। उस दिन सब नदारत ही हो गये! वह बैठा है थाली सजाये कि आज कुत्ता आये, तो थाली से लगा दूं। पहले कुत्ते को भोजन कराऊं फिर मैं करूं।

कुत्ता नहीं आया--सो नहीं आया। आया एक भिखारी, और वह भी कोढ़ी। और बड़ी दुर्गंध उससे आती थी। और वह चिल्लाया दूर से भाई, इधर न आ! बाहर रह। आगे जा। अभी हम दूसरे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तू यहां खड़ा ही मत हो। मगर फिर भी उसने घुसने की कोशिश की। तब तो वह नाराज हो गया, ब्राह्मण। उसने कहा, मैं कहता हूं: आगे जा, अंदर मत घुस। सिर फोड़ देंगे। अभी हम किसी और की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपशकुन मत कर।

सांझ हो गई; सांई बाबा का कोई पता नहीं। वह फिर पहुंचा। सांई बाबा ने कहा, भाई, तू न पहचानेगा। हम आये थे; तूने घुसने न दिया। उन्होंने कहा, महाराज, आप गलत कह रहे हैं; मैं बिलकुल टकटकी लगा कर देखता रहा। एक भिखारी जरूर आ गया था बीच में; उसको मैंने हटाया कि कहीं इसकी बातचीत मग और मैं चूक न जाऊं कि आप आए कुत्ते के रूप में और निकल जाए, और फिर चूक हो जाए।

सांई बाबा ने कहा, मैं उसी भिखारी के रूप में आया था।

हम वही देखते हैं, जो हमारी धारणा है। अगर तुमने मान लिया कि ईश्वर नहीं है, तो ईश्वर नहीं है। फिर ईश्वर लाख उपाय करे, नाचे तुम्हारे सामने आकर, तुम कहोगे--नहीं है। तुम कुछ और देखोगे। तुम व्याख्या कर लोगे कुछ। तुम समझोगे, कोई आदमी पागल हो गया है। या तुम समझोगे कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं, कि मैंने कुछ भांग इत्यादि तो नहीं खा ली है? यह हो कैसे सकत है?

अगर तुमने मान लिया है कि कभी नहीं होगा, तो कभी नहीं होगा। तुम मालिक हो। तुम्हारे विपरीत यहां कुछ भी नहीं हो सकता।

मैं तुमसे यही कहता हूं कि अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है। तुम्हारी मरजी।

यूं मिले थे, मुलाकात हो न सकी। ओंठ कांपे मगर बात हो न सकी। बात करने को भी क्या है? परमात्मा मिलेगा, तो क्या बात करोगे? कुछ कहने को होगा? ओंठ कंप जाए, काफी है। ओंठ कंप जाए, काफी ज्यादा। और क्या करोगे? कहने को है क्या? आंसू बह जाए--बस बहुत। नाच लो--बस बहुत

यूं मिले थे, मुलाकात हो न सकी। मुलाकात का क्या है? कहने को कुछ भी तो नहीं है हमारे पास। देने को कुछ भी नहीं है हमारे पास। पूछने को कुछ भी नहीं है हमारे पास।

लेकिन अगर तुम मुलाकात में उत्सुक हो, तुम अगर परमात्मा का कोई साक्षात्कार लेना चाहते हो, तो चूक हो जायेगी।

परमात्मा जिस रूप में आये, जैसा आये; और जिस रूप में तुम्हारे भीतर उस क्षण सहज स्फुरण हो, वही सच है, वैसा ही सच है।

ओठ कंप जाए--बहुत। न कंपे, तो भी बहुत। चुप रह जाओ--बहुत। आंख खुल जाए--बहुत। आंख बंद हो जाए--बहुत। बोलो--तो ठीक; न बोलो--तो ठीक।

इतनी भर श्रद्धा चाहिए--कि होगा।

और तुम पहले से आयोजन मत बनाओ कि क्या कहेंगे। क्योंकि कोई रिहर्सल काम न पड़ेगा। और सब रिहर्सल झूठे होते हैं।

परमात्मा से मिलना कोई अभिनय नहीं है। तुम पहले से तैयारी न कर सकोगे। जो भी तैयार कर लोगे, वह झूठा सिद्ध होगा। तुम तो सीधे, निष्कपट, बच्चे की भांति जाओ। तुम तो सरल चित्त से उसकी तरफ आंखें उठाओ।

अगर तुम मलूक से पूछोगे राह, तो मलूक की राह तो प्रेमी की रहा है।

जो तिरे पास से आता है, मैं पूछूं हूं यही

क्यों जी, कुछ जिक्र हमारा भी वहां होता था!

भक्त तो यह मान कर ही चलता है कि जैसे मैंने उसे स्वीकार किया, वैसे उसने मुझे स्वीकार किया। उसका हूं मैं; अस्वीकार करेगा भी कैसे? भक्त तो यह मान कर चलता है कि कुछ मुझे ही थोड़े उससे मिलने की आग लगी है; उस तरफ भी आग लगी है। कुछ इसी तरफ थोड़े ही प्यास है, उस तरफ भी प्यास है। और खयाल रहे, अगर हमारे ही तरफ प्यास होती, तो मिलन हो नहीं सकता था। उसकी तरफ से उपेक्षा होती, तो मिलन कैसे होता? दोनों हाथ ताली बजती है। भक्त ही दौड़ता रहे और भगवान को फिक्र ही न हो, तो भी नहीं होने वाला।

भगवान तो दौड़ ही रहा है, तुम्हारी तरफ। वह तुम्हारे प्राणों का प्राण है। अन्यथा होगा भी कैसे? तुम जरा उसकी तरफ आंख उठाओ। एक कदम तुम उठाओ, हजार कदम उसने उठाये ही हुए हैं।

जो तिरे पास आता है, मैं पूछूं हूं यही

क्यों जी, कुछ जिक्र हमारा भी वहां होता था!

क्या बुरी चीज है मुहब्बत भी
बात करने में आंख भर आई।

ओठ फड़फड़ा गए--बहुत। आंख भर आई--बहुत। ज्यादा क्या करोगे। लोभ मत करो। झलक मिल जाए--बहुत--झलक तो दूर, उसकी याद ही आ जाती है, यह भी कुछ कम नहीं। कितने अभागे हैं, जिनको याद भी नहीं आती, जिनके मुंह पर कभी राम नाम नहीं आता? जिनके प्राण में कभी राम नाम नहीं गूंजता।

सौभाग्यशाली हो कि कम से कम उसका नाम तो आता है; याद तो आती है; सोचते तो हो। चलो यही सही--सोचते हो कि किसी मिलन नहीं होगा; फिर भी सोचते तो हो! यह कभी कम सौभाग्य नहीं। कुछ तो ऐसे हैं, जो यह भी नहीं सोचते।

दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक वे, जो सोचते हैं: मिलन होगा होकर रहेगा। अडिग है--उनका भाव। तो होकर ही रहेगा। दूसरे वे, जो सोचते हैं: मिलन नहीं होगा। नहीं होगा। लेकिन फिर भी कम से कम सोचते तो हैं। कुछ तो सही। नकारात्मक ही सही।

तीसरे ऐसे हैं, जो उपेक्षा से भरे हैं, जो सोचते ही नहीं; उनकी हालत और भी अजीब है। उनके लिए परमात्मा कभी प्रश्न ही हनीं बनता। अगर तुम उनसे परमात्मा की बात करो, तो वे ऐसे देखते हैं कि कहां की व्यर्थ की बातें कर रहे हो! अरे, कुछ काम की बात करो। कुछ मतलब की बात करो। वे इतना भी नहीं कहते कि परमात्मा नहीं है।

नीत्शे ने लिखा है कि दिन थे, जब लोग परमात्मा को मानते थे; और दिन थे, जब लोग परमात्मा को नहीं मानते थे। अब तो ऐसा वक्त आ गया है कि लोग परमात्मा को विचारणीय भी नहीं मानते!

नहीं कहने की भी कौन झंझट लेता है! लोग कहते हैं: हां जी, होगा। चलो, काम की बात करें।

तुम्हारी धारणा पर सब निर्भर है। और जब धारणा पर ही सब निर्भर है, तो क्यों नकारात्मक धारणा बनाओ। क्यों न विधायक धारणा हो! और भक्ति तो विधायक धारणा है।

शब वही शब हैं, दिन वही दि हैं,
जो तेरी याद में गुजर आये।

याद करो। तुम फिक्र छोड़ो मिलने--न मिलने की। तुम सिर्फ करो। तुम सिर्फ पुकारो।

सबा, यह उनसे हमारा पयाम कह देना
गये हो जब से, यहां सुबह-ओ-शाम ही न हुई।

याद जब आ जाए, तो पुलक से भर जाना। जब याद खो जाए, तो रोना और कहना:

सबा, यह उनसे हमारा पयाम कह देना
गये हो जब से, सुबह-ओ-शाम ही न हुई।

लेकिन फिर भी मैं तुमसे इतना कहूंगा कि नकारात्मक धारणा भी अच्छी है--उपेक्षा से। कुछ तो है; चलो, दुश्मनी ही सही।

कत्अ कीजे न तअल्लुक हमसे

कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।

चलो, दुश्मन ही सही। चलो, नकारात्मक संबंध ही सही। पीठ ही किए हो परमात्मा की तरफ; चलो, कम से कम पीठ तो किए हो! पीठ है, तो कभी मुंह भी हो जायेगा।

लेकिन सरल हो जाए बात। क्यों न सरल बना दो इसे; क्यों न उन्मुख हो जाओ!

मैं तुमसे जो बार-बार कहता हूं: अभी हो सकता है--यहीं हो सकता है, उसका केवल इतना ही प्रयोजन है कि भाव तुम्हारे भीतर प्रगाढ़ हो जाए कि जब तुम चाहोगे, तभी हो सकता है। तुम्हारी चाहत की पूर्णता चाहिए। तुम्हारी चाहत में त्वरा चाहिए। तुम्हारी चाहत में बल चाहिए।

और जब तुम्हारा मिलन होगा, तब तुम चकित होओगे: तुम ही मिलने को उत्सुक नहीं थे; वह भी उत्सुक था। सदियों तुम ही नहीं तड़पे, तुमने उसे भी तड़पाया।

जब सुना तुम भी मुझे याद किया करते हो

क्या कहूं, हद न रही कुछ मिरी हैरानी की!

जान कर तुम कितने न चकित हो जाओगे उस दिन, जिस दिन तुम पाओगे: परमात्मा भी तुम्हारी याद कर रहा था; अस्तित्व तुम्हें पुकार रहा था।

हम जिससे दूर हो गये हैं, हमने भी कुछ नहीं खोया है, उसने भी कुछ खोया है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं: अभी घटना घट सकती है। अगर अकेले तुम्हारी ही यात्रा की बात होती, तो शायद कभी नहीं घट सकती थी। मैं तुम्हारे प्रश्न का ऐसा ही अर्थ लेता हूं।

तुम यह सोच रहे हो कि अपने ही प्रयास से करना है, परमात्मा का कुछ पता नहीं। सोचता भी हो, न सोचता हो! उसे हमारा पता भी हो, न पता हो! उसे रस भी हो हमसे मिलन में या न हो। हम ही को चलना है। तो फिर रास्ता बड़ा लंबा हो जायेगा। रास्ता अकेला ही जायेगा, इसीलिए लंबा हो जायेगा।

लेकिन सारे संतों के अनुभव का सार यही है कि जिसने भी उसे मिलन पाया उसने लौट कर यही कहा: हम ही उसकी याद नहीं करते थे; वह भी हमें पुकारता था।

इसलिए कहता हूं: ध्यान दो, गुनो। अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है। यह बात तुमसे मैं दोहराये जाऊंगा, ताकि यह पड़ती रहे चोट, पड़ती रहे चोट; बूंद-बूंद सागर बन जाता है।

पांचवां प्रश्न: मैं जप, तप, भक्ति, ध्यान--सब कर चुका हूं। लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला। अब आपकी शरण आया हूं। मुझे उबारें।

तुमने जो भी किया होगा--किया नहीं। बस, ऐसे ही टाल दिया होगा। नहीं तो जप, तप, भक्ति, ध्यान सब कर लेते और न मिलता! अरे, एक ही कर लेते तो मिल जाता। इतनी दवाइयां पीने की जरूरत न थी। ऐसी कोई बीमारी नहीं है तुम्हारी।

तुम कहते हो कि तुम पूरा दवाखाना पी गए!

इतनी जरूरत ही न थी; इतने कुएं नहीं खोदने थे।

जलालुद्दीन रूमी एक दिन अपने शिष्यों को लेकर आश्रम के पास के खेत में गया और उसने अपने शिष्यों को कहा कि कुछ पाठ सीखो। देखो, यहां क्या हो रहा है!

खेत का किसान कुछ झक्की रहा होगा। उसे कुआं खोदना था, तो उसने एक कुआं खोदा--आठ, दस फीट खोदा; फिर उसने कहाः अरे यहां पानी नहीं मिलता! तो उसनने दूसरा कुआं खोदा। ऐसे वह कोई दस कुएं खोद चुका। पूरा खेत ही खराब कर डाला। और अब ग्यारहवां खोद रहा था!

जलालुद्दीन ने कहा, जरा इस किसान से कुछ सीखो। अब यह ग्यारहवां खोद रहा है। और आठ-दस फीट फिर खोदेगा और फिर पायेगा कि पानी नहीं मिलता। आठ-दस फिट में कहीं पानी मिलता है! पचास फीट जाना चाहिए। और अगर यह एक ही कुआं खोदता रहता, तो कभी का पानी मिल गया होता। मगर वह खोदता है एक; छोड़ देता है बीच में। देखता है कि मिट्टी ही मिट्टी आती जाती है; पानी तो आता नहीं। पहले मिट्टी ही आती है।

सच तो यह है कि जब तुम कुआं खोदते हो, तो पहले तो कूड़ा-करकट हाथ आते हैं। फिर रूखी मिट्टी हाथ आती है। फिर गीली मिट्टी हाथ आती है। पानी की खबर मिलने लगी। जब से मिट्टी गीली होती है--पानी की खबर मिलने लगी।

जब से तुम्हारी आंखों में आंसू आने लगते और हृदय गीला होने लगता--पानी की खबर मिलने लगी।

फिर पानी भी आता है, तो पीने-योग्य नहीं होता। गंदा होता है; मटमैला होता है।

मगर जब पानी आ गया, तो पीने-योग्य भी आ जायेगा। खोदे जाओ। फिर जल्दी ही निर्मल झरने उपलब्ध हो जाते हैं। मगर खुदाई चाहिए।

मुझे ऐसा लगता है...कि तुम कहते होः मैंने जप, तप, भक्ति ध्यान--सब किया। तुमने कई गड्ढे खोदे, लेकिन कुआं नहीं खोदा। लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला।

तो तुम्हारी शिकायत ऐसी लगती है, जैसे परमात्मा ने तुम्हें धोखा दिया! कहीं कुछ नहीं मिला!

अब तुम यहां आ गये हो, चलो हरजा नहीं। यहां कुआं खोदना, गड्ढा मत खोदना।

और तुम पहले से होशियारी कर रहे हो! अब तुम कह रहे हो। आपकी शरण आ गया हूं, मुझे उबारें। तुम यह कह रहे हो कि अब मैं कुआं खोदूं।

तुम अपनी पुरानी तरकीब छोड़ो। कुआं तुम्हीं को खोदना पड़ेगा। मैं इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि बीच में छोड़ने न दूंगा। भागने लगोगे; पुरानी आदत; इतने जपत्तप तुमने किए हैं; दो-चार दि बाद तुम कहोगे कि अब चले!

इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि रोकने की पूरी कोशिश करूंगा। कुआं तो तुम्हीं को खोदना पड़ेगा।

यह कुआं ऐसा है कि दूसरे के खोदे नहीं बनता। यह तुम्हारी आत्मा का कुआं है। यह तुम्हें अपने भीतर खोदना है।

त्वरा चाहिए। एकजूट भाव चाहिए। सातत्य चाहिए। धीरज चाहिए। प्रतीक्षा चाहिए। प्रार्थना चाहिए। और लग गये एक बार तो लौटने की जल्दबाजी नहीं चाहिए।

क्या जल्दी है लौटने की? लौट कर भी क्या मिलेगा?

बहुत लोग हैं, यही करते रहते हैं। दो दिन कुछ किया; चार दिन कुछ किया। बड़ी जल्दी में हैं! एकदम चाहते हैं। जल्दबाजी के कारण कहीं कुछ बात पूरी नहीं हो पाती। किसी पौधे की ठीक-ठीक जड़ें नहीं निकल पातीं।

तुमने छोटे बच्चों को देखा। कभी-कभी आम की गुठली को गाड़ आते हैं। मगर चैन नहीं उनको! थोड़ी देर बाद खोद कर देखते हैं कि अभी तक आम का पौधा निकला कि नहीं! रात नींद नहीं आती। कई दफा खयाल आ जाता है कि पौधा शायद निकल आया हो! सुबह उठ कर फिर खोद कर देख लेते हैं।

पौधा कभी न निकलेगा। जरा जमीन में गुठली को पड़े तो रहने दो; गलने तो दो। उघाड़-उघाड़ कर बार-बार मत देखो।

पानी की बहुत जल्दी मत रखो। मिलेगा। तुम अपना श्रम पूरा करो। तुम अपी तरफ से कमी मत करो।

फिर इतनी दवाइयों की जरूरत भी नहीं है। कभी-कभी बहुत दवाइयां फायदे की जगह नुकसान कर जाती हैं। और जो दवाई तुम्हारे लिए न हो, वह दवाई हानिकर होती है।

अब तुमने जप, तप, ध्यान, भक्ति सब कर डाला। जरा यह तो सोचना चाहिए कि मेरे अनुकूल क्या है। मेरी तरंग किससे बैठती है। मेरे भाव की गांठ किससे बंधती है। जरा इसे देखना चाहिए। जल्दी ही खोदने मत लग जाओ।

जरा देख भी तो लो कि यहां जल मेरे लिए मिलेगा? या जो जल मिलेगा, वह मेरे लिए होगा? थोड़ा देख कर, थोड़ा परख कर, थोड़ा समझपूर्वक...।

अगर तुम्हारे भीतर प्रार्थना सरलता से उठती हो, सुगमता से उठती हो, श्रद्धा का बहाव सहज हो; संदेह करने में तुम्हें कठिनाई होती है, और श्रद्धा सरलता से आती हो, तो भक्ति, प्रार्थना, पूजा, अर्चना--उस तरफ लगो।

अगर तुम्हें संदेह बड़ी तीव्रता से आता हो, श्रद्धा बिठानी मुश्किल पड़ती हो; लाख उपाय करो, श्रद्धा खिसल-खिसल जाती हो; पैर फिसल-फिसल जाते हों, तो फिर तुम भक्ति की फिक्र छोड़ो। फिर ध्यान। फिर बोध का मार्ग पकड़ो, जहां श्रद्धा अनिवार्य शर्त नहीं है।

लेकिन पहले अपनी जरा ठीक से पहचान कर लो। इसके पहले कि तुम यात्रा पर निकलो, थोड़ा अपना आत्म-निरीक्षण कर लो। और कठिन नहीं है यह बात। तुम अगर जरा ही शांत बैठ कर विचार करोगे, तो तुम्हें यह बात दिखाई पड़ने लगेगी कि तुम्हारे लिए क्या उचित और अनुकूल होगा।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।
पपिहे पर वज्र गिरे, फिर भी उसने अपनी
पीड़ा को किसी दूसरे जल से नहीं कहा
लगा गया चांद को दाग, मगर अब तक निशि का
आंगन तजकर वह और न जाकर कहीं रहा।

हर एक यहां है अडिग, अचल अपने प्रण पर
फिर तू ही क्यों भटका फिरता है इधर-उधर
मत बदल-बदल कर राह सफर तय कर अपना।
हर पथ मंजिल की दूसरी घटाता है।
हर देहरी पर मत अपी भक्ति चढ़ा पागल!
हर मंदिर का भगवान न पूजा जाता है!
हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।

पहले ठीक से पहचान तो लो। जहर किसी बीमारी में अमृत हो जाता। और किसी बीमारी में अमृत भी जहर हो जाता है।

तुम्हारी बीमारी क्या है?

तुम संदेह की बीमारी से भरे हो, तो ध्यान की औषधि काम आयेगी। फिर तुम श्रद्धा के मार्ग पर न चल सकोगे।

अगर तुम्हारे भीतर श्रद्धा का झरना कलकल बह रहा है, सुगमता से तुम श्रद्धा कर लेते हो; चाहे कोई लूटे, कोई धोखा दे, चाहे कोई कुछ भी तुम्हारे साथ कर ले, फिर भी तुम्हारी श्रद्धा अखंड बनी है, टूटती नहीं, मिटती नहीं, तो फिर भक्ति के रास्ते से तुम ऐसे उतर जाओगे, कि पतवार भी न चलानी पड़ेगी। जैसे पाल खोल देते हैं न नाव का; और बैठ जाते हैं--हवा के रुख को देखकर--और नाव चल पड़ती; हवा ले जाती।

विपरीत मत लड़ो। जो तुम्हारे अनुकूल न हो, उससे मत उलझो। ऐसा लगता है कि तुम उलझे होओगे--व्यर्थ की विपरीतताओं से।

जप, तप, भक्ति, ध्यान सक कर चुका। एक से ही काम हो जाता। इतने द्वार-दरवाजे बदलने की जरूरत नहीं है।

मैं पहली बात तुमसे जो कहना चाहता हूं, वह बुनियादी है, उसके बाद ही ठीक कदम उठते हैं। पहले अपनी पहचान कर लो।

दुनिया में दो तरह के स्वभाव हैं: पुरुष का स्वभाव और स्त्री का स्वभाव। सारा अस्तित्व दो में विभाजित है--स्त्री और पुरुष। और मनुष्य की दुविधा यही है कि मनुष्य का निर्माण दोनों से मिल कर हुआ है। तुम्हारा आधा हिस्सा तुम्हें मां से मिला है और आधा हिस्सा पिता से मिला है। तो तुम्हारे भीतर दोनों मौजूद हैं--स्त्री भी मौजूद है, पुरुष भी मौजूद है। तो कोई पुरुष अकेला पुरुष नहीं है; पुरुष के साथ-साथ स्त्री भी है। और कोई स्त्री अकेली स्त्री नहीं है; स्त्री के साथ-साथ पुरुष भी है। जो अंतर है, वह मात्रा का है। हो सकता है: तुम पचपन प्रतिशत पुरुष हो और पैंतालीस प्रतिशत स्त्री हो। बस, इतना ही अंतर है। या कि तुम साठ प्रतिशत स्त्री हो और चालीस प्रतिशत पुरुष हो। बस, अंतर मात्रा का है; अंतर गुण नहीं है।

इसीलिए तो कभी-कभी ऐसी घटना घट जाती है कि कोई पुरुष था और फिर अचानक रूपांतरण हो जाता है और स्त्री हो गया। कि स्त्री थी, और अचानक रूपांतरण हो गया और पुरुष हो गया।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि दिक्कत नहीं है। हारमोनल परिवर्तन से स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाया जा सकेगा। और भविष्य में, इस सदी के बीतते-बीतते बहुत लोग इस परिवर्तन से गुजरेंगे। क्योंकि ऊब जाते लोग! स्त्री रहते-रहते ऊब गये; पुरुष हो गये। पुरुष रहते-रहते ऊब गए; स्त्री हो गए। ज्यादा स्वतंत्रता हो जायेगी। एक ढंग का जीवन देख लिया, दूसरे ढंग का जीवन देख लें।

यह रूपांतरण संभव है, क्योंकि तुम दोनों हो। मनुष्य बायसेक्सुअल है।

इसका मतलब यह हुआ कि धर्म के जगत में भी तुम्हारे भीतर से दो राहें निकलती हैं--एक पुरुष की, एक स्त्री की। पुरुष की राह है ध्यान की, स्त्री की राह है प्रेम की।

तो तुम अपने भीतर ठीक से पहचान लो। और ध्यान रखना: यह तुम मत समझना कि तुम शारीरिक रूप से स्त्री हो, इसलिए तुम्हें अनिवार्य रूप से प्रेम का मार्ग ठीक पड़ जायेगा। ज्यादा संभावना है, मगर अनिवार्य नहीं है। और यह भी मत समझ लेना कि तुम पुरुष हो, शरीर से पुरुष हो, इसलिए तुम्हें ध्यान का मार्ग सुगम पड़ जायेगा। संभावना ज्यादा है, मार्ग सुगम पड़ जायेगा। संभावना ज्यादा है, लेकिन अनिवार्य नहीं है। ठीक से अपने भीतर पहचान करनी पड़ेगी।

बहुत पुरुष हैं, जिनके भीतर बड़ी स्त्रैण कोमलता है। और बहुत स्त्रियां हैं, जिनके भीतर बड़ी पुरुष कठोरता है।

कुछ भी बुरा नहीं है; जैसा है--ठीक है, उसको ठीक से पहचान लो और उसके अनुकूल चल पड़ो। या तो ध्यान--या प्रेम। इन दो में से चुनाव कर लेना है। यह चुनाव एक बार ठीक हो जाए, तो फिर पूरी ताकत लगा दो। यहां-वहां मत भटको। फिर बार-बार गड्ढे अलग-अलग जगह मत खोदो। एक ही दवा काफी है।

और तुम कहते हो: अब आपकी शरण आया, मुझे उबारें। मैं पूरा साथ दूंगा; उबरना तो तुम्हें ही पड़ेगा। क्योंकि इस गड्ढे में तुम गए हो खुद; मैं तुम्हें इस गड्ढे में ले नहीं गया। तुम बिना सहारे इस गड्ढे में गये हो। चाहो तो तुम बिना सहारे भी बाहर आ सकते हो। लेकिन अगर यह कठिन मालूम पड़ रहा हो, तो किसी के हाथ का सहारा पकड़ा जा सकता है। लेकिन फिर भी आना तुम्हीं को बाहर पड़ेगा।

परमात्मा उधार नहीं मिल सकता; किसी और द्वारा नहीं मिल सकता। और अच्छा है--कि किसी और के द्वारा नहीं मिलता। परमात्मा भी उधार मिलने लगता, तो सारा मूल्य खो जाता। जितना तुम श्रम करोगे उसे पाने के लिए, उतना ही आनंद का अनुभव होगा।

अच्छा है कि परमात्मा तक पहुंचने के लिए हमें पहाड़ की चढ़ाई पर से खुद जाना पड़ता है। सब तरह के बोझ अलग कर देने होते हैं। और धूप, गरमी, और वर्षा और शीत--सब सहनी

पड़ती है। अच्छा है कि परमात्मा के शिखर पर ले जाने के लिए कोई हेलिकाप्टर नहीं है, हनीं तो सब मजा चला जायेगा। ऐसा ही तो हो रहा है--प्रकृति में।

समझोः जब तेनसिंग और हिलेरी पहली दफा एव्हरेस्ट पर गये, तो जो आनंद उन्हें अनुभव हुआ होगा, अगर तुम्हें हेलिकाप्टर से ले जाकर एव्हरेस्ट पर उतार दिया जाए, तो तुम्हें वह आनंद अनुभव नहीं होगा। क्योंकि आनंद का, निन्यानबे प्रतिशत तो यात्रा में है। मंजिल तो यात्रा की ही पूर्णाहुति है। यात्रा के बिना पूर्णाहुति कैसी? वह निन्यानबे प्रतिशत खो गया, तो पूर्णाहुति कैसी?

तुम अगर हेलिकाप्टर से उतार दिए गए--एव्हरेस्ट पर, तो तुम्हें आखिरी एक प्रतिशत मिलेगा। वह निन्यानबे प्रतिशत तो खो गया। और निन्यानबे प्रतिशत के कंधे पर बैठ कर यह एक प्रतिशत शिखर पर पहुंचता था। यह जमीन पर पड़ा रह जायेगा; इसका कोई मूल्य नहीं है।

तुम ऐसा ही समझो कि तुम पानी गरम कर रहे हो। तुमने निन्यानबे डिग्री तक पानी गरम किया; अभी भी भाप नहीं बना है। फिर सौ डिग्री तक पानी गरम हुआ और छलांग लगी; भाव बना। तुमने कहा, अरे! सौवीं डिग्री पर बनता है भाप; एक ही डिग्री की तो बात है! निन्यानबे से सौवीं डिग्री--एक ही डिग्री पर भाप बनता है। मगर यह एक डिग्री निन्यानबे के बाद आनी चाहिए। अगर तुम एक डिग्री के कंधे पर बैठ कर आनी चाहिए।

मंजिल यात्रा की पूर्णाहुति है। तो जितनी कठोर, जितनी श्रम साध्य यात्रा है, और जितने आनंद और उत्सव से गीत गा कर तुम पूरा, करोगे, उतने ही चरम शिखर पर तुम पहुंचोगे।

परमात्मा तक जाने के लिए कोई हेलिकाप्टर नहीं है। हो भी नहीं सकता। इसलिए मैं तुम्हें नहीं उबार सकूंगा। तुम उबरोगे, तो उबरोगे। बुद्ध ने कहा हैः बुद्ध पुरुष इशारा कर सकते हैं, चलना ही तुम्हीं को पड़ेगा।

आखिरी प्रश्नः आप कहते हैं कि उदासी ठीक नहीं है, लेकिन मृत्यु के रहते उदासी से मुक्त कैसे हुआ जा सकता है?

दृष्टि की बात है। अभी मृत्यु कहां! अभी तो तुम जीवित हो। एक बात तो पक्की हैः अभी तुम मेरे नहीं। अगर जीवन के रहते तुम जीवन के आनंद से नहीं भरे तो, फिर मृत्यु की बात उठा कर...।

अभी मृत्यु हुई नहीं है; होंगी कभी। और कौन जाने--होगी कि नहीं होगी! क्योंकि जानने वाले तो कहते हैंः मृत्यु बड़े से बड़ा झूठ है। होता ही नहीं; स्वभावगत मात्र है। शरीर तो मरता नहीं, क्योंकि शरीर मरा हुआ है। और आत्मा मर नहीं सकती, क्योंकि आत्मा अमर है। दोनों का संयोग टूटता है। संयोग टूटने का नाम मृत्यु है; बस।

ऐसी ही समझो कि सुई धागा, अलग-अलग हो गये। बस इतना। इससे ज्यादा नहीं। सुई भी है; धागा भी है। फिर पिरो लोगे। अगर थोड़ी वासना है, तो फिर धागा सुई में पिरो जाएगा। फिर नया जन्म ले लोगे।

जीवन शाश्वत है। देह जीवित नहीं है। और जो तुम्हारे भीतर जीवित है, वह कभी मृत नहीं हो सकता। मगर यह तो जाननेवालों की बात हुई। तुम्हें भय लगा है। मगर एक बात तो समझो; अभी मौत आयी नहीं। अभी तो जीवन को जी लो।

तुम कहते हो: मौत के रहते आदमी कैसे उदास न हो? मैं कहता हूं: जीवन के रहते तुम उदास कैसे हो? अगर जीवन के रहते तुम उदास हो,तो मौत का तो सिर्फ तुम बहाना खोज रहे हो। इधर जीवन बरस रहा है; सब तरफ वसंत है; वृक्षों पर फूल खिले हैं; पक्षियों के कंठों में गीत हैं। सब तरफ चांदत्तारे नाच रहे हैं--और तुम बैठे हो उदास! तुम कहते हो: मौत के रहते...।

मौत कहां है कभी? तुम तो नहीं मरे! जब मरो, तब देख लेना। जब मरो, तब उदास हो लेना। अभी तो नाचो। और मैं तुमसे यह कहता हूं: अगर तुम अभी नाचो, तो तुम्हारा नाच तुम्हें मृत्यु से मुक्त कर देगा। अगर तुम उत्सव में पूरे डूब जाओ, तो तुम जा लोगे अमृत को।

अमृत उत्सव में ही जाना जाता है; गहन आनंद के क्षण में ही पहचाना जाता है। उसे पहचान लिया, तो फिर कोई मृत्यु न होगी।

तुम कहते हो: मृत्यु के रहते कैसे उदास न हों? मैं कहता हूं: जीवन है; जीवन के परम नृत्य में सम्मिलित हो जाओ। जीवन को जानते हो तुम जान लोगे: मृत्यु होती नहीं।

यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत अभी गाना ना।

वह जो जानता है, वह तो मृत्यु के क्षण में भी तुमसे कहेगा--कि ठहरो। बुद्ध ने कहा: मैं जाता हूं। शिष्य रोने लगे। बुद्ध ने कहा: यह कैसी बात! चालीस वर्षों तक निरंतर यही समझाया कि मृत्यु नहीं होती। फिर भी तुम रोने लगे! तुमने मुझे सुना या नहीं? उनका निकटतम शिष्य आनंद भी छाती पोटकर रोने लगा। बुद्ध ने कहा: आनंद, तू पागल हुआ है। चालीस वर्ष छाया की तरह मेरे पीछे रहे; मेरी हर बात सुनी, फिर भी तू रोता है! मेरे जाने से क्या होगा? कौन जा रहा है? कौन जाता है? न कभी कोई गया; न कभी कोई जाता है।

यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत अभी गाना ना।
चाहना जो चाहना
पर उलाहना मन में ओ मीत कभी लाना ना।
वह दूर-दूर सुनो, कहीं लहर
लाती है और भी दूर--दूर--दूरता का स्वर;
उसमें हां मोह नहीं,
पर कहीं विछोह नहीं,
व गुरुतर सच युगातीत
रे भुलाना ना।

मृत्यु के क्षण में, जिसने जीवन को खूब जाना है, भरपूर जीया है, वह तो सुनेगाः
वह दूर--दूर, कहीं लहर
लाती है और भी दूर--दूर--दूरता का स्वर।
वह तो सुनेगाः आ गया परम का स्वर, परम का संगीत, परमात्मा की पुकार।
उसमें हां मोह नहीं
पर कहीं विछोह नहीं
वह गुरुतर सच युगातीत
रे भुलाना ना।
यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत अभी गाना ना
नहीं भोर संझा
उमगते-निमगते
सूरज, चांद, तारे
नहीं वहां
उझगते-झिझकते
डगमग किनारे
वहां एक अंतःस्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे
यही ज्योति कवच
है हमारा निजी सच
सार जो हमने पाया
गढ़ा, चमकाया, लुटाया
उसकी सुप्रीत छाया से बाहर ओ मीत
अब जाना ना
कोई उदास गीत ओ मीत अभी गाना ना।
जिसने जीवन को जीया है--भरपूर जीया है, बेझिझक जीया है, समग्र भाव से जीया है, मौत के क्षण में वह देखेगा; जा रहा हूं उस लोक में--
नहीं भोर संझा
उमगते-निमगते...।
जहां न सुबह होती, न सांझ। परिवर्तन नहीं है।
सूरज, चांद, तारे
नहीं वहां
उझगते-झिझकते
डगमग किनारे

वहां एक अंतःस्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे।
वहां तो भीतर का सूरज जलता है।
वहां एक अंतःस्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे
यही ज्योति कवच
है हमारा निजी सच
यही हमारी निजी सत्यता है; यही हमारा प्रामाणिक सत्य है। अमृत हमारा प्रामाणिक सत्य है।
वेद कहते हैंः अमृतस्य पुत्रः। हे अमृत के पुत्रों, मृत्यु के झूठ में मत पड़ जाना।
यही ज्योति कवच
है हमारा निजी सच
सार जो हमने पाया
गढ़ा--चमकाया--लुटाया
उसकी सुप्रीत छाया से बाहर से मीत
अब जाना ना।
जिसने जाना है जीवन को, जो देखेगा, मृत्यु में गहरी आंख से, वह कहेगाः अब जो एक प्रीतिपूर्ण छाया पड़ रही है, अब इसके बाहर नहीं जाना है। मृत्यु उसके लिए समाधि है।
सार जो हमने पाया
गड्ढा--चमकाया--लुटाया
उसकी सुप्रीत छाया से बाहर ओ मीत।
अब जाना ना।
कोई उदास गीत ओ मी, अब गाना ना
चाहना जो चाहना
पर उलाहना मन में ओ मीत कभी लाना ना।
जिन्होंने जाना है, वे तो कहेंगेः मृत्यु से कोई शिकायत नहीं है; कोई उलाहना नहीं है। मृत्यु कुछ छीनती नहीं है। अगर तुम सजग हो, तो मृत्यु कुछ दे जाती है। मृत्यु इस जीवन का अंत नहीं है-- महाजीवन का प्रारंभ है।
और तुम कहते होः मृत्यु के रहते हम उदास कैसे न हों!
मृत्यु है कहां? मृत्यु तुमने मान रखी है। और तुम्हारी मान्यता तब तक न टूटेगी, जब तक तुम जियो न। इसलिए कहता हूंः उमंग से जियो; मस्ती से जियो; गीत गुनगुनाते जियो; तुम्हारा जीवन एक नृत्य हो--एक उत्सव हो। उस उत्सव की चोट में ही सारी मृत्यु पिघल कर बह जाती है और तुम्हारा जो निजी सच है, यह बिखर कर सामने आ जाता है।

फिर तुम मृत्यु के द्वार पर परमात्मा को अपने से मिलता हुआ पाओगे। मृत्यु का द्वार खुलेगा। और तुम पाओगेः तुम परम ज्योति में प्रवेश पर रहे हो। कोई शिकायत न होगी; धन्यवाद होगा। प्रार्थना-पूजा का भाव होगा--मृत्यु के क्षण में भी। क्योंकि तुम मंदिर के द्वार पर खड़े होओगे।

जियो; जो ठीक से जी लेता, उसके लिए मृत्यु नहीं है। और जो ठीक से नहीं जीता, वह रोज-रोज मरता है, हजार बार मरता है, व्यर्थ ही मरता है।

आज इतना ही।

प्रभु की अनुकंपा

पांचवां प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १५ मई, १९७७

मील कद करी थी भलाई जीया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका।।
गीव कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,
ब्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका।।
नाग केद माला लैके बंदगी करी थी बैठ,
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका।।
एतै बदराहों की तम बदी करी थी माफ,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।
भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिके साथ।।
राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।
पानी तहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

बाबा मलूकदास एक अवधूत हैं। अवधूत का अर्थ है--संन्यास की परम अवस्था जहां न कोई नियम शेष रह जाते हैं--न कोई मर्यादा; जहां कुछ शुभ है, और न कुछ अशुभ; जहां व्यक्ति जीता--सहज समाधि से; जहां जो हो, वही ठीक है; जहां स्वीकार संपूर्ण है; जहां कोई निषेध नहीं रहा; क्या करना, क्या न करना--ऐसी धारणाएं, व्यवस्थाएं, नहीं रहीं; जहां व्यक्ति फिर से छोटे बच्चे की भांति हो जाता है।

अवधूत की दया को परम-दशा कहा है; वह पुनर्जन्म है; वह नया जन्म है।

एक जन्म मिलता है मां से, फिर उस जन्म के साथ आई हुई निर्दोषता कोमलता, पवित्रता--सब खो जाती है--समाज की भीड़ में, ऊहापोह में, संसार के जंजाल में। बेईमानी सीखनी पड़ती है, धोखा-घड़ी सीखनी पड़ती है, अविश्वास सीखना पड़ता है। तो जिस श्रद्धा को लेकर

मनुष्य पैदा होता है, वह धूमिल हो जाती है। फिर उस धूमिल दर्पण में परमात्मा की छबि नहीं बनती। और हजार-हजार विचारों की तरंगें--छबि बिखर-बिखर जाती है। जैसे कभी तरंगें उठी झील में चांद का प्रतिबिंब बनता है; तो बन नहीं पाता; लहरों में टूट जाता है; बिखर जाता है। पूरी झील पर चांदी फैल जाती है। लेकिन चांद कहां है, कैसा है--यह पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

झील चाहिए शांत, झील चाहिए निर्मल, तो चांद का मुखड़ा दिखाई पड़ता है। ऐसा ही जब चित्त की झील निर्मल होती है, तो परमात्मा का रूप दिखाई पड़ता है।

परमात्मा को जाने के लिए शास्त्र की जानकारी नहीं। शब्द से मुक्ति चाहिए। और परमात्मा को जानने के लिए बहुत गणित और तर्क नहीं--निर्दोष मन चाहिए; फिर से एक जन्म चाहिए।

अवधूत का अर्थ है: जो फिर से जन्मा और जिसने फिर से बालक-जैसी सरलता को उपलब्ध कर लिया।

सारा योग, सारी भक्ति, सारे ध्यान इतना ही करते हैं कि जो गंदगी और जो कचरा समाज तुम पर जमा देते हैं, उसे हटा देते हैं। उनका प्रयोग नकारात्मक है।

योग या भक्ति तुम्हें कुछ देते नहीं, समाज ने जो दे दिया है, उसे छीन लेते हैं। तुम फिर वैसे के वैसे हो जाते हो, जैसा तुम्हें होना था।

तो निश्चित ही अवधूत की परमदशा में न तो कुछ पुण्य बचता है, न कोई पाप बचा है। अवधूत की परमदशा में तो फिर से बालपन लौटा। और यह बालपन गहरा है--पहले बालपन से ज्यादा गहरा है। क्योंकि पहला बालपन अगर बहुत गहरा होता, तो नष्ट न हो सकता था। नष्ट हो गया। संसार के झंझावात ने झेल सका। कच्चा था; अप्रौढ़ था। सरल तो था, लेकिन बुनियाद बहुत मजबूत न थी उस सरलता की। जरा से हवा के झोंके आये और झील कंप गई। जरा मुसीबतें आई और चित्त उद्विग्न हो गया। वृक्ष तो था, लेकिन जड़ें नहीं थी बहुत गहरी, तो जरा-जरा से हवा के झोंके उसे उखाड़ गये।

दूसरा जो बचपन है, वह ज्यादा गहरा होगा, क्योंकि स्वयं उपलब्ध किया हुआ होगा; जागरूक होगा। दूसरा जो बचपन है, उसी को हमने इस देश में द्विज कहा है--दूसरा जन्म।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं...। और यह बंटवारा बहुत महत्वपूर्ण है। एक तो वे, जो एक ही बार जन्मते हैं; उनको ही पारिभाषिक अर्थों में शूद्र कहा जाता है--जो एक ही बार जन्में हैं; जिन्होंने पहले बचपन को ही सब मान लिया और समाप्त हो गये और जिन्होंने दुबारा जन्म लेने की कोई चेष्टा न की।

जो दुबारा जन्म लेता है--द्विज--टवाइस--वही ब्राह्मण है; वही ब्रह्म को पाने का हकदार है।

तो एक हैं: एक ही बार जन्मे--वंस बार्न; और दूसरे हैं: दुबारा जन्मे--द्विज--टवाइस बार्न।

अवधूत दुबारा जन्मा है। तो उसके शरीर की उम्र हो भी सकती है काफी हो--बूढा हो, लेकिन उसके चित्त में कोई उम्र नहीं है, कोई समय नहीं है। उसका चित्त समय से मुक्त है। उसका चित्त छोटे बच्चे की भांति है।

जीसस एक बाजार में खड़े हैं और किसी ने पूछा...। जिसने पूछा, वह धर्मगुरु है; कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में कौन प्रवेश करेंगे? कौन न होगे हकदार, कौन होंगे मालिक?

स्वभावतः उस रब्बी ने सोचा होगा; जीसस कहेंगेः तुम। क्योंकि वह धर्मगुरु था; धर्म का ज्ञाता था; प्रतिष्ठित था। लेकिन जीसस ने उस की तरफ इशारा नहीं किया। पास में एक दूसरा आदमी खड़ा था, जिसकी संत की तरह प्रसिद्धि थी कि वह बड़ा पवित्रात्मा है, पुण्यात्मा है। उस ने भी गौर से जीसस की तरफ देखा की शायद वे मेरी तरफ इशारा करेंगे, लेकिन नहीं; जीसस ने उस की तरफ से भी नजर हटा ली। कोई धनी खड़ा था; कोई प्रतिष्ठा था; भीड़ में सभी लोग थे, लेकिन जीसस की नजर जा कर रुकी एक छोटे से बच्चे पर। उन्होंने उसे कंधे पर उठा लिया और कहा, जो इस बच्चे की भांति होगे, केवल वे ही...।

अवधूत का अर्थ हैः जो छोटे बच्चे की भांति है। तो अवधूत का जो संबंध है परमात्मा से, वह ठीक वैसा ही होगा, जैसा छोटे बच्चे का मां से होता है। परमात्मा उस के लिए कोई बहुत बड़ी और बहुत दूर की बात नहीं है। परमात्मा के साथ उसका नाता शिष्टाचार का नहीं है--प्रेमाचार का है। और प्रेम कोई सीमा मानता? कि कोई मर्यादा मानता?

छोटा बच्चा मां से लड़ता भी है; छोटा बच्चा मां से उलझता भी है; मां से रूठता भी है; नाराज भी होता है; उछल-कूद भी मचाता है; मां को मजबूर भी करता है। अगर उसे बाहर जाना है, तो बाहर जाना है। फिर वह सब नियम इत्यादि तोड़ कर मां को परेशान करता है। छोटे बच्चे का जो संबंध मां से हैं, वही अवधूत का संबंध अस्तित्व से है। अस्तित्व यानी परमात्मा।

इन सूत्रों को तभी समझा पाओगे, जब इस संबंध को खयाल में ले लो। नहीं तो ये सूत्र थोड़े अजीब मालूम पड़ेंगे। थोड़े अशिष्ट भी मालूम पड़ सकते हैं। शिष्टाचार की यहां कोई बात नहीं है।

शिष्टाचार--खयाल रखना--औपचारिक है। जिसने तुम्हारा शिष्टाचार का संबंध है, उनसे तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। शिष्टाचार संबंध थोड़े ही है। शिष्टाचार तो, संबंध नहीं है--इस बात को छिपाने का उपाय है। तो जब तक दो मित्रों के बीच शिष्टाचार चलता है, तुम जानना कि मित्रता अभी बनी नहीं। जब दो मित्रों के बीच शिष्टाचार खो जाता है, जब दो मित्र एक दूसरे को प्रेम में गाली भी देने लगते हैं, तभी जानना कि मित्रता अब गहरी हुई। अब गाली भी मित्रता को उखाड़ न सकेगी।

जब मित्र शिष्टाचार के सारे नियम तोड़ देते हैं, तो ही जानना कि हार्दिक रूप से करीब आये।

अगर तुम भगवान के साथ शिष्टाचार का जीवन जी रहे हो, तो तुमने भगवान को जाना नहीं, पहचाना नहीं। उसके साथ तो नाता प्रेम का ही हो सकता है--शिष्टता का नहीं; सभ्यता का नहीं। उसके साथ तो नाता हार्दिक हो सकता है।

ये सूत्र हृदय के सूत्र हैं। जैसे एक छोटा बच्चा अपनी मां से झगड़ रहा हो, ऐसे मलूकदास परमात्मा से झगड़ रहे हैं।

इसके पहले कि हम सूत्रों में जाए, कुछ और बातें खयाल में ले लेनी जरूरी है।

दूसरी बातः कर्म का सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण सिद्धांत है, लेकिन ज्ञान के मार्ग पर--कर्म के सिद्धांत का अर्थ है कि जो तुमने किया है, वही तुम पाओगे; जो बोया है, वही काटोगे। बुरा किया है, तो बुरे परिणाम होंगे; भला किया है, तो भले परिणाम होंगी। यह बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, न्याययुक्त मालूम पड़ती है। इसमें कहीं कोई भूल-चूक नहीं है; यह गणित बहुत साफ है।

होना भी ऐसा चाहिए कि जिसने बुरा किया है, वह बुरा भोगे; जिसने भला किया है, वह भला पाये। जिसने दूसरों को सुख दिया है, वह सुख पाये; और जिसने दूसरों को दुःख दिया है, वह दुःख पाए। इसमें कहीं कोई गैर-इन्साफी नहीं है। अगर इससे विपरीत होता हो, तो फिर जगत में कोई इंसाफ नहीं कहा जायेगा। अगर यहां बुरे सुखी हो और भले दुःखी हों, तो जगत की व्यवस्था अन्यायपूर्ण है।

कर्म का सिद्धांत न्याय का सिद्धांत है। न्याय के तराजू पर प्रत्येक व्यक्ति तौला जायेगा; और कोई विशिष्ट नहीं है, और कोई अपवाद नहीं है। न्याय किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगा। कर्म का सिद्धांत निष्पक्ष सिद्धांत है। वह गणित की खोज है; तर्क की खोज है। कर्म का सिद्धांत निष्पक्ष सिद्धांत है। वह गणित की खोज है; तर्क की खोज है। और हमें भी ठीक लगेगा। लेकिन भक्ति के मार्ग पर कर्म के सिद्धांत की कोई जगह ही नहीं है। और तुम जानकर चकित होओगे कि भक्त किसी दूसरी ही दिशा से यात्रा करते हैं।

भक्त कहते हैंः कर्म से हम जायेंगे स्वर्ग; ठीक, अच्छा करेंगे, तो स्वर्ग मिलेगा; बुरा करेंगे, तो नरक मिलेगा; लेकिन परमात्मा कैसे मिलेगा? अच्छा करने से सुख मिल जायेगा, बुरा करने से दुःख मिल जायेगा; लेकिन परमात्मा कैसे मिलेगा? परमात्मा तो न अच्छा है, न बुरा है। परमात्मा दोनों के पार है। परमात्मा तो अतीत है।

परमात्मा को तुम अच्छा हनीं कह सकते, न बुरा कह सकते। अच्छा कहोगे, तो परमात्मा में भी द्वंद्व हो जाएगा। अच्छा-बुरा कहने के कारण ही तो लोगों को शैतान भी खोजना पड़ा है। क्योंकि परमात्मा को अच्छा कहते हो, तो फिर बुरा कहां जायेगा? बुरा किसके सिर जायेगा?

तो जिन धर्मों ने परमात्मा को अच्छा कहा है, जैसे ईसाइयत या इसलाम, या यहूदी, उन धर्मों को एक और बात खोजनी पड़ी; फिर बुरे के लिए भी कोई स्रोत खोजना पड़ा। बुरा कहां से आयेगा?

परमात्मा से अच्छा-अच्छा आ रहा है, सोना परमात्मा से बरस रहा है; और मिट्टी--और जीवन का नरक, और जीवन की विपदायें, और जीवन के कष्ट? सुबह तो परमात्मा से आ रही है, तो अंधेरी रात? अंधेरी रात को भी जन्म देने वाला कोई स्रोत चाहिए, नहीं तो बात बड़ी बेबूझ हो जायेगी। तो फिर एक शैतान खड़ा करना पड़ता है।

लेकिन इससे कुछ बात हल होती नहीं; क्योंकि शैतान कहां से आता है?
तो ईसाइयत भी मानती है, इसलाम भी मानता है कि वह भी परमात्मा से आता है। वह भी देवदूत है, जो भ्रष्ट हो गया। इसका तो मतलब हुआ कि शैतान के पहले भी भ्रष्ट होने की व्यवस्था थी! अर्थात शैतान ही भ्रष्टता का स्रोत नहीं हो सकता, क्योंकि शैतान खुद भ्रष्टता से पैदा हुआ। एक देवदूत भ्रष्ट हुआ; तो भ्रष्ट होने की संभावना तो देवदूत के होने के पहले थी। इसलिए ईसाइयत, यहूदी, इसलाम--तीनों के पास एक बड़ी से बड़ी झंझट है, जिसको वे हल नहीं कर पाते। वह झंझट यही है कि शैतान को कैसे समझायें!
शैतान भी परमात्मा ने पैदा किया; शैतान भी परमात्मा से आया, तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम शैतान से, कहते हो, रात आई। अंततः तो परमात्मा से ही रात आई। परमात्मा से शैतान आया--शैतान से रात आई। परमात्मा से शैतान आया--शैतान से पाप आया, बुराई आई। तो अंततः तो जिम्मेदार परमात्मा ही होगा।
इन अर्थों में भारत की दृष्टि, परमात्मा के संबंध में बहुत अनूठी और साफ है। सब परमात्मा से आया है--बुरा भी, भला भी। इसलिए परमात्मा दोनों के पार है। न तो हम परमात्मा को भला कह सकते, न बुरा कह सकते।
तो भक्त कहते हैं: भला करेंगे, तो भले हो जायेंगे; सज्जन हों जायेंगे; बुरा करेंगे, तो बुरे हो जायेंगे, दुर्जन हो जायेंगे। लेकिन संत कैसे होंगे। संतत्व का तो अर्थ है: भले और बुरे के पार। तो भला कर करके भले के पार कैसे होओगे? और बुरा कर करके बुरे के पास कैसे होओगे?
फिर एक बात और समझ लेने जैसी है कि जब भी तुम सोचते हो कि मैंने भला किया या बुरा किया, तो तुम्हारा मैं मजबूत होता है। बुरा करने से भी मजबूत होता है; भला करने से भी मजबूत होता है।
तुमने खयाल किया: जब तुम थोड़ा भला करते हो, तो बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बतलाते हो। पांच रुपए क्या दे दिए दान में, तुम पचास बतलाते हो। फिर अगर कोई ज्यादा न दे रहा हो, तो पांच-सौ बतलाने लगते हो!
और यह तुम खयाल रखना कि बुराई के साथ भी यही बात है। तुम जा कर कारागृह में देखो। वहां जिस आदमी ने पांच सौ की चोरी की है, वह पांच हजार की बतलाता है। कारागृह में कैदियों से पूछो; कैदी भी एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर बताते हैं--कि अरे, तू क्या जब काटता है! यह भी कोई बात है। हम डाका डालते हैं।
कोई किसी को मारपीट कर जेल में आ गया है, तो उसकी कोई कीमत थोड़े ही होती है। जहां बड़े हत्यारे बैठे हों...!
मैंने सुना है: एक जेलखाने में एक नया यात्री आया--एक नया कैदी। जो पहले से कोठरी में आदमी मौजूद था, उसने उससे पड़े ही पड़े पूछा, कितने दिन की सजा हुई है? उसने कहा, केवल पांच साल की। तो उसने कहा, तू दरवाजे पर ही बैठ, क्योंकि हमको पचास साल

रहना है। तू दरवाजे पर ही बैठ। पांच साल तो ऐसे ही चुक जायेंगे। वही से जल्दी से निकल जाना।

कोठरी में ज्यादा भीतर भी नहीं आने दिया--कहां कि तू वहीं दरवाजे के पास ही अपना डेरा रख। तुझे जल्दी जाना है। तू भी क्या करके आया है; कुछ पांच साल! अरे, कुछ करना था, तो कुछ मर्द जैसी बात करता।

बुराई भी आदमी बढ़ा कर बतलाता है; भलाई भी बढ़ा कर बतलाता है! क्योंकि कर्म के साथ कर्ता का भाव है--और कर्ता के भाव में अहंकार है।

भक्ति का शास्त्र कहता है: जहां अहंकार है, वहां परमात्मा से कैसे मिलोगे? तो भक्ति कहती है कि कर्म की बात ही व्यर्थ है। हम अपने कर्म से परमात्मा से नहीं मिलेंगे, उसकी कृपा से मिलेंगे। इस फर्क को खयाल में लेना। यह बहुत बुनियादी, आधारभूत फर्क है।

ज्ञानी कहता है: हम अपने शुभ कर्मों से मिलेंगे। वहां अस्मिता मौजूद है, अहंकार मौजूद है। भक्त कहता है: हमारी क्या बिसात! हमारे किए क्या होगा? हम तो कर करके सब खराब ही किए। हम तो कर करके ही बरबाद हुए--कर्ता बन गये; अहंकार मजबूत हो गया। कभी अहंकार लिया--बड़े पापी होने का; कभी अहंकार लिया--बड़े पुण्यात्मा होने का। कभी दुर्जन, कभी सज्जन; मगर हम रहे अहंकारी ही। कभी इस कोने से उस कोने गये; उस कोने से इस कोने आए; लेकिन अहंकार सदा साथ रहा। उसने छाया की तरह पीछा किया।

हम अपने बल से परमात्मा को पायेंगे, यह बात ही बेहूदी है--भक्त कहता है। भक्त कहता है: उसके प्रसाद से पायेंगे। हमारे प्रयास से नहीं--उसके प्रसाद से; उसकी अनुकंपा होगी--तो। वह राम है, रहीम है; उसकी कृपा होगी--तो।

फर्क समझना। सारा जोर बदल गया।

ज्ञान का जोर है: शुद्ध बनो; भक्ति का जोर है: प्यासे बनो। ज्ञान का जोर है--अपने को पुण्य से भरो; भक्ति का जोर है--अपने को अहंकार से खाली करो।

पुण्य भी भक्त के लिए सोने की जंजीर है। पाप है--लोहे की जंजीर; तुम दोनों को छोड़ दो। भक्त कहता है: तुम दावा मत करो कि मेरे पास कुछ है, जिससे मैं तुझे पाने का हकदार हूं। हकदार? यह बात ही गलत है। तेरी कृपा हो जाए। मैं रोऊंगा; मैं गिड़गिड़ाऊंगा; मैं चिल्लाऊंगा।

छोटा बच्चा क्या करता है? उसका हक है कुछ? अपने झूले में पड़ा है और रो रहा है और पैर तड़फड़ा रहा है। उसका कोई कह है? मां दौड़ी आती है--उसके रोने को सुन कर। उसका कोई दावा है? उसके पास कोई भी आधार है, जिसके बल पर वह कह सके कि तुझे आना होगा! कोई दावा नहीं है; सिर्फ रोता है। धीमे रोता है; नहीं सुनती मां, तो जोर से रोता है। एक ही उसका आधार है--कि मैं पुकारूं; और एक ही उसका भरोसा है--कि तेरे भीतर प्रेम है; तेरे भीतर करुणा है, तो मेरी पुकार के आधार पर खिंचे हुए चले आओगे; आना पड़ेगा। भक्त कहता है: हमारी तो कुछ बिसात नहीं; अपने बल तो हम कहीं न पहुंच पायेंगे। अपने बल तो हम इतने छोटे हैं कि जो हम कमा भी लेंगे, वह भी छोटा होगा। जो हम करेंगे,

वह हमसे बड़ा तो नहीं हो सकता। तू इतना विराट है; हम तुझे कैसे पायेंगे! हम करके जो भी पायेंगे, वह सांसारिक ही होगा। तो हम तो पुकारते हैं; हम तो रोते हैं; हम तो रूठेंगे। हमें तेरे रहमान होने पर भरोसा है, तेरे रहीम होने पर भरोसा है। तू दयालु है--यह हमारा भरोसा है; तू कृपालु है--यह हमारा भरोसा है।

अब यहां देखने की बात है कि ज्ञान का पथ अगर ठीक से आगे चले, तो परमात्मा की जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि परमात्मा फिर एक व्यर्थ की परिकल्पना मालूम होती है, इसलिए तो जैनों ने और बौद्धों ने परमात्मा को हटा दिया। उनका तर्क भी समझने जैसा है। वह ज्ञान के तर्क की परम अवस्था है। ज्ञान का तर्क अगर उसकी अंतिम स्थिति तक खींचा जाए, तो जो जैन और बौद्ध कहते हैं, वही ठीक है।

जैन और बौद्ध यह कहते हैं कि अगर हम अपने शुभ कर्मों से ही मोक्ष को पाते हैं, तो फिर परमात्मा की धारणा को बीच में रखने की जरूरत क्या है? शुभ कर्म पर्याप्त है।

अगर परमात्मा कुछ कर ही नहीं सकता; शुभ को सुख मिलेगा, अशुभ को दुःख मिलेगा और परमात्मा बीच में कुछ कर ही नहीं सकता; न तो वह अशुभ को सूख दे सकता और न शुभ को दुःख दे सकता, तो फिर परमात्मा की धारणा का प्रयोजन क्या है? फिर यह कर्म का नियम पर्याप्त है। इसलिए जैन और बौद्ध धर्मों में परमात्मा का स्थान कर्म के नियम ने ले लिया। उतना काफी है: यह तर्कयुक्त बात है।

ज्ञान के मार्ग पर वस्तुतः परमात्मा को माने रखने की कोई खास जरूरत नहीं है; कोई प्रयोजन नहीं रह जाता

जैसे कि विज्ञान नियम को मानता है; परमात्मा को नहीं मानता। मानता है कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण का नियम है। तुम पत्थर को ऊपर फेंकोगे, जमीन उसे खींच लेगी। ठीक ऐसे ही जो बुरा करता है, वह नीचे की तरफ खिंचेगा; जो भला करता है, वह ऊपर की तरफ उठेगा--यह नियम है। अब और किसी परमात्मा को बीच में लेना ठीक नहीं है, जरूरत भी नहीं है। खतरा है--लेने में। क्योंकि अगर परमात्मा बीच में रहेगा, तो कभी न कभी कुछ गड़बड़ कर सकता है। जहां व्यक्ति है, वहां भरोसा करना मुश्किल है। हो सकता है--किसी पर दया खा जाए। हो सकता है: किसी को अपना समझ ले; किसी को पराया समझे!

तुम देखते हो न, न्यायाधीश है अदालत में, इसलिए न्याय न्यायाधीश के कारण पूरा नहीं हो पता। न्यायाधीश की मौजूदगी न्याय में बाधा है। उसके बेटे ने चोरी कर ली, तो न्यायाधीश दिखावा करता है कि न्याय कर रहा है, लेकिन भीतर तो वह जितना कम से कम सजा दे सकेगा, देगा; बचा सकेगा, तो बचाएगा। उसके दुश्मन के बेटे ने चोरी कर ली, तो जितनी ज्यादा सजा दे सकेगा, देने की कोशिश करेगा। और इसमें काफी भेद हो सकता है। जिस दंड के लिए पांच साल की सजा हो सकती है, उसी दंड के लिए दस साल भी सजा हो सकती है। फर्क तो हो ही सकता है। तरकीब निकाल कर माफ भी किया जा सकता है, तरकीब निकाल कर उलझाया भी जा सकता है, फंसाया भी जा सकता है।

न्यायाधीश की मौजूदगी न्याय में सहयोगी नहीं है। हमारी मजबूरी है, इसलिए न्यायाधीश को रखना पड़ता है। जिस दिन कम्प्यूटर यह काम कर सकेगा, उस दिन न्याय ज्यादा पूरा होगा। कम्प्यूटर की मशीन वहां होगी। उसका न कोई बेटा है, न कोई पत्नी है, न कोई भाई है; निष्पक्ष--मशीन है।

जिस दिन मशीन निर्णय देने लगेगी, उस दिन न्याय में कोई अड़चन होगी, न्याय सीधा, साफ होगा।

तो जैन और बौद्ध कहते हैं: ईश्वर को मानने में खतरा है। क्योंकि हो सकता है कि कोई आदमी खूब गिड़गिड़ाता रहा, प्रार्थना करता रहा, पूजा करता रहा, आरती-दीप उतारता रहा, और इनको किसी तरह प्रसन्न कर लिया; और एक आदमी, जिसने कभी इनकी तरफ देखा नहीं, कभी मंदिर न गया, कभी पूजा न की, कभी प्रार्थना न की, लेकिन शुभ कार्यों में लगा रहा है, तो खतरा है। खतरा यही है कि जो प्रार्थना करता था, गिड़गिड़ाता था--हो सकता था शुभ कार्यों में न भी लगा रहा हो, खुशामद की वजह से...।

स्तुति का मतलब खुशामद होता है। प्रार्थना का मतलब खुशामद होता है। ज्ञानी के मार्ग पर प्रार्थना और स्तुति खतरनाक बातें हैं। इसलिए जैन और बौद्ध धर्मों में प्रार्थना की कोई जगह नहीं है; ध्यान की जगह है, प्रार्थना की कोई जगह नहीं है; स्तुति का कोई स्थान नहीं है। शांत हो जाओ, लेकिन प्रार्थना किससे करनी है? किसलिए करनी है? यह भगवान के मंदिर में जाकर भोग किसलिए चढ़ाना है? यह तो न्यायाधीश के घर फल की टोकरी भेजने जैसा है। यह तो न्यायाधीश को रिश्वत पहुंचाने जैसा है।

फिर रिश्वत पहुंचाने के ढंग हजार हो सकते हैं: कोई न्यायाधीश को सीधे दे आता है; कोई न्यायाधीश की पत्नी को दे आता है। जो ज्यादा होशियार है, वह पत्नी को दे आता है।

तो कोई राम को भज रहा है; कोई सीता को भज रहा है। वह जो ज्यादा होशियार है, वह सीता को भज रहा है। इसलिए तुम देखते हो: भजने वाले राम का नाम पीछे रखते हैं। वे कहते हैं--सीता-राम; राधा-कृष्ण। होशियार हैं। राधा को पहले रखा। राधा राजी हो गई, तो कृष्ण तो राजी हो ही जायेंगे। सीता को मना लो, तो राम तो पीछे चले ही जायेंगे। उलटा जरूरी नहीं है कि राम को मना लो तो सीता चली आये। और राम को मना लो और सीता न मानी हो, तो झंझट भी खड़ी कर देगी--वक्त-बेवक्त।

स्तुति, प्रार्थना--ध्यान के मार्ग पर, ज्ञान के मार्ग पर अर्थ हीन हैं; बाधाएं हैं। परमात्मा भी बाधा मालूम होता है। नियम पर्याप्त है। एक निर्वैयक्तिक नियम काम कर रहा है--कर्म का नियम।

लेकिन भक्ति के मार्ग पर परमात्मा पर्याप्त है, नियम की कोई जरूरत नहीं है। नियम का तो मतलब ही यह हुआ कि हम अपने भरोसे कर रहे हैं। शुभ किया, शुभ चाहते हैं। जितना किया, उतना चाहते हैं। न्याय चाहते हैं।

भक्त कहता है: न्याय की अगर हम मांग करें, तो हमसे क्या शुभ हुआ है! हम अनुकंपा चाहते हैं--न्याय नहीं चाहते। हम कृपा चाहते हैं। हमारा किया हुआ सब व्यर्थ है। हमारे किए

हुए का कोई भी मूल्य नहीं है। इसलिए हम न्याय मांगेंगे, तो भटकेंगे--जन्मों-जन्मों तक और कभी छुटकारा न होगा। हम तो प्रार्थना करते हैं; तेरी अनुकंपा मांगते हैं; तेरा प्रसाद मांगते हैं।

इस भेद को खयाल में रखना, तो समझ में आ जायेगा कि ज्ञान के मार्ग पर संकल्प का मूल्य है; और भक्ति के मार्ग पर समर्पण का मूल्य है। ज्ञान के मार्ग पर अपने को सजाना है, संवारना है, शुद्ध करना है, चरित्र लाना है। भक्ति के मार्ग पर उसके चरणों में अपने को गिराने की कला लानी है।

अंधेरी रात में दीपक

जलाए कौन बैठा है?

उठी ऐसी घटा नभ में

छिपे सब चांद और तारे

उठा तूफान वह नभ में

गए बुझ दीप भी सारे

मगर इस रात में भी लो

लगाए कौन बैठा है?

अंधेरी रात में दीपक

जलाए कौन बैठा है?

ऐसे तो अंधेरी रात है; ऐसे तो अहंकार का गहन अंधेरा है। ऐसे तो पाप ही पाप हमसे हुए हैं; पुण्य हमसे क्या हुआ! जिसको हम पुण्य कहते हैं, उसमें भी हमारा पाप छिपे हैं।

तुमने अगर कुछ रुपए दान करके मंदिर बनवा दिया, तो तुम सोचते हो--पुण्य हुआ? वे रुपए आये कहां से थे? वे रुपए तुमने शोषण किए थे। उस पुण्य में भी पाप छिपा है। दानवीर होने के लिए पहले शोषक होना जरूरी है। दान के लिए रुपया चाहिए न! पहले चोरी करो; छीना-झपटी करो; लोगों की गरदन काटो--फिर दान करो!

गगन में गर्व से उठ-उठ

गगन में गर्व से घिर घिर

गरज कहती घटाएं हैं

नहीं होगा उजाला फिर

मगर चिर ज्योति में निष्ठा

लगाए कौन बैठा है?

अंधेरी रात में दीपक

जलाए कौन बैठा है?

तुम पुण्य क्या करोगे? पुण्य करने में ही पाप छिपा है। बड़ी अंधेरी रात है।

अगर हम अपने ही कृत्यों को देखें, तो गहन अंधेरी रात है। इस अंधेरी रात में कोई छुटकारा नहीं मालूम होता; सिवाय इसके कि एक आस्था है--कि जिसने हमें जन्माया है,

कन थोरे कांकर घने

जिसने हमें उपजाया है, जिसने हमें बनाया है, उसमें मां जैसा हृदय होगा। जिससे हम पैदा हुए हैं, उसमें हमारा प्रति प्रेम होगा, करुणा होगी, प्रति लगाव होगा--ऐसी आस्था का दीया जले अंधेरी रात में, तो ही कोई रास्ता है। अन्यथा कोई रास्ता नहीं है।

तिमिर के राम का ऐसा
कठिन आतंक छाया है
उठा जो शीश सकते थे
उन्होंने सिर झुकाया है।
मगर विद्रोह की ज्वाला
जलाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
प्रलय की सबा समां बांधे
प्रलय की रात है छाई
विनाशक शक्तियों की इस
तिमिर के बीच बन आई
मगर निर्माण में आशा
दृढ़ाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
प्रभंजन, मेघ दामिनी ने
न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोड़ा
मगर विश्वास को अपने
बचो कौन बैठा है
अंधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई
मगर पड़े प्रेम बंधन में
समझ किसने नहीं खोई।
किसी के पंथ में पलकें
बिछाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दीपक

जलाए कौन बैठा है?

एक प्रेम के पंथ में, एक प्रेम की आया मग दीया जलता है; प्रार्थना में दीया जलता है। इस भरोसे में दीया जलता है कि जिससे हम पैदा हुए हैं, वह हमारे प्रति निरपेक्ष नहीं हो सकता। जिससे हम आए हैं, उसका हमारे प्रति जरूर कोई सूत्र, लगाव का, बाकी होगा। और इस बात के लिए हजार-हजार प्रमाण है।

अभी इस लाओत्सु भवन के सामने एक छोटे से वृक्ष पर एक चिड़िया ने दो अंडे रखे हैं। दिनों तक अंडों को बैठी सेती रही। चौबीस घंटे। न तो उसनने फिक्र की अपनी भूख-प्यास की; हटी ही नहीं। किस गहन प्रेम में, किस भरोसे! फिर जैसे ही बच्चे अंडों से निकल आए, भाग-दौड़ में लगी है तब से। लाती है खाना; बचाती है; बच्चों के मुंह में डालती है--खिलाती है। दिन भर यह चल रहा है। खुद खाने की अभी भी फुरसत नहीं दिखाई पड़ती उसे। खुद खाती भी है, यह भी नहीं दिखाई पड़ता।

किस प्रबल प्रेम में यह सब चल रहा है!

मगर हम जीवन में चारों तरफ आंखें उठा कर देखें तो हम हर जगह पायेंगे--प्रबल प्रेम है। जहां मां है, वहां प्रेम है। इसलिए मां को अगर हमने इस देश में अपरिसीम गौरव दिया, गरिमा दी, तो उसका कोई कारण था। उसका कारण सिर्फ इतना ही नहीं था कि मां...। उसका कारण बहुत गहरे में यह या कि मां का सूत्र ही धर्म का सूत्र है।

हम पैदा हुए इस जगत में, तो परमात्मा हमें सब तरफ से घेरे हुए है; हमारी चिंता-फिक्र कर रहा है; इस भरोसे में ही दीया जलता है; अन्यथा दीया नहीं जलता।

प्रलय की रात में सोचे

प्रणय की बात क्या कोई

मगर पड़े प्रेम बंधन में

समझ किसने नहीं खोई!

जो प्रेम के बंधन में नहीं पड़ा, उसी ने समझ नहीं खोई।

किसी के पंथ में पलकें

बिछाया कौन बैठा है!

अंधेरी रात में दीपक

जलाए कौन बैठा है?

भक्त कहता है: हमारा भरोसा हम पर नहीं है। हम पर तो हमारा भरोसा है ही नहीं। हमने तो अपने पर भरोसा करके बार-बार देखा और गड्ढे में गिरे। जब भरोसा किया, तभी गड्ढे में गिरे। जब अकड़े, जब सोचा कि मैं हूं, तभी भूल हो गई।

तो भक्त कहता है: अब हम विराट पर भरोसा करेंगे, इसलिए भक्त के मार्ग पर श्रद्धा पहली शर्त है। श्रद्धा न हो सके, तो कदम ही न बढ़ेगा; हो सके तो ही कदम बढ़ेगा।

ज्ञान के मार्ग पर श्रद्धा पहली शर्त नहीं है। तुम संदेह से भी आगे बढ़ सकते हो; कोई अड़चन नहीं है। और दुनिया में जिन लोगों को श्रद्धा सहज है, उनके लिए भक्ति का मार्ग।

जिनके लिए संदेह सहज है, उनके लिए ज्ञान का मार्ग। अंत में वे दोनों एक ही जगह पहुंच जाते हैं। लेकिन उनके यात्रा-पथ बड़े अलग-अलग हैं।

भक्त की प्रतीति, अपनी कम--परमात्मा की ज्यादा है।

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।
मेरे वर्ण-वर्ण विशृंखल
चरण-चरण भरमाए
गूंज-गूंज कर मिटने वाले
मैंने गीत बनाए
कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठों पर
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।

भक्त कहता है: मैं गाऊंगा--कुछ होगा नहीं। जरा सी लहर उठेगी--खो जायेगी; क्षणभंगुर होगा परिणाम।

मेरे वर्ण-वर्ण विशृंखल
चरण-चरण भरमाये
गूंज-गूंज कर मिटने वाले
मैंने गीत बनाए।

मैं गा भी नहीं पाता कि वे मिट जाते हैं। मैं बना भी नहीं पाता, कि वे बिखर जाते हैं। पानी पर खींची रेखाएं हैं--मेरे सारे कृत्य। मैं ही क्षण-भंगुर हूं; मैं ही सीमित हूं, तो मेरा कृत्य तो कैसे असीम होगा! कैसे शाश्वत होगा?

जब जब जग ने कर फैलाए
मैंने कोष लुटाया
रंक हुआ मैं निज निधि खो कर
जगती ने क्या पाया!
भेंट न जिससे मैं कुछ खोऊं
पर तुम सब कुछ पाओ
तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए।
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।
सुंदर और असुंदर जग में
मैंने क्या न सराहा
इतनी ममता मय दुनिया में
मैं केवल अनचाहा
देखूं अब किसकी रुकती है
आ मुझ पर अभिलाषा

तुम रख लो, मेरा नाम अमर हो जाए।
तुम गा दो, मेरा नाम अगर हो जाए।
दुःख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता
जीवन की अंतिम घड़ियों में
भी तुमसे यह कहता
सुख की एक सांस पर होता
है अमृत निछावर
तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए।
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।

भक्त कहता है: मैं अपने में ना-कुछ; तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए। भक्त कहता है: मैं तो सूना हूं। शून्य हूं। तुम्हारा आंकड़ा मुझ पर बैठ जाये--मेरे सामने बैठ जाए, तो मुझमें मूल्य आ जाए। मेरा अपना कोई मूल्य नहीं है; मैं निर्मूल्य हूं। तुम जिस मात्रा में मेरे साथ हो, उतना ही मेरा मूल्य है। तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।

यह जो प्रतीति है, स्पष्ट हो जाए, तो मलूकदास के सूत्र समझ में आयेंगे। बड़े अनूठे सूत्र हैं। सीधे-सरल--पर बड़े अनूठे।

भील कद करी थी भलाई जीया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका।।

कहते हैं मलूक: भील कद करी थी भलाई जीया आप जान। याद दिलाते हैं भगवान को--कि जरा सुनो, बाल्मीकि ने किसका भला किया था? लुटेरा था; हत्यारा था। तुम्हारा नाम भी कभी सीधा-सीधा नहीं लिया; राम-राम जपने की जगह मरा-मरा जपता रहा!

भील कद करी थी, भलाई जीया आप जान। तुम्हें याद है; तुम्हें खयाल हैं कि उस भील ने कभी कोई भलाई की थी किसी की? उस बाल्या भी के नाम कोई भी पुण्य की कथा है?

कोई कथा नहीं है। बाल्या भील हत्यारा ही था; लुटेरा ही था

कहानी तुम्हें पता है: कि नारद निकल रहे हैं और बाल्या उन्हें लूटने को आ गया है। लेकिन नारद कुछ अनूठे व्यक्ति हैं। बाल्या अपनी तलवार निकाल लेता होगा। लेकिन नारद हैं कि वे अपनी वीणा बजाए ही चले जा रहे हैं। वह उनके सामने खड़ा है हत्या करने को और उनकी वीणा रुकती नहीं। तो वह पूछता है, तुम पागल तो नहीं हो! क्योंकि मैंने दो तरह के लोग देखे हैं। एक: जो मेरी तलवार देख कर तलवार निकाल लेते हैं और संघर्ष के लिए आतुर हो जाते हैं। दूसरेः जो मेरी तलवार देख कर भाग खड़े होते हैं। मगर तुम तीसरे तरह के आदमी हो। तुम पहली दफा मिले हो। न तुम भाग रहे हो, न तुम तलवार निकाल निकाल रहे हो! और यह क्या लगा रखा है! बंद करो। यह तुम वीणा क्यों बजाए जा रहे हो? और नारद हंसते हैं और वीणा चले जाते हैं।

बाल्या चकित है। यह नए आदमी से मिलन हुआ। इस आदमी में भय नहीं है। न तो यह दूसरे को भयभीत करना चाहता है, न खुद भयभीत है। यह आदमी किसी और कोटि का है। ऐसी कोटि से बाल्या का कभी मिलना न हुआ था। तो वह भी खड़े हो कर सुनने लगा यह गीत। यह गीत भी मनोरम है। इस संगीत में कुछ अनूठा है, क्योंकि यह गीत राम के स्मरण का है।

और जब गीत चुक गया और गान बंद हुआ और संगीत रुका, तो बाल्या ने कहाः तुम्हें पा है कि मैं हत्यारा हूं! और मैं तुम्हें लूटने आया हूं। नारद ने कहाः तुम लूट लो। लेकिन एक बात का मुझे जवाब दे दो। यह मैं कई बार पूछना चाहता था कि किसी लुटेरे से मिलना हो जाए, तो पूछ लूं। कि तुम यह लूट-खसोट कर रहे हो, किसके लिए? किस लिए? बाल्या ने कहाः यह भी कोई पूछने की बात है! मेरी पत्नी है, बच्चे हैं, मां है, पिता हैं--उनके लिए। नारद ने कहाः तो तुम एक काम करो। उनसे पूछ आओ कि इस सब का जो पाप तुम्हारे सिर गिरेगा, वे इसमें भागीदार होंगे?

बाल्या हंसने लगा। उसने कहाः तुमने मुझे समझा क्या है! मैं घर गया, तुम नदारत हो जाओ। तो नारद ने कहाः तुम ऐसा करो, मुझे बांध दो इस वृक्ष से भलीभांति, ताकि मैं भाग न सकूं। पर तुम घर हो आओ। बात तो बाल्या को भी जंची। सोचा तो शायद उसने भी कभी-कभी होगा। कौन नहीं सोचता है?

अगर तुम चोरी कर रहे हो अपने बच्चों के लिए, तो कभी-कभी तुम सोचते नहीं क्या मन में कि ये बच्चे अनुग्रह भी मानेंगे! यह बड़े हो कर धन्यवाद भी देंगे? ये बुढ़ापे में याद भी रखेंगे? तुम अगर अपनी पत्नी के लिए डाके डाल रहे हो, तो क्या तुम्हारे मन में यह कभी खयाल नहीं आता होगा कि अगर सच में ही कर्म का सिद्धांत काम करता हो, तो मैं तो नरक में पडूंगा; और मेरी पत्नी--क्या वह मेरे साथ होगी? क्योंकि कर तो मैं उसी के लिए रहा हूं।

इस जगत में पाप तुम सदा दूसरों के लिए कर रहे हो। अपने लिए कौन पाप करता है? इतना पापी कोई भी नहीं है।

यह जान कर तुम हैरान होओगेः इतना पापी कोई भी नहीं है कि अपने लिए पाप करता हो। सभी लोग दूसरे के लिए पाप रहे हैं। पाप के लिए भी कम से कम इतना तो भरोसा चाहिए कि किसी के प्रेम में कर रहे हैं।

पाप भी बिना प्रेम के नहीं हो सकता। पाप के लिए भी प्रेम का सहारा चाहिए। तुम चोरी भी कर सकते हो, हत्या भी कर सकते हो, इतना पक्का हो कि किसी के लिए कर रहे हो, किसी के प्रेम में कर रहे हो।

प्रेम के बिना इस जगत में कोई कृत्य होता ही नहीं; बुरा कृत्य भी प्रेम के कारण होता है। तो बाल्या ने भी सोचा तो होगा ही; कितना ही मूढ रहा हो, अज्ञानी रहा हो, लेकिन यह बात कई बार मन में तरंगित तो हुई होगी कि मैं इतना बस कर रहा हूं, इस सब का परिणाम मुझे ही तो भुगतना नहीं पड़ेगा?

तो बात उसे जंच गई है। वह पूछने चला गया। और उसी पूछने के जाल में उलझ गया। नारद का शिष्य हो गया।

क्योंकि घर जाकर सब उसने पूछा, तो पत्नी ने कहा कि मुझे क्या पता कि तुम क्या करते हो! यह तुम्हारा कर्तव्य है कि मेरे भरण-पोषण की व्यवस्था करो। मुझे कुछ पता नहीं कि तुम क्या कर रहे हो। और तुम जो करते हो, वह तुम जानो। तुम अच्छे लाते, बुरे लाते यह तुम जानो। इससे हमारा कुछ लेना-देना नहीं। हमने कभी कहा नहीं कि तुम बुरा करो।

बूढ़े मां-बाप ने कभी कहाः हम बूढ़े हो गये; अब यह कहां की झंझट तू हम पर लाता है कि हम इसमें भागीदार होंगे! हमारे दिन कम बचे। परमात्मा से हमारी मुलाकात जल्दी होगी; तेरी तो अभी बहुत देर लगेगी। हमें कुछ पता नहीं है। तुमने तुझे जन्म दिया; हमने तुझे बड़ा किया; तू हमारे लिए भोजन जुटाता है, तो इसमें कोई बड़ा एहसान कर रहा है?

बच्चों से पूछा; बच्चों ने कहा, हमें क्या पता; हम तो भोले-भाले। हमने तो कभी कहा भी नहीं।

बाल्या उदास लौट आया। नारद से उसने कहा कि कोई भी मेरे पाप में भागीदार नहीं है। तो नारद ने कहा, फिर तू सोचे ले। यह जारी रखना है?

और उस क्षण एक क्रांति घट गई। और बाल्या ने फेंक दी अपनी तलवार; नारद के चरणों में गिर पड़ा और कहा, मुझे भी सिखा दो वह पाठ कि तुम जैसा गीत मुझसे भी पैदा हो सके; कि तुम जैसी शांति अभय, कि तुम जैसा आनंद मुझमें भी व्याप्त हो जाए--कि मृत्यु मेरे सामने खड़ी हो और मैं अडिग रहूं; कि मौत भी मुझे हिला न पाये। क्या है राज इसका?

नारद ने कहा, राज कुछ ज्यादा नहीं है--राम का स्मरण। बाल्या अपढ़ अज्ञानी था। उसने कहा, तो क्या होगा? नारद ने कहा, बस राम-राम जप; राम की याद कर; सब भूल--राम को स्मरण कर।

बाल्या जपने लगा--राम-राम-राम। अपढ़ था, अज्ञानी था, कभी राम का नाम जपा न था। और अगर तुम भी जपोगे। राम-राम-राम-राम बहुत जोर से, तेजी से, त्वरा से--एक के पीछे दूसरा राम--तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि शब्द जुड़ गये और राम की जगह मरा-मरा की ध्वनि आने लगी।

वह तो भूल ही गया धीरे-धीरे कि राम शब्द है कि मरा शब्द है। मरा जपते-जपते बाल्या ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

बाबा मलूकदास राम से कह रहे हैं, भील कद करी थी भलाई जीया आप जान। आपके जाने कुछ याद है आपको; कुछ होश-हवास है! इस बाल्या भील को बाल्मीकि बना दिया, ऋषि बना दिया! यह मुफ्त हो गया! किस किताब में लिखा है तुम्हारे ? कहां इसका हिसाब है? भील कद करी थी, भलाई जीया आप जान। तुम्हें कुछ होश है?--कि कुछ भी किए चले जाते हो! फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका।

और कहानी है कि गजेंद्र (गज, हाथी) फंस गया है--एक मगर के पाश में; मगर ने उसका पैर पकड़ लिया है; और उसने प्रभु का स्मरण किया और वह छूट गया। फीद कद हुआ था मुरीद कहु किसका? और मैं पूछता हूं तुमसे कि यह जो हाथी था, यह किसका शिष्य था? यह मुरीद कब हुआ था? इसने किससे शिष्यत्व ग्रहण किया? किससे मंत्र लिया; किसके साथ साधना की; कौन इसका गुरु था? इनके हिसाब-किताब कहां है?

इतनी चर्चा सुनते हैं--न्याय--न्याय--न्याय--और कर्म का सिद्धांत; सच्चाई कुछ और दिखाई पड़ती है!

मलूक कह रहे हैं: गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा दुआ! और वह जटायु! उसने कभी कोई किताब पढ़ी थी, कोई वेद पढ़ा था? गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ? किताब की तो दूर--किताब का किनारा भी उसने कभी दुआ नहीं था। कौन सा ज्ञान था उसे, जिसके सहारे वह मुक्त हो गया?

ब्याधि और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका? इस सब का इंसाफ कहां है? मैं तुमसे यह पूछता हूं, मलूक कहते, कि इस सब में कहां इंसाफ है?

लोग अपने कर्मों के कारण शुभ को पा रहे हैं, अशुभ को पा रहे हैं, यह बात गलत है। ये नाम--बाल्मीकि का, और गजेंद्र का, और जटायु का--मलूकदास उठा रहे हैं इसलिए, ताकि यह बात साफ हो सके कि कोई अपने करने से मुक्त नहीं होता है; उसकी अनुकंपा से मुक्त होता है।

और वे कह रहे हैं कि न्याय असली बात नहीं है; करुणा...। अब खयाल रखना कि न्याय और करुणा के सिद्धांत अलग-अलग है; विपरीत हैं।

इसलिए अकसर न्यायाधीश के सामने यह सवाल उठता है कि न्याय पर ज्यादा जोर दे कि करुणा पर ज्यादा जोर दे।

न्याय बड़ा कठोर है; न्याय में हृदय की मूर्ति जैसा बैठता है। उसके कपड़े-लते, उसके बैठने का ढंग, उसका चेहरा--वह बिलकुल पत्थर की मूर्ति बनकर बैठता है। वह हृदय को बिलकुल सिकोड़ लेता है तो ही न्याय कर पायेगा। अगर जरा हृदय खुला हो, अगर वह भी मनुष्य की भांति बैठे, तो न्याय बहुत मुश्किल हो जायेगा; करुणा होगी। क्योंकि कोई आदमी चोरी करके आ गया है। अब अगर वह न्याय ही देखे, तो सिर्फ किताब देखनी है, बस। उसे यह देखने की जरूरत नहीं कि इस आदमी ने चोरी क्यों की। हो सकता है: इसकी पत्नी मर रही हो और दवा के लिए घर में पैसे न हो। और अगर इस आदमी ने जा कर किसी की जेब काट ली; और ऐसे की जेब काट ली, जिसके पास बहुत है; पांच-दस रुपये कम हो गये, तो कुछ फर्क न पड़ा। जिससे लिये, उसके पांच-दस कम हुए, कोई फर्क न पड़ा। लेकिन इसकी पत्नी बच गई। इसके छोटे-छोटे दूध-मुंहें बच्चे; पत्नी मर जाती तो उनका क्या होता! वे बच गये। तो यह पांच-दस रुपए की चोरी कोई बहुत बड़ी चोरी है? क्या इसको पाप माना जाए? अपराध माना जाए?

अगर न्याय की किताब कोई देखनी हो, तो फिर करुणा को कोई जगह नहीं है। न्याय बड़ा कठोर है। न्याय में कोई दया नहीं है।

करुणा बहुत कोमल है। और करुणा मग शुद्ध न्याय नहीं हो सकता।

जीसस ने इसके बहुत उल्लेख दिए हैं। जीसस का एक बहुत प्रसिद्ध उल्लेख है कि एक अंगूर के बगीचे के मालिक ने अपने नौकरों को भेजा...। अंगूर पक गए थे और जल्दी उन्हें तोड़ लेना था अन्यथा वे सड़ जायेंगे; तो जितने मजदूर मिल सकें, ले आओ। नौकर गये और बाजार से जितने मजदूर मिल सकते थे--ले आये। लेकिन वे मजदूर काफी न थे।

आधा दिन बीतते-बीतते मालिक को लगा कि इनसे सांझ तक फल कट न पायेंगे, तो उसने कहा, और काई मजदूर मिलते हों, तो ले आओ। तो भरी दुपहरी में फिर लोग गए, फिर कुछ लोगों को ले आये। लेकिन फिर भी लगा कि सांझ होते-होते काम पूरा न हो पायेगा, तो उसने कहा, और ले आओ। तो लोग फिर गये; फिर कुछ मजदूरों को ले आए। तो यह जो आखिरी किश्त मजदूरों की आई, यह तो करीब सूरज ढलते-ढलते आई।

जब काम पूरा हो गया, और रात जब पैसे बांटे गये, तो उस मालिक ने सब को बराबर पैसे दिए--जो सुबह आया, उसको भी; जो दोपहर आया, उसको भी, जो सांझ आया, उसको भी। स्वाभाविक था कि सुबह आए थे, उन्होंने विरोध किया; उन्होंने कहा, यह अन्याय है। हम सुबह से मेहनत कर रहे हैं; और कुछ लोग दोपहर आये, उनको भी उतना ही; और कुछ लोग अभी-अभी आये, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया करने के नाम पर, सूरज ढलते आए, उनको भी उतना। यह अन्याय है।

लेकिन वह मालिक हंसने लगाः और उसने कहा, तुम्हें जितना दिया, तुम्हारी मजदूरी के लिए पर्याप्त नहीं है क्या! नहीं, उन मजदूरों ने कहा, हमारी मजदूरी के लिए पर्याप्त है, लेकिन इनका क्या? उसने कहा कि इनको मैं अपने आधिक्य ये देता हूं। तुम्हारी मजदूरी, तुमने जो की, उतना तुम्हें मिल गया; उसमें कमी नहीं है। दोपहर हो जाए। इन्हें मैं इसलिए देता हूं कि मेरे पास बहुत है देने को। इनके साथ दया कर रहा हूं; तुम्हारे साथ अन्याय नहीं कर रहा हूं। तुम्हें उतना मिल गया, जितना तुम्हें मिलना चाहिए था।

जीसस यह कहते हैंः परमात्मा ज्ञानियों के साथ न्याय करेगा और भक्तों के साथ दया करेगा। यह बड़ी अजीब बात है। ज्ञानी वे हैं, जो सुबह से लगे हैं; भक्त हो सकता है कि दोपहर आए--कि सांझ आए--कि नहीं भी आए। परमात्मा उन्हें अपने आधिक्य से देगा। ज्ञानी के साथ अन्याय नहीं होगा, यह सच हैं। उसने जितना किया, उतना उसे मिलेगा। लेकिन इससे वह यह न सोच ले कि जिन्होंने कुछ नहीं किया, उन्हें कुछ नहीं मिलेगा।

भील कद करी थी, भलाई जीया आप जान। ये मलूकदास यही कह रहे हैं कि ये सांझ के आये हुए लोग...।

भील कद करी थी, भलाई जीया आप जान,
फील कद हुआ था, मुरीद कहु किसका।।
गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,

ब्याधि और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका।।

...इसका न्याय क्या? इसको मैं किस अदालत में ले जाऊं? इसमें कौन से न्याय की बात है?

नाग कद माला लै के बंदगी करी थी बैठ? उस गजेंद्र ने कब प्रार्थना की थी? कब माला ले कर माला जपी थी?

नाग कद माला लैके बंदगी करी थी बैठ,

मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका।

और मलूकदास कहते हैं कि जब से तुमने अजामिल को मुक्त किया, तब से मुझे बड़ी स्पर्धा है; मुझे हिसका लग गया है।

अजामिल की कथा तो जाहिर है। अजामिल की कथा तो बड़ी अनूठी है; जीसस थी थोड़े चिंतित होगे; क्योंकि सांझ को भी जो जाए थे, कम से कम आए तो थे! सांझ को आए थे, सूरज ढलते आए थे; कुछ उठा-पटक तो की होगी; कुछ तो किया ही होगा। कुछ न किया, तो कम से कम आए और गये तो थे! अजामिल ने तो इतना भी नहीं किया था।

अजामिल ने तो जिंदगी भर भगवान का नाम ही नहीं लिया था। उसे भगवान से कुछ लेना ही देना न था। वह तो नास्तिक था। मरण-शैय्या पर पड़ा था। मरते वक्त उससे जोर से अपने बेटे को बुलाया; उसके बेटे का नाम नारायण था।

पुराने दिनों में सभी नाम भगवान के नाम ही होते थे। जितने नाम होते थे, सब भगवान के ही नाम होते थे। वह भी बड़ी विचारपूर्ण बात थी कि चलो, इस बहाने ही भगवान का स्मरण होगा। कोई राम, कोई विष्णु, कोई नारायण, कोई कृष्ण! मुसलमानों में जितने नाम होते हैं, करीब करीब सब में भगवान...। अब्दुल्लाह--तो अल्लाह लगा हुआ है। करीब, रहीम, रहमान--सब परमात्मा के नाम हैं।

हिंदुओं के पास तो अनूठी किताब है--विष्णसहस्रनाम, जिसमें भगवान के हजार नाम हैं; सिर्फ नाम ही नाम दिए हैं। सारे नाम भगवान के होते थे; क्योंकि सारे रूप भी उसे के हैं, तो नाम भी उसी के होने चाहिए। बात बड़ी अर्थपूर्ण है।

सब रूपों में वही प्रकट हुआ है, तो सभी नाम भी उसी के होने चाहिए। और फिर कम से कम चलो, इसी बहाने भगवान की याद होती रहेगी। राम को बुलाया, तो उनकी याद हो गई; नारायण को बुलाया, तो उनकी याद हो गई; विष्णु को बुलाया, तो उनकी याद हो गई; नारायण को बुलाया, तो उनकी याद हो गई; विष्णु को बुलाया, तो उनकी याद हो गई। और कौन जाने किस घड़ी, किस मुहूर्त में चोट लग जाए--कौन जाने!

कभी-कभी चोट ऐसी लगती है--अनायास लगती है--कि जिसका हमें कोई पता भी नहीं होता, कि जिसका हमने कोई आयोजन भी नहीं किया होता। मगर चारों तरफ की हवा में भगवान का नाम गूंजता रहे। पता नहीं किस कोने से हमारे भीतर प्रभु का स्मरण प्रविष्ट हो जाए! तो ऐसी ही घटना अजामिल की है।

अजामिल मर रहा है। भगवान को मानता नहीं है; लेकिन बेटे का नाम नारायण है। वह भी शायद भूलचूक से रख लिया होगा, क्योंकि और नाम थे ही नहीं उन दिनों में। मरते वक्त बेटे को बुलाया है कि नारायण, तू कहा है? सांस टूटी जा रही है; बेटे को बुला रहा है; शायद कुछ बताना होगा कि खजाना कहां गड?ा है; कि कुछ हिसाब-किताब की बात समझानी होगी; कि कुछ राज बताना होगा। मौत करीब आ गई है; बेटे को बता जाए।

लेकिन बेटे को सुनाई नहीं पड़ा। जोर-जोर से चिल्लाता-चिल्लाता अजामिल मर गया। कथा यह है कि ऊपर बैठे नारायण--भगवान को ऐसा लगा कि बेचारे ने कितना पुकारा! मुझको कितना पुकारा! और अजामिल मर कर परम अवस्था को उपलब्ध हुआ।

यह कथा बड़ी अनूठी है; जीसस की इस कथा से आगे जाती है। यह तो न गया--सांझ भी नहीं। यह तो जब नारायण, नारायण बुला रहा था, तब भी इसका परमात्मा से कोई लेना-देना नहीं था।

अब बात यह है कि परमात्मा क्या धोखे में आ गया? क्या परमात्मा को इतनी भी समझ नहीं है--कि यह अपने बेटे को बुला रहा है; मुझे नहीं बुला रहा है? क्या परमात्मा में इतना भी बोध ही है? क्या यह धोखा हो सकता है?

यह धोखा अगर हो सकता है, तो इसीलिए हो सकता है, कि परमात्मा किसी भी बहाने अपनी करुणा बांटने को तैयार है। उसके पास आधिक्य है; उसे देना है, तो कोई भी बहाना पर्याप्त है। जब देना ही हो, तो किसको बुला रहा है--बेटे को बुला रहा है, कि मुझे बुला रहा है, क्या फर्क पड़ता है! चलो, यह खूंटी भी काफी है, इसी पर परमात्मा अपनी कृपा टांग देगा।

मलूकदास कहते हैं: नाग कद माला लै के बंदगी करी थी बैठ। उस गजेंद्र ने कभी माला फेरी नहीं। बैठ कर कभी बंदगी नहीं की--नमाज नहीं पढ़ो, प्रार्थना-पूजा नहीं की। चलो, छोड़ो, उसको भी जाने दो। मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका। लेकिन अजामिल के साथ तो हद हो गई! उसका धक्का मुझे कभी भी लगता है--कि आखिर फिर मेरा कसूर क्या है!

मलूकदास यह कह रहे हैं कि इन सब के साथ यह तथाकथित न्याय होता रहा है, तो मेरे साथ ज्यादती क्यों हो रही है? मुझे स्पर्धा होती है।

ऐसे बदराहों की तुम बदी करी थी माफ। ऐसे सब बदराह--ऐसे सब भूले-भटके लोग...। ऐसे बदराही की तुम बदी करी थी माफ। मलूक अजाती पर एती करी रिस का। तो मुझसे ऐसे कैसे रिसाए बैठे हो? आखिर मेरा कसूर क्या है? इतना बुरा तो मैंने कुछ किया नहीं; ऐसा तो कोई बड़ा पाप मेरा है नहीं। और इतनी भी बात तय है कि तुम्हीं को पुकार रहा हूं--अपने बेटे को नहीं पुकार रहा!

अजामिल तक मुक्त हो गया! तुम मुक्त करने को ही बैठे हो! तो मेरे ही साथ यह भेद-भाव क्यों चल रहा है?

यह प्रेमी का झगड़ा है। यह परम प्रेम में ही घट सकता है। साधारण आदमी तो हिम्मत नहीं कर सकता--भगवान से इस तरह की बात करने की; असाधारण अवधूत ही कर सकता है।

साधारण तो डरेगा कि कहीं नाराज न हो जाए। साधारण तो सदा कहता हैः तुम पतितपावन, मैं पापी; और जमाने भर की बातें कहता है। वह तो हिसाब की बातें लगाता है। वह तो कहता हैः शायद इस तरह मना लेंगे।

लेकिन मलूकदास बड़ी अनूठी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैंः मलूक अजाती पर एती करी रिस का? माना कि मेरी जात-पात कुछ ठिकाने की नहीं है,तो किसकी है? माना कि मेरे कर्म कुछ हिसाब के नहीं हैं, तो किसके हैं? और माना कि मैंने तुम्हें पूरे भाव से शायद न भी पुकारा हो, अजामिल के बाबत क्या विचार है?

ये सारी की सारी घटनाएं मलूकदास याद मिला रहे हैं परमात्मा को; यह बड़े प्रेम का निवेदन है; यह अपूर्व निवेदन है।

तुम मुझसे क्यों रिसाए बैठे हो? क्या नाराजगी होगी? ऐसा क्या गुनाह मैंने किया होगा! गुनाहों को तो माफ करते रहे हो; बदराहों को माफ करते रहे हो! चलो, मैं बदराह सही; और चलो, मैं बहुत गुनहगार सही। लेकिन ऐसे क्या रिसाए बैठे हो? क्या तुम्हारी करुणा चुक गई? क्या तुम्हारा प्रेम चुक गया? या कि तुम्हारी पुरानी आदतें बदल गईं!--कि अब अजामिल जैसी घटनाएं नहीं घटतीं? तुम्हारा हृदय सूख गया है क्या?

जैसे छोटा बच्चा मां के लिए रोता है और सोचता हैः क्यों नहीं आती?...छोटा बच्चा तो यही सोचता है कि मां हर घड़ी मौजूद रहनी चाहिए--जब वह पुकारे। रात-आधी-रात पुकारे, तो मौजूद रहनी चाहिए। छोटा बच्चा तो यह मान कर ही चलता है कि मां मेरे लिए है। उसे यह तो खयाल भी नहीं हो सकता कि उसके और हजार काम हो सकते हैं! कि अभी वह अपने पति की सेवा कर रही हो; कि थक गई हो, सो गई हो; कि बाजार गई हो, सामान खरीद रही हो! और हजार काम हो सकते हैं। बच्चे को यह सवाल ही नहीं उठता। बच्चे को तो एक प्रतीति होती है कि वह मेरे लिए है, मैं उसके लिए हूं। मैं चौबीस घंटे उसका हूं; वह चौबीस घंटे मेरी है।

ठीक ऐसा ही भाव भक्त का होता है।

होंगे तुम्हें हजार काम; चलाते होओगे चांदत्तारों को; बड़ी उलझनें होंगी। लेकिन भक्त मानता है कि पहला अधिकार मेरा है।

एतै बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।

भक्त ने सदा इस बात पर भरोसा किया है कि तुम्हारा प्रेम अपार है। और तुम देख-देख कर दान नहीं देते--कि किसने अच्छा किया और किसने बुरा किया। यह भी कोई बात हुई...! यह बड़ी मानवीय बात हो जाएगी। कि जिसने अच्छा किया--उसको जरा ज्यादा दें; जिसने बुरा किया, उसे थोड़ा कम दें। जिसने अच्छा किया, उसे सुख दें, और जिसने बुरा किया, उसे दुःख दें। यह बड़ी मानवीय बात हो जायेगी; ईश्वरीय न रह जायेगी।

यह मनुष्य का न्याय तो ठीक है, मगर यह ईश्वरीय न्याय न होगा। ईश्वरीय न्याय में तो अनुकंपा होनी चाहिए--अपार अनुकंपा होनी चाहिए। हमने क्या किया--यह बात ही फिजूल है।

तुम्हारे पास देने को इतना है! सारा का सारा देने को पड़ा है! और तुम देओगे किसको आखिर?

जब मेघ घुमड़ते हैं भादों में, वर्षों से भरे हुए मेघ आते हैं, तो यह थोड़े ही फिक्र करते हैं कि सिर्फ उपजाऊ जमीन पर गिरें! कंकड़-पत्थरों पर भी बरसते हैं। यह थोड़े ही सोचते हैं कि अच्छे आदमी के खेत में ही बरसें; बुरे आदमी के खेत में भी बरसते हैं। सूरज जब निकलता है, तो ऐसी कोई कंजूसी थोड़े ही करता है, कि सज्जन के घर पर ही रोशनी करेगा और दुर्जन के घर पर अंधेरा रखेगा! और जब फूलों की सुगंध उड़ती है, तो संतों के ही नासापुट थोड़े ही खोजती है।

सब को मिलता है--यह भक्त की आस्था है। सब को मिलता है--अकारण मिलता है। कारण से मिले, तो बात बड़ी कंजूसी की हो जायेगी और परमात्मा कंजूस नहीं है।

वह जो कर्म का सिद्धांत हैं, वह बड़ी कंजूसी का सिद्धांत है। वह यह कहता है कि जो करेगा, उसको मिलेगा; जो नहीं करेगा, उसको नहीं मिलेगा। वह बड़ा ओछा सिद्धांत है; बड़ा संकीर्ण सिद्धांत है।

भक्त कहता है: यह भी कोई बात हुई; ऐसे ओछे लांछन तो परमात्मा पर मत लगाओ। और तुम जानते हो भलीभांति; सारा जीवन इस बात का प्रमाण है; जो मलूकदास कह रहे हैं; उसका प्रमाण सारा जीवन है। सूरज देखो; चांदत्तारे देखो; हवाएं देखो; यह हवा का जो झोंका आया, यह सज्जनों को ही थोड़े मिलेगा; इसमें दुर्जन भी वैसे ही नहायेंगे। कुछ भेद नहीं है। अस्तित्व भेद नहीं करता।

मां भेद करती है--उस बेटे में जो उसकी आज्ञा मानता है और उस बेटे में जो उसका आज्ञा नहीं माता? हालत हमेशा यह है कि जो आज्ञा नहीं मानता है, उसको ज्यादा देती है। जो बेटे उपद्रव होते हैं, मां का प्रेम उन पर ज्यादा होता है; उप पर ज्यादा दया होती है। स्वाभाविक भी है, क्योंकि उसे ज्यादा ममता आती है कि बेचारा, उपद्रवी है। जगह-जगह झकझोरी खाता है; जहां गया, वहीं झंझट में पड़ जाता है। उस पर दया स्वभावतः ज्यादा आती है।

जो सज्जन है, वह तो सभी जगह सत्कारा जाता है। जहां जाता है, वहीं आदर पाता है। उसके लिए तो आदर की कोई कमी नहीं है; जो मिलता है, वही प्रशंसा करता है।

लेकिन जो बेटा थोड़ा गुमराह है, थोड़ा बदराह है, अनाज्ञाकारी है, थोड़ा बगावती है, उसको तो और कहीं प्रेम मिलेगा नहीं; अगर मां भी उसे प्रेम न देगी, तो वह प्रेम से वंचित ही रह जायेगा।

प्रकृति का अनूठा नियम है कि सब तरह से सब को बराबर हो जाता है; तो अंत में सब को बराबर हो जाता है।

तो दूसरे नहीं देते प्रेम, तो मां उसे प्रेम देती है।

तुमने कभी खयाल नहीं किया: आज्ञाकारी बेटे की तुम प्रशंसा करते हो; आनाज्ञाकारी बेटे की तुम निंदा करते हो। लेकिन प्रेम...?

जीसस की फिर एक कहानी है; और जीसस की कहानियां प्रेम के मार्ग की अनूठी कहानियां हैं।

जीसस ने कहा...। कोई पूछता है जीसस से कि मैं तो योग्य नहीं हूं; मैं तो भूला-भटका हूं; मैं तो पापी हूं; परमात्मा मुझे भी उबारेगा! मैं पुकारूं? मेरी पुकार उस तक भी पहुंचेगी?

जीसस ने कहाः सुन। वह आदमी गड़रिया था। इसलिए जीसस ने गड़रिये की भाषा ही कही। उन्होंने कहा। सुन। कभी-कभी तुझे ऐसा हुआ होगा--सांझ जब तू अपनी सारी भेड़ों को इकट्ठा करके घर की तरफ लौटता है और अचानक घर आ कर पाता है कि सौ भेड़ों में निन्यानबे ही हैं और एक भेड़ कहीं छूट गई; जंगल में कहीं भटक गई; तू क्या करता है!

उसने कहाः मैं उन भेड़ों को वहीं छोड़ देता हूं और भागता हूं जंगल की तरफ--उस एक भेड़ के खोजने--कि वह कहां गई; कोई भेड़िया न खा जाए! कोई जंगली जानवर न खा जाए! मैं निन्यानबे भेड़ों की फिक्र ही छोड़ देता हूं; उसी एक भेड़ की फिक्र मेरे मन में गूंजने लगती है। मेरा सारा भाव उसी की तरफ दौड़ने लगता है। अंधेरी रात में चिल्ला-चिल्ल कर जंगल-पहाड़ पर उसे खोज कर लाता हूं।

जीसस ने कहाः एक बात और पूछनी है। तू उसे किस तरफ लाता है? उसने कहाः किस तरह लाता हूं? कंधे पर रख कर लाता हूं।

तो जीसस ने कहाः क्या तू सोचता है कि परमात्मा इतना भी प्रेम तेरे लिए नहीं दिखायेगा?

जीसस यह कह रहे हैं कि पुण्यात्माओं को तो परमात्मा ले आता है--चला कर, पापियों को कंधे पर रख कर लाता है; भटके हुओं को, गुमराहों को...।

प्रेम का शास्त्र अनूठा है; उसके भरोसे अनूठे हैं; उसकी दिशा अलग है। और अगर प्रेम का शास्त्र न होता, तो मनुष्य के लिए कोई भविष्य न था। मनुष्य इतना कमजोर है, लाख उपाय करके भी कहां सज्जन हो पाता है! लाख उपाय करके भी कहां संत हो पाता है? और कभी कोई एकांत हो भी जाता हो, तो उस पर परमात्मा की कृपा बरसेगी, बाकी सब बरसा से रहित रह जायेंगे--सूखे; और कभी हरे न होंगे? तो प्रकृति बड़ी उदास हो जाती है।

नहीं; तुम चारों तरफ देखो। सूरज की भाषा समझो; चांदत्तारों की भाषा समझो; हवाओं की भाषा समझो। सब को बराबर मिल रहा है। अच्छे और बुरे का कोई भेद नहीं है। हालांकि तुम्हारे मन में अड़चन होती है, क्योंकि तुम्हारे अहंकार की अड़चन है। तुम सोचते हो। अरे! अगर सब को बराबर मिल रहा है, तो फिर हम अच्छा क्यों करें?

तुम्हें यह लगता हैः सब को बराबर मिल रहा है? बुरे को भी बराबर मिल रहा है? तो तुम्हारे मन में बड़ीर् ईष्या पैदा होती है। ये तुम्हारी अड़चनें हैं। तुम इन अड़चनों के कारण ईश्वर को मत तौलो।

मलूकदास कहते हैंः

एतै बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,

मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।

क्या कर रहे हो आज बैठे-बैठे? हम तो सुनते थे कि भटक गई भेड़ों को कंधों पर रख कर लाते हो! अब ये रहे मलूकदास। हम भटकी भेड़ हैं, सब उठाओ कंधे पर। हमारा कोई दवा नहीं है कि हम पहुंचे हुए संत हैं। भटकी हुए भेड़ हैं। अब तुम कहां हो? कहां तुम्हारा कंधा है?

तुम कहते हो: माला नहीं जपी; कभी नहीं जपी। लेकिन गजेंद्र ने जपी थी? तुम कहते हो: वेद-कुरान नहीं पढ़े; कभी नहीं पढ़े। जटायु ने पढ़े थे? तुम कहते हो: मलूकदास, तुमने ठीक-ठीक मेरा नाम नहीं लिया। मलूकदास कहते हैं: तो फिर क्या इरादा है? कहानी को बदल दो; अजामिल की कहानी का क्या हुआ? मुझको भी लगा था, अजामिल का हिसका? और तब से जो मुझे चोट लगी है, अभी तक भरी नहीं। और जब तक तुम मुझे न उठा लो...। अकारण उठा लो, तो ही चोट भरेगी।

यह भक्त की भावदशा समझना।

अकारण उठा लो। मेरे पास कोई कारण नहीं है कि मैं दावा कर सकूं। बूरा-बूरा मेरा है; सब जो मेरा है, बुरा है। इसलिए उस तरफ से कोई दावा नहीं है। मगर जैसा भी हूं--बुरा-भला--तुम्हारा हूं।

जग रूठे तो बात न कोई

तुम रूठे तो प्यार न होगा।

मणियों में तुम ही तो हो कौस्तुभ

तारों में तुम ही तो हो चंदा,

नदियों में तुम ही तो हो गंगा

गधों में तुम ही तो हो निशिगंधा

दीपक में जैसे लौ-बाती

तुम प्राणों के संग-संगाती

तुम बिछड़े तो बात न कोई

तुम बिछुड़े सिंगार न होगा

जग रूठे तो बात न कोई

तुम रूठे तो प्यार न होगा।

मलूकदास कहते: तुम क्यों रूठे मुझसे? सारा जग रूठ जाए--चलेगा; तुम तो न रूठो। सारा जग कहे: मैं बुरा हूं--चलेगा; तुम तो न कहो! तुम्हें तो शोभा नहीं देता।

उमर खय्याम की एक पंक्ति है; किसी मौलवी ने कहा है उमर खय्याम को कि अगर तुम ये पीने-पिलाने में पड़े रहे, तो नर्क में सड़ोगे: उमर खय्याम हंसने लगा है और उसने कहा: तो क्या खयाल है तुम्हारा; अब परमात्मा रहमान न रहा! अब उसमें दया न बची? तुम लांछन लगा रहे हो--उसकी दया पर! तुम यह कह रहे हो कि अब करुणा उसकी चुक गई! मुझे रहने दो बुरा-भला--जैसा मैं हूं। मुझ पर भरोसा ही नहीं है। मुझे तो भरोसा उसकी करुणा पर, उसके रहमान होने पर है, उसके रहीम होने पर है।

भक्त का भरोसा अपने अहंकार पर नहीं है। ज्ञानी का भरोसा अपने व्यक्तित्व पर है। भक्त का भरोसा उसकी कृपा पर है। ज्ञानी का अपने प्रयास पर--भक्त का उसके प्रसाद पर। जब भी वह पाता हैः कुछ अड़चन हो रही है, वह प्रार्थना करता है। वह कहता है कि मामला क्या है! तुम्हारी दुनिया में रह रहा हूं, तुम्हारा हूं। और तकलीफ भोग रहा हूं!

भोग कर भी जल रहा हूं,
आह मैं बरसात में
मेध में मधु रस भरा है
या कि यह ठंडी अगन है
देह को छूते बराबर
हो रही मीठी जलन है
चांद का भी मुंह घटा ने
ढंक दिया है कुंतलों से
मैं यहां परदेस में
कितना अकेला रात में
भीग कर भी जल रहा हूं
आह मैं बरसात में।
तुम खयाल करो।
इस तरह छाई उदासी
पलक बोझिल आंख नम है
फिर तुम्हारी याद का यह
दर्द भी तो कुछ न कम है
इस तरह से चल रहा है
काटता हर एक झोंका
जहर जैसे घुल गया है
पश्चिमी मधुपात में
गीत तो उमड़ा हृदय में
पर अभी गाया न जाता
इस तरह घायल हुआ है
मन कि बहलाया न जाता
लग रहा है ऐसे कि जैसे
गीत वाले स्वर-भ्रमर
कैद होकर रह गये हैं
मौन के जलजात में
लाज से दब बिजलियां जब

तुम सरीखी मुस्कुराती
क्या पता तुमको कि वे सब
किस तरतु मुझको जलाती
बरसता पानी
तरसता है मगर चातक हृदय का
तुम नहीं हो बस
तुम्हारी याद ही है साथ में
भीग कर भी जल रहा हूं
आह मैं बरसात में
मैं यहां परदेस में
कितना अकेला रात में!
कुछ खयाल करो।

भक्त को सारा जोर इस बात पर है कि तुम कुछ कुछ करो। और कितना गिरूं, ताकि तुम्हारी करुणा पा सकूं! और कितना भटकूं, ताकि तुम खोजने निकलो! और कितना गर्त में पड़ूं; और कितने अंधेरे में उतरूं, ताकि तुम्हारी रोशनी के किरण कृपा बन कर मुझे खोजती हुई आ जाए?

भक्त कहता है कि तुम अगर चाहो, तो सब हो जाए। मेरे चाहे कुछ भी नहीं होता। सूत्र बांधते अगर गीत में, वेदों का वंशज हो जाता। इतना भरा है मुझमें तुमने कि अगर जरा सूत्र बांध दो, अगर जरा व्यवस्था जुटा दो, तो मैं जो कहूं, वे वेद हो जाए।

सूत्र बांधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता
हरदम मिट्टी रही तरसती
रखा जन्म से उसको प्यास
नित्य तिरस्कृत होकर रोया
वीराने में पड़ा उदास
होनहार सूरज ने कोई
अंधियारे में सांस तोड़ दी
शोकाकुल हो गये तुम
तुमने ठंडी आह छोड़ दी
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ सा
बूंद-बूंद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
दीप जला कर तुमने हरदम

छोड़ दिया बिलकुल अनाथ सा
बूंद-बूंद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
सूत्र बांधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता।
रही उपेक्षित धरती तुमसे
अपमानित ही लौटे मौसम
किया न तुमने कभी बात में
श्रम गंगा जमुना का संगम
कभी न पूछी कुशल फूल की
कभी न डाली को दुलराया
कभी न दुर्वा का दुःख जाना
कभी न शबनम को सहलाया
जरा तुम्हारी लापरवाही
बगिया में मधुमास न आया
अगर पाल लेते तुम कलियां
फूल फूल पंकज हो जाता
सूत्र बांधते अगर गीत में
वेदों का वंशज ही जाता।
बूंद-बूंद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ सा

भक्त कहता हैः तुम जिम्मेवार हो, क्योंकि तुम मालिक हो। तुम स्रष्टा हो; मैं तुम्हारी सृष्टि हूं।

ऐसा ही समझो कि एक मूर्ति मूर्तिकार को पुकारती हो कि यह क्या कर रहे हो! थोड़ा और छैनी लगाओ; थोड़ा मुझे और निखारो--साफ करोः थोड़ा मुझे और चमकाओ।

यह बात तुम्हारी समझ में न आयेगी, अगर संदेह से तुम चलते हो। तो यह बात ही छोड़ देना। यह तुम्हारे काम की नहीं है। फिर बाबा मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं।

अगर श्रद्धा का सूत्र तुम्हारे मन में गूंजता है, तो यह सारी बातें बहुत सीधी-साफ हैं। इनमें जरा भी अड़चन नहीं है।

इक दर्द की दुनिया है, इधर देख तो ले
कुछ और नहीं कहते, मगर देख तो ले
जिस दिल को मेरा गम ने किया दिल-ए-दोस्त

उस दिल की तरफ एक नजर देख तो ले।

भक्त पुकारे चला जाता है--कि जरा मेरी तरफ नजर करो।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।...

यह पहले सूत्रों की एक शृंखला पूरी हुई जिसमें मलूकदास परमात्मा को याद दिलाते हैं कि जरा तुम अपनी किताबें तो देखो। हजार तरह के करुणा के कृत्य पहले कर चुके हो, अब कुछ कंजूस होने की जरूरत नहीं है।

यह तो बात भगवान के लिए।

दूसरी बात भक्त के लिएः

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।

दिल फकीर जो हो रहे , साहेब तिनके साथ।।

सिर्फ वेश से जो फकीर हो गये हों, ऊपर-ऊपर फकीर हो गये हों, और भीतर-भीतर जरा भी फकीरी नहीं प्रवेश पाई हो; भीतर विनम्रता न हो...। समझना।

जो ज्ञानी है, वह कभी विनम्र नहीं हो पाता जो कर्म योगी है, वह कभी विनम्र नहीं हो पाता। उसका कर्म ही उसके अहंकार जो दीप्तमा रखता है।

तुम जरा फर्क देखना। जैन मुनि को तुम देखो और एक सूफी फकीर को देखो। सूफी फकीर में तुम एक विनम्रता पाओगे, जो जैन मुनि में नहीं मिलेगी। कारण साफ है। जैन मुनि विनम्र होने का कारण ही नहीं मानता। वह तो अपना एक-एक कृत्य साफ कर रहा है, शुद्ध कर रहा है। हर शुद्ध होते कृत्य के साथ अकड़ बढ़ रही है--कि मैं कुछ हूं।

जैन मुनि तुम्हें हाथ भी जोड़ कर नमस्कार नहीं करेगा। तुम नमस्कार करो, वह नमस्कार नहीं करेगा। वह कैसे नमस्कार कर सकता है! साधारण श्रावकों को, साधारण जनों को कैसे नमस्कार कर सकता है? अकड़ भारी है।

सूफी फकीर तुम्हारे पैर भी छू सकता है, नमस्कार की तो बात छोड़ो। तुम जाओगे, तो तुम्हारे पैर छू लेगा। क्योंकि उसने परमात्मा को ही जाना है--तुममें भी परमात्मा का जाना है। हर चरण परमात्मा का चरण है। यही असली फकीरी है।

फकीरी का मतलब है कि मैं नहीं।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ। और ऊपर-ऊपर से जो फकीर हो गये हैं और अभी अपने मन के भी मालिक नहीं हो सके हैं; अभी मन ही जिनका मालिक है; अहंकार जिनका मालिक बना बैठा है...।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।

दिल फकीरी जे हो रहे, साहेब तिनके साथ।।

यह तो परमात्मा से थोड़ा सा झगड़ा कर लिया, अब वे अपने शिष्यों में कह रहे हैं कि इस बात का ध्यान रखनाः ऊपर-ऊपर फकीरी से काम न चलेगा। भीतर फकीरी चाहिए। मैं ना कुछ हूं--ऐसा भीतर भाव चाहिए।

जीसस का प्रसिद्ध वचन है: धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का होगा। धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं...यह फकीरी को परिभाषा है। दरिद्र का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, कि तुम्हारे पास मकान नहीं है। मकान और पैसे से कोई समृद्ध होता, तो न होने से दरिद्र हो सकता था। इस बात को खयाल में रखना।

मकान होने से कोई समृद्ध ही नहीं होता, तो मकान के होने से दरिद्र कैसे हो जायेगा! धन के होने से कोई समृद्ध नहीं होता, तो निर्धन होने से कोई दरिद्र कैसे हो जायेगा।

अहंकार जाए, तो आदमी गरीब हुआ। अहंकार जाए, तो आदमी वस्तुतः दरिद्र हुआ। भीतर से उतर गया सिंहासन पर से; सिंहासन खाली कर दिया; उसी सिंहासन पर तो परमात्मा विराजमान होगा, जहां तुम बैठक लगाए बैठे हो।

दिल फकीरी जो हो रहे, साहेब तिनके साथ। और जिन्होंने दिल से फकीरी कर ली, जो भीतर दीन हो गए; जिन्होंने कहा: मैं कुछ भी नहीं हूं, उसी क्षण--साहेब तिनके साथ।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।

पानी तहां न पीजिए, परिहरिए सो देस।।

कहते मलूकदास कि जहां राम राम का गुणगान न होता हो, जहां प्रभु की याद न होती हो, जहां हवा-हवा में अर्चना की गंध न हो, जहां वातावरण प्रभु-सिक्त न हो, उस जगह रुकना मत। सूख जाओगे वहां। उस जगह ठहरना मत, क्योंकि उस जगह तुम्हें प्राणों का भोजन न मिलेगा; पुष्टि न मिलेगी।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।

पानी तहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

उस देश को छोड़ देना; वहां पानी भी मत पीना, क्योंकि वहां पानी भी जहर है।

यह सत्संग के लिए इशारा है। मलूकदास कहते हैं: वहां जाओ, जहां लोग राम की याद करते हों; जहां बैठ कर रोते हों; जहां बैठ कर गीत गुनगुनाते हों; जहां सत्संग होता हो, वहां डुबकी लगाओ। क्योंकि उस डुबकी में ही तुम धीरे-धीरे उस अमृत के साथ संबंध जोड़ पाओगे, जिसका नाम परमात्मा है।

अकेले तुमसे न हो सकेगा। संग खोजी। अकेले तुम बहुत कमजोर हो। अकेले भटक जाने की बहुत संभावना है। संग-साथ खोजो; साध-संग खोजो; जहां प्रभु वचनों की महिमा गाई जाती हो; जहां प्रभु की तरफ याद उठाई जाती हो; जहां प्रभु की याद में लोग मगन होते हों, नाचते हों। उस जगह जाओ, उस हवा में जियो, वहां श्वास लो, वहां पानी पीओ, वहां ठहरो, वहां आवास करो, तो शायद तुम्हें भी धुन पकड़ जाए।

तुमने यह खयाल किया: जहां दस-बीस लोग नाचते हों, वहां तुम्हारे पैर भी थिरकते लगते हैं। जहां कोई ढंग से तबला बजाता हो, वीणा बजाता हो, वहां तुम्हारे हाथ भी थपकने लगते हैं। क्या होता है?

कार्ल गुस्ताव जुंग ने ठीक शब्द उसके लिए खोजा है--सिन्क्रानिसिटि। कुछ समतुल घटने लगता है। उदास आदमी को देखकर तुम्हारे भीतर उदासी आ जाती है। क्योंकि हम अलग-

अलग नहीं हैं; हम एक दूसरे के भीतर प्रवेश कर रहे हैं; हमारी तरंगें एक-दूसरे में लीन हो रही हैं। उदास आदमी को देखकर तुम्हीं उदासी आ जाती है; प्रसन्न चित्त आदमी को देखकर तुम्हारे भीतर भी प्रसन्नता की किरण फूटने लगती है।

हम अलग-अलग नहीं हैं; हम एक-दूसरे के संग-साथ हैं। जहां दस आदमी हंस रहे हों, वहां तुम भूल ही जाते हो चिंता; वहां तुम भी हंसने लगते हो। पीछे तुम सोचते भी हो कि ऐसा कैसे हुआ। मैं तो इतना चिंतित था, इतना बोझ से भरा था, हंसने कैसे लगा! तुम कितना ही हंसते हुए जाओ, जहां दस आदमी उदास बैठे हों, मुर्दे की तरह बैठे हों, जहां की हवा में मौत--जीवन न हो, तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारी हंसी ठहर गई, ठिठक गई। हंसना मुश्किल पाओगे। इतनी दस आदमियों की उदासी दीवाल की तरह खड़ी हो जायेगी; तुम्हारे ओंठ बंध हो जायेंगे। तुम अचानक पाओगे कि तुम भी डुब गये उस अंधेरे में, जिसमें वे दस डूबे हुए बैठे थे।

मनुष्य एक-दूसरे से जुड़े हैं; एक दूसरे के हृदय की तरंगें, एक-दूसरे के भीतर जाती हैं, आंदोलन करती हैं। इसलिए साध-संग का बड़ा मूल्य है।

जहां तुम जैसे प्रभु को खोजने वाले कुछ दीवाने इकट्ठे होते हों, बैठो उन मस्तों के पास, दीवानों के पास; घड़ी भर तो जरूर निकाल ही लो चौबीस घंटे में। वहीं से तुम्हें धीरे-धीरे रस लगेगा। वहीं से तुम्हारे भीतर प्यास जगेगी; वहीं से तुम्हारे भीतर चुनौती उठेगी।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।

पानी जहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

उस देश को भी छोड़ देना, जहां लोग राम को भूल गये हों। उस समाज को भी छोड़ देना, जहां लोग राम का स्मरण न करते हों; वहां पानी भी मत पीना। उन हाथों से दिया गया पानी भी घातक है।

जार्ज गुरजिएफ कहा करता था कि तुम जैसे एक कारागृह में बंद हो। अकेले अगर तुम जेलखाने के बाहर निकलना चाहो, तो मुश्किल आसान हो जायेगी। फिर भी अगर सिर्फ कैदी ही आपस में जुट कर निकलने की कोशिश करें, तो भी कठिनाइयां होंगी। अगर ये कैदी जेल के बाहर के किसी मुक्त पुरुष से संबंध बना लें, तो और भी आसानी हो जायेगी।

एक कैदी निकलना चाहे, तो बहुत मुश्किल है, पचास पहरेदार हैं। लेकिन अगर सौ कैदी निकलना चाहें--इकट्ठे--एकजुट--तो पहरेदार कम पड़ जाते हैं। एक निकलता था, तो पचास पहरेदार थे; पचास गुने थे। सौ कैदी निकलना चाहे, तो पहरेदार कम पड़ गये; आधे हो गये। लेकिन फिर भी कठिनाई है। पहरेदार के पास बंदूकें हैं; पहरेदारों के पास सब साधन हैं। कैदी साधन ही हैं। लेकिन अगर भीतर के कैदी बाहर के जगत के किन्हीं लोगों से संबंध बना लें, जिनके पास साधन हैं, और जिनको स्वतंत्रता है, जो जानते हैं कि कब पहरा बदलता है; जो जानते हैं कि कौन-सी दीवाल बाहर से कमजोर हो गई है; जो जानते हैं कि किस कोने से निकल जाने पर आसानी पड़ेगी; जो जानते हैं कि दीवाल के किस हिस्से पर

चढ़ जाना सुगम होगा, क्योंकि बाहर से घूम कर जेल खाने को भली-भांति देख सकते हैं। तो आसानी हो जायेगी।

फिर गुरजिएफ कहता है: अगर यह जो बाहर का आदमी है, कभी जेल में न आया हो, तो उतनी आसानी होगी। लेकिन अगर कोई कैदी जो जले में भी रह चुका है और मुक्त हो गया है--अगर उससे तुम्हारा संबंध जुड़ जाए, तो बहुत आसानी हो जाएगी; उसे भीतर बाहर--सब पता है। वह तुम्हारे बड़े काम का हो जायेगा।

सदगुरु का इतना ही अर्थ है। तुम्हारी ही तरह वह भी कभी एक जेलखाने में था; अब वह बाहर हो गया है। उसे भीतर का सब पता है; उसे बाहर का भी सब पता है। वह स्वतंत्रता है। वह सब जांच-पड़ताल कर सकता है। वह भीतर नक्शे पहुंचा सकता है कि कहां से निकलना सुगम होगा; समय बता सकता है कि किस समय सुगम होगा; कब पहरेदार रात में सो जाते हैं। कौन सा क्षार कमजोर है। या किस पहरेदार को मिला लिया गया है और दरवाजा खुला छोड़ दिया जायेगा रात। ये सारी व्यवस्थाएं हो सकती हैं।

सदगुरु का अर्थ इतना ही होता है: जो संसार से उठ गया, और परमात्मा के साथ एक हो गया है; जो संसार की कारागृह के बाहर है। उसके साथ संबंध जोड़ लो। और जिन मित्रों को मुक्त होने की आकांक्षा है, उनसे भी संबंध जोड़ लो।

इसलिए दुनिया में सत्संग पैदा हुए। बुद्ध के हजारों लोग इकट्ठे हुए। महावीर के पास हजारों लोग इकट्ठे हुए; सत्संग बने

यहां करोड़ों-अरबों कैदी हैं, लेकिन मुक्त होने की उनकी काई आकांक्षा नहीं है। अगर तुम उसके साथ ही संग-साथ रखोगे, तो वे तुम्हें भी बंधनों की नई तरकीबें सिखाये जायेंगे। वे कहेंगे: चलो, इस बार इलैक्शन में ही खड़े हो जाओ; कि चलो, एक नई दुकान खोल लो; कि इस धंधे में बड़ा लाभ है। वे तुमसे वे ही बातें करेंगे जो वे कर सकते हैं। उनका कोई कसूर भी नहीं है।

वहां पानी भी मत पीना--मलूकदास कहते हैं: उस देश को भी छोड़ देना उन लोगों से भी धीरे-धीरे हटना।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ। और बाहर-बाहर से न होगा। दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ। भीतर-भीतर की बात है। भीतर की बात है।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।

पानी तहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

और अगर तुम सत्संग में डूबने लगो, तो तुम पाओगे; परमात्मा धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर प्रवेश पाने लगा।

आंगन में नर्म नर्म फूटती उजास

और हिलती है पंखुड़ी गुलाब की

मेंहदी के पत्तों से देह रचे दिन

आंखों में सुबवंती सामे

हलकी-सी एक छुअन पल-छिन
गोरी रातों सी पहचाने
पोर-पोर रंगता है इतना मधुमास
और बात गांठ खोल रही बात की
कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं
सारा अपनापन तो अपना है
रंगों के मेले में एक रंग
पत्थर पर दूब का पनपना है
यह भी क्या कुछ कम
इतना विश्वास
और साथ-साथ परछाई आपकी।

पहले तो परमात्मा परछाई की तरह आयेगा; लेकिन इतना क्या कम है! कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं।...

तुमने देखा--पत्थर पर उप गीत हुई दूब को कभी देखा? पत्थर पर दूब ऊग आती है, तो आदमी के हृदय पर परमात्मा न ऊगेगा! यहां असंभव होता है।

कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं
सारा अपनापन तो अपना है
रंगों के मेले में एक रंग
पत्थर पर दूब का पनपना है
यह भी क्या कुछ कम
है इतना विश्वास
और साथ-साथ परछाई आपकी
आंगन में नर्म-नर्म फूटती उजास
और हिलती है पंखुड़ी गुलाब की

परमात्मा धीरे-धीरे आने लगेगा, जैसे उजास आती आंगन में और खिलने लगता गुलाब; ऐसे ही तुम भी खिलने लगोगे।

सत्संग खोजो; साध-संग खोजो; फिर पता ही नहीं चलता--कब परमात्मा तुम्हारे भीतर किस चुपके से प्रवेश कर जाता है।

इश्क सुनते थे जिसे हम, वह यही है शायद।
खुद-ब-खुद दिल में एक शक समाया जाता।।

आज इतना ही।

कन थोरे कांकर घने

जीवंत अनुभूति प्रकृति और सदगुरु प्रेम की हार भक्त का निवेदन परमात्मा की प्यास भलाई का अहंकार

छठवां प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १६ मई, १९७७

प्रश्न सार

आध्यात्मिक अनुभूतियों को कैसे संजो कर रखा जाए?

प्रकृति सान्निध्य और गुरु सान्निध्य में क्या फर्क है?

परमात्मा को पाना मनुष्य की जीत है या हार?

भक्त क्या पाना चाहता है?

परमात्मा की खोज का साहस मुझमें क्यों नहीं है?

मैं भलाई करता हूं, लोग अनुग्रह क्यों नहीं मानते?

पहला प्रश्नः जीवन में यदि कभी अनुभूति घटित हो, तो उसे उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाए?

पूछा है श्री शुकदेव ने।

पहली तो बातः अभी अनुभूति घटी नहीं; कभी घटित हो। भविष्य को भी हम पकड़ना चाहते हैं! भविष्य का अर्थ ही है, जो अभी हुआ नहीं; उसको भी तिजोड़ी में बंद कर लेने का आयोजन करना चाहते हैं!

कृपणता की हद्द है; अतीत को तो हम रखते ही है संजो कर; भविष्य की भी चिंता करते हैं कि कैसे...! अगर कभी अनुभूति घटित हो, उसे कैसे संजो कर रखा जाए!

तो पहले तो बातः अतीत में भी कुछ घटा हो, तो उसे भी संजो कर रखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जो तुम संजो कर रखोगे, वही-वही बोझ हो जायेगा।

स्मृति ज्ञान नहीं है। जो घट गया--भूल जाओ, विस्मरण करो; उसे ढोने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी स्मृति अगर उससे बहुत आच्छादित हो जाए, तो फिर दुबारा न घट सकेगा। फिर तुम्हारे दर्पण पर बड़ी धूल जम जायेगी।

जो हुआ, उसे भूलो। जो हुआ, उसे जाने दो। जो हो गया--हो गया। जो हो गया--चुक गया। संजो कर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है।

लेकिन हमारी सांसारिक पकड़ें हैं; हर चीज को संजो कर रखते हैं, तो शायद सोचते हैंः कभी समाधि घटेगी, प्रभु का अनुभव होगा, उसको भी सम्हाल कर रख लेंगे।

सम्हाल कर रखेगा कौन? प्रभु का अनुभव जब होता है, तब तुम तो होते ही नहीं; तुम तो बचोगे नहीं; कौन सम्हालेगा? क्या सम्हालेगा?

प्रभु का अनुभव इतना बड़ा है; अनुभूति तुमसे बड़ी है--तुम न सम्हाल सकोगे; तुम्हारी मुट्ठी में न समायेगी। और जो तुम्हारी मुट्ठी में समा जाए, उसे तुम अनुभूति समझना मत।

तो पहले तो भविष्य को पकड़ने की चेष्टा ही व्यर्थ है। ऐसे तुम्हारा मन व्यर्थ की चिंताओं में उलझ जाता है। हवाओं में महल खड़े मत करो।

दूसरे--यदि अनुभव हो भी जाए, तो उसे संजो कर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो हो गया अनुभव--वह हो गया; उसे याद थोड़े ही रखना पड़ता है।

सम्हाल कर तो उसी को रखना पड़ता है, जो हुआ नहीं। समझने का कोशिश करना।

जिसको तुमने जान लिया, याद नहीं रखना पड़ता। जिसको तुमने नहीं जाना है, उसी को याद रखना पड़ता है। विद्यार्थी याद रखता है, क्योंकि समझा तो कुछ भी नहीं है; जाना तो कुछ भी नहीं है। परीक्षा देनी है, तो स्मरण रखता है। परीक्षा के बाद भूल-भाल जायेगा।

अगर तुम्हें ही अनुभव हुआ हो, तो सम्हलना नहीं पड़ता।

क्या सम्हालोगे? अनुभव हो गया, बात हो गई।

सच तो यह है कि अनुभव हो जाए, तो उसे भूलोगे कैसे! क्या उपाय है--जाने हुए को अनजाना करने का? अगर अनुभव सच में हुआ है, तो अनुभव तुम्हारे श्वास-श्वास में समा गया; तुम्हारी रंध्र-रंध्र में विराजमान हो गया। जो जान लिया--वह जान लिया। अब इसका कोई उपाय नहीं है; जरूरत भी नहीं है कि इसे संजो कर रखो।

संजो कर तो उधार बातें रखनी पड़ती हैं, जो अपनी नहीं हैं; दूसरों ने जानी होगी; हम सिर्फ मानते हैं; उन्हें संजो कर रखना पड़ता है। दूसरों ने जानी होंगी, तो हमें याद रखनी पड़ती हैं। अपना जाना हुआ याद नहीं रखना पड़ता; अपना जाना हुआ, तो याद ही रहता है। बीच रात अंधेरे में कोई कर पूछ ले, तो भी याद रहता है। भूल थोड़े ही जाओगे; यह थोड़े ही कहोगे कि जरा समय दो, मैं याद कर लूं!

अगर तुम्हें परमात्मा का अनुभव हो जाए, तो क्या तुम कहोगे कि जरा समय दो, मुझे सोच-विचार कर लेने दो, तब मैं बताऊं; हो गया अनुभव, तो तुम अनुभव के साथ एकरूप हो गए।

नहीं; जीवन की परम घटनाएं संजो कर नहीं रखनी पड़ती। जीवन की परम घटनाएं इतनी बहुमूल्य हैं, इतनी प्रगाढ़ हैं, इतनी गहरी हैं कि तुम्हारे प्राण के गहरे से गहरे हिस्से तक प्रविष्ट कर जाती हैं। तुम्हारी अनुभूति तुम्हारी सुगंध बन जाती है।

और, संजो कर रखना ही मत कुछ।

यह यहां रोज अनुभव में आता है। अगर ध्यान की थोड़ी सी झलक मिली, तो बस, अड़चन शुरू हुई। फिर आदमी सम्हाल कर रखने लगता है। उस झलका को पकड़-पकड़कर रखता है। उस झलक के कारण नई झलक मिलनी मुश्किल हो जाती है।

मन खाली चाहिए; मन सदा रिक्त चाहिए; मन के दर्पण पर चित्र नहीं चाहिए। तो जो अनुभव हुआ--हो गया।

कल जो जो चुका है, उसे याद हम इसीलिए रखते हैं कि हमें डर है कि फिर पता नहीं, अब होगा या नहीं!

परमात्मा की एक किरण उतर आये, तो डर नहीं है कोई। तुम अभय हो जाओगे। जो आज हुआ है, वह कल और भी होगा; परसों और भी ज्यादा होगा। जो हुआ है, वह बढ़ता रहेगा। इतना भय नहीं है।

लेकिन हम संसार से अनुभव सीखे हैं: रुपया मिल जाए, सम्हाल कर रख दो; कहीं खो न जाए। आज मिल गया, कल भी मिलेगा--पक्का है?

राह से जाते थे, मिल गई एक थैली रुपयों की। सम्हाल कर रख लो। अब दुबारा-दुबारा बार-बार थोड़े ही राह के किनारे यह थैली मिलेगी।

तो संसार में हम हर चीज को सम्हाल कर रखते हैं; पकड़ कर रखते हैं। हमें परमात्मा का कोई अनुभव नहीं है। जहां परमात्मा होना शुरू होता है--एक बूंद हुआ, तो कल दो बूंद होगा। अगर न हो, तो कसूरवार तुम हो। तुम अगर अतीत की बूंद को बहुत पकड़ कर बैठ गये और उसी को गुनगुनाते रहे, उसी की जुगाली करते रहे, तो परमात्मा सामने खड़ा रहेगा--और तुम अपने अतीत में उलझे रहोगे।

तुम अपनी अतीत की अनुभूति संजोने में लगे हुए हो और परमात्मा द्वार खटका रहा है, तो तुम चूकोगे।

अनुभूतियों--समाधि की, सत्य की, सम्यक बोध की, संबोधि की--सम्हाल कर नहीं रखनी होती। पहली तो बातः तुम्हारे रोए-रोए में प्रविष्ट हो जाती हैं स्मृति नहीं बनती।

स्मृति तो हम बनाते उसी चीज की हैं, जो हमारे रोए-रोए में समाती नहीं। समझोः जैसे कि तुमने तैरना सीखा; इसे याद रखना पड़ता है? यह तुम्हारे रोए-रोए में समा गया; इसकी कोई स्मृति नहीं है। तुम तीस साल न तैरो, पचास साल न तैरो, और फिर अचानक एक दिन नदी में उतर जाओ, क्या तुम्हें याद करना पड़ेगा--खड़े हो कर--कि कैसे तैरते थे! भूल जाओगे? कोई आज तक भूला नहीं। याद रखना ही नहीं पड़ता--और भूलते भी नहीं। इस रहस्य को समझना।

तैरना एक अनुभव है; इतना गहरा अनुभव है...। और गहरा इसलिए है, क्योंकि जब तुम नदी में उतरते हो और तैरना नहीं जानते, तो तैरना जीवन-मरण का सवाल होता है, इसलिए गहरा उतर जाता है।

नदी में उतरे और तैरना नहीं जानते, तो जीवन-मृत्यु का सवाल है। यह कोई ऐसा नहीं है कि दो और दो चार होते हैं। दो और दो पांच भी हों, तो तुम कोई मरते नहीं हो। दो और दो तीन भी हो जाए, तो कोई जीवन मिलने वाला नहीं है। दो और दो चार होते हैं--होते रहें। कुछ भूलचूक हो जाएगी, तो कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन तैरने उतरे नदी में--सीखने उतरे, अगर भूल-चूक हो गई तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे। यह बड़ा खतरनाक है। इसलिए तुम्हारा अस्तित्व इसे स्मृति में नहीं रखता; तुम्हारे रोए-रोए में रख देता है। तुम्हारे पूरे तन-प्राण पर यह बात प्रविष्ट हो जाती है। फिर पचास साल बाद भी तुम पानी में उतरोगे, तो तुम उतना ताजा पाओगे--तैरना, जितना पचास-साल पहले पाया था। जरा भी भूलचूक हीन होगी। वैसा का वैसा पाओगे।

पचास साल न तो संजो कर रखा, न याद किया, न बार-बार पुनरुक्ति की, न अभ्यास किया, फिर भी है।

परमात्मा का अनुभव तैरने जैसा है। वह भी चैतन्य के सागर में तैरना है। और परमात्मा के साथ संबंध जोड़ना भी जीवन-स्मरण का सवाल है। खतरनाक खेल है। कमजोरों के लिए नहीं है।

शुकदेव महाराज! आप कंजूस हैं। आपको जिंदगी में चीजें सम्हाल कर रखने की आदत है। यह कंजूसी वहां न चलाओ; यह कंजूसी वहां न ले जाओ।

प्रभु जब उतरेगा, तो रहेगा। अपने आप बसेगा। तुम सिर्फ द्वार खोलो।

मगर जिस तरह का प्रश्न पूछा है, ऐसे तो द्वार कभी खुलेगा ही नहीं। तुम तो पहले से इंतजाम जुटा रहे हो। पूछते होः जीवन में यदि कभी अनुभूति घटित हो, तो उसे उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाए?

उसी रूप में संजो कर रख कर करना क्या है! और आगे नहीं पढ़ना? एक किरण मिल गई, उससे तृप्त हो जाना है?--सूरज तक नहीं चलना है? एक बूंद मिल गई है, उससे राजी हो जाना है?--सागर को नहीं पाना है? रुकने की इतनी जल्दी क्या! परमात्मा अपार है; पाते चलो--चुकता नहीं। कितना ही पाओ--चुकता नहीं। जितना पाओ, उतना ही पाने को सामने प्रकट हो जाता है।

परमात्मा का कोई ओर-छोर नहीं है। इतनी जल्दी क्या! इतनी कृपणता क्या? इतनी कमजोरी क्या?--कि उसको वैसा का वैसा कैसे सम्हाल कर रख लें!

परमात्मा शाश्वत है। प्रतिपल होगा--एक बार हो जाए, एक बार स्वाद लग जाए। हो तो अभी भी रहा है, तुम्हें स्वाद पता नहीं है, इसलिए पहचान नहीं पाते। खड़ा तो अब भी तुम्हारे सामने है; है तो तुम्हारा पड़ोसी अब भी, लेकिन प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। अनुभव नहीं हुआ, तो पहचान नहीं होती। हीरा सामने पड़ा हो और तुम हीरा जानते नहीं कि कैसा होता है, तो पड़ा रहे हीरा।

मैंने सुना है कि एक जौहरी एक रास्ते से गुजरता था और उसने देखा कि एक कुम्हार अपने गधे पर पत्थर लादे हुए आ रहा है। और गधे के गले में उसने एक बहुमूल्य हीरा लटकाया हुआ है! जौहरी तो बड़ी हैरान हुआ। लाखों का हीरा है! और गधे के गले में लटकाया हुआ है! उसने उस कुम्हार से पूछाः इस पत्थर का क्या लेगा? हीरा कहना तो ठीक नहीं समझा उसन। हीरा कहे तो झंझट होगी; ज्यादा मांगेगा। और पत्थर ही समझना होगा यह, नहीं तो गधे के लटकाता! इस पत्थर का क्या लेगा? उसने पूछा।

उस कुम्हार ने कहा कि आठ आने दे दो।

जौहरी ने कहाः पत्थर के आठ आने! चार आने लेता है?

आदमी ऐसा कृपण! आठ अपने में मिलता था लाखों का हीरा, लेकिन उसने सोचा कि आठ आने क्यों खराब करने; चार अपने से ही काम चल जाए।

कुम्हार भी कुम्हार था, उसने कहा कि नहीं बच्चे खेलेंगे। आठ आने से एक पैसे कम में नहीं दूंगा। इतना सुंदर पत्थर, चार आने में मांगते हो!

जौहरी ने सोचा: जाने दो थोड़ा दो-चार कदम आगे। पांच आने, छः आने तक निपट जायेगा। कुम्हार जरा आगे गया; दूसरा जौहरी आता था; उसने देखा--हीरा। उसने कहा: एक रुपया नगद लूंगा; इससे कम नहीं।

उस जौहरी ने जल्दी से एक रुपया दिया और पत्थर ले लिया। तब तक दूसरा जौहरी लौट कर आया। उसने कहा: भाई, छह आने ले ले। कुम्हार ने कहा: भाई, बिक गया। कितने में बेच दिया? उसने कहा: एक रुपये में बेच दिया। जौहरी ने कहा: अरे पागल, लाखों का था!

वह कुम्हार हंसने लगा; उसने कहा कि मैं तो पागल हूं, लेकिन मुझे पता नहीं। लेकिन तुम्हें तो पता था। तुम आठ आने में लेने को राजी न थे! मूर्ख कौन है? मुझे तो पता नहीं, इसलिए क्षम्य हूं। लेकिन तुम अपने को कैसे क्षमा करोगे!

हीरा भी सामने पड़ा हो, तो पहचानना तो चाहिए न कि हीरे कैसे होते हैं, तो प्रत्यभिज्ञा होती है।

परमात्मा तो सामने ही है; आसपास ही है; भीतर-बाहर है; वही है; और तो कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारी आंखों में कोई अनुभव नहीं है। जिस दिन अनुभव हो जायेगा--एक झलक, बस फिर झलक ही झलक खुल जायेगी। फिर इसको सम्हालकर रखोगे? क्या पागलपन की बात कर रहे हो!

और झलक का सम्हाल कर रखा, तो वह तो स्मृति मात्र होगी। वह तो ऐसा होगा: असली आदमी सामने खड़ा था, तुम फोटोग्राफ छाती से लगाए बैठे रहे! याददाश्त तो फोटोग्राफ है। फोटोग्राफ की तो तब जरूरत होती है, जब कि असली मौजूद न हो। परमात्मा की हमें मूर्तियां बनानी पड़ी है, क्योंकि हमें असली परमात्मा थोड़े ही पूजा करोगे! उस दिन तुम मंदिर-मस्जिद थोड़े ही जाओगे। उस दिन तो जहां तुम देखोगे, वहीं वही है, वहीं तुम्हारी पूजा उठने लगेगी; वहीं तुम्हारी आरती के दीए सज जायेंगे। तब तुम जहां बैठोगे, वहीं उपासना, वहीं प्रार्थना। तुम जिस तरफ आंखें उठाओगे, उसी तरफ प्रभु की झलक।

और तुम पूछते हो कि उसको उसी रूप में संजो कर कैसे रखा जाए? तुम्हें अगर आलबम बनाना हो, तुम्हारी मर्जी।

कुछ लोग हैं, जो अलबम बनाने में बड़ी उत्सुकता लेते हैं। एक तरफ की बीमारी है।

मेरे एक मित्र हैं, बड़े फोटोग्राफर हैं; उनके साथ एक दफा मैं हिमालय गया। तो उन्हें हिमालय देखने की चिंता नहीं! उनको तो फोटो लेने की चिंता है। हिमालय सामने खड़ा है; वे तो उत्तुंग शिखर सामने खड़े हैं; वे फोटोग्राफ ले रहे हैं। मैंने उनसे पूछा भी कि फोटोग्राफ ही लेते थे, तो फोटोग्राफ तो कहीं भी मिल जाते थे; बाजार में बिकते हैं; इतने दूर आने की जरूरत न थी। उन्होंने कहा: आप समझते नहीं। घर में बैठ कर शांति से अलबम देखेंगे। हिमालय सामने है। यह गंगा बही जा रही है। यह अपूर्व कलकल नाद! यह फोटोग्राफ में तो नहीं होगा। फोटोग्राफ तो मुर्दा होंगे।

इसी संदर्भ में यह भी समझ लेना कि अनुभूति और अनुभव में यही भेद है। इन दो शब्द में बड़ा भेद है। अनुभूति तो कहते हैं, जब सामने घटना घट रही हो--तब। और अनुभव कहते हैं--जो घटना घट गई और उसकी तस्वीर रह गई मन में। अनुभूति कहते हैं--मौजूद को और अनुभव कहते हैं--बीच चुके को।

तुमने सूरज को उगते देखा; जब तुम उगते देख रहे थे; जब सूरज उगता था और तुम सूरज के साथ मौजूद थे और तुम्हारे भीतर भी कोई रोशनी उगती थी और तुम एक लीन हो गये थे; वह तो क्षण है अनुभूति का। फिर तुमने सांझ याद किया; बड़ा प्यारा सूरज था; कितना सुंदर था! और तुमने सब फिर अपनी स्मृति में दोहराया--यह अनुभव है। अनुभव मुर्दा अनुभूति है।

अनुभूति में तो प्राण है, आत्मा है; अनुभव में केवल लाश रह गई।

अब तम पूछते हो कि उस अनुभव को उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाए?

तुम लाश को सजा कर रख लोगे। प्राण तो निकल गया। प्राण तो सदा वर्तमान में होता है; अभी और यहां होता है।

जैसे कि मैं तुमसे बोल रहा हूं। अभी जो मैं तुमसे बोल रहा हूं, इन शब्दों में प्राण है। तुम इनको संजो कर रख लेना। घर जाकर याद करना कि मैंने क्या कहा था, तब इनमें प्राण नहीं रहेगा; तब तुम्हारी स्मृति में दोहराए जाएंगे।

स्मृति तो यंत्र है, जैसे टेपरेकोर्डर है; उनमें प्राण नहीं रहेगा। यहां कुछ लोग कभी-कभी आ जाते हैं; मैं यहां बोलता हूं, वे अपना नोट बुक निकाल कर लिखने लगते हैं।

एक डाक्टर यहां आते थे, उनको मैंने आखिर बुलाकर कहा कि यह मत करो। उन्होंने कहा: नहीं; लेकिन आप ऐसे बहुमूल्य बात कभी कह देते हैं कि संजो कर रखनी है। मैंने कहा: तुम मौजूद, मैं मौजूद; बोलनेवाला मौजूद, सुननेवाला मौजूद; तुम इतने परिपूर्ण प्राण से सुन क्यों नहीं लेते कि उसका पूरा रस तुममें भिद जाए। कागज पर लिख कर क्या करोगे? और अगर मेरे बोलते समय तुम्हारी समझ में नहीं आया, तो तुम इस किताब को जब वापस पढ़ोगे, तुम सोचते हो--तुम समझ लोगे? लाश हाथ रह जायेगी।

शास्त्र और गुरु का यही तो भेद है। शास्त्र लाश हैं। गुरुओं की लाशें शास्त्र बन जाती हैं। वेद हैं, उपनिषद हैं; गीता है, कुरान है, बाइबिल है--लाशें हैं।

जब जीसस बोलते थे, जिन्होंने सुना होगा, उनके जीवन में एक पुलक आई होगी। जब उपनिषद के ऋषियों ने गुनगुनाया होगा और जो सौभाग्यशाली थे उनके पास बैठने के, उन्हें रोमांच हुआ होगा; कुछ घटा होगा तब। वह तो थी अनुभूति। अब तम अगर शास्त्र को पढ़ रहे हो, स्मृति को जगा रहे हो, अलबम को देख रहे हो, तो वह है अनुभव।

परमात्मा को संजो कर रखने की चेष्टा ही मत करना।

और अभी तो परमात्मा घटा भी नहीं है। घटने तो दो। अभी तो यह फिक्र करो--ऐसा प्रश्न पूछो--कि कैसे घटे।

तुम्हारे प्रश्न की मूढ़ता तुम्हें दिखाई पड़ती है? अभी घटा नहीं है। यह तुम पूछते नहीं कि कैसे घटे! अभी हीरा मिला नहीं: तुम पूछते नहीं कि हीरा कहां है? कैसे मिले? और मिल जाए, तो मैं कैसे पहचानूंगा कि हीरा यही है?--कि असली हीरा है?

यह तो तुम पूछते नहीं। तुम यह पूछ रहे हो कि यदि किसी दिन हीरा मिल जाए...। न तुम्हें खदान का पता है; न तुम्हें हीरे की पहचान है। यदि किसी दिन हीरा मिल जाए, तो मैं उसे कैसे गांठ बांध कर रखूंगा?--यह बतला दें।

क्या तुम खाक गांठ बांधोगे! गांठ का मूल्य ही क्या है? तुम जरूर कोई न कोई पत्थर पर गांठ बांधकर बैठ जाओगे।

ठीक-ठीक प्रश्न पूछो; सम्यक प्रश्न पूछो, तो तुम्हारे जीवन में रास्ते बनेंगे। प्रश्न पूछते वक्त स्मरण रखो: क्या पूछ रहे हो।

दूसरा प्रश्न: गुरु के सत्संग की तो आप रोज-रोज महिमा गाते हैं, पर प्रकृति के सत्संग की कभी-कभी ही चर्चा करते हैं। क्या गुरु प्रकृति से भी अधिक संवेदनशील द्वार है? कृपा करके समझाए।

प्रकृति है--सोया परमात्मा; और गुरु है--जागा परमात्मा।

गुरु का अर्थ क्या होता है? गुरु का अर्थ होता है: जिसके भीतर प्रकृति परमात्मा बन गई।

तुम सोए हो; प्रकृति सोयी है; इन दोनों सोए हुओं का मेला भी बैठ जाए, तो भी कुछ बहुत घटेगा नहीं। दो सोए आदमियों में क्या घटनेवाला है? दो साए हुई स्थितियों में क्या घटनेवाला है?

तुम अभी प्रकृति से तालमेल बिठा ही न सकोगे। तुम जागो, तो प्रकृति को भी तुम देख आओ। तुम जागो, तो प्रकृति में भी तुम्हें जगह-जगह परमात्मा का स्फुरण मालूम पड़े। पत्ते-पत्ते में, कण-कण में उसकी झलक मिले--लेकिन तुम जाओ तो। तुम अभी गुलाब के फूल के पास जाकर बैठ भी जाओ, तो क्या होना है! तुम सोचोगे दुकान की। तुम अगर गुलाब के संबंध में थोड़ी बहुत सोचने की कोशिश करोगे, तो वह भी उधार होगा। तुम अभी जागे नहीं। तुम अभी अपनी प्रति नहीं जागे, तो गुलाब के फूल के प्रति कैसे जागोगे?

जो अपने प्रति जागता है, वह सब के प्रति जाग सकता है। और जो अपने प्रति सोया है, वह किसी के प्रति जाग नहीं सकता।

और गुलाब का फूल गुरु नहीं बन सकता। क्योंकि गुलाब का फूल तुम्हें झकझोरेगा नहीं। गुलाब का फूल खुद ही सोया है, वह तुम्हें कैसे जगायेगा?

गुरु का अर्थ है--जो तुम्हें झकझोर, जो तुम्हारी नींद को तोड़े। तुम मीठे सपनों में दबे ही। कल्पनाओं में डूबे हो। जो अलार्म की तरह तुम्हारे ऊपर बजे; जो तुम्हें सोने दे...। एक बार तुम्हें जागरण का रस लग जाए, एक बार तुम आंख खोल कर देख लो कि क्या है, कि कोई बात नहीं है। फिर प्रकृति में भी परमात्मा है।

इसलिए कभी-कभी मैं प्रकृति की बात करता हूं, लेकिन ज्यादा नहीं। क्योंकि तुम से प्रकृति की बात करी व्यर्थ है। तुम्हें इन वृक्षों में क्या दिखाई पड़ेगा? वृक्ष ही दिखाई पड़ जाए, तो

बहुत। वृक्षों से ज्यादा तो दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम्हें मनुष्यों में नहीं दिखाई पड़ता--मनुष्यों से ज्यादा कुछ! तो वृक्षों में वृक्षों में ज्यादा कैसे दिखाई पड़ेगा; तुम्हें अपने में नहीं दिखाई पड़ता कुछ भी।

शुरुआत अपने से करनी होगी।

और किसी जीवित गुरु के साथ हो लेने में सार है।

गुरु का काम बड़ा धन्यवाद शून्य काम है। कोई धन्यवाद भी नहीं देता! नाराजगी पैदा होती है। क्योंकि गुरु अगर तुम्हें जगाये, तो गुस्सा आता है।

तुम गुरु भी ऐसे तलाशते हो, जो तुम्हारी नींद में सहयोगी हों। इसलिए तुम पंडित-पुरोहित को खोजते हो। वे खुद ही सोए हैं; घुर्रा रहे हैं नींद में; वे तुम्हारे लिए भी शामक दवा बन जाते हैं।

जाग्रत गुरु से तुम भागोगे; सदा से भागते रहे हो; नहीं तो अब तक तुम कभी के जाग गए होते। बुद्ध से भागे; महावीर से भागे; कबीर से भागे होओगे। जहां तुम्हें कोई जागा व्यक्ति दिखाई पड़ा होगा, वहां तुमने जाना ठीक नहीं समझा; तुम भागते रहे हे। तभी तो अभी तक बच गये, नहीं तो कभी के जाग जाते। तुम पकड़ते ऐसे लोगों का सहारा हे, जो तुम्हारी नींद न तोड़ें। तुम कहते हो: ठीक है। धर्म भी हो जाए, और जैसे हम है, वैसे के वैसे भी बने रहे। तुम सोचते हो कि चलो, थोड़ा कुछ ऐसा भी कर लो कि अगर परमात्मा हो, तो उसके सामने भी मुंह लेकर खड़े होने का उपाय रह जाए; कि हमने तेरी प्रार्थना की थी, पूजा की थी। अगर हमने न की थी, तो हमने एक पुरोहित रख लिया था नौकरी पर, उसने की थी; मगर हमने करवाई थी--सत्य-नारायण की कथा। प्रसाद भी बंटवाया था! मगर भगवान न हो, तो कुछ हर्जा नहीं है; दो-चार-पांच रुपये का प्रसाद बंट गया; दो-चार-पांच रुपए पुरोहित ले गया; कोई हर्जा नहीं है। वह जो दस-पांच का खर्चा हुआ, उसको भी तुम बाजार में उपयोग कर लेते हो; क्योंकि जो आदमी रोज-रोज सत्य नारायण की कथा करवा देता है, उसकी दुकान ठीक चलती है। लोग सोचते हैं: सत्य नारायण की कथा करवाता है, तो कम से कम सत्य नारायण में थोड़ा भरोसा करता होगा। सत्य बोलता होगा। कम लुटेगा। कम धोखा देगा।

यहां भी लाभ है--सत्य नारायण की कथा से। लोग समझने लगते हैं: धार्मिक हो, तो तुम आसानी से उनकी जेब काट सकते हो। उनको भरोसा आ जाए कि आदमी ईमानदार है, मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है, तो सुविधा हो जाती है; प्रतिष्ठा मिलती है।

यहां भी लाभ है। और अगर कोई परमात्मा हुआ, तो वहां भी लाभ ले लेंगे।

मैंने सुना है: एक आदमी मरा; वह स्वर्ग के द्वार पर गया। द्वारपाल ने उससे पूछा कि महाराज, आपने कुछ पुण्य किया है, जो आप सीधे स्वर्ग चले आये? उसने कहा कि हां, किया है। एक बुढ़िया को तीन पैसे दिए थे।

उन्हें भरोसा तो नहीं इस कंजूस को, कृपण को देखकर। इसकी खबरें आती रही थीं जमीन से कि यह महा कृपण है। इसने तीन पैसे दिए हों, भरोसा तो नहीं आया। लेकिन खाता-वाही देखी। तीन पैसे उसने दिए थे। लिखा था हिसाब--कि तीन पैसे दिए हैं।

तो द्वारपाल अपने सहयोगी से पूछने लगा: अब क्या करें! तो उसके सहयोगी ने कहा: इसको तीन कैसे की जगह चार पैसे दे दो--ब्याज सहित वापस--और नरक भेजो। और क्या करेंगे!

तुमने जो किया है कभी धर्म, वह ऐसा ही है--तीन पैसे जैसा। और तुम ध्यान रखना: चौथा पैसा तुम्हें वापस मिल जाएगा और नरक की यात्रा...!

तुम धर्म को भी हिसाब किताब से करते हो। लेकिन सदगुरु के पास रहोगे, तो नींद तो टूटेगी। सपना तो टूटेगा।

कभी-कभी सपना अच्छा भी होता है; सुंदर भी होता है। सभी सपने दुःख स्वप्न नहीं होते!

मैंने सुना है: एक रात मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उसे उठा दिया, कहा कि चोर-चोर; उठो। वह बड़ा नाराज हुआ। उसने कहा: भाड़ में जाने दे चोर को। सब खराब कर दिया। अब पता नहीं, दुबारा होगा कि नहीं। वह जल्दी आंख बंद करके लेट गया। उसकी पत्नी के कहा: मामला क्या है? उसने कहा कि मामला यह है...। खराब ही करवा देगी बिलकुल। एक आदमी सपने में सौ रुपये दे रहा था। बेवक्त जगा दिया। अब पता नहीं, आंख बंद करूं, तो वह दे--न दे; मिले--न मिले।

तुम्हारे सपने भी हैं, उनमें भी तुम कल्पनाओं को बांध रहे हो।

तो गुरु तुम्हारे दुःख-स्वप्न तो तोड़ेगा ही; तुम्हारे सुख-स्वप्न भी तोड़ देगा।

प्रकृति से यह काम न हो पायेगा। प्रकृति खुद ही सोयी है, तुम्हें कैसे जगाएगी? हां, प्रकृति के पास जाओगे, तो थोड़ी राहत मिलेगी, शांति मिलेगी, क्योंकि प्रकृति उद्विग्न नहीं है।

कश्मीर की झीलों में, कि हिमालय की वादियों में हरे वृक्षों के साथ बैठ कर, चांदत्तारों के नीचे; कि दूर--उत्तुंग--उठती सागर की लहरों को देखकर तुम थोड़े शांत हो जाओगे; क्योंकि मनुष्य का उत्पात नहीं है; मनुष्य के रुग्ण चित्तों की तरंगें नहीं हैं। बस, इतना ही होगा। लेकिन यह कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है।

शुरू शुरू जाओगे हिमालय तो दो-चार दिन शांति लगेगी, फिर अशांति शुरू हो जाएगी। फिर तुम हिमालय को भूल जाओगे; फिर तुम्हारा मन वापस लौट आयेगा; फिर तुम्हारा मन पुराने गणित में उलझ जायेगा; फिर तुम सोचने लगोगे: बाजार की, संसार की जगत की बातें। फिर तुम उतरोगे पहाड़ से; तुम कहोगे: चलो घर--वापस; अब यहां ऊब आने लगी।

प्रकृति के पास थोड़ी देर शांति मिल सकती है। विश्राम के लिए ठीक है। प्रकृति के पास थोड़ी निद्रा मिल सकती है, क्योंकि बड़ी गहन निद्रा में सोयी है। इसलिए तो समुद्र में, पहाड़ में, एकांत में, सन्नाटे में अच्छा लगता है; नींद जैसा अच्छा लगता है; लेकिन जागरण कैसे मिलेगा? जागरण तो कोई जागा हो, उसी के पास मिल सकता है।

सूरज आया द्वार रो

सपनों की ये ओढ़नी

अब तो परे उतार री
सूरज आया द्वार री।
गीली पोंछ कपोल री
नयन उठा कुछ बोल री
बिखरा वेश संवार री
सूरज आया द्वार री।
चिड़ियां रह रह आ रही
सुधियां पास बुला रहीं
मन को छेड़ सितार री
सूरज आया द्वार री।
गुरु के पास सूरज द्वार पर आ जाता है।
सपनों की यह ओढ़नी
अब तो परे उतार री।

ओढ़नी सपनों की डाले बैठे हैं? घूंघट मारे बैठे हैं--सपनों का, उसकी वजह से जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता। गुरु तुम्हारी ओढ़नी उतार लेगा? तुम्हारी आंखों को नग्न कर देगा? धुआं सपनों का हटा लेगा। मगर यह भी तभी हो सकता है, जब तुम सहयोग करो। यह तुम्हारे विरोध में नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारे समर्पण के बिना नहीं हो सकता। जबरदस्ती नहीं हो सकती इसमें।

मोक्ष जबरदस्ती नहीं मिल सकता। और मोक्ष क्या--अगर जबरदस्ती मिले! जबरदस्ती तो जो भी मिलता है, वह परतंत्रता ही होगी? स्वतंत्रता जबरदस्ती नहीं मिलती। स्वतंत्रता तो तुम चाहो, सहयोग करो, तो मिलती है। लेकिन अकसर ऐसा होता है:

एक तो तुम गुरु के पास न पहुंचोगे--डरेंगे। तुम सस्ते गुरु खोजोगे, जो तुमसे भी गये-बीते हैं? जिनसे तुम्हें कोई भय नहीं? जिन्हें तुम खरीद सकते हो? जिनसे तुम्हें कोई चिंता नहीं? जो तुम्हारी नींद न तोड़ सकेंगे। तुम भलीभांति जानते हो? तुम्हारे नौकर-चाकर हैं।

अगर तुम कभी भूलचूक से किसी सदगुरु के पास भी पहुंच जाओ, तो तुम सहयोग न करोगे? तुम असहयोग करोगे। तुम सब तरफ के प्रतिरोध खड़े करोगे। तुम लाख उपाय करोगे कि उनकी आवाज तुम्हें सुनाई न पड़ पाए। या सुनाई भी पड़ जाए, तो तुम उसकी व्याख्या करोगे कि उसकी आवाज में जो जोर था--तुम्हें जगाने का--वह शांत हो जाए।

तुम्हारा सहयोग--इसके बिना कोई सदगुरु भी कुछ नहीं कर सकता है।

प्रकृति तो यह न कर पायेगी; हां, प्रकृति से कुछ पाठ सीखे जा सकते हैं। जैसे सहज होने का पाठ; होने का पाठ। मगर वह भी तुम सीखोगे, तब ना!

पशु-पक्षियों से कुछ सीखा जा सकता है। गाय की आंखों में झांक कर कुछ सीखा जा सकता है। झरना को देखकर कुछ सीखा जा सकता है। वृक्षों के पास बैठकर कुछ सीखा जा सकता है। लेकिन तुम्हीं सीखोगे, तब ना!

और अगर तुम सीखने को ही तैयार हो, तो इस जगत में सदगुरु से ज्यादा महिमापूर्ण कोई घटना नहीं है। क्योंकि चेतना के फूल खिल गये। इससे बड़े और फूल कहां खिलेंगे। इसलिए तो हमने कहा: सहस्रदल खिल जाए जिसका, उसको सदगुरु कहा--जिसकी चेतना का कमल खिल जाए--हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल जाए।

जरूर प्रकृति में बहुत सुंदर कमल हैं, सुंदर से सुंदर कमल हैं, लेकिन मनुष्य की चेतना में जो खिलता है, उसकी तुलना में तो कुछ भी नहीं हैं।

कुछ सीख सकते हो प्रकृति से, इसलिए कभी-कभी बात करता हूं।

ये पथराए ओंठ
उनींदे दृग
धुंधलाई दृष्टि मलिन
इतना थका-थका तन ले कर
कैसे शुरू करूंगा दिन
साथ दिए के जागा
लेकिन साथ न उसके सो पाया
उसका काम हुआ पूरा
पर मेरा काम न हो पाया
चुभते रहते आंख में मेरी
निशि-भर टूटे हुए सपने
और वृक्ष को रहा रौंदत
बोझिल-बोझिल सूनापन
चारों ओर उदासी
मेरी हो मुझको यूं दिख रही
जैसे चिटके हुए आईने में
प्रतिछाया अनगिन
एक-एक कर मेरी सब
उम्मीदों ने दम तोड़ दिया
सभी प्रतीक्षाओं ने मेरा
हाथ सहम कर छोड़ दिया
अब मैं हूं
या बिदा मांगता हुआ दिए का धुआं विकल
मेरे सब संकल्प अधूरे
मेरा पूरा सृजन विफल
वीतराग मैं अपनी ही
रचनाओं के आकर्षण से

लगते मुझे एक जैसे ही
अपना अर्जन, अपने ऋण
काश, कि मैं भी सहजरूप से
जीऊं और यों मर जाऊं
जैसे कलियां मिल उठती हैं
जैसे कुम्हला जाते तृन।
अगर तुम प्रकृति से इतना ही सीख लोः
काश, कि मैं भी सहज रूप से
जीऊं और यों मर जाऊं
जैसे कलियां खिल उठती हैं
जैसे कुम्हला जाते तृन।
न कोई चिंता है, न कोई भय है; न कोई लगाव है, न कोई मोह है, न कोई लोभ है। अगर तुम प्रकृति से ही सीख लो तो बहुत मगर वह कैसे सीखोगे!

तुम्हें चाहिए कोई, जो झकझोर दे; तुम्हें चाहिए कोई, जो तुम्हारी नींद को तोड़ दे; कोई तुम्हें पुकारे जोर से। ये फूल चुप-चुप बोलते हैं। ये वृक्ष भी बोलते हैं, लेकिन बड़ा मौन है इनका स्वर। और तुम इतने कोलाहल से भरे हो कि जब तक कोई तुम्हें घरों की मुंडेर पर चढ़ कर न चिल्लाए, तुम शायद ही सुनो।

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा हैः जाओ, और घरों की मुंडेरों पर चढ़ जाओ और चिल्लाओ, ताकि शायद कुछ लोग जो सुनना चाहते हैं, सुन लें। लोग बहरे हैं, जीसस ने कहा, लोग अंधे हैं। जाओ और चिल्लाओ, ताकि उनके शोरगुल में थोड़ी सी बात पहुंच जाए--शायद पहुंच जाए। अगर हजार के द्वार खटखटाओ, शायद एकांत का हृदय खुला मिल जाए।

सदगुरु हजार पर कोशिश करता है, तब कहीं एक जागने को राजी हो पाता है। नौ सौ निन्यानबे तो दुश्मन हैं अपने ही। वे सब तरह की व्यवस्था कर लेते हैं कि कोई उन्हें जगा न सके।

तीसरा प्रश्नः परमात्मा को पाना मनुष्य की जीत है या हार?

जीत भी--और हार भी। क्योंकि परमात्मा को पाने में पहले मनुष्य को हारना सीखना होता है और हारने के ही द्वार से आती है जीत। हार है उपाय--जीत है परिणाम। हार है विधि। जो हारने को राजी है, वही जीतता है।

प्रेम के जगत में हार ही एकमात्र उपास है। प्रेम के जगत में जो जीतना चाहता है, वह तो हार जाता है; और हारने को तत्पर है, वह जीत जाता है।

प्रेम का जगत बड़ा विरोधाभासी जगत है। और परमात्मा का अर्थ हैः प्रेम की आत्यंतिक ऊंचाई, प्रेम की चरम अवस्था।

तुम्हारा प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है; उठा होगा इसी डर से कि अगर जीतना है जीवन में तो फिर क्या हारने से शुरू करें! यह बात जंचती नहीं; गणित में बैठती नहीं; तर्क के प्रतिकूल है। तर्क तो यह कहता है: अगर जीतना है, तो जीतने से शुरू करो। जाना है पूरब और पश्चिम जाओगे, तो कैसे पूरब पहुंचेंगे? जीतना है, तो जीतने से शुरू करो। अगर हारने से शुरू किया, तो फिर पछताओगे; आखिर में हार जाओगे। तर्क तो यही कहता है, लेकिन जीवन तर्क से बड़ा है।

जीवन का तर्क बड़ा अनूठा है। जीवन का तर्क कहता है: अगर जीतना है, तो हार जाओ। जल्दी जीतना हो, जल्दी हार जाओ। पूरा जीतना हो, पूरे हार जाओ। परमात्मा के चरणों में जो सिर रख देता है, उसके हृदय में परमात्मा विराजमान हो जाते हैं। इतना ही नहीं; वह भी परमात्मा के हृदय में विराजमान हो जाता है।

समय का पहिया
और धीरज की धुरी लगी
जीवन के रथ में हैं
सांसें ही सारथी
आशा का अश्व
और राहें अनजान री
चाहों के चौराहे
सीमा पहचान री
अब तो कुछ भेद नहीं
मन में कुछ खेद नहीं
किस की फिर पूजा हो
किस की हो आरती
अंधयारा हो आरती
अंधयारा हरने की
जलता है स्नेह रे
कहते हैं कंचन रे
पागल है प्रीत वहां
घायल हर गीत वहां
ऐसे में सांस स्वयं
सांसों पर भार थी
करुणा के सागर में
सीपों का गांव रे
डूबी जब तल तक तो
पाया मन-मोती

इस को मैं जीत कहूं
या कि मेरी हार थी
डूबी जब तक तो
पाया मन-मोती
इस को मैं जीत कहूं
या कि मेरी हार थी।

जो सागर में डुबकी लगाएगा गहरे, वह गहरे मोती लाएगा। हारना डुबकी लगाने का उपाय है।

जीसस ने कहा है: जो अपने को बचाएगा, वह अपने को खो देगा; और जो अपने को खोने को राजी है, वह अपने को बचा लेगा।

प्रेम हार का गणित है। तुम्हें जब तक यह अहंकार है कि मैं जीतूंगा, मैं जीत कर रहूंगा, तब तक तुम प्रेम की दुनिया में प्रवेश न कर सकोगे। देखते हो न, भक्तों ने कहा: हारे को हरिनाम। जो हार गया है, उसको ही हरिनाम उत्पन्न होता है। लेकिन ध्यानियों ने नहीं कहा यह।

ध्यानी कहते हैं: जो सत्य को पा लेता, वह जिन हो जाता है; जिन यानी जीत जाता है। जिन शब्द से जैन बना है। जीता हुआ। भक्त कहते हैं: हारा हुआ--सर्वहारा; सब जो हार देता, वह परमात्मा को पाता। ज्ञानी कहते हैं: जीतने में जो पूरी तरह लग जाता, संकल्प को जुटा के लग जाता, वह पाता।

ज्ञान जीतने की प्रक्रिया है, इसलिए ज्ञान के मार्ग पर अहंकार बहुत बड़ा खतरा है। ज्ञान के मार्ग पर अहंकार से न बचे, तो परमात्मा तो दूर, सिर्फ अहंकार ही भरता होगा।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का खतरा नहीं है, क्योंकि अहंकार तो पहले ही चरण में रख देता है। पहले ही कदम पर अहंकार उतार देना है। भक्ति के मार्ग पर खतरा है सुस्ती का, आलस्य का। भक्त आलसी हो सकता है; वह कहेगा कि ठीक है; बस, अपना हार गये, रख दिया सिर परमात्मा के चरणों में, अब जो होगा--होगा; कि उसके बिना हिलाए, तो पत्ता भी नहीं हिलता, तो इसलिए जो वह करेगा--करेगा। अब हमें क्या करना है! अब हमें कुछ भी नहीं करना है। और इस कुछ भी न करने के पीछे वह सब पुराना जाल वैसा का वैसा चलता रहेगा, जैसा चलता था। वही चोरी, वही बेईमानी, वही कठोरता, वही हिंसा।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का खतरा है, क्योंकि वह संकल्प का मार्ग है; वहां आलस्य का कोई खतरा नहीं है।

हर मार्ग की सुविधाएं हैं, हर मार्ग के खतरे हैं। और अकसर ऐसा होता है कि सुविधा की तो हम फिक्र ही नहीं करते हैं, खतरे में पड़ जाते हैं। सौ ज्ञानियों में निन्यानबे अहंकार में उलझ जाते हैं और सौ भक्तों में निन्यानबे आलस्य में पड़ जाते हैं और तामसी हो जाते हैं।

सावधान रहना। अगर ज्ञान का मार्ग चुनो, ध्यान का मार्ग चुनो, तो स्मरण रखना कि कहीं इसमें अहंकार न भरे, नहीं तो सब व्यर्थ हो गया--किया-कराया सब व्यर्थ हो गया। एक हाथ से बनाया, दूसरे हाथ से मिटा डाला। आत्म-हत्या हो गई।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का कोई भी खतरा नहीं है। भक्त अपने लिए सोचता ही नहीं। मैं का भाव ही नहीं रखता। खतरा दूसरा है। सुस्त हो जाए, आलसी हो जाए, तामसी हो जाए; कहने लगे कि अब जो होगा--सो होगा। अपने किए तो कुछ होता नहीं; तो हम तो जैसे हैं, वैसे हैं; हम तो ऐसे ही रहेंगे। जब उसकी कृपा होगी, तब होगी। प्रयास से तो मिलता नहीं, तो जब प्रसाद होगा, तब होगा। जब तक नहीं हुआ है, हम करें भी क्या! तब तक हम जैसे है, वैसे ही जीएंगे।

नहीं; प्रसाद का यह अर्थ नहीं होता। प्रसाद का यह अर्थ होता है कि हम अपने को तत्पर तो करेंगे, ताकि उसका प्रसाद हम पर बरस सके। हम अपने पात्र को तो साफ करेंगे, क्योंकि गंदा पात्र हो, तो उसमें औषधि नहीं रखी जा सकती। गंदा पात्र हो, उसमें कोई दूध डाल भी दे तो दूध भी गंदा हो जाएगा।

गंदे पात्र में परमात्मा का प्रसाद नहीं उतर सकता; उतर भी आए तो वह भी जहरीला हो जाएगा। पात्र को शुद्ध करना होगा, निखारना होगा। उस अतिथि को बुलाया है, तो भीतर सब सजाना होगा। घर-द्वार सब साफ-सुथरा करना होगा।

ऐसा नहीं है कि भक्ति में श्रम नहीं है। श्रम तो है; श्रम पर ही भरोसा नहीं है केवल। श्रम पूरा है; अपनी तरफ भक्त पूरा करेगा इस बात को जानते हुए कि पूर्णाहुति तो तेरे द्वारा होगी; हम शुरुआत कर सकते हैं। हम पुकारेंगे, लेकिन पुकारा तो तू सुनेगा न! यात्रा का प्रारंभ हमारे हाथ में है, अंत तेरे हाथ में हैं। अंत तेरे हाथ में है। साधन हम सब करेंगे, लेकिन साध्य तो तू देगा। मंजिल पर हम नहीं पहुंच सकते; हम मार्ग तक करेंगे, मंजिल तो तू देगा। इसको खयाल में रखना।

भक्त प्रयास पूरा करेगा; लेकिन यह मान कर चलता है कि प्रयास से ही पूरी बात नहीं हो जाएगी। कुछ कम रह जाएगा। असली बात कम रह जाएगी।

तुम्हारे घर कोई मेहमान आ रहे है; तुमने घर साफ-सुथरा कर लिया; फूल सजा दिए, दीपक जला दिए, उदबत्तियां लगा दीं, सुगंध छिड़क दी--सब ठीक ठाक कर लिया। इतने से ही मेहमान थोड़े आ जाएगा। इतना कर लिया, तो मेहमान थोड़े ही आ गया! मेहमान तो जब आएगा, तब आएगा। लेकिन तुमने तैयारी पूरी कर ली, अब अगर मेहमान आएगा, तो तुम्हारे दरवाजे बंद न पाएगा। अब अगर मेहमान आएगा, तो वापस नहीं लौटना पड़ेगा उसे; तुम तैयार हो। अगर उसकी वर्षा होंगी, तो उसका पात्र राजी है; तुम पवित्र हो।

ज्ञानी सोचता है कि मेरे प्रयास से ही सब हो जाएगा, परमात्मा के प्रसाद की कोई जरूरत नहीं; तो अहंकार का खतरा है। और भक्त अगर सोचे कि उसके प्रसाद से ही सब हो जाएगा, मेरे प्रयास की कोई भी जरूरत नहीं, तो आलस्य का, तमस का खतरा है।

भक्त तो हारता है। और हारने में प्रसन्न होता है। इस हार में कोई दुःख नहीं है, संताप नहीं है, चिंता नहीं है। प्रेम में हारने में कैसा संताप!

तुमने कभी प्रेम में हार कर देखा? प्रेम में हारने में कोई चिंता नहीं, कोई पीड़ा नहीं। प्रेम के हारने में बड़ा मजा है; प्रेम के हारने में बड़ी जीत है।

डूबी जब तल तक तो

पाया मन-मोती

इसको मैं जीत कहूं

या कि मेरी हार थी।

परमात्मा को पाने में तुम्हें हारना पड़ता है और हार कर ही तुम्हारी जीत हो जाती है। हार के माध्यम से जीत है।

चौथा प्रश्नः भक्त का आनंद क्या है?--स्वर्ग-सुख, प्रभु-प्राप्ति या मोक्ष? भक्त का आनंद न तो स्वर्ग-सुख है, क्योंकि भक्त ने की बैकुंठ की आकांक्षा नहीं की। भक्तों ने बार-बार कहा हैः। आप बैकुंठ तुम रखो तुम्हारे पास। हमें तुम्हारे बैकुंठ की कोई जरूरत नहीं। हम तो तुम्हें चाहते हैं।

भक्त तो भगवान को चाहता है। और अगर तुम भगवान के अतिरिक्त कुछ और चाहते हो, तो तुम भक्त नहीं हो; तुम भगवान का भी शोषण करने को तत्पर हो। तुम्हारे प्रार्थना में अगर कोई और मांग छिपी है--कि मुझे धन मिल जाए, कि पद मिल जाए, कि प्रतिष्ठा मिल जाए, कि लंबी आयु मिल जाए, स्वास्थ्य मिल जाए, कि स्वर्ग मिल जाए, तो तुम भगवान को नहीं चाहते हो।

मैंने सुना हैः एक सम्राट विश्व-विजय को गया। जब वह लौटता था, तो उसकी सौ पत्नियां थीं, तो उसने खबर भिजवाई कि वह घर वापस आ रहा है, तो प्रत्येक पत्नी को पूछा कि वह क्या चाहती है; उसके लिए मैं क्या ले आऊं! तो किसी ने हीरे मंगाए, किसी ने जवाहरात मंगाए, किसी ने मोतियों के हार मंगाए, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। सिर्फ एक रानी ने लिखा कि तुम आ जाओ, बस, इतना ही काफी है।

सम्राट लौटा; सब के लिए सब चीजें लाया, लेकिन लगाया उस सौवीं स्त्री को अपन गले से। और उसने कहा कि मुझे पता चला कि कौन मुझे चाहता है।

हीरे, मोती, जवाहरात...। वर्षों के बाद पति लौटता हो, तो कौन फिक्र करता है--हीरे जवाहरातों की? तुम लौट आओ।

भक्त कहता हैः भगवान, बस, तुम मिल जाओ। भक्त तो स्वर्ग-सुख मांगता, न प्रभु-प्राप्ति...। इसको भी समझना।

भक्त जब कहता हैः भगवान, तुम मिल जाओ, तो यह प्रभु-प्राप्ति की मांग नहीं है। प्रभु-प्राप्ति का तो अर्थ होता है कि तुम मेरी मुट्ठी में आ जाओ। भक्त तो यह कहता हैः मैं तुम्हारी मुट्ठी में आ जाऊं--ऐसा कुछ करो; कि मैं भाग न जाऊं। ऐसा कुछ करो कि मैं तुम्हारे चरणों में बिछुड़ न जाऊं; तुम्हारे चरणों पड़ जाऊं।

प्रभु-प्राप्ति शब्द ठीक नहीं है; क्योंकि इस प्राप्ति में तो ऐसा लगता है, जैसे धन-प्राप्ति--ऐसी प्रभु-प्राप्ति। न; भक्त तो कहता है कि मैं तुम्हें पाऊं, यह तो बात ही फिजूल है। मैं तुम्हें विस्मरण न करूं, तुम्हारी याद बनी रहे, तुम्हें पुकारता रहूं, तुम्हारे चरणों तक मेरे पहुंचते रहें--इतना काफी है।

भक्त कहता है: यह जो विरह मेरे भीतर तुम्हारे लिए जगा है, यह मिट न जाए। इस विरह की पीड़ा में आनंद अनुभव करूं। ये जो प्रतीक्षा के क्षण हैं, ये मेरी प्रार्थना के क्षण बनें। और एक दिन ऐसा हो कि मेरी बूंद तुम्हारे सागर में समा जाए।

पार से
समय के सिंधु के, इस पार छोड़
मुझे
मेरी ही आवाज में
टेरते रहना
ताकि मैं
प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भांति
बावरी होऊं
मुझे बावरी हुई जान
उस छोर से इस छोर को मिलना नहीं
सेतु नहीं बांधना
कोई पोत न भेजना
मुझे पंख न देना
कहीं बच्ची उड़ान में राह न भटकूं
गंतव्य न भूला दूं
तो मेरे अक्षर
मुझे मेरी ही आवाज में
टेरते रहना
टेरते रहना
टेरते रहना
ताकि मैं बावरी होऊं
प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भांति।

भक्त कहता है: मुझे मेरी ही आवा में टेरते रहना। ऐसी आवाज में टेरना, जो मैं समझ लूं। मैं नासमझ, अज्ञानी हूं। मेरे पास कुछ बुद्धि नहीं है। तुम कुछ ऐसी भाषा में मत पुकारना, कि मैं समझ ही न पाऊं!

पार से
समय के सिंधु के, इस पर छोड़

मुझे
मेरी ही आवाज में
टेरते रहना।

दूर हो तुम, पता नहीं कहां! समय के सिंधु के उस किनारे हो कहीं--पता नहीं कहा! पर इतना मेरे लिए काफी है कि तुम कभी-कभी मुझे टेर देना कि मैं भटक न जाऊं, कि मैं खो न जाऊं, कि मैं संसार में कहीं उलझ न जाऊं; यहां हजार उपाय हैं उलझने के; भटकने के लिए हजार मार्ग हैं; पहुंचने का, कुछ पता नहीं, कि कोई मार्ग भी या नहीं।

पार से
समय के, सिंधु के इस पर छोड़
मुझे
मेरी ही आवाज में
टेरते रहना
ताकि मैं
प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भांति
बावरी होऊं।

भक्त कहता है: मुझे पागल बनाओ; मुझे दीवाना बनाओ, मुझे तुम्हारे प्रेम में विक्षिप्त कर दो। होश-होशियारी नहीं चाहता हूं। क्योंकि होश-होशियारी तो सब चालाकी है; होश-होशियारी से तुम्हें किसने कब पाया है? दीवाने पहुंचे हैं तुम्हारा द्वार तक, पागल पहुंचे हैं तुम्हारे द्वार तक। पागल ही पहुंच सकते हैं। पागल होने को जो तैयार नहीं है, वह भक्त नहीं हो सकता। भक्ति तो बावलों का मार्ग है।

ताकि मैं
प्रवण-प्रिया वेद-ऋचा की भांति
बावरी होऊं
मुझे बावरी हुई जान
उस छोर से इस छोर मिलाना नहीं।

और जल्दी मत करना, क्योंकि तुम्हें पाने के पागलपन में भी बड़ा रस है। तो कोई जल्दी नहीं है।

मुझे बावरी हुई जान
उस छोर से इस छोर को मिलाना नहीं
सेतु नहीं बांधना।

मुझे पुकारने देना; मुझे तड़फने देना; मेरा रोआं-रोआं तुम्हारे प्रेम में पागल हो उठे--ऐसा मुझे अवसर देना।

कोई पोत न भेजना।...कोई जल्दी मत करना और जहाज मत भेज देना--मुझे लेने--कोई जल्दी नहीं है। भक्त की प्रतीक्षा अनंत है।

मुझे पंख न देना।

कहीं बच्ची उड़ान में राह न भटकूं।

मुझे पता नहीं, तुम कहां हो! कितना दूर यह समय का सिंधु मुझे पार करना पड़ेगा! तुम मुझे पंख भी मत दे देना जल्दी से--कि कहीं कच्ची उड़ान में राह न भटकूं; गंतव्य न भुला दूं। कहीं उड़ान की अकड़ न आ जाए! कहीं पंखों का बहुत आधार न बना लूं; कहीं पंखों के ऊपर बहुत भरोसा न कर लूं; कहीं तुम्हें न भूल जाऊं!

मुझे तड़फने देना; मुझे दूर इस किनारे परदेश में बिलखने देना और विक्षिप्त होने देना।

तो मेरे अक्षर, मुझे मेरी ही आवाज में टेरते रहना। लेकिन एक बात भर करना कि मुझे पुकारते रहना। ऐसा न हो कि तुम्हारी पुकार मेरी तरफ आनी बंद हो जाए। टेरते रहना--टेरते रहना--टेरते रहना, ताकि मैं बावरी होऊं--प्रणव प्रिया वेद ऋचा की भांति।

जब कोई भक्त समग्र मन से बावला हो जाता है...। समग्र मन से--आंशिक रूप से नहीं, पूर्णरूप से पागल हो जाता है, उसी क्षण परमात्मा का मिलन हो जाता है; उसी क्षण समय का सिंधु मिट जाता है।

हमारी होशियारी के कारण ही समय है। हमारे तर्क, हमारे संदेहों के कारण समय है--संसार है। ऐसी उद्विग्नता का एक क्षण भी है, जहां समय विलीन हो जाता है। मीरा नाचते-नाचते कृष्णमय हो जाती है। वैसा चैतन्य को घटता है। वैसा बाबा मलूकदास को घटा है। मतवाले, मस्त...।

पर भक्त चाहता क्या है अंततः? भक्त भगवान भी नहीं होना चाहता। भक्त तो कहता है: थोड़ी सी दूरी बनाए रखना, ताकि प्रेम की पुकार चलती रहे। प्रेम का संवाद चलता रहे। भक्त तो कहता है: पास मुझे रखना, लेकिन थोड़ी दूरी भी रखना, ताकि तुम्हें देख सकूं, तुम्हें निहार सकूं, तुम्हारे चरण पखार सकूं--इतनी दूरी भी रखना। मुझे बिलकुल अपने में डुबा ही मत लेना।

ज्ञानी की आकांक्षा है भगवान के साथ एक हो जाने की। भक्त की आकांक्षा है--भगवान की सेवा में रत हो जाने की। भक्त की आकांक्षा है प्रभु के परम सौंदर्य को निहारने की; प्रभु के आसपास नाचने की--रास रचाने की।

पांचवां प्रश्न: मैं परमात्मा को तो पाना चाहता हूं, लेकिन उस दिशा में कुछ भी करने का साहस नहीं जुटा पाता। त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है--ऐसी आपकी बात सुनकर मनन को खूब अच्छा लगता है। लेकिन फिर शंका भी होती है कि वहीं यह आत्म-प्रवचन तो नहीं है।

पूछता हो: मैं परमात्मा को तो पाना चाहता हूं, लेकिन उस दिशा में कुछ करने का साहस नहीं जुटा पाता, परमात्मा को चाहने में कोई प्राण नहीं है। निष्प्राण है चाह। तुम परमात्मा को मुफ्त चाहते हो; कहीं राह के किनारे पड़ा हुआ मिल जाए!

तुम परमात्मा के लिए कुछ करना नहीं चाहते, दांव नहीं लगाना चाहते। परमात्मा तुम्हारे जीवन की फेहरिश्त में आखिरी नंबर है। धन के लिए तो तुम प्रयास करते। पद के लिए तुम

बड़ी दौड़-धूप करते, लेकिन परमात्मा के लिए, तुम कहते हो, कुछ करने का साहस नहीं जुटा पाते। इसे गौर से देखना।

इस साहस न जुटा सकने के पीछे मौलिक बात यही है कि तुम परमात्मा को पाना नहीं चाहते। क्योंकि हम जिसे पाना चाहते हैं, उसे पाने के लिए हम कुछ भी करने को राजी हो जाते हैं। धन पाने के लिए आदमी चोरी करने को राजी है, हत्या करने को राजी है, जेल जाने को राजी है, फांसी लग जाए--इसके लिए राजी है! पद पाने के लिए आदमी क्या-क्या करने को राजी नहीं है! लेकिन परमात्मा पाने के लिए--आदमी सोचता है: ऐसे ही मिल जाता तो अच्छा था। बिना कुछ किए मिल जाता तो अच्छा था। मुफ्त मिल जाता तो अच्छा था।

ध्यान रहे: धर्म मुफ्त नहीं हो सकता। धर्म इस जगत की सबसे बहुमूल्य वस्तु है--और अपने प्राणों से चुकाना पड़ता है मूल्य; और किसी चीज से चुकाने से भी नहीं मिलता।

तो तुम पाना नहीं चाहते। कहते तो तुम हो कि मैं पाना चाहता हूं, लेकिन तुम्हारा दूसरा वक्तव्य बताता है कि तुम पाना नहीं चाहते। क्योंकि पाना चाहने का प्रमाण क्या? प्रमाण यही होता है कि तुम करते हो, उससे ही पता चलेगा कि पाना चाहते हो।

मैंने सुना है एक कहानी; इस कहानी को ध्यान करना।

मजनू लैला के दर के सामने एक दरख्त तले आन बैठा। न भूख की खबर, न प्यास का होश, बस, लैला-लैला की रट लगाए था। लैला को खबर हुई, तो उसने अपनी एक बांदी को कहा कि यों तो यह गरीब वाकई मारा जाएगा। इसे रोजाना तीन बार एक गिलास दूध और फल-मेवे दे आया करो।

अब नक्शा यह कि बांदी रोजाना तीन बार यह सेहत-अफजा गिजा लेकर रख जा रही है और मजनू छू तक नहीं रहा। कुछ दूर पर एक और दरख्त था, जिसके नीचे एक मुफलिस बैठा करता था। दूध-मलाई, फल-मेवा यूं रोजाना जाया होता देखकर उसे बहुत बुरा लगा। तो ज्यों ही बांदी यह सब रख कर जाती थी, वह जा कर खा-पी आता। कुछ दिन बाद उसने मजनू से कहा:मियां, जब तुम्हें यह सब खाना नहीं है और बस, लैला-लैला ही जपना है, तो जाकर उस दूसरे दरख्त के तले बैठे रहो। काहे हमें रोज दिन में तीन बार वहां से उठकर यहां तक आने की जहमत देते हो!

मजनू मान गया। अब मियां मुफलिस मजनू की जगह बैठकर मजनू के लिए आनेवाला तर माल मजे से उड़ाने लगे। यही नहीं, अकसर और लाओ की सदा भी लगाने लगे। दिन बीतने लगे।

एक दिन लैला ने बांदी से पूछा कि मेरे मजनू के क्या हाल हैं? कुछ बताया नहीं? वह गरीब तो अब सूखकर कांटा हो गया होगा! बांदी तुनक कर बोली: अरे नेकमबख्त, वह मुआ तो तेरा भेजा माल खा-खा कर मोटा रहा है।

सुनकर लैला सकते में आ गई कि मेरा मजनू इतना बदल कैसे गया! तो उसने बांदी से कहा कि तू अब उसके पास एक खाली गिलास लेकर जा और कह कि लैला के लिए इसमें अपना

खून भर कर दे। लैला का जीवन खतरे में है। इस खून से लैला बच जाएगी। इसी खून से बच सकती है। और किसी का खून काम भी न आयेगा।

बांदी ने ऐसा ही किया। मियां मुफलिस खाली गिलास देखकर भिन्नाए और फिर लैला की फरमाइश सुनकर बहुत खिलखिलाए भी। उन्होंने बांदी से कहाः ऐ कनीज, ध्यान से सुन और समझ। दूध पीने वाला मजनू दरकार हो, तो बंदा यहां बैठा है। खून देने वाले मजनू की जरूरत हो, तो वह उस दरख्त के नीचे बैठा है।

परमात्मा को पाने के लिए स्वयं को पूरी तरह दे देने की जरूरत है; मजनू हो जाने की जरूरत है। अपने को खोने को जो तैयार नहीं है, वह एक बात समझ ले कि अभी परमात्मा की प्यास उसके भीतर नहीं उठी।

तो तुम गलत प्रश्न पूछ रहे हो। तुमने यह तो मान लिया है कि तुम परमात्मा को पाना चाहते हो। वही भूल हो रही है। और जब तक तुम इस भूल को न देखोगे, तब तक तुम अपनी स्थिति को ठीक-ठीक माप न पाओगे और इस स्थिति के बाहर भी न हो पाओगे।

बहुत लोगों का ऐसा खयाल है कि वे परमात्मा को पाना चाहते हैं, लेकिन क्या करें, और हजार झंझटें हैं, काम-धाम हैं, इसलिए समय नहीं मिलता! या इतना साहस नहीं है कि सब कुछ दांव पर लगा दें। इस भांति वे अपने को धोखा दे रहे हैं। इस भांति वे यह भी मजा ले रहे हैं कि मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं।

यह बात भी खटकती है कि मैं परमात्मा को नहीं पाना चाहता हूं। तो इसमें मलहम-पट्टी हो गई। अब दूसरा बहाना निकाल लिया कि क्या करें, और हजार उलझने हैं। आज इतनी सुविधा नहीं है कि कुछ कर सकें।

तो मैं कहना चाहूंगा, पहली तो बात, कि तुम्हें अभी परमात्मा को पाने की आकांक्षा नहीं उठी है। और जिसको पाने की आकांक्षा न उठी हो, उसकी फिक्र में क्यों पड़ना? क्योंकि जब तक तुम्हें आकांक्षा न उठे, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता।

तुम्हें जल तो दिया जा सकता है, लेकिन प्यास कैसे दी जाए? और तुम्हें प्यास न हो, तो जल का तुम क्या करोगे? हम घोड़े को नदी तक तो ला सकते हैं पानी दिखा सकते हैं, लेकिन पानी पिलाएंगे कैसे? घोड़ा प्यासा हो, तो ही पानी पीएगा।

और प्यासे को नदी तक से जाने की जरूरत ही नहीं पड़ती, प्यास नहीं खोज लेता है। प्यासा सब छोड़ देता है, पानी की ही खोज करता है।

तुम्हारे भीतर प्यास नहीं है। और इस प्यास को जगाने के लिए पहला अनिवार्य कदम यही होगा कि तुम ठीक से समझ लो कि मेरे भीतर परमात्मा की प्यास नहीं है। इसकी चोट पड़ेगी; इससे घाव पैदा होगा कि मेरे भीतर परमात्मा की कोई प्यास नहीं है! तो मैं धन, पद, प्रतिष्ठा--इसी में उलझा हुआ समाप्त हो जाऊंगा? यह क्षण-भंगुर जिंदगी ही मुझे सब मालूम होती है, तो मैं ऐसा मंद-बुद्धि हूं! इससे बड़ी चोट पड़ेगी। चोट पड़ेगी, तो तुम जागोगे। जागोगे तो शायद प्यास जगे।

दुनिया में बड़े से बड़ा खतरा यही है कि तुम्हें अपनी स्थिति का ठीक-ठीक बोध न हो, और तुम कुछ और समझे बैठे रहो। बीमार आदमी समझा बैठा रहे कि स्वस्थ है, तो इलाज कैसे हो! बीमार को पता चलना चाहिए कि मैं बीमार हूं, तो इलाज शुरू हो सकता है। फिर वह चिकित्सक भी खोजेगा, दवा भी खोजेगा, कुछ करेगा भी।

अधार्मिक आदमी अपने को धार्मिक मान कर बैठ जाए, तो यात्रा ही शुरू नहीं होती। अधार्मिक को पहले तो जानना चाहिए कि मैं धार्मिक हूं। इस बात को इतनी प्रगाढ़ता से जानना चाहिए कि मेरे जीवन में धर्म नहीं है; दुःख होगा; चोट लगेगी; बड़ी पीड़ा होगी--कि मेरे जीवन में परमात्मा के लिए को आकांक्षा नहीं है, कोई भाव नहीं, कोई प्यास नहीं! मैं सत्य का जिज्ञासु नहीं! तो मैं इस शरीर और शरीर के थोड़े दिन के खेल में ही सब समाप्त समझ रहा हूं!

सब चोट से ही शायद तुम्हारे भीतर छिपी प्यास उठ आए। प्यास तो हर एक के भीतर छिपी है; उठनी चाहिए।

ऐसा तो कोई भी नहीं है, जिसके भीतर परमात्मा की प्यास न हो। यह तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि परमात्मा को तुम समझते क्या हो। परमात्मा का अर्थ है: आनंद की परम दिशा। कौन है, जिसके भीतर परमात्मा की प्यास नहीं है? कौन है, जो नहीं चाहता कि आनंदित हो? परमात्मा का अर्थ है--अमृत की स्थिति। कौन है, जो मृत्यु के पार नहीं जाना चाहता? कौन है, जो विराट नहीं हो जाना चाहता? कौन है, जो सारी सीमाओं को तोड़ कर परम स्वतंत्रता में नहीं उड़ना चाहता? लेकिन हमें साफ नहीं है।

मैं परमात्मा को तो पाना चाहता हूं, लेकिन उस दिशा में कुछ भी करने का साहस नहीं जुटा पाता। त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसी आपकी बात सुनकर मन को अच्छा लगता है। बहुतों को अच्छा लगता है!

लेकिन वे आधी ही बात सुन रहे हैं। मैं कहता हूं: त्याग की कोई जरूरत नहीं है। मैं दूसरी बात कह रहा हूं, वह तुमने नहीं सुनी। मैं कह रहा हूं: प्रेम की जरूरत है। और प्रेम के पीछे त्याग ऐसे आता है, जैसे तुम्हारे पीछे छाया आती है। लेकिन तब त्याग का स्वर बिलकुल अलग होता है। तब तुम्हें त्यागना नहीं पड़ता। तब त्याग सहज होता है।

तुमने जिसको प्रेम किया, उसी क्षण त्याग शुरू हो जाता है। मां जब बच्चे को प्रेम करती है, तो कितना त्यागती है! जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो, तो कितना त्यागते हो! मगर तब तुम उसे त्याग नहीं कहते। तब तुम कहते हो: त्याग की तो बात ही क्या कहनी; मेरा आनंद है।

मां अपने बेटे के लिए कुछ करती है तो यह नहीं कहती कि मैं त्याग कर रही हूं। वह कहती है: मेरा आनंद है। सच तो यह है कि मां सदा तड़फती है कि मुझे जितना करना था, उतना मैं कर नहीं पाई। जो करने योग्य था, हो नहीं पाया मुझसे। यह तो वह कभी कहती नहीं कि मैंने बहुत त्याग किया। इतना ही कहती है कि जो मुझे करना था, वह मुझसे हो नहीं

पाया। मैं बेटे के लिए पूरा नहीं कर पाई, जितना जरूरी था। मैं अपना प्रेम पूरा का पूरा नहीं निभा पाई--ऐसा दंश मां के हृदय में होता है।

मां यह तो कह नहीं सकती कि यह त्याग है। त्याग तो हम तभी कहते हैं, जब प्रेम नहीं होता। तुमने अगर भिखारी को दो पैसे दिए, तो तुम कहते हो--त्याग; क्योंकि प्रेम नहीं है। तुमने अपने मित्र को दो पैसे दिए, तब तुम त्याग नहीं कहते; तब तो त्याग की बात बड़ी बेहूदी मालूम पड़ेगी।

तुमने यह तो सुन लिया कि मैं कहता हूं: त्याग की कोई जरूरत नहीं है। निश्चित मैं कहता हूं कि त्याग की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि त्याग कुरूप है। प्रेम की जरूरत है। और प्रेम के पीछे जो त्याग आता है, वह परम सुंदर है; उस त्याग की बात ही और है; उसकी महिमा और है, उसकी गरिमा और है।

तो तुम इतना ही सुन कर रुक गये, तो तुम आत्म-वंचना ही कर रहे हो। ध्यान के साथ त्याग आता है; प्रेम के साथ त्याग आता है; क्योंकि कचरे को छोड़ोगे नहीं, तो करोगे क्या? कचरे को पकड़ कर क्या करोगे?

अभी तो हालत ऐसी है कि कचरे को पकड़ रहे हो और हीरे को छोड़ रहे हो। इसको तुम भोग कहते हो! तुम बड़े नासमझ हो। हीरे को पकड़ो, कचरे को छोड़ो। लेकिन कचरे को जब कोई छोड़ता है, तो त्याग थोड़े ही कहता है। और सुबह तुम बुहारी लगाते हो घर में और कचरा तुम बाहर फेंक आते हो, तो तुम कोई अखबारों में खबर थोड़े ही छपवाते हो कि आज फिर हमने कचरे का त्याग कर दिया! अगर तुम जाकर अखबार में खबर छपवाने की कोशिश करो कि आज हमने त्याग कर दिया कचरे का, तो जाहिर होगा कि तुम कचरे को धन मानते थे।

जब तुम धन छोड़ते हो, तब तुम कहते हो: बड़ा त्याग कर दिया; उसका मतलब है कि धन में तुम्हें धन मालूम होता था। धन में धन है कहां? मान्यता है।

तुम धनियों को निर्धन हालत में नहीं देखते! और पद पर बैठे लोगों को तुम भीतर दयनीय नहीं पाते? जिनके पास सब है, उनके भीतर तुम्हें कोई किरण दिखाई पड़ती है?--कोई उत्साह, कोई उमंग, कोई उत्सव दिखाई पड़ता है? जीवन की धन्यता का भाव है वहां? कुछ भी नहीं है। रूखे-सूखे लोग! कंकड़-पत्थर इकट्ठे करके बैठ गये हैं। और इन्हीं कंकड़-पत्थरों में दब जाएंगे और मर जाएंगे; यही उनकी कब्र बन जाएगी।

तो मैं त्याग को तो नहीं कहता।

दो बातें कहता हूं, क्योंकि दो ही बातें संभव हैं। या तो प्रेम करो--अगर भक्ति के रास्ते पर चलो; तो प्रेम के पीछे त्याग आ जाता है। या ध्यान करो--अगर ज्ञान के रास्ते पर चलो; ध्यान के पीछे त्याग आ जाता है।

भक्ति के रास्ते पर, प्रेम के रास्ते इसलिए त्याग आता है, कि तुम्हारा प्रेम बढ़ता है, तो तुम्हारे पास जो है, उसको बांटने की आकांक्षा बढ़ती; साथी बनाना चाहते हो। प्रेम बांटना चाहते है।

तो प्रेम के रास्ते पर त्याग आता है--बंटने के लिए। आदमी अपने को पूरा बांट दो चाहता है; कुछ भी बचाना नहीं चाहता। सारी कृपणता नष्ट हो जाती है। तन, मन, धन--सब न्योछावर कर देता है। सब उसका ही है, उसको ही लौटा देती है। त्वदीयं वस्तुत तुभ्यमेव समर्पये। कह देता है: हे गोविंद, तेरी वस्तु थी, तुझी को लौटा दिया। त्याग क्या है? तेरा था, तुझी को दे दिया। का लागै मोरा। त्याग नहीं कहता। उसका ही था, उसी को दे दिया; बीच में हम नाहक मालिक बन गये थे, वह मालकियत छोड़ दी।

ध्यान के रास्ते पर अंतर्दृष्टि खुलती है, साफ हो जाता है कि कचरा-कूड़ा पकड़ कर बैठे हैं; आदमी छलांग लगा कर बाहर निकल जाता है। पीछे लौट कर नहीं देखता। ऐसे बुद्ध एक दिन निकल गये; महावीर एक दिन निकल गये--राजमहल से--सब छोड़-छोड़ कर के। जैन कहते हैं: बड़ा त्याग किया। गलत कहते हैं। उन्हें महावीर का कुछ पता नहीं; उन्हें महावीर के अंतस्तल का कुछ पता नहीं।

त्याग का तो मतलब यह हुआ कि धन था। महावीर ने त्याग नहीं किया। महावीर को तो दिखाई पड़ा: यहां धन इत्यादि कुछ भी नहीं है। इतने दिन की भ्रांति छूट गई! सपना उखड़ गया; नींद खुल गई! महल के बाहर हो गये। महल था ही नहीं। राज-पाट सब धोखा था--एक बड़ा सपना था। मैंने सुना है: एक सम्राट अपने इकलौते बेटे के बिस्तर के पास बैठा है। बेटा मरने के करीब है। चिकित्सकों ने कहा कि आज की रात पूरी न हो सकेगी; बेटा रात में ही मर जाएगा। तो बाप जग रहा है। तीन चार रात से भी नहीं सोया है, क्योंकि बेटा निश्चित ही बहुत रुग्ण है। और उस पर ही सारी आशा थी; वह एकमात्र बेटा है; उसका ही राज्य था। बाप की आंखों का वही तारा था।

तो रो रहा है--बाप बैठा हुआ पास ही। कुछ करने का उपाय भी नहीं है। मौत के सामने हम कितने दयनीय हो जाते हैं। कितने दीन हो जाते हैं। सारा साम्राज्य व्यर्थ है। सारा धन व्यर्थ है। आज सब देकर बेटे का जीवन मांगने को तैयार है, लेकिन कुछ सार नहीं है।

रोते-रोते उसकी झपकी लग गई। झपकी लग गई, तो उसने एक सपना देखा। सपना देखा कि उसके पास बड़े सोने के महल हैं और उसका नगर सोने से पटा है। उसकी राजधानी हीरे-जवाहरातों से लदी है। और उसके बारह बेटे हैं--एक से एक सुंदर, एक से एक प्रतिभाशाली। और सारी पृथ्वी पर उसका राज है, वह चक्रवर्ती है। ऐसे सपने में बड़ा मजा ले रहा है।

तभी उसकी पत्नी जोर से दहाड़ मार कर रो पड़ी, क्योंकि बेटे की सांस टूट गई। दहाड़ की आवाज सुन कर उसने आंख खोली। मरे हुए बेटे को देखता रह गया। पत्नी तो थोड़ी घबड़ा गई; क्योंकि उसको इतना लगाव था बेटे से--और एक आंसू नहीं गिर रहा है! अब तक रोता रहा था। अब बेटा मर गया है, और वह एकदम सकते में रह गया है। तो पत्नी ने सोचा कि कहीं पागल तो नहीं हो गया! उसने हिलाया; उसने कहा: आप कुछ बोलते नहीं; रोते नहीं? बेटा मर गया! वह हंसने लगा। तब तो पत्नी ने समझा कि निश्चित पागल हो गया। उसने कहा: आप हंस रहे हैं! बात क्या है?

उसने कहाः मैं इसलिए हंस रहा हूं कि अब किसके लिए रोऊं; किस के लिए न रोऊं! अभी बारह बेटे मेरे थे, तब इस बेटे को मैं बिलकुल भूल ही गया था। बड़ी राजधानी थी। स्वर्ण के महल थे। अभी तक तेरी आंखों से उनकी छाया नहीं गई है। अभी तक चमक है मेरी आंखों में उनकी। बड़ा सपना मैंने देखा कि चक्रवर्ती सम्राट हूं; (यह छोटा-मोटा राज्य क्या!) सारी पृथ्वी पर मेरी पताका फहर रही है। मेरी राजधानी हीरे-जवाहरातों से लदी है। सोने के रास्ते हैं; सोने के महल हैं। और बारह मेरे बेटे थे। एक ही तू क्या बात कर रही है! और एक से एक सुंदर थे; और एक से एक प्रतिभाशाली थे। और अचानक तूने दहाड़ मार दी; आंख खुल गई; सपना खो गया। अब मैं सोचता हूं कि उन बारह के लिए रोऊं या इस एक के लिए रोऊं! अब मैं सोचता हूं कि उस विराट साम्राज्य के लिए रोऊं--जो अभी-अभी मेरा था और अब मेरा नहीं है। या इस छोटे से साम्राज्य के लिए रोऊं? क्योंकि यह भी अभी-अभी मेरा है, अभी-अभी मेरा नहीं रह जाएगा। आज बेटा मर गया; कल मैं मर जाऊंगा। जब बेटा मर गया, तो बाप कितनी देर जी सकेगा? बेटे की मौत मेरी मौत की खबर ले आई है। कहते हैंः उस रात बाप कहां नदारद हो गया घर से, किसी को पता न चला। बहुत खोजबीन की गई, लेकिन उसका पता न चला। सपना टूट गया। भीतर का ही सपना नहीं टूटा, बाहर का सपना भी टूट गया। जिसको हम यथार्थ कहते हैं,वह भी टूट गया; वह भी एक बड़ा सपना है।

उसने त्याग किया? त्याग नहीं किया; बोध आया।

तो या तो बोध आता ध्यान से, तब फिर सब जो व्यर्थ है, व्यर्थ की तरह दिख जाता; तुम्हारी पकड़ उस पर छूट जाती। त्याग तो फिर भी होता है, लेकिन त्याग उसे कहने की जरूरत नहीं पड़ती।

और या प्रेम से...। कि तुम प्रेम में इतने सरोबोर हो जाते हो कि सभी अपने है; तो जो भी तुम्हारे पास है, तुम बांटने लगते हो। जितना बंटे उतना भला; उतने तुम निर्बोझ हो जाते हो; मेरा तेरा मिट जाता है; एक उसी परमात्मा का सब है।

लेकिन त्याग तो दोनों हालत में घटता है।

मैंने निश्चित तुमसे कहा है बार-बार कि त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि त्याग अपने से घटता है; आवश्यकता नहीं है। या तो तुम प्रेम करो; प्रेम की आवश्यकता है। या ध्यान करो--ध्यान की आवश्यकता है। त्याग पीछे चला आता है--चुपचाप चला आता है। त्याग परिणाम है।

हमारे पास है भी क्या--छोड़ने को?

मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।
कल काल, रात्रि के अंधकार
में थी मेरी सत्ता विलीन
इस मूर्तिमान जग में महान

था मैं विलुप्त कल रूप हीन
कल मादकता की भरी नींद
थी जड़ता से ले रही होड़
किन सरस करों का परस आज
करता जाग्रत जीवन नवीन?
मिट्टी से मधु का पात्र बनूं
किस कुंभकार का यह निश्चय?
मिट्टी का मन, मस्ती का तन
क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।
भ्रम भूमि रही थी जन्म-काल
था भ्रमित हो रहा आसमान
उस कलावान का कुछ रहस्य
होता फिर कैसे भासमान।
जब खुली आंख, तब ज्ञात हुआ
थिर है सब मेरे आसपास
समझा था सबको, भ्रमित, किंतु
भ्रम स्वयं रहा था मैं अजान
भ्रम से ही जो उत्पन्न हुआ
क्या ज्ञान करेगा वह संचय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।

है क्या हमारे पास देने को? दान करने को, त्याग करने को--है क्या हमारे पास? मिट्टी का तन, मस्ती का मन, क्षण भर जीवन--मेरा परिचय। एक क्षण भर पानी का बबूला है। मिट्टी की देह है और थोड़ी सी मन की तरंगों की मस्ती है। मन के सपनों की मस्ती है और मिट्टी की देह है। मिट्टी की देह पर सवार ये सपने हैं--और क्षण-भंगुर, क्षण भर ले लिए। इतना छोटा सा परिचय है; इसमें देने-लेने को क्या है?

जाग गया जो--या तो प्रेम में या ध्यान में--उससे त्याग सहज फलित हो जाता है।

आखिरी प्रश्नः बाबा मलूकदास कहते हैंः दया करो और धर्म मन में रखो। मैंने जीवन भर यही किया। दया की, सेवा की, सहानुभूति दी, लेकिन किसी ने एहसास भी न माना। एहसास तो दूर, जिनके साथ भला किया, उन्होंने मेरे साथ बुराई की! आप इस संबंध में क्या कहते हैं?

ऐसा खयाल रहे कि मैंने भलाई की, तो भलाई की ही नहीं। भलाई करने वाले को भलाई करने का खयाल नहीं होता। और जिसे भलाई करने का खयाल होता है, इसकी का यही परिणाम होता है, जो तुम्हारा हुआः लोग उसके साथ बुराई करेंगे। क्योंकि जब तुम किसी के

साथ बहुत होशपूर्वक जानते हुए भलाई करते हो, तो तुम दूसरे अहंकार को चोट पहुंचाते हो। वह तुम्हें कभी क्षमा न कर सकेगा।

जब तुमने किसी को दो पैसे दिए हैं, तो तुमने देखाः तुम कितने अकड़ कर देते हो! तुम्हें दो पैसे दिखाई पड़ते हैं, उस आदमी को तुम्हारी अकड़ दिखाई पड़ती है और वह दिल में कसमसा कर रह जाता है कि यह दुर्भाग्य का क्षण कि तुम जैसे आदमी से दो पैसे लेने पड़े। देखूंगा, कभी मौका मिला, तो इसका बदला चुका कर रहूंगा।

तुम्हें अपनी अकड़ नहीं दिखाई पड़ती; उसको तुम्हारी अकड़ दिखाई पड़ती है। दो पैसे दे रहे हो, लेकिन अकड़ कितने रहे हो! हाथ कितना ऊपर कर लिया है, महादाता बन गये हो।

तुम भलाई भी करते हो, तो तुम्हारे अहंकार की सजावट ही होती है--तुम्हारी भलाई। और भलाई के पीछे तुम चाहते हो--प्रत्युत्तर, धन्यवाद, अनुग्रह का भाव। और दूसरे को दिखाई पड़ता है तुम्हारा अहंकार।

मेरे एक मित्र हैं; धनपति हैं; और भले आदमी हैं। तुम जैसे ही हैं--जिसने प्रश्न पूछा है। मेरे साथ एक बार यात्रा पर गये, तो रास्ते में उन्होंने अपना मन खोला। उन्होंने मुझसे कहा कि एक बात पूछना चाहता था सदा से, लेकिन कभी मौका नहीं मिला। मैंने अपने जीवन में अपने सारे रिश्तेदारों को, मित्रों को--सब को भरपूर दिया। लेकिन कोई मुझसे खुश नहीं है!

और यह बात सच है। मैं उनके मित्रों को, उनके परिवार के लोगों को, उनके संबंधियों को, दूर के संबंधियों को--सब को जानता हूं। उन्होंने सब को दिया है। वे खुद भी एक गरीब घर से आए। एक अमीर घर में गोदी लिए गए, तो उनके सब रिश्तेदार गरीब ही हैं। अब जो बाप अपने बेटे को गोदी देता है, वह कोई अमीर तो होता नहीं। वे एक अमीर घर में गोदी की तरह आए। तो उनके सारे रिश्तेदार, मित्र, परिचय--सब गरीबी से भरा हुआ है। उन्होंने सब को अमीर कर दिया। जितना दे सकते थे--दिया। इसमें कोई झूठ नहीं है। इसे मैं जानता था। और यह भी मैं जानता था कि वे जो कह रहे हैं, वह भी सच है। उनका कोई रिश्तेदार उनसे खुश नहीं है। सब उनसे नाराज हैं। सब उनके दुश्मन हैं। अगर मौका पड़ जाए, तो उनमें से कोई भी उनके मिटाने को तैयार हो जाएगा।

तो उन्होंने मुझसे पूछा कि मामला क्या है? मैंने किसी का बुरा नहीं किया। सब का भला किया। लेकिन फिर भी सब मुझसे नाराज हैं! कोई वक्त पर काम नहीं आता! और सब मेरे खिलाफ मालूम होते हैं।

तो मैंने उनसे कहाः आपने भला किया, लेकिन भला करना न जाना। आपने रुपए तो दिए, लेकिन बड़ी अकड़ से दी है। आपने दूसरे को बहुत दीन बना डाला। आपने दूसरे की दीनता बड़ी प्रगाढ़ कर दी; उसके घाव को छुआ। आपने रुपए क्या दिए, सिद्ध करने को दिए कि देख, मैं कौन, और तू कौन! नाराजगी स्वाभाविक है। वे बदला लेने को आतुर हैं। और फिर आपने कभी उनको कोई मौका नहीं दिया कि किसी क्षण में वे भी आपके ऊपर हो जाते। कभी ऐसा भी नहीं आपने किया कि आप बीमार हैं, किसी मित्र को कहा हो कि आ जाओ, पास बैठ जाओ--मेरे बिस्तर के। तुम्हारे बैठने से मुझे अच्छा लगेगा। इतना भी नहीं मौका

दिया किसी को। आपने सब से सहानुभूति दिखलाई, लेकिन दूसरे को कभी मौका न दिया कि आपसे सहानुभूति दिखला दें। इसमें खतरा हो गया। इससे वे नाराज हैं।

यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं।

तुम कहते हो: मैंने जीवन भर यही किया। दया की होगी, लेकिन दया करनी न जानी। दया की होगी, लेकिन दया के भीतर अहंकार बहुत गहरा रहा होगा। सेवा की होगी, लेकिन करने मग प्रेम न रहा होगा, कर्तव्य का भाव रहा होगा। और कर्तव्य का भाव कोई गुण नहीं हैं, दुर्गुण है। और तुमने सहानुभूति दी होगी; तुम कहते हो, तो ठीक ही कहते होओगे; लेकिन सहानुभूति से कोई प्रसन्न नहीं होता।

तुम इस गीत को खयाल से सुनो:

क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूं?
मैं दुःखी जब जब हुआ
संवेदना तुमने दिखाई
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा
रीति दोनों ने निभाई
किंतु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूं?
एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दि तुम्हारा
उस नयन से बह सकी कब
इस नयन की अश्रु-धारा?
सत्य को मुंदे रहेगी।
शब्द की कब तक पिटारी?
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूं?
कौन है जो दूसरों को
दुःख अपना दे सकेगा?
कौन है जो दूसरों से
दुःख उसका ले सकेगा?
क्यों हमारे बीच धोखे का रहे व्यापार जारी
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूं?
क्यों न हम लें मान, हम हैं
चल रहे ऐसी डगर पर
हर पथिक जिस पर अकेला
दुःख नहीं बंटते परस्पर

दूसरों की वेदना में
वेदना जो है दिखाता
वेदना से मुक्ति का निज
हर्ष केवल वह छिपाता
तुम दुःखी हो तो सुखी मैं
विश्व का अभिशाप भारी!
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या? करूं
जब तुम दूसरे के प्रति सहानुभूति हो, तो जरा भीतर खयाल रखना, तुम मजा ले रहे हो।
इसे ऐसा समझोः एक आदमी के घर में आग लग गई और तुम गये और तुमने सहानुभूति दिखाई कि बड़ा बुरा हुआ--बड़ा बुरा हुआ! लेकिन तुम जरा भीतर खयाल करना, तुम इसमें मजा भी ले रहे हो कि तुम्हारा मकान जला, इसका जला। तुम जरा गौर करना। तुम्हारी आंख में एक चमक भी है--सहानुभूति दिखाने का मजा।
और मैं तुमसे कहता हूं कि यह मजा तुम जरूर ले रहे होओगे। इसे उलटी तरह से सोचो। इस आदमी का झोपड़ा जल गया; अगर यह झोपड़ा न जलता और यह आदमी अचानक लाटरी पा जाता और एक महल बना लेता, तो तुम दुःखी होते या नहीं? तुमसे बड़ा मकान बना लेता, तो तुम्हारे मन मेंर् ईष्या आती या नहीं?
अगर तुम इसके सुख में सुखी नहीं हो सकते, तो इसके दुःख में तुम्हारा दुःख झूठा है। इसके सुख में तो तुम दुःखी हो जाते हो, तो तुम इसके दुःख में जरूर सुखी हो रहे होओगे। यह दोनों का जोड़ है।
जब भी तुम किसी व्यक्ति के दुःख में दुःखी होना बताते हो, तो तुम चाहे ऊपर से प्रकट करो या न करो, दूसरे को इसकी तरंगें मिलती हैं कि तुम बड़े प्रसन्न हो रहे हो, भीतर-भीतर रस आ रहा है तुम्हें।
सहानुभूति में बड़ा रस है; कोरा--मुफ्त में--दूसरे से ऊपर होने का मजा है। दूसरा भिखारी होकर खड़ा है; तुम दो-चार शब्द उसके भिक्षा-पात्र में डाल रहे हो और तुम बड़े प्रसन्न हो।
ध्यान रखनाः तुम्हारा दूसरे के प्रति संवेदना, सहानुभूति का रुख तभी सच्चा होगा, जब तुम्हारे जीवन में सारीर् ईष्या चली जाएगी।
मैंने अपने उन धनी मित्र को कहा कि अगर तुम्हारे परिवार में, तुम्हारे रिश्तेदारों में, मित्रों में कोई तुमसे ज्यादा धनी हो जाए, तो तुम्हेंर् ईष्या होगी या नहीं? वे सोचने लगे; उन्होंने कहा कि होगी;र् ईष्या कहा कि होगी;र् ईष्या तो होगी--अगर उनमें मुझसे ज्यादा कोई धनी हो जाए। यद्यपि मैंने सबको धनी किया है, लेकिन मुझसे ज्यादा उनमें कोई भी नहीं है। लेकिन मुझसे ज्यादा कोई हो जाए, तो मुझेर् ईष्या होगी।
तो फिर मैंने कहा, तुम जो मजा ले रहे हो, वह अहंकार का ही है। तुम मजा ले रहे हो कि मैं दाता--तुम याचक। तुमने अपने सारे मित्रों को, सारे प्रियजनों को भिखारियों में रूपांतरित

कर दिया है। वे एक न एक दिन सब मिलकर तुम्हारी हत्या कर देंगे। और तब तुम कहते फिरोगे कि कैसी दुनिया है! हम तो नेकी करते हैं और उत्तर में बदी मिलती है।

नहीं जी; नेकी के उत्तर में बंदी कभी नहीं मिलती। मगर नेकी करता कौन है? नेकी के नाम पर भी तुम बंदी ही करते हो। अच्छे-अच्छे नाम हैं...! रोगों के बड़े-सुंदर-सुंदर नाम रखे हैं हमने, लेकिन भीतर हमारा रोग छिपा है।

तुम कहते हो: मैंने जीवन भर यही किया।

नहीं साहब, बाबा मलूकदास जो कहते हैं, वह आप न कर सकेंगे। उसे करने के लिए बाबा मलूकदास होना पड़ेगा। यह कुछ कहने की बात नहीं है; करने की बात नहीं हैं; होने की बात है। यह जो बाबा मलूकदास कहते हैं, इसे बाबा मलूकदास ही कर सकते हैं। तुम्हें मलूक जैसी मस्ती चाहिए; मलूक जैसा बोध चाहिए; मलूक जैसा प्रेम चाहिए, तब तुम्हारे जीवन से जो होगा, उसका सारा गुण-धर्म अलग होगा।

अभी तो तुम झूठे सिक्कों से मन बहलाया है। तुम कहते हो: मैंने जीवन भर यही किया। अगर तुमने सच में ही भलाई की है, तो बात खतम हो गई; तुम इसकी प्रतीक्षा क्यों करते हो कि दूसरा तुम्हारे प्रति भलाई करे? तुमने भलाई की बात खतम हो गई, तुमने मजा ले लिया भलाई में। भलाई करने में इतना मजा है! और क्या चाहिए।

दूसरे ने तुम्हें भलाई करने का मौका दिया, इतना क्या कम है! तुम उसके प्रति धन्यवादी रहो, अनुग्रह मानो--कि तूने मुझे मौका दिया, सेवा करने का। लेकिन तुम राह देख रहे हो कि वह अनुगृहीत हो, तुम्हारा अनुग्रह माने--और कुछ कहे उत्तर में, जिससे तुम्हें प्रमाण भी मिले कि तुम्हारी भलाई का उत्तर भी आ गया। तुमने भलाई नहीं की, सौदा करना चाहा। ऊपर-ऊपर तुमने दिखाया भलाई कर रहे हैं; भीतर-भीतर व्यवसाय करना चाहा। दो पैसे दिए थे, तुम चार पैसे लौटे, इसकी प्रतीक्षा करते रहे। तुम व्याज सहित वापस चाहते हो! और देखा जब तुमने कि मूल भी डूब गया, तो तुम नाराज हो।

दया की, सेवा की, सहानुभूति दी, लेकिन किसी ने भी एहसान भी न माना। कोई कैसे मानेगा एहसान? तुम एकसान मनवाना चाहते थे, इसीलिए नहीं मानना। तुम अगर न मनवाना चाहते,तो शायद लोग मान लेते।

इस जगत के बड़ उलटे नियम हैं--बड़े उलटे नियम हैं। तुम अगर सम्मान चाहो, लोग अपमान करेंगे। और तुम अगर सम्मान न चाहो, लोग सम्मान करेंगे। तुम अगर लोगों के सिर पर बैठना चाहो, तो लोग तुम्हें धूल में गिरा देंगे। और तुम अगर लोगों के चरणों में गिर जाओ, तुम्हारे सिर पर उठा लेंगे।

यह दुनिया बहुत अदभुत है; इसका गणित बहुत अदभुत है। यहां तुमने जीतना चाहा, तो हारोगे। और यहां तुम हारने को राजी रहे, तो तुम्हें कोई न हराएगा; तुम्हारी जीत सुनिश्चित है।

आज इतना ही।

मिटने की कलाः प्रेम

सातवां प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रात; दिनांक १७ मई, १९७७

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार।।
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
मनै नचावै मगर ह्वै, तिसका मता अपार।।
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानी है, अंतरगत का भाव।।
माला जपो न कर जपो, जिभ्या कहो न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया विसराम।।
जेती देखै आत्मा, तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिए, पत्थर से क्या काम।।

बाबा मलूकदास एक महाकवि हैं। मात्र कवि ही नहीं--एक द्रष्टा, एक ऋषि। कवि तो मात्र छंद, मात्रा, भाषा बिठाना जानता है। कवि तो मात्र कविता का बाह्य रूप जानता है। ऋषि जानता है--काव्य का अंतस्तल, काव्य को अंतराया।

साधारण कविता तो बस देह मात्र है, जिसमें प्राणों का आवास नहीं। भक्तों की कविता सप्राण है; श्वास हुई कविता है। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि भक्तों को कोई कवि ही न माने, क्योंकि न उन्हें फिक्र है भाषा की--न छंद मात्रा की, न व्याकरण की। गौण पर उनकी दृष्टि नहीं है। जब भीतर प्राणों का आविर्भाव हुआ हो, तो कौन चिंता करता है--अलंकरण की!

महावीर जैसा व्यक्ति नग्न भी खड़ा हो, तो परम सुंदर है। शरीर को तो हम सजाते ही इसीलिए हैं, कि हमें उसके सौंदर्य का भरोसा नहीं है। कुरूप व्यक्ति ही शरीर को सजाते हैं, सुंदर व्यक्ति तो जैसा है, वैसा पर्याप्त है।

देखते हैं, वृक्षों को कोई चिंता नहीं--सजने की। न पशु-पक्षियों को सजने की कोई चिंता है। चांदत्तारों पर कौन-सा अलंकरण है? काव्य वहां खुला और नग्न है।

ऋषि तो वही बोल देता है, जैसा उसके भीतर घटा हैं। उसे बांधता नहीं, व्यवस्था में नहीं जुटता। इसलिए बहुत बार ऐसा हो जाता है कि ऋषि को तो कोई कवि ही न मान। ऋषि को जानने के लिए तो तुम्हारे पास भी आंख चाहिए।

शरीर तो अंधे की भी समझ में आ जाता है; आत्मा तो आंखवालों को भी कहां दिखाई पड़ती है।

तो जब मैं मलूकदास को महाकवि कह रहा हूं, तो इस अर्थ में कह रहा हूं कि वहां शायद काव्य का ऊपरी आयोजन भी हो, लेकिन भीतर अनाहत का नाद गूंजा है; भीतर से झरना बहा है।

फिर झरना कोई रेल की पटरियों पर थोड़े ही बहते हैं! जैसी मौज आती है, वैसे बहते हैं। झरने कोई रेलगाड़ियां थोड़े ही हैं। झरने मुक्त बहते हैं।

तो ऋषि का छंद तो मुक्त छंद है। उसकी खूबी शब्द में कम--उसके भीतर छिपे निःशब्द में ज्यादा है। खोल में कम, भीतर जो छिपा है उसमें है। गुदड़ी मत देखना; भीतर हीरा छिपा है, उसे देखना।

तो अकसर महाकवि तो कवियों में भी नहीं गिने जाते। और जिनको कवि कहना भी उचित नहीं, वे महाकवि माने जाते हैं। दुनिया बड़ी अजीब है; यहां तुकबंद कवि हो जाते हैं, महाकवि हो जाते हैं। और आत्मा के छंद को गानेवालों की कोई चिंता ही नहीं करता।

ऐसा ही समझो, जैसे अंधों में कोई काना राजा हो जाए। लोगों के हृदय सूखे पड़े हैं। वहां तुकबंद भी ऐसा लगता है, कि जैसे कोई मोती ले आया। लोग भूल ही गये हैं कि हरियाली क्या होती है। फूल खिलते ही नहीं उनके जीवन में, तो प्लास्टिक के फूल भी असली फूल मालूम होते हैं।

और जहां फूल खिला ही न हो...। सोचो जरा मरुस्थल की, जहां कभी फूल खिला ही न हो, वहां अगर प्लास्टिक का फूल भी कोई रख दे, तो भी मरुस्थल प्रसन्न होगा।

फिर प्लास्टिक के फूल की कुछ खूबियां हैं, जो असली फूल में नहीं होती। प्लास्टिक का फूल टिकता है। असली फूल तो सुबह आया, सांझ गया; अभी आया--अभी आया। असली फूल को तो तिजोड़ी में बंद करके रखा नहीं जा सकता। नकली फूल को तिजोड़ी में बंद करके रख सकते हो, कुछ भी उसका बिगड़ेगा नहीं।

असली फूल पर तो हजार विपदाए हैं; नकली फूल को कोई विपदा नहीं है। नकली फूल को न जानवर चरेंगे, न समय मिटायेगा। असली फूल पर तो हर घड़ी संकट है।

हमारे हृदय ऐसे सूख गये हैं, इसलिए हम तुकबंदियों को कविता समझ लेते हैं। माना कि उन तुकबंदियों में मात्रा, छंद के सब नियम पूरे हो जाते हैं। नियम ही नियम हैं वहां, मर्यादा ही मर्यादा है वहां--व्यवस्था, आयोजन, प्रयास लेकिन भीतर कुछ भी नहीं है। मंदिर खाली है; मंदिर में देवता नहीं है। मंदिर खूब सजा-संवरा है सोने-चांदी से बना है, लेकिन मंदिर में देवता विराजमान नहीं है, सिंहासन खाली है। पर सिंहासन तक तो कोई जाता कहां है! और सिंहासन हमें खाली भी मिले, तो हमारी देवता से कोई पहचान नहीं है। तो हम तो सिंहासन को ही देवता समझेंगे। सोने का होगा, तो उसी को सिर झुका लेंगे।

देवता से पहचान न होने के कारण झूठे देवता पूजे जाते हैं। अंधों के बीच काना राजा हो जाता है। बहरों के बीच में तुम जितने ही मधुर कंठ से गाओ, कौन सुनेगा? बहरे तो उसी को गायक समझेंगे, जो हाथ की मुद्राओं से उन्हें कुछ गा कर बात दे। हाथ की मुद्राओं को ही बहरे समझ पाएंगे। कोकिल कंठ भी उनके लिए अर्थहीन है।

ऐसे हम बहरे हैं। तुकबंद हमें कवि मालूम पड़ते हैं और असली कवि हमें दिखाई भी नहीं पड़ते। असली कवि की व्याख्या ही यही है कि जिसने परमात्मा को जाना हो, जिसने जीवन के परम संगीत को अनुभव किया हो; उस अनुभव से जो बहे, वही महाकाव्य है। बिना

अनुभव के जो बहे, वह कितनी ही कविता मालूम पड़े देह देह है--लाश-लाश; निष्प्राण है; श्वास चलती नहीं है। फिर कब्र चाहे तुम संगमर्मर की बना दो, इससे कुछ भी न होगा।
जीवित व्यक्ति झोपड़े में भी है, तो भी बहुमूल्य है; और मरा व्यक्ति संगमर्मर की कब्र में भी हो, तो भी बहुमूल्य नहीं है; कोई मूल्य नहीं है।
मलूकदास की कविता में उनके भीतर के संगीत की धुन है। मलूकदास कविता करने को नहीं किए हैं। कविता बही है; ऐसे ही जब आषाढ़ में मेघ घिर जाते हैं, तो मोर नाचता है। यह मोर का नाचना किसी को दिखाने के लिए नहीं है। यह मोर सरकस का मोर नहीं है। यह मोर किसी की मांग पर नहीं नाचता है। यह मोर किसी नाटक का हिस्सा नहीं है।
जब मेघ घिर जाते, आषाढ़ के मेघ जब इसे पुकारते आकाश से, तब इसके पंख खुल जात हैं, तब यह मदमस्त होकर नाचता है। आकाश से वर्षा होती; नदी-नाले भर जाते; आपूर हो उठते; बाढ़ आ जाती; ऐसी ही बाढ़ आती है--हृदय में, जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है। बाढ़ का अर्थ--इतना आ जाता है हृदय में कि समाए नहीं सम्हलता; ऊपर से बहना शुरू हो जाता है। तट-बंध टूट जाते हैं; कूल-किनारे छूट जाते हैं।
बाढ़ की नदी देखी है न; भक्त वैसी ही बाढ़ की नदी है; संत वैसी ही बात की नदी है। फिर बाढ़ की नदी करती क्या है--इतना भाग-दौड़, इतना शोर शराबा--जाकर सब सागर को समेट कर अर्पित कर देती है।
ये मलूकदास के पद बाढ़ में उठे हुए पद हैं; ये बाढ़ की तरंगें हैं; और ये सब परमात्मा की चरणों में समर्पित हैं। ये सब जाकर सागर में उलीच दिए गये हैं।
संतों को मैं महाकवि कहता हूं, चाहे उन्होंने कविता न भी की हो। यद्यपि ऐसा कम ही हुआ है, जब संतों ने कविता न की हो। यह आकस्मिक नहीं हो सकता। सब संतों ने--कम से कम भक्ति-मार्ग के सब संतों ने गाया है। ध्यान मार्ग के संतों ने कविता न भी की हो, क्योंकि उनसे काव्य का कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन उनकी वाणी में भी गौर करोगे, तो कविता का धीमा नाद सुनाई पड़ेगा।
बुद्ध ने कविता नहीं की; लेकिन जो गौर से खोजेगा, उसे बुद्ध के वचनों में काव्य मिलेगा। काव्य से वंचित कैसे हो सकते हैं--बुद्ध के वचन! चाहे उन्होंने पद्य की भाषा न बोली हो, गद्य की ही बोली हो, लेकिन गद्य में भी छिपा हुआ पद्य होगा।
पर भक्तों के तो सारे वचन गाये गये हैं।
भक्ति तो प्रेम है; प्रेम तो गीत है--प्रेम तो नाच है। भक्त नाचे हैं; भक्त गुनगुनाए हैं। जब भगवान हृदय में उतरे, तो कैसे रुकोगे--बिना गुनगुनाए? और करोगे क्या? और करते बनेगा भी क्या? विराट जब तुम्हारे आंगन में आ जाएगा, तो नाचोगे नहीं?--नाचोगे ही। यह नैसर्गिक है; स्वाभाविक है। रोओगे नहीं? आनंद के आंसू न बहांओगे? आंसू बहेंगे ही; रोके न रुकेंगे।
इन कविताओं में, इन छोटे-छोटे पदों में मलूकदास के नाच हैं--मलूकदास के आंसू हैं; मलूकदास के हृदय के भाव हैं। इनको तुम पंडित की तरह मत तौलना। इनको तुम--काव्य-

शास्त्री की तरह इनका विश्लेषण मत करना। ये विश्लेषण के पकड़ में न आएंगे। इनको तो तुम पीना; इनके साथ तो तुम भी गुनगुनाना और नाचना, तो ही पहचान होगी।

मलूक से नाता जोड़ना हो, तो कुछ कुछ मलूक जैसे हो जाना पड़ेगा, नहीं तो सेतु न बनेगा।

भक्तों का अनुभव यही है कि अस्तित्व संगीत से बना है, नाद से बा है। रोआं-रोआं, अस्तित्व का, निनादित है और कण-कण में गीत छिपा है। भक्तों का यही अनुभव है कि इस जगत की जो मूल-विषय वस्तु है, वह संगीत है। इसलिए भक्तों ने उसे अलग-अलग नाम दिए हैं। किसी ने उसे अनाहत नाद कहा है; किसी ने ओंकार कहा है। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

इस सारी लीला के पीछे सब तरफ कहीं न कहीं गहरे में आत्यंतिक रूप से संगीत का निर्झर बह रहा है। तुम अगर सुनोगे थोड़े तत्पर होकर--सुनाई पड़ेगा। तुम अगर शांत हो कर थोड़े बैठोगे, तो वृक्ष से गुजरती हवाओं में, भागती हुई नदी की धार में, पक्षियों की चहचहाट में, चांदत्तारों के सन्नाटे में, मनुष्यों की बोली में, बच्चों की किलकिलाहट में--सब तरफ तुम पाओगे: संगीत छिपा है।

संगीत से ही बना है अस्तित्व; तुम बहरे हो, इसलिए सुन नहीं पाते। तुमने कान बंद कर रखे हैं--सिद्धांतों, शास्त्रों, शब्दों से, इसलिए तुम सुन नहीं पाते। अन्यथा चारों तरफ परमात्मा गा रहा है; चारों तरफ परमात्मा नाच रहा है। जिस घड़ी तुम्हें यह समझ आ जाएगी, फिर तुम भी कैसे रुकोगे; तुम भी नाचोगे; तुम भी गाओगे।

तरसती हूं, गीत गाने के लिए
भाव लेकिन मुखर हो पाते नहीं।
रोज ही तो आंख ने देखे सपने
पर मिटी फिर भी नहीं मन की तपन
सुख नहीं अमृत सुखद-शीतलत्तरल
है कहीं इसमें निहित तीखा सरल
है कहीं इसमें निहित तीखा गरल
दर्द के मोती नहीं जब तक मिलें
आंसुओं के हार बन पाते नहीं।
डर लगा जब भी कभी तकदीर से
बांध बैठी पांव खुद जंजीर से
सोचती हूं विवशता भी है भली
दीप बन कर जिंदगी उसमें जली
वक्ष सागर का न जब तक दग्ध हो
गगन पर घन उमड़ लहराते नहीं।
कौन बतलाए अपरिचित पांव को

राह यह जाती व्यथा के गांव को
ताप किरनों का मुझे भाए तभी
फल सौ झर बिखर जाऊं मैं कभी
धूप-छांही रंग पहचानो बिना
जिंदगी के राज खुल पाते नहीं।
स्वर्ण कीमत सिर्फ क्या मुस्कान की
आह है क्या धूलि बस शमशान की
फूल सांसों के बिखेरें गंध जब
क्या उसी को प्यार का दें नाम तब
विरह की भाषा न जब तक सीख लें
अर्थ मिलने के समझ आते नहीं।

जीवन तो काव्य है, लेकिन इस काव्य को समझने की, सुनने की कला तो आनी चाहिए। परमात्मा तो मिल सकता है अभी, लेकिन विरह की भाषा तो आनी चाहिए। तुमने उसे पुकारा नहीं, रोए नहीं।

विरह ही भाषा न जब तक सीख लें, अर्थ मिलने के समझ आते नहीं। तुम रोए नहीं कभी। तुमने कभी हृदय भर के पुकारा नहीं।

दर्द के मोती नहीं जब तक मिलें
आंसुओं के हार बन पाते नहीं
वक्ष सागर का न जब तक दग्द हो
गगन पर घन मोती उमड़ लहराते नहीं
धूप-छांही रंग पहचाने बिना
जिंदगी के राज खुल पाते नहीं।

हम तो डरे डरे जी रहे हैं; हम तो मरे मरे जी रहे हैं। हम तो जंजीरों में अपने को बांध कर बैठ गये हैं। हमने जीना ही बंद कर दिया हैं। हम सिर्फ सुरक्षा की तलाश कर रहे हैं--और सुरक्षा मौत है।

जीवन तो है--असुरक्षा में। जीवन तो है: धूप-छांही रंग पहचाने बिना, जिंदगी के राज खुल पाते नहीं। जीवन तो है--सुख और दुःख में; खोने और पाने में; मिलने और बिछुड़ने में; भटकने और पहुंचने में। जीवन का राज तो खुलता है द्वंद्व की इस दुनिया में निर्द्वंद्व उतर जाने में।

डर कर बैठ गए, पैरों में जंजीर बांध ली कि कहीं भटक न जाए, तो भटक गए; फिर कभी न पहुंच सकोगे। भटकने से जो डरा, वह कभी पहुंचा नहीं। लोग पहुंचने के लिए हजार दूसरों के द्वारों पर दस्तक देनी पड़ती है।

रामानुज के पास एक व्यक्ति आया और कहा कि मुझे परमात्मा से मिला दें। रामानुज ने कहा: भले मानुष, तूने कभी किसी को प्रेम किया? उस आदमी ने कहा: इस झंझट में मैं

पड़ा नहीं। प्रेम इत्यादि की बातें छोड़ो; मुझे तो परमात्मा से मिला दो। रामानुज ने कहा: थिर मैं हार गया। अगर तूने कभी प्रेम ही नहीं किया, तो तू प्रार्थना कैसे करेगा? उसने कहा: मनुष्यों को प्रेम करने का परमात्मा की प्रार्थना से क्या लेना-देना? यही तो झंझट है; मनुष्यों का प्रेम ही तो झंझट है। इससे मैं पहले से ही बचता रहा हूं।

कहते हैं: रामानुज की आंखों में आंसू आ गये। रामानुज ने कहा: जिसने मनुष्यों से प्रेम नहीं किया, वह कभी परमात्मा की प्रार्थना भी समझ न पाएगा।

ये मनुष्य तो पाठ हैं। यह तो क ख ग है--प्रार्थना का। यहां बड़े कांटे हैं--माना; और हजार कांटों में कहीं एक छिपा फूल है। यह भी सच है। लेकिन इस फूल को पाने की चेष्टा, इस फूल को जीने की चेष्टा--और इस चेष्टा में हजार-हजार कांटों का चुभ जाना, यही जीवन में गति का उपाय है; यही चुनौती है। इस चुनौती से कोई उठता है।

भक्त कहते हैं: प्रेम से भागना मत; प्रेम का बढ़ाना बड़ा करना। एक पर प्रेम न रुके; फैलता जाए--अनेक पर फैल जाए--अनंत पर फैल जाए। प्रेम बंधन नहीं है--भक्त कहते है: बंधन--सीमित के साथ प्रेम है। प्रेम बंधन नहीं है--प्रेम अपने में बंधन नहीं है। प्रेम जहां रुक जाता है, वहां बंधन हो जाता है। मेरा प्रेम किसी पर रुक गया और मैंने मान लिया कि सब, इतिश्री हो गई, तो बंधन है।

मेरा प्रेम रुके ना, जिसे मैं प्रेम करूं, उसके पार होता जाए; जिसे मैं प्रेम करूं, वह सीढ़ी बन जाए, और मैं मंदिर की एक सीढ़ी और चढ़ जाऊं; तो तुमने जितना प्रेम किया, उतने ही तुम परमात्मा के करीब पहुंच जाओगे। तुम्हारा प्रेम जितना बड़ा होने लगेगा, उतनी सीढ़ियां तुम पार कर गये। और इसके बिना तुम लाख उपाय करो, तुम्हारे भीतर का गीत न फूटेगा।

तरसती हूं गीत गाने के लिए

भाव लेकिन मुखर हो पाते नहीं।

प्रेम पहली किरण है--परमात्मा की। प्रेम पहली किरण है--समाधि की। प्रेम में छिपा है राज सारा। तुम उतना ही प्रेम मत समझ लेना, जितना तुम जानते हो; प्रेम उससे बहुत बड़ा है। तुमने तो जिसे प्रेम कहा है, वह शायद प्रेम भी नहीं है। शायद प्रेम के नाम पर तुम कुछ और ही धोखा-घड़ी किए बैठे हो।

तुमने प्रेम किया कब? तुम जब प्रेम करने की बात करते हो, तब भी तुमने कभी सच में प्रेम किया? या प्रेम के नाम पर कुछ और करते रहे?--र्-ईष्या है, मत्सर है, द्वेष है, मालकियत है। तुम्हारे प्रेम में बड़ी राजनीति है। तुम्हारे प्रेम में बड़ी कलह है। तुम्हारे प्रेम में कहां संगीत है? कहां अनाहत नाद है?

तुम कभी किसी मनुष्य के हाथ में हाथ लेकर ऐसे बैठे हो कि उस क्षण कोई कलह न हो, छीना-झपटी न हो? कभी एक क्षण को ऐसा हुआ है, जब तुम किसी के पास मौन हो गए हो और तुम्हारे दोनों हृदयों का मौन एक-दूसरे में समाने लगा है? जैसे दो दीए पास आ जाए और उनकी ज्योति एक हो जाए--ऐसा कभी हुआ है? तो फिर प्रेम हुआ है। फिर इसी प्रेम से

परमात्मा की पहली खबर पाओगे। इस प्रेम में परमात्मा ने पहली दफा पुकारा। तुम्हें उसकी पहली धुन सुनाई पड़ेगी।

परमात्मा शास्त्रों में खोजे से नहीं मिलता। परमात्मा की सुधि आती है; और सुधि आती है--किसी अनुभव से। और मनुष्य के पास जो निकटतम अनुभव हो सकता है, वह प्रेम का अनुभव है।

माना प्रेम बहुत दूर है--परमात्मा से...। जैसे कि पहली सीढ़ी मंदिर की प्रतिमा से दूर होती है। लेकिन पहली, सीढ़ी पर पैर रख कर दूसरी सीढ़ी, तीसरी सीढ़ी--और धीरे-धीरे तुम मंदिर तक पहुंच जाते हो।

सपनों में, पलकों में, नयनों में, आंसुओं में, सुधि आई।

सपनों में पुलक गई
पलकों में मचल गई
नयनों में छलक गई
आंसुओं में ढलक गई
छलकी सी, ढलकी सी, सुधि आई
अंधियारी बगीया में कोयल सी कूक गई
सुनी दुपहरिया में पीड़ा सी हूक गई
कारी बदरिया में उमड़-उमड़ घुमड़ाई
चांदी की रातों में चितवन सी मूक रह, सुधि आई
कोयल सी, पीड़ा सी, कारी बदरिया सी सुधि आई
मंदिर की देहरी पर
पूजा स्वर लहरी पर
श्रद्धा सी ठहर गई,
सुधि आई
ठहरी सी, गहरी सी, सुधि आई
पतझड़ की पातों में
अनसोई रातों में
अनजाने घाटों पर
अनभूली बातों में
सुधि आई
रातों में, बातों में, सुधि आई
भोर की चिरैया सी आंगन में चहक गई
भटकी पुरवैया सी आंचल में बहक गई
बेले की लड़ियों सी सांसों में महक गई
चांद की जुन्हैया सी प्राणों में लहक गई

सुधि आई
आंगन में चहक गई
आंचल में बहक गयी
सांसों में महक गई
प्राणों में लहक गई
सुधि आई, सुधि आई, सुधि आई।

परमात्मा की सुधि आती है। लेकिन सुधि आए कैसे? स्मरण कैसे हो? याद कैसे आए--शास्त्र से तो नहीं आती। लाख सिर मारो शास्त्र से; सिद्धांत पकड़ में आ जाते हैं; परमात्मा की परिभाषाएं पकड़ में आ जाती हैं; लेकिन सुधि नहीं आती है।

सुधि के लिए कोई जीवंत उपाय चाहिए। प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य के पास और उपाय क्या है? और अगर तुम्हारे जीवन में जरा सी प्रेम की छलक आने लगे, तो सब तरफ से खबर आने लगेगी।

अंधियारी बगिया में कोयल सी कूक गई
सूनी दुपहरियां में पीड़ा सी हूक गई।
सब तरफ से आने लगेगी।
भोर की चिरैया सी आंगन में चहक गई
सुनी दुपहरिया में पीड़ा सी हूक गई।
भटकी पुरवैया सी आंचल में बहक गई
बेले की लड़ियों सी सांसों में महक गई
चांद की जुन्हैया सी प्राणों में लहक गई।

हर तरफ से--ये जो बेले की गंध चली आती हवा पर तैरती, इसमें परमात्मा आ जाएगा। तुम्हारे भीतर प्रेम की जरा सी पकड़ चाहिए। यह जो कोयल कभी कुह-कुह किए चली जाती है, इसकी कुहू-कुहू में उसी का नाद आने लगेगा। तुम्हारे भीतर संवेदनशीलता चाहिए। प्रेम तुम्हें संवेदनशील बनाता है। और जो प्रेम में नहीं है, वह कठोर हो जाता, कठिन हो जाता, पथरीला हो जाता। प्रेम तुम्हारी भूमि को नरम बनाता है, उस नरम भूमि में प्राणों का बीज पड़ता है, तो परमात्मा का अंकुरण होता है। इस अंकुरण के बाद ही कोई मलूकदास जैसे गीत गा सकता है।

ये गीत मलूकदास के प्राणों की भेंट हैं। जो परमात्मा ने मलूकदास में दिया है, वह मलूकदास तुम्हें दे रहे हैं। जो परमात्मा में पहुंच कर मलूकदास को मिला है, वह उनके शब्दों पर सवार हो कर तुम तक पहुंच रहा है।

प्रेम बंटता है; प्रेम कभी सिकुड़ता नहीं; जिसे मिलता है, इसे बांटना ही पड़ेगा।

पहला सूत्रः

सब बाजे हिरदे, बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूढत को फिरै, मिल्यौ बजावनहार।।

सब बाजे हिरदे बजैं...। कहते हैं मलूकदासः सब बाजे हिरदे बजैं। जीवन में जीना संगीत है, जहां-जहां संगीत है, जो-जो संगीत है, उस सब के बजने की व्यवस्था हृदय के भीतर है। सब बाजे हिरदे बजैं...। न तो वीणा की जरूरत है, न मृदंग की। तुम्हारे हृदय में सब बाजो का बाजा है, सब तारों का तार छिपा है। परमात्मा ने तुम्हें दे कर ही भेजा है। इस अनूठी जीवन-यात्रा पर बिना पाथेय के नहीं भेजा है। सब आयोजन करके भेजा है। यह होना ही चाहिए ऐसी ही। मां अपने बेटे को भेजती है किसी यात्रा पर--तीर्थयात्रा पर समझो, तो सब आयोजन कर देती है। राह के लिए पाथेय जुटा कर रख देती है; कलेवे का इंतजाम कर देती है। सब पोटली में बांध देती है। जो-जो जरूरत होगी, उसकी फिक्र कर लेती है।

एक छोटे से स्कूल के स्काउटों का कैम्प था; छोटे-छोटे बच्चे कैंप में गये। जब कैंप में सभी बच्चों के बिस्तर खुलवाए गए, तो एक बच्चे के बिस्तर में छाता भी रखा हुआ मिला। तो पूछा शिक्षक ने कि छाता तो लिस्ट में था ही नहीं! बताया गया था; क्या-क्या चीज लानी है। छाता क्यों? और छाते की कोई जरूरत नहीं है; बरसा अभी होनी ही नहीं है।

वह छोटा सा लड़का खड़ा हुआ, उसने कहा कि सार, आपकी मां थी या नहीं? उस शिक्षक ने कहा, मां से इसका क्या संबंध? उसने कहा, इसका मां से संबंध है। मैं तो लाख सिर पटका, लेकिन मां को तो आप जानते ही हैं? मैंने लाख कहा कि छाते की कोई जरूरत नहीं है। उसने कहाः बेटा कोई फिक्र न कर। रहेगा--काम पड़ जाएगा। और नहीं पड़ा तो घर लौट आएगा। मैंने बहुत समझाया कि लिस्ट में नहीं है, तो उसने कहाः लिस्ट!--मैंने थोड़े ही बनाई! लिस्ट शिक्षकों ने बनाई है शिक्षक को क्या पता!

उस छोटे बच्चे ने कहाः आपकी मां नहीं थी क्या? वही अनुभव आपका कम मालूम पड़ता है, नहीं तो छाता, आप समझ जाते कि क्यों है।

अगर हम इस अस्तित्व से आए हैं--आए ही हैं; और तो वहीं से आने का उपाय नहीं है, तो निश्चित ही सब हमारे भीतर रख दिया होगा; चलते वक्त सब पाथेय जुटा दिया होगा।

हमें कुछ भी कमी नहीं है। अब यह दूसरी बात है कि हम पोटली ही न खोलें। अब यह दूसरी बात है कि हम पोटली में टटोलें ही न। और हम लाख शिकायत करते रहें परमात्मा की; और जो पोटली हमारे पास है, उसे हम देखें भी न कि इसमें क्या रख दिया है।

उस पोटली का नाम ही हृदय है। और हृदय में सब है; जो मनुष्य को चाहिए--सब है। जो कभी भी चाहिए पड़ सकता है, वह सब है। ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जिसमें तुम्हें ऐसा अनुभव हो कि परमात्मा ने तुम्हें बिना तैयारी के भेज दिया है।

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार। प्रेम का संगीत भी वहां बजता है, पखावज--मृदंग भी वहां बजती है; तार--सितार भी वहां बजता है। प्रेम ही असली उपकरण है, फिर शेष सब तो प्रेम के ही रूपांतरण हैं--मृदंग और पखावज, और सितार, और वीणा--वे सब प्रेम के ही रूपांतरण हैं; वे प्रेम की ही अलग-अलग अभिव्यक्तियां हैं।

मंदिर ढूढत को फिरै, मिल्यो बजावनहार। और ऐसा ही नहीं है कि तुम्हारे हृदय में सिर्फ वीणा दी है, मृदंग रख दी है; बजावनहार भी वहीं छिपा बैठा है।

तो ऐसा ही नहीं है कि तुम्हारी पोटली में पाथेय बांध दिया है और परमात्मा तुम्हें भूल गया है। तुम्हारी पोटली में परमात्मा भी बैठा है। बजाने के सब उपकरण वहां है और बजाने वाला भी मौजूद है। तुम जरा तलाशो--टटोलो; जरा अपनी गांठ खोलो; जरा हृदय के द्वार-दरवाजे खोलो। सारी साधना इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि कैसे हम अपने हृदय की गांठ खोलें।

मंदिर ढूढत को फिरै...। कहते मलूकदासः अब मंदिर खोजने की भी कोई जरूरत न रही। मंदिर तो भीतर मिल गया। मंदिर ही नहीं मिला वीणा ही नहीं मिली; वीणा-वादक भी भीतर मिल गया।

इस घड़ी में जब कोई अपने को खोल लेता है, तो नया जन्म होता है--जिसको मैंने द्विज कहा--टवाईम बार्न; एक नया जन्म होता है। पहली बार तुम समझते हो कि तुम अकेले नहीं हो, परमात्मा साथ है। पहली बार तुम समझते हो कि तुम इस पृथ्वी पर अजनबी नहीं हो, यह तुम्हारी है। और पहली बार तुम समझते हो कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति विमुख नहीं है। अस्तित्व ने सब तरफ से तुम्हारे प्रति छाया की है; सब तरह से तुम्हें बचाया है; सब तरह से सुरक्षा दी है।

पहली बार पता चलता है कि अस्तित्व तुम्हारा शत्रु नहीं है; लड़ने की जरूरत नहीं है। अस्तित्व तो तुम्हारे प्राणों का प्यारा है और अस्तित्व का प्रेम तुम्हारी तरफ बह रहा है। बस, तुम्हारा प्रेम अस्तित्व की तरफ बहने लगे, तो दोनों का मिलन हो जाए। उस महामिलन में ही भक्त का जन्म होता है। भक्त यानी द्विज।

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।
नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।
नवल, चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।
गीत नवल,
जीवन की रीति नवल।
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल।

सब नया हो उठता है। नया वर्ष--नयी शुरुआत। तुम फिर से शुरू होते हो। अभी तक तो तुम जैसे जीए हो, वह नाम मात्र का जीना है--वास्तविक जीवन नहीं। अभी तो ऐसे जीए हो,

जैसा सागर होने की क्षमता हो और बूंद होकर जीए हो। जैसे विराट होने की क्षमता हो, और सिकुड़-सिकुड़ कर एक छोटे से कारागृह में बंद हो कर जीए हो।
अभी तो ऐसे जीए हो, जैसे बीज--बंद; सब तरफ से बंद; न खिड़की, न द्वार, न दरवाजे। जब कि हो सकता था महा वृक्ष--कि उसके नीचे यात्री ठहरते, विश्राम करते, छाया पाते; थके-हारे पुनर्जीवन पाते; कि पक्षी घोंसले बनाते; कि हवाएं अठखेलियां करतीं; कि सूरज आकर चर्चा करता; कि चांदत्तारे मिलने को उत्सुक होते; कि फूल खिलते; कि फल लगते। विराट वृक्ष हो सकते थे, लेकिन एक बीज की तरह जीए हो अब तक। हो भी नहीं सकते विराट वृक्ष, क्योंकि तुम अभी मिटने को तैयार नहीं।
प्रेम का शास्त्र एक शब्द में कहा जा सकता है; मिटने का शास्त्र, समर्पित होने का शास्त्र। जैसे बीज मिटता है भूमि में, ऐसे जिस दिन तुम मिटने को राजी हो जाते हो--अपने अहंकार के बीज को छोड़ने को, उसी दिन--उसी दिन अंकुरण हो जाता है। फिर देर नहीं लगती; उसी क्षण नया वर्ष आ जाता है।
वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।
नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।
नवल चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।
गीत नवल,
प्रीति नवल,
जीवन की रीति नवल
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल।
उस दिन जीवन जीता। जिस दिन तुम हारे, उस दिन जीव जीता। जिस दिन तुम मरे, उस दिन जन्म हुआ--वास्तविक जन्म हुआ। जिस दिन तुम मिटे, उस दिन परमात्मा आया और तुम्हारे भीतर विराजमान हुआ।
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यों बजावनहार।।
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
प्रेम की बना लो मृदंग; हृदय का लो सितार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार।

और मन को नचाओ। सुनते होः करै पखावज प्रेम का; प्रेम की मृदंग पर पड़ने दो थाप। प्रेम की मृदंग को गूंजने दो। हृदय बजावै तार--छोड़ो हृदय के तार, ताकि वीणा निनादित हो उठे; ताकि सोई वीणा--सदियों-सदियों से सोई वीणा जाग उठे।

संगीत सोया पड़ा है, जरा छेड़ने की बात है। छेड़ भी न सकोगे? वीणा तो दे दी है, लेकिन छेड़ोगे तभी तो जगेगी न। इतना तो कम से कम करो; पोटली तो खोलो।

मनै नचावै मगन ह्वै...। और मन को नाचने दो--प्रेम के इर्द-गिर्द, प्रेम के मृदंग के आसपास। वीणा के साथ-साथ मन को नाचने दो।

बाबा मलूकदास की वीणा गीत की, नृत्य की, संगीत की वाणी है। संगीत, गीत और नृत्य के लिए आह्वान है, चुनौती है। यह वाणी तुम्हें उदास करने को नहीं है; यह वाणी तुम्हें हर्षोन्मत्त करने को है।

और परमात्मा की राह उदासी से तय नहीं होती; परमात्मा की राह हंसते, मुस्कुराते, नाचते हुए तय होती है। और जिस राह को नाचते हुए तय किया जा सकता हो, उस पर तुम क्यों उदास-उदास चले जा रहे हो।

अकसर ऐसा होता है कि उदास लोग धर्म में उत्सुक हो जाते हैं। तुम मंदिरों में देखो, मस्जिदों में देखो, वहां तुम नाचते हुए लोग शायद ही पाओ; वहां तुम हर्षोन्मत्त लोग शायद ही पाओ, जिन्होंने प्रेम की मृदंग बना ली हो, और हृदय की वीणा बना ली हो, और मन के नर्तक को मुक्त कर दिया हो--वहां तुम्हें ऐसे लोग शायद ही मिलें। वहां तुम्हें मिलेंगे मुरदे, मरने को तत्पर, या मर ही चुके! यहां लोग आते हैं, तो स्वभावतः इसी आशा में आते हैं कि जैसे और आश्रम हैं, ऐसा आश्रम यह भी होगी। उनको बड़ी बेचैनी हो जाती है। मेरे पास कुछ लोगों ने आ कर कहा भी--कि हम तो सोचते थे कि जैसा आश्रम होना चाहिए...। उदासीन...! मगर नाच, गीत, गान, प्रेम का ऐसा प्रफुल्ल भा, स्त्री-पुरुष साथ-साथ नाचते हुए, कि हाथ में हाथ डाले हुए, कि आलिंगन करते हुए--यह क्या हो रहा है?

वे खुद मर गये हैं; वे दूसरों को भी मारना चाहते हैं। वे खुद मुरदा हो गये हैं; उनकी जीवन-धारा सूख गई है; वे दूसरे की भी कलियों को खिलते देखना नहीं चाहते। सूखा वृक्ष, जैसे नये उमगते हुए अंकुरों को कहता होः क्या रखा है। इसमें? विरागी बनो।

भक्त वैराग्य भी भाषा नहीं बोलता। भक्त कहता हैः विराट रागी बनो; विराट से राग बनाओ। अनासक्त नहीं--परमात्मा से आसक्ति जुटाओ। और तब अनासक्ति आती है; व्यर्थ से अनासक्ति है--सार्थक से नहीं। तब धीरे-धीरे तुम उठने लगते ऊपर।

अभी तुम नाचते हो, गीत गाते हो, स्वभावतः तुम्हारा नाच और तुम्हारा गीत उसी तल पर होगा, जहां तुम हो। लेकिन अगर नाच चलता रहा, तो नाच तुम्हारा तल बदल देगा। अगर नाच में तुम डूबने लगे, तो तुम बदलने लगोगे। डूबने से कोई बदलता है। क्षण-भर को भी मिट गये अगर--नृत्य करते-करते, तो उस क्षण भर में ही तुम्हारी सीमा विराट हो जाएगी। एक क्षण को तुम्हारे भीतर परमात्मा झांकेगा।

जब नर्तक मिट जाता है और नृत्य ही रह जाता है, तब घटना घटती है--क्रांति की घटना घटती है।

यहां मुरदों के लिए तो जगह नहीं है; मुरदों के लिए कब्रिस्तान है।

और आश्रम का अर्थ उदासीनता नहीं है। आश्रम शब्द का अर्थ होता है: विश्राम का स्थल। थके-हारे तुम आए हो जीवन से--उदास, पीड़ित, परेशान; जहां तुम जाते हो जाओ; जहां तुम फिर से सीख लो; फिर से तुम्हारे पैरों में गति आ जाए; और फिर से तुम्हारे प्राणों में ध्वनि आ जाए, जहां से तुम फिर नवल उत्साह ले सको, उमंग ले सको।

करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।

मनै नचावै मगन ह्वै, जिसका मता अपार।।

और कहते मलूकदासः उसका ही मत अपार है, जो तुम्हारे नृत्य से--गीत और गाने से भर दे। उसका ही मत अपार है; उसके ही मत में अनंत की संभावना है, विराट की संभावना है, विराट की संभावना है, जो तुम्हारे जीवन को नए-नए वसंतो से भर दे।

सदगुरु अगर आषाढ़ के मेघों की तरह तुम्हारे ऊपर न घिर जाए और तुम्हारा मन-मोर नाच न उठे, तो सदगुरु नहीं।

पुरवैया गा उठी, प्रकृति का
अंचरा डोल रहा
उमड़ा प्यार गगन के हिय में
बदरा बन बरसा
प्रेमाकुल भू ने नदियों की
बांह बढ़ा परसा
दूर कहीं बंसी की धुन सुन
कजरा डोल रहा
प्रकृति का अंचरा डोल रहा
लहरों ने इकतारा छेड़ा
कूकी कोयलिया
सजी लताएं, बजी गांव की
कंवारी पायलिया
अमराई का हौले-हौले
जियरा डोल रहा
प्रकृति का अंचरा डोल रहा
बुंदियों का दरपन ले कलियां
रूप संवार रहीं
पात-पात पर बहार-परियां
तन-मन वार रहीं

फुलवा ढंका धरा का हरियर
घघरा डोल रहा
घर नाची राधा खेतों में
झूमा सांवरिया
द्वारे हंसा नीम, पनघट पर
छलकी गागरिया
अंगना महका, मैना फुदकी
पिंजरा डोल रहा
प्रकृति का अंचरा डोल रहा
पुरवैया गा उठी, प्रकृति का
अंचरा डोल रहा।

धर्म वसंत है, मधुमास है। धर्म परम आनंद का उत्सव है। लेकिन तुम चाहो, तो उत्सव में भी उदास बने रहे सकते हो। तुम चाहो, तो उत्सव में भी अछूते-अछूते बने रह सकते हो। तुम अगर डूबना न चाहो, तो कोई तुम्हें डुबा न सकेगा। परमात्मा भी तुमसे हारा। गाए जाता; गुनगुनाए जाता; लेकिन तुमने जिद्द बांध रखी है, कि हम आंख उठा कर देखेंगे। चारों तरफ परमात्मा का शाश्वत नर्तन चला है, लेकिन तुम भी खूब!--कि तुम अपनी उदासी में घिरे बैठे हो! तुमने घूंघट मार लिया है; तुम देखते ही नहीं, क्या हो रहा है चारों तरफ! करै पखावज प्रेम का...। देखना शुरू करो। प्रेम की मृदंग बनाओ। चलो, मनुष्यों के लिए ही सही--प्रेम की मृदंग बनाओ पहले। चलो, पौधों-पक्षियों के लिए ही सही--बनाओ तो सही। आज आदमी के लिए बजेगी मृदंग--बजना आ जाए एक दफा, तो परमात्मा के लिए बजने में कितनी देर लगेगी? आज शायद तुम जैसे ही दूसरे मनुष्यों के लिए बजेगा तुम्हारे हृदय का तार। बजे तो; एक दफा यह तो समझ में आ जाए कि हृदय का तार बजता है; किसी बहाने बजे; सब बहाने उचित हैं। बज जाए एक बार, तो फिर तुम रुक न सकोगे। और जब साधारण मनुष्यों के लिए बज कर इतना आनंद मिलता है, तो परमात्मा के लिए बज कर कितना आनंद न मिलेगा।

एक बार यह गणित तुम्हारे खयाल में उतर जाए, फिर तुम रुक न सकोगे। और आगे--और आगे तुम्हारा तार तुम्हें खींचे ले चलेगा।

मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार। मलूकदास कहते हैं: उसका ही मत अपार है, उसको ही धर्म की प्रतीति हुई है, जो तुम्हारे प्रेम की मृदंग बना दे और जो तुम्हारे हृदय को सितार बना दे, और जो तुम्हारे मन का नाच सिखा दे।

ऐसे थोड़े से दीवाने दुनिया में बढ़ते रहें, तो परमात्मा बहुत दूर नहीं है।

जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानि है अंतरगत का भाव।।

और कहते मलूकदासः यह कह कर मत सुनाओ--कि मुझे बड़ा प्रेम है, मुझे बड़ा प्रेम है, मुझे बड़ा प्रेम है। कहने की बात नहीं है; नाचो। कहने की बात नहीं है--जीओ। कहने की बात नहीं है--हो जाओ प्रेम। परमात्मा पहचानेगा। अंतरजामी जानि है, अतंतरगत का भाव। लेकिन क्या करते हैं; लोग कहते हैं; और जो कहते हैं, ठीक उससे विपरीत करते हैं। और जो कहते हैं, ठीक उससे विपरीत होते हैं। मंदिर में जाकर तुम भी कह आते हो कि परमात्मा, मुझे आपसे बड़ा लगाव है; कि मुझे आपको आने की बड़ी चाह है; लेकिन तुमने कभी देखा; तुम्हारे शब्द कैसे झूठे हैं। ओठ से भर निकल रहे हैं, हृदय से तो नहीं आ रहे हैं।

तुमने कभी देखाः तुम परमात्मा तक को धोखा देने में लगे हो! आदमी को धोखा देते-देते तुम इतने कुशल हो गये कि अब तुम परमात्मा को भी धोखा देने की चेष्टा कर रहे हो! तुम सच में पाना चाहते हो?

तुम पाने के लिए क्या कर रहे हो? तुमने पाने के लिए कौन सा आयोजन किया है? कौन सी यात्रा के लिए तुम तैयार हुए हो? तुमने पाने के लिए क्या खोने की तैयारी की है?

नाव तो बंधी है किनारे से। और खूंटी से तुम नाव को कस कर बांध रहे हो और कहते भी चले जाते होः मुझे दूसरे पार जाना है! कि मैं आना चाहता हूं दूसरे पार। हे प्रभु, कब कृपा होगी। और साथ में खूंटी ठोक रहे हो; नाव को कस कर बांध रहे हो!

कहते तो होः परमात्मा को पाना है, लेकिन कोशिश धन को पाने की करते हो--परमात्मा को पाने की नहीं। कहते कुछ; करते कुछ; होते कुछ, ऐसे झूठ से जीवन भरा है; ऐसी बेईमानी से जीवन भरा है।

तो इसलिए कहते हैं मलूकदासः जो तेरे घटे प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव। अब उस कहने की कोई जरूरत नहीं है। उसे प्रकट होने दो; वह तो अंतरर्यामी है, वह तो जान लेगा, वह तो पहचान लेगा। वह तो तुम्हारे हृदय के अंतस्तल में बैठा हुआ है, उसे पता न चलेगा!

जब तुम्हारा मन नाचेगा--मगन हो कर और तुम्हारी वीणा बजेगी हृदय की और प्रेम की मृदंग बजाओगे, तो उसे सुनाई न पड़ेगा? परमात्मा बहरा नहीं है।

कबीर ने कहा है कि मुल्ला चिल्लाता है--मस्जिद पर खड़े हो कर; जोर से चिल्लाता है, तो कबीर ने कहा है; क्या बहरा हुआ खुदाय! क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है, जो इतने जोर से चिल्ला रहे हो! सुनता नहीं तुम्हारा खुदा? सदा तो मौन ही सुन लेता है--शब्द की बात ही नहीं है। शब्द तो आदमी आदमी के बीच संवाद का उपाय है। परमात्मा और आदमी के बीच तो शब्द की कोई जरूरत नहीं है; वहां तो निःशब्द , वहां तो मौन काफी है। मौन ही वहां भाषा है।

तो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव। इसमें बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। अकसर ऐसा होता है...तुमने जाना होगा, तुमने जीवन में अनुभव भी किया होगा; तुम्हारा जब प्रेम नहीं होता और तुम बताना चाहते हो कर्तव्यवश कि प्रेम है, तो तुम कह कह कर बताते हो।

पति पत्नी से बार बार कहता है--कि मुझे तुझसे बड़ा प्रेम है। अमेरिका के एक बहुत प्रभावशाली विचार डेल कारनेगी ने तो अपनी किताबों में लिखा है कि चाहे प्रेम हो या न हो, मगर पति को कहना ही चाहिए दिन में दस-पचीस बार कि मुझे तुमसे बहुत प्रेम है। इससे दोनों के बीच नरमी बनी रहती है। इससे दोनों के बीच टकराहट की संभावना कम रहती है।

तुम कभी इसका निरीक्षण किया कि तुम जब कहते हो बार-बार कि मुझे प्रेम है, तो शायद तुम इसीलिए कहते हो कि अब है तो नहीं। होता, तब तो कहने की जरूरत भी नहीं थी; वैसे ही प्रकट होता था। तो तुम कहते भी नहीं थे। तब तुम घर आते थे और पत्नी को पता चल जाता था कि तुम उसी के लिए आते हो। तब तुम घर आ भी नहीं पाते थे, द्वार पर दस्तक देते थे और पत्नी भागी आती थी--और जानती थी कि तुम उसी के लिए द्वार पर दस्तक दिए हो। तब तुम्हारी आंखें कहती थीं; तुम्हारा रोआं-रोआं कहता था; तुम्हारा उठना-बैठना कहता था। तुम जब पत्नी की तरफ देखते थे, तो पत्नी जानती थी; तुम उसका हाथ हाथ में लेते थे, तो जानती थी। प्रेम सब कह देता था; कहने की कोई जरूरत न थी।

लेकिन जब से वह खो गया, तब से तुम थोथे शब्दों का सहरा लिए हो। अब इन सहारों से तुम छिपा रहे हो, उस बात को, जो खो गई।

प्रेम की प्राथमिक घड़ियों में प्रेमी एक दूसरे से बहुत नहीं कहते कि मुझे तुझ में प्रेम है। जब प्रेम जा चुका होती है, और जब समझ में आ जाता है कि अब प्रेम तो बचा नहीं; पुराने आश्वासन, पुराने कहे गए वचन, उनसे पैदा हुए बंधन--अब क्या करें! अब किस तरह इस बात को चलाए रखें; तो प्रेम है--इन बातों से आदमी कहने लगता है।

यह तुमने खयाल किया कि जब प्रेमी प्राथमिक प्रेम की लहर में होते हैं, तो कम बोलते हैं; चुप बैठते हैं। हाथ में हाथ लिए होते हैं; गले में हाथ डाले होते हैं। चुप बैठते हैं।

पति पत्नी चुप जरा भी नहीं बैठते। अब तो अगर चुप रहेंगे, तो पता चल जाएगा कि प्रेम समाप्त हो गया। अब तो भाषा और वाणी से, कुछ भी बात करके...।

पति पत्नियों की बातों में...अनेक घरों में मेहमान होता रहा हूं, तो सुनता रहा हूं। व्यर्थ की बातें! पति भी जानता है कि कुछ बात करने को बचा भी नहीं है। पत्नी भी जानती है--कुछ बात करने को बचा नहीं है। लेकिन अगर बात न करें, तो वह खालीपन भारी हो जाता है।

दिन भर के बाद पति आए, और कुछ बात न करे...। दिन भर पत्नी ने प्रतीक्षा की और फिर सांझ पति आए और बात न हो कुछ, तो ऐसा लगता है कि अब कुछ बचा नहीं। बीच में कोई सेतु नहीं रहा। तो कुछ बात करते हैं। कुछ भी बहाने की, व्यर्थ की, जिसको करी भी नहीं है, खोज खोज कर पति पत्नी एक दूसरे से कुछ बात करते हैं--मोहल्ले-पड़ोस की। थोड़ी-बहुत बात करके ऐसा लगता है--अब भी कुछ संबंध बना है; शब्दों के सहारे थोड़ा सा संबंध का धोखा और भ्रम कायम रहता है।

पति पत्नी अकेले ज्यादा देर नहीं रह पाते।

मेरे एक मित्र पचास वर्ष के हो गए; पत्नी भी कोई अड़तालीस वर्ष की है; धनपति है। तय कर लिया; मेरी बात उन्हें जंची--कि अब बहुत हो गया, अब कोई धंधा नहीं करेंगे। अब

विश्राम करेंगे। हिम्मतवर आदमी हैं। जिस दिन मुझसे यह कहा, उसी दिन उन्होंने दुकान भी जाना बंद कर दिया। कह दिया मुनीमों को कि सब काम समेट लो। साल छह महीने में सब निपटा दो। मैं तो समाप्त हो गया, लेकिन अब तुम निपटा डालो। अब यह काम मुझे करना नहीं है।

लेकिन उस रात मेरे पास आए और उन्होंने कहा: एक बात है। काम छोड़ने में तो कोई झंझट नहीं है, लेकिन अब हम पति-पत्नी दोनों अकेले पड़ जाएंगे, तो भारी होगा। मैं काम में उलझा रहता हूं, घड़ी दो घड़ी को मिलते हैं, तो कुछ बातचीत कर ली; ठीक है। लेकिन अब चौबीस घंटे घर में रहूंगा। बात करने को कुछ नहीं है, सालों से नहीं है। काम चलो चले जाते हैं। दुकान छोड़ने में मुझे जरा अड़चन नहीं; वह तो मैंने छोड़ दी आपकी बात मान कर, अब? अब क्या होगा? आप यही रुक जाए: मेरे घर ही रहें। हम आपकी सब फिक्र करेंगे। आप रहेंगे, तो सब ठीक रहेगा: अगर आप न रहते हों, तो फिर मुझे किसी मित्र को निमंत्रित करना पड़ेगा कि वह यहां आकर मेरे पास रहे। हम दोनों अकेले छूट जाएंगे, तो बहुत भारी हो जाएगा। चुपी गहरी होने लगेगी और ऊपर बोझ पड़ने लगेगा और दबाव होने लगेगा।

मैंने कहा कि रुको। अभी तो मैं दो-चार दिन हूं।

दूसरे तीसरे दिन पत्नी ने भी मुझे कहा कि और सब तो ठीक है कि मेरे पति को आपने छुटकारा दिलवा दिया; मैं भी खुश हूं। करने की कोई जरूरत न थी; व्यर्थ दौड़-धूप किए रहते थे। लेकिन अब हमारा क्या होगा? अब हम दोनों एक दूसरे के साथ पड़ जाएंगे!

पढ़ी-लिखी महिला हैं। वे अपने काम में रहते हैं; मैं अपने काम में रहती हूं; थोड़ी बहुत देर के लिए मिले, तो ठीक है। लेकिन अब चौबीस घंटे तक दूसरे के साथ...और अब हम काफी दिन एक दूसरे के साथ रह लिए हैं--तीस साल; अब कुछ बचा नहीं है। अब तो सिर्फ पुरानी एक याददाश्त है। अब प्रेम की कोई नई कोंटले नहीं फूटतीं। इच्छा भी नहीं है कि फूटें। लेकिन पुराना धोखा तो बना रहे; जो चलता है, वैसा शांति से चलता रहे। जीवन तो बीत गया। अब ये जो थोड़े दिन आखिर के बचे हैं; ये बोझिल न हो जाए।

मुझे उनकी बात समझ में पड़ी।

एक मित्र को राजी कर लिया हूं, वे उनके पास रहने लगे हैं।

कठिनाई है। जब दो व्यक्तियों के बीच प्रेम जा चुका हो, तो फिर शब्दों के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाता।

अगर भक्त सच में परमात्मा के प्रेम में है, तो चुप आकाश की तरफ देखता काफी होगा। चुप आंख बंद करके अंतर आकाश की तरफ देखना काफी होगा। हां, नाचना हो, तो नाचना। गीत गुनगुनाना हो, तो गुनगुनाना। मृदंग बजाना हो, तो बजाना। सितार छेड़नी हो तो छेड़ना। कुछ करना हो, तो चुप रह जाना; सन्नाटे की सितारे में डूब जाना।

मगर शब्दों की कोई जरूरत नहीं है।

जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि न सुनाव।

अंतरर्यामी जानि है, अंतरगत का भाव।।
चैत की बयार बहे, नाचे अमराई रे
मन-मृदंग पर सुधि ने, थाप सी लगाई रे।
प्राण के मंजीर बंधे, सांसों की डोर में
मान मनुहारों की ग्रंथियां हैं छोर में
धड़कनों की राधिका मुरली सुन आई रे
चैत की बयार बहे, नाचे अमराई रे।
कल्पना की अल्पना, चाहों के आंगन में
चित्त के चौबारे पर, नयन-दीप साधन में
आस की अंगुरियों ने बाती उकसाई रे
चैत की बहार बहे, नाचे अमराई रे।
पलकों से छान कोई, सोम सुधा पी आए
अलसा के गीतों की, बगिया में से आए
जैसे दबी बांह पर रेख उभर आई रे
चैत की बयार बहे, नाचे अमराई रे।
रंगी सहालग में, भावना की लगन चढ़ी
पन्ने की थाली में धरती ले पियर खड़ी
न्हाई धोई दुलहन सी याद निखर आई रे
चैत की बहार बहे, नाचे अमराई रे।
जब प्रेम की बयार बहती है तो तुम नाचते हुई अमराई हो जाओगे। कुछ कहने को नहीं; कुछ बताने को नहीं; बोलने को नहीं; कुछ जताने को नहीं। तुम्हारा हृदय ही तुम्हारा निवेदन होगा। तुम ही तुम्हारे निवेदन होओगे।
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिर मेरा हरि करै, मैं पाया विसराम।।
जब प्रेम की बयार बहती है तो तुम नाचती हुई अमराई हो जाओगे। कुछ कहने की नहीं; कुछ बताने को नहीं; बोलने को नहीं; कुछ जताने को नहीं। तुम्हारा हृदय ही तुम्हारा निवेदन होगा। तुम ही तुम्हारे निवेदन होओगे।
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।।
बड़ा अनूठा सूत्र है--अनूठे से अनूठे सूत्रों में एक। सिर्फ मलूकदास जैसा दीवाना कोई ऐसी बात करने की हिम्मत कर सकता है। परमात्मा के जो बिलकुल हृदय में विराजमान हो, वही ऐसा कह सकता है।
माला जपों, न कर जपों...। न तो माला जपता हूं भीतर, न हाथ में माला फिराता हूं। जिभ्या कहों न राम...। कहते हैं: जीभ से राम तक नहीं कहता। क्या कहना! जीभ से क्या

कहना? जीभ के कहे कुछ होगा? जीभ ही मरणधर्मा है, तो जीभ से जो निकलेगा, वह भी मरणधर्मा होगा। जीभ क्षण-भंगुर है; कल मिट्टी में पड़ी होगी; धूल में खोज जाएगी; कि अर्थी पर जलेगी। तो जिस जीभ का कोई शाश्वत जीवन नहीं है, उससे शाश्वत का नाम तो कैसे उठेगा।

जीभ से जिसका जन्म हुआ, वह जीभ से ज्यादा मूल्यवान नहीं होगा। इसलिए जिभ्या कहों न राम--जीभ से नहीं कहता राम।

राम कहने की चार गहराइयां हैं--चार तल हैं। एक तलः जोर से जीभ से कहो--राम-राम-राम, जैसा अकसर लोग कहते हैं। वह सबसे ओछा तल है। फिर दूसरा तल हैः ओठ बंद रहें, जीभ भी न हिले, और भीतर ही भीतर कहोः राम-राम-राम। यह पहले से तो गहरा है, लेकिन बहुत गहरा अभी भी नहीं। अभी भी शब्द का उच्चार है।

फिर तीसरा एक तल हैः तुम कहो ही मत; सिर्फ भाव रहे--राम-राम-राम। कहो ही मत; मात्र भाव रहे। यह दूसरे से भी गहरा है। लेकिन अभी भी भाव तो है। चौथी बात है कि भाव भी न रह जाए। तुम एकदम शून्य हो गये। इस चौथी दशा मग अपूर्व घटना घटती है। इस चौथी दशा को नानक ने कहा--अजपा जाप। जाप तो हो रहा है, लेकिन अब कोई जाप भी नहीं हो रहा है--अजपा जाप। भाव भी नहीं रह गया। ऐसी घड़ी अपूर्व घटना घटती हैः सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।

कहते हैं मलूकदासः अब भगवान ही मेरा स्मरण कर रहे हैं, अब मैं क्या करूं! मैंने तो विश्राम पा लिया।

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।

सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।।

मैं तो छुट्टी पा गया। मैंने तो विश्राम ले लिया। अब तो बड़े मजे की बात घट रही हैः सुमिरन मेरा हरि करैं...भगवान कह रहे हैंः मलूक, मलूक।

कबीर ने भी ऐसी बात कही है, कि मैं खोजता फिरता था; चिल्लाता फिरता था। नहीं मिले तुम। और अब एक ऐसी हालत आ गई है कि न मैं खोजता हूं, न मैं चिल्लाता हूं। तुम मेरे पीछे लगे फिरते हो, कहते हो--कबीर--कबीर। हरि लागे पीछे फिरैं, कहत कबीर कबीर।

जब मैं खो जाता है, जब मैं शून्य हो जाता है, तो तुम्हें सुनाई पड़ता है कि परमात्मा सदा से ही पुकार रहा था; यह कोई आज की थोड़े ही बात है; यह सनातन है। वह सदा से तुम्हें पुकार रहा था। लेकिन तुम इतने शब्दों से भरे थे, तुम इतने कोलाहल से भरे थे कि उसकी धीमी सी पुकार सुनाई नहीं पड़ती थी। सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।

ऐसी घड़ी में तुम्हारे जीवन में एक सुगंध आएगी। ऐसी घड़ी में तुम्हारे जीवन में एक ज्योति प्रकट होगी। अब तुम तो रहे ही नहीं; अब तुम तो पारदर्शी हो गये। अब तो तुम्हारे भीतर दीप्ति जलेगी प्रभु की। अब तो तुम्हारा उठना-बैठना सभी स्मरण हो गया। अब जन्म की तो बात छोड़ो, अब मौत भी द्वार पर आकर खड़ी होगी, तो भी तुम गीत गुनगुनाओगे, क्योंकि अब मौत कैसी!

ऐसी क्या बात है, चलता हूं, अभी चलता हूं
गीत एक और जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
मौत भी द्वार पर खड़ी हो, तो भी तुम कहोगे:
ऐसी क्या बात है, चलता हूं, सभी चलता हूं
गीत एक और जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
भटकी-भटकी है नजर, गहरी-गहरी है निशा
उलझी-उलझी है डगर, धुंधली-धुंधली है दिशा
तारे खामोश खड़े, द्वारे बेहोश पड़े
सहमी-सहमी है किरन, बहकी-बहकी है उषा
गीत बदनाम न हो, जिंदगी शाम न हो
बुझते दीपों को जरा सूर्य बना लूं तो चलूं
ऐसी क्या बात है, चलता हूं, तभी चलता हूं
गीत एक और जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
बीन बीमार और टूटी पड़ी शहनाई है
रूठी पायल ने न बजने की कसम खाई है
सब के सब चुप न कहीं गूंज, न झंकार कोई
और यह जब कि आज चांद की सगाई है
कहीं न नींद यहां, गंगा कि मौत बन जाए
सोई बगिया में जरा शोर मचा लूं तो चलूं।
ऐसी क्या बात है, चलता हूं, अभी चलता हूं
गीत एक और जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
बाद मेरे जो यहां और हैं गानेवाले
स्वर की थपकी से पहाड़ों को सुलाने वाले
उजाड़ बागों-बियाबान सुनसानों में
छंद की बंध से फूलों को खिलाने वाले
उनके पांव के फफोले न कहीं फूट पड़ें
उनकी राहों के जरा शूल हटा लूं तो चलूं।
ऐसी क्या बात है, चलता हूं, अभी चलता हूं
गीत एक और जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
वे जो सूरज का गरम भाल खड़े चूम रहे
वे जो तूफान में किश्ती को लिए घूम रहे
भरे भादो की उमड़ती हुई बदली की तरह
वे जो चट्टान से टकराते हुए झूम रहे
नए इतिहास की बाहों का सहारा लेकर

तख्तेत्ताऊत पै उनको बिठा लूं तो चलूं।
ऐसी क्या बात है, चलता हूं, अभी चलता हूं
गीत एक और जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
यह जलाती हुई कलियों की शराबी चितवन
गीत गाती हुई पागल की नटखट रुनझुन
यह कुएं, ताल, यह पन घट, यह त्रिवेणी, संगम
यह भूवन, भूमि अयोध्या, यह विकल वृंदावन
क्या पता स्वर्ग में फिर इनका दरस हो कि न हो।
धूल धरती की जरा सिर पर चढ़ा लूं तो चलूं।
ऐसी क्या बात है, चलता हूं, अभी चलता हूं
गीत एक बौर जरा झूम के गा लूं तो चलूं।
फिर तो मौत भी एक गीत का ही अवसर है। गीत एक और जरा झूम कर गा लूं तो चलूं। जीवन तो फिर गीत है ही, मृत्यु भी गीत है। फिर सुख तो गीत है ही--दुःख भी गीत है। फिर सफलता तो गीत है ही--असफलता भी गीत है। फिर सारे जीवन का अर्थ गीतमय है। इस गीतमय जीवन का हमने संतत्व कहा है। संत का अर्थ है: अहर्निश जिसके भीतर गीत गूंज रहा हो; अकारण जिसके भीतर संगीत गूंज रहा हो।
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूढत को फिरै, मिल्यों बजावनहार
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।।
जेती देखै आतमा तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम।।
और कहते हैं मलूकदास: जब ऐसा गीत तुम्हारे प्राणों में बजने लगेगा, जेती देखै आत्मा, तेते सालिगराम। तब तुम जहां भी आत्मा को देखोगे, जहां भी जीवन को देखोगे, वहीं तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ेगा। वृक्षों में और पहाड़ों में, पक्षियों में और पशुओं में और मनुष्यों में और स्त्रियों में--जहां जहां तुम्हें जीवन दिखेगा जेती देखै आत्मा, तेते सालिगराम; उतने ही तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ेंगे। हर देह मंदिर है, और देह में दीया जल रहा है। आंख हो देखनेवाली, तो सिवाय परमात्मा के और कोई भी नहीं है। वही उपस्थित है; सारी उपस्थिति उसकी उपस्थिति है।
जैती देखै आत्मा, तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम।।
और कहते मलूकदास: पत्थर का क्या पूजना मूर्ति को क्या पूजना; बोलनहारा पूजिए--जो बोल रहा, जो जीवंत है, जो देख रहा है, जो सुन रहा, जो स्वाद ले रहा...। जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है; जीवन ही परमात्मा है।

परमात्मा की तुम्हारी धारणा वैसी ही भ्रांति है, जैसी तुम्हारी और धारणाएं भ्रांत हैं। तुम भ्रांत हो, तो तुम्हारी सारी धारणाएं भ्रांत हैं।

परमात्मा की जब तुम याद करते हो, तो तुम्हें क्या याद आता है? कभी दशरथ के पुत्र राम, कभी कृष्ण, कभी बुद्ध, कभी महावीर...। तो तुमने परमात्मा को भी बहुत संकीर्ण बना लिया। या परमात्मा की तुम्हारी कोई धारणा उठती है, तो तुम्हें याद आता है--मंदिर का भगवान, कि मस्जिद का, कि गिरजे का कि गुरु द्वारे का। तुमने भगवान की धारणा बड़ी छोटी बना ली।

भगवान तो सारे जीवन का नाम है। जीवंतता का नाम--भगवत्ता। इन वृक्षों में जो हरा है, और इन वृक्षों में जो उठा है और जगा है, इन वृक्षों में जो फूल की तरह खिला है, वह कौन है? इन पक्षियों के कंठों में जो गीत की तरह उठा रहा है, वह कौन है? चांदत्तारों में जो चल रहा है, वह कौन है? तुम्हारे भीतर जो सांस ले रहा है...अपने बच्चे की आंखों में झांक कर देखो, वहां जो बैठा टकटकी से जो तुम्हें देख रहा है, वह कौन है?

परमात्मा ही जीवन है; जीवन ही परमात्मा है। यह समीकरण याद रहे, तो फिर न मंदिर जाने की जरूरत, न मस्जिद जाने की जरूरत। फिर न वेद पढ़ने की जरूरत, न कुरान पढ़ने की जरूरत। फिर तो जो चारों तरफ जीवन फैला है, इसके प्रति--जीवन के प्रति समादर का भाव...।

अलबर्ट शवीत्जर न अपने पूरे दर्शन को दो छोटे-छोटे शब्दों में रखा है--रिव्हरेन्स फार लाइफ--जीवन के प्रति समादर--जीव के प्रति आदर। जो भी तुम जीवित देखो, जहां भी कुछ जीवित देखो, उसके प्रति समादर का भाव रहे--बस, काफी धर्म हो गया; तुम पहुंच जाओगे; फिर तुम्हें कोई बाधा नहीं।

लेकिन तुमने अजीब-अजीब धारणाएं बना रखी हैं। कोई राम के दर्शन करने को उत्सुक है! कर लोगे किसी दिन; ज्यादा चेष्टा की तो दर्शन हो जाएंगे। लेकिन वह तुम्हारी कल्पना ही होगी--कल्पना का जाल ही होगा। और छोटों की तो बात क्या, जिनको तुम बड़े-बड़े कहते, उनकी धारणाएं बड़ी अजीब हैं।

कहते हैं कि तुलसीदास को जब वृंदावन में कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया तो उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। कृष्ण की मूर्ति के सामने राम का भक्त कैसे झुके? हद्द संकीर्णता है! कहते हैं कि उन्होंने कहा कि जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, तब तक मैं झुकनेवाला नहीं।

यह भी खूब मजे की बात हुई! यह तो ऐसा हुआ कि भगवान भी तुम्हारी शर्त पालन करे, तो तुम झुकोगे। यानी भगवान को भी अगर तुम्हारे झुकने में उत्सुकता हो, तो तुम्हारी शर्त का पालन कर ले! धनुष-बाण लो हाथ, तब तुलसी का सिर झुकेगा।

जब कृष्ण के साथ भी तुलसी का सिर न झुक सका, तो सामान्य आदमियों की तो क्या बात। पशु-पक्षियों की तो बात ही छोड़ दो। तो फिर जीवन के प्रति समादर कहां है? यह तो बड़ी संकीर्ण धारणा हुई। और तुलसीदास जैसे आदमी में हो, बाकी का तो क्या कहना!

इसलिए मैं तुलसीदास को कवि कहता हूं--ऋषि नहीं कहता। कवि है। भाषा के अनूठे कलाकार हैं। मगर ऋषि होने में कमी रह गई। यह जो संकीर्णता है, यह संकीर्णता ही सारी बात को खंडित कर गई।

जिसने राम को पहचान लिया...। राम से मेरा मतलब और मलूकदास का भी मतलब दशरथ-पुत्र राम से नहीं है। जिसने राम को पहचान लिया...। राम यानी इस विराट में छिपी हुई जो ऊर्जा है, ये जो तरंगें उठ रही हैं जिस ऊर्जा से, उसको जिसने पहचा लिया, वह तो सभी जगह झुका है। झुके, न झुके--यह सवाल ही नहीं रहा। उसका झुकाव है। उसका माथा तो झुका ही हुआ है। और वह फिर शर्त नहीं लगाएगा--कि तुम धनुष-बाण हाथ लो; कि तुम मोर मुकुट बांधो; कि तुम नग्न खड़े होओ--महावीर बनो, तब मैं झुकूंगा।

अगर तुमने इस तरह की जिद्दें कीं, तो तुम्हारा परमात्मा से तो कोई संबंध न होगा; तुम्हारी मन की ही कोई धारणा तुम बहुत बार दोहराते रहोगे, दोहराते रहोगे, तो सम्मोहित हो जाओगे। रोज-रोज देखा--लिए धनुष-बाण खड़े राम; रोज उनकी मूर्ति के सामने आंख लगा कर त्राटक किया; आंख बंद करके उनका स्मरण किया। धीरे-धीरे तुम्हारी कल्पना मजबूत होने लगेगी और तुम्हारे भीतर एक सपना उठने लगेगा कि तुम राम को देख रहे हो। और सपना तुम इतना परिपुष्ट कर सकते हो कि तुम जब बोलो, तो तुम्हारा सपना तुम्हारे भीतर से जवाब भी दे: तुम कुछ कहो, तो राम तुम्हें उत्तर भी दें। वह उत्तर भी तुम्हारा ही है। पूछने वाले भी तुम; उत्तर देनेवाले भी तुम। वह दोनों तुम ही हो। लेकिन धोखा बड़ा हो जाएगा।

इसका नाम बाध नहीं है। इसका नाम ज्ञान नहीं है। इसका नाम साक्षात्कार नहीं है।

परिकल्पनाओं से सावधान रहना। भक्ति के मार्ग पर सबसे बड़ा खतरा है कि आदमी कल्पनाओं में न पड़ जाए। बहुत ज्यादा कल्पना के जाल में पड़ जाए, तो जो सोचेगा, वह देखने लगेगा। और जब देखने लगेगा, तो सोचेगा कि जो मैं मानता था, ठीक ही मानता था; अब तो प्रत्यक्ष भी होने लगा।

राम का जो अनुभव है, वह दशरथ-पुत्र राम का अनुभव नहीं है। परमात्मा का जो अनुभव है, उस अनुभव का कोई रूप नहीं है, कोई रंग नहीं है। वह निर्गुण और निराकार का अनुभव है। और जब परमात्मा का अनुभव होगा, तो ऐसा नहीं होगा कि यह रहा परमात्मा। जब परमात्मा का अनुभव होगा, तो ऐसा होगा कि अरे! सब परमात्मा ही परमात्मा है। मैं भी कैसा ना समझ था, कि सब तरफ जो मौजूद था, उसे भी देखने से वंचित रह गया!

मछली जैसी दशा हैं हमारी। जैसे सागर में मछली हो, और उसे सागर का पता नहीं चलता। पता चले तभी कैसे; सब तरफ सागर है। जब पैदा हुई--सागर में पैदा हुई। खेली, बड़ी हुई--सागर में बड़ी हुई। एक दिन मर भी जाएगी--सागर में मर जाएगी। उसे पता भी कैसे चले कि चारों तरफ जो है--वह सागर है?

ऐसा ही परमात्मा हमें घेरे हुए हैं। हम परमात्मा के सागर की मछलियां हैं। कबीर ने कहा है: मुझे बड़ी हंसी आती है कि सागर में मछली प्यासी है! सागर चारों तरफ है और हम प्यासे

हैं! जहां से भी पीए, परमात्मा ही है। जिससे भी पीए, उसी का जल पीएंगे। घाट होंगे अलग...।

तुमने जब अपनी पत्नी में प्रेम पाया, अपने पति में प्रेम पाया; अपने बेटे में प्रेम पाया; अपनी मां प्रेम पाया; अपने मित्र में प्रेम पाया, तो घाट अलग थे, जो प्रेम तुमने पाया, वह तो परमात्मा ही है। घाटों के भेद को तुम गंगा का भेद मत समझ लेना। गंगा तो वही है। स्वर्ग में भी वही बह रही है, पृथ्वी पर भी वही बह रही है। सब दिशाओं में उसी का वास है। जिस दिन तुम्हें थोड़ी ऐसी झलक आने लगे--जीवन परमात्मा के समीकरण की, कि जीवन ही परमात्मा है, उस दिन जानना:

लो फिर से आ गए
मिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
फिर अली के दल आए
बगिया गुन-गुन गाए
सौरभ के मृग छौने
कस्तूरी धन लाए
गोरे कुछ सांवरे
प्रसून हुए बावरे
लो फिर से आ गए
खिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
फिर यम-संयम डोले
मंत्र हुए मिठबोले
फगुनाहट कण-कण में
वासंती रस घोले
सीप सरीखी पलकें
मादक सपने छलकें
फिर आए प्रण के व्रण
छिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
फिर सांसें गरमाई
अंगारे भर लाई
चंदनतन कसने को
फिर बांहें अकुलाई
अंग-अंग में अनंग

छेड़ रहा जलतरंग

फिर आये उधड़े मनन

सिलने के दिन पिया!

मिलने के दिन पिया!!

लो फिर से आ गए

मिलने के दिन पिया!

जिस दिन जीवन ही परमात्मा है--ऐसा समीकरण तुम्हारे मन में बैठने लगे; जिस दिन सर्व में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन हर किरण उसकी किरण, हर श्वास उसकी श्वास--ऐसी प्रतीति सधन होने लगे, उस दिन जानना:

लो फिर से आ गए

मिलने के दिन पिया!

लो फिर से आ गए

खिलने के दिन पिय!

फिर आए प्रण के व्रण

छिलने के दिन पिया!

फिर आये उधड़े मन

सिलने के दिन पिया!

मिलने के दिन पिया!!

लो फिर से आ गए

मिलने के दिन पिया!

परमात्मा निकट है; परमात्मा दूर नहीं। परमात्मा निकट से भी निकट है। मोहम्मद ने कहा है: तुम्हारे हृदय से भी पास जी है, वही परमात्मा है। तुम भी अपने इतने पास नहीं--मोहम्मद ने कहा है--जितने परमात्मा तुम्हारे पास है; तुमसे भी ज्यादा पास है। तुम तो थोड़ी दूरी पर हो। तुम तो अपने से बाहर हो; परमात्मा तुम्हारे भीतर है। परमात्मा तुम्हारे प्राणों का प्राण है। और जैसा तुम्हारे प्राणों का प्राण है, ऐसा ही सबके प्राणों का प्राण है।

इस परात्पर परमात्मा की स्मृति से भरी; सुधि को जगने दो।

शास्त्र से नहीं होगा; शब्द से नहीं होगा; सिद्धांत से नहीं होगा। दांव पर लगाना जीवन! चुकाना पड़ेगा मूल्य--अपने को मिटाने से चुकाना पड़ेगा। मूल्य। और मिटाने की कला--उस कला का नाम ही प्रेम है।

जिस दिन तुम मिटने को तैयार हो, उसी दिन तुम्हारे होने का क्षण आ गया। जिस दिन सागर में नदी उतरती, उसी दिन सागर हो जाती। डरती तो होगी; उतरने से पहले सहमती तो होगी; लौटकर पीछे तो देखती होगी। वे सारे यात्रा पथ हिमालय से आकर सागर तक पहुंचने की; हजारों-हजारों स्मृतियां, घटनाएं, संस्मरण; प्रसंशाएं-निंदाएं, लोगों के द्वारा चढ़ाए गये फूल, तैराए गये दिए-नावें--हजारों-हजारों स्मृतियां--नदी भी डरती होगी, भयभीत

होती होगी; उतरना--नहीं उतरना! फिर एक भय तो निश्चित ही पकड़ता होगा न, कि अब कुल किनारे टूटे। इन्हीं कूल-किनारे के सहारे तो मैं नदी थी--विशिष्ट नदी थी--गंगा थी, यमुना थी; इन्हीं किनारों के कारण तो मैं नर्मदा थी; इन्हीं किनारों के कारण तो मेरी विशिष्टता थी; ये तो मेरे व्यक्तित्व थे; अब ये किनारे छूटे; अब यह सागर में उतर रही हूं। बचूंगी! यह सागर विराट दिखता है, इसमें खो न जाऊंगी?

निश्चित खो जाएगी, लेकिन खोने में पाना है। खो कर ही सागर हो जाएगी।

आदमी भी डरता है। परमात्मा के किनारे खड़े हो कर बहुत बार-बार आदमी लौट आता है। अनेक बार उसके द्वार पर पहुंच जाता है और लौट आता है, क्योंकि घबड़ाहट होती है: यह तो परिभाषा गई; अपनी अस्मिता गई; अपना व्यक्तित्व गया। इसमें उतरे तो फिर लौटना कहां है? और इस में गए, तो खो गए। यह होने से फायदा क्या है? इस से तो जैसे थे, भले थे; कम से कम थे तो।

आदमी की यह अस्मिता उसे परमात्मा के द्वार से भी लौटा लाती है। मगर तुम ध्यान रखना: बीज अगर मिटे ना, तो वृक्ष नहीं होता है। और नदी अगर मिटे ना, तो सागर नहीं होता। और मनुष्य अगर मिटे ना, तो परमात्मा नहीं होता।

सब बाजे हिरदे बजें, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूढ़त को फिरै, मिल्या बजावनहार।।
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावे तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार।।
तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानि हैं, अंतरगत का भाव।।
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया विसराम।।
जेती देखै आत्मा, तेते सालिराम।
बोलनहारा पूजिए, पत्थर से क्या काम।।

जगाओ इस याद को, स्मृति को, इस सुधि को। इस सुधि के सहारे ही समाधि उपलब्ध होती है।

आज इतना ही।

आध्यात्मिक पीड़ा निजता की खोज संन्यास और श्रद्धा अज्ञान का बोध

आठवां प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १८ मई, १९७७

प्रश्न-सार

आपने मुझे घायल कर दिया है; मरहम-पट्टी कब होगी?

जीवन में इतनी उदासी और निराशा क्यों है?

मैंने संन्यास क्यों लिया है? श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूं? क्या समझ-देख कर आपने मुझ मूढ़ को आश्रम में स्थान दिया है?

पहला प्रश्न आप बाबा मलूक, कृष्ण, बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट की आड़ से जो तीर चलाते हैं, उनसे मैं घायल हो गया हूं। घायल की मरहम-पट्टी कब होगी?

इश्क की चोट का कुछ दिल पर असार हो तो सही।

दर्द कम हो कि ज्यादा, मगर हो तो सही।।

दर्द अच्छा लक्षण है। घायल हुए, तो धन्यभागी हो। अभागे तो वे ही हैं, जो घायल नहीं हो पाते।

ऐसे भी बहुत हैं, जो ऐसे पथरीले हो गये हैं कि उन पर चोट ही नहीं पड़ती। चोट पड़ भी जाए, तो जल्दी भर जाती है। और ये घाव ऐसे हैं कि भरें ना, तो ही काम के हैं।

परमात्मा के प्रेम में जो पीड़ा है, उसे मिटाने की तो सोचना ही मत। उसे तो बढ़ाने की सोचना। वह पीड़ा साधारण पीड़ा नहीं है। ये घाव साधारण घाव नहीं हैं। इनकी मरहम-पट्टी की जरूरत नहीं है। ये तो बड़े होते जाएं--इतने बड़े हो जाएं कि तुम छोटे हो जाओ और घाव बड़ा हो जाए; तो प्रभु-मिलन हो जाए।

तुम्हारी पीड़ा ही तो प्रार्थना बनेगी। मरहम-पट्टी तो पीड़ा छीन लेगी तुमसे। और विरह छिन गया, तो मिलन कैसे होगा?

मरहम-पट्टी ही होती रही है सदियों से। आदमी सत्य की थोड़ी ही खोज करता है; सांत्वना की खोज करता है। लोग सत्य का जीवन थोड़े ही जीना चाहते हैं; सुविधा का जीवन जीना चाहते हैं। फिर सुविधा अगर झूठ से मिलती हो, तो झूठ ही सही।

सब मरहम-पट्टियां झूठी साबित होंगी। यह घाव ऐसा नहीं कि इसकी मरहम-पट्टी हो जाए। यह घाव आंतरिक है; आत्मा का है। यह तो, परमात्मा मिलेगा, तो ही भरेगा--उसके पहले नहीं भरेगा।

तो गुरु घाव तो बना देगा, मरहम-पट्टी नहीं की जा सकती। मरहम-पट्टी तो परमात्मा के मिलन पर होगी। और मिलन तभी होगा, जब घाव तुमसे बड़ा हो जाए। तुम्हारे विरह की पीड़ा इतनी हो जाए, कि तुम उससे छोटे पड़ जाओ। तुम्हारे आंसू तुमसे बड़े हो जाएं; तुम्हारी पुकार तुमसे बड़ी हो जाए; तुम्हारी प्यास तुमसे बड़ी हो जाए; तुम छोटे पड़ जाओ। कोई उपाय ही न बचे--प्यास को बुझाने का। उस आत्यंतिक घड़ी में, जब तुम बिलकुल निरुपाय हो जाते हो--असहाय--तभी प्रभु का मिलन होता है।

तुम मरहम-पट्टी की तो बात सोचो ही मत। मैं तो घावों को और उघाड़ूंगा। तुम चेष्टा भी करोगे कि घाव भर जाएं, तो भरने न दूंगा। घाव को हरा रखना है। पीड़ा को भुलाना हनीं है; पीड़ा चुभने लगे--चौबीस घड़ी चुभने लगे; उठते-बैठते, सोते-जागते चुभने लगे। परमात्मा की गैर-मौजूदगी तुम्हें प्रतिपल घेरे रहे और तुम्हारा हृदय रोता रहे।

मंदिरों में जाकर थोड़े ही प्रार्थनाएं होती हैं--कि घड़ी भर को मंदिर हो आए--और प्रार्थना हो गई! जब तक प्रार्थना चौबीस घंटे पल-पल पर न फैल जाए, तब तक प्रार्थना कारगर नहीं होती।

तुझको पा कर भी न कम हो सकी बेताबी-ए-दिल
इतना आसान तिरे इश्क का गम थी भी कहां।।

मिल कर भी न भर सका--इतना आसान तिरे इश्क का गम भी कहां?--कि मिल कर भर जाए। इतने सदियों तक रोया है भक्त कि भगवान भी मिल जाएगा, तो एकदम से थोड़े ही भर जाएगा। पहले रोया था बिछुड़ने मग, अब रोएगा--मिलन में। विरह की पीड़ा है; मिलन की भी पीड़ा है। पहले रोया था--दुःख में; अब रोयेगा--खुशी में। हर्ष के आंसू होते ना; आनंद के आंसू होते ना।

आंखें तो गीली भक्त की हो गई, तो गीली ही रहेंगी। ये आंखें तो अब सूखने वाली नहीं; और नहीं सूखनी चाहिए। सूखी आंखें मरुस्थल हैं; गीली आंखें--उपवन। गीली आंखों में फूल खिलते हैं। गीली आंखों में गीत जन्मते हैं; सूखी आंखों में तो कुछ भी नहीं...।

लेकिन हमें जरा सी चोट लगे कि हम भरने की तैयारी करने लगते हैं। हम चोट से बड़े अकुलाते हैं, व्याकुल हो जाते हैं।

पूछा तुमने ठीक ही है। यहां काम ही इस बात का है कि किसी भी बहाने सही तुम्हारे हृदय में तीर जाए। और पीड़ा भी तुम्हें हो रही है, वह भी मैं जानता हूं।

संसार व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है--सुन-सुन कर, सोच-सोच कर, विचार कर करके और परमात्मा का कहीं पता नहीं चलता--यही तो घाव है। जो हाथ में है--सार्थक नहीं मालूम होता; और जो सार्थक मालूम होता है, वह कहां मिलेगा, कैसे मिलेगा--उसका कुछ पता नहीं चलता।

तो हाथ की संपदा तो राख हो जाती है; और परमात्मा एक सपना बन कर डोलने लगता है। उसके सत्य की कुछ पकड़ नहीं बैठती--कि कहां है, कैसे शुरू करें? कैसे उसमें प्रवेश करें? इस सुविधा में प्राण तड़फते हैं।

मगर सांत्वना से हल न होगा। सांत्वना तो फिर तुम्हें सुला देगी। सांत्वना ही देते हैं। वे तुम्हारी पीठ थपथपाते हैं; वे कहते हैं: बेटा, सब ठीक हो जाएगा। तुम जागते नहीं उनके पास; तुम उनके पास जा कर सोते हो। वे तुम्हें तिलमिलाते नहीं; तुम्हारे भीतर तूफान नहीं उठते। और तूफान के बिना कुछ भी न होगा। अंधड़ चाहिए। तुम्हारी आत्मा आंधी बने तो ही कुछ होगा।

तो तुम मुझसे बहुत बार नाराज भी होओगे--कि यह तो बड़ी सुविधा में डाल दिया। घाव भी दे दिया दवा का कुछ पता नहीं! बहुत तुम मुझे लिख कर भी भेजते हो: तुमने ही दर्द दिया है, तू ही दवा देना। दवा मैं नहीं दूंगा। इस मामले में साफ हो लो। दर्द ही दूंगा; दवा तो परमात्मा है।

दवा तो तुम्हारे दर्द से ही उतरेगी। दर्द तो तुम्हारी, दवा की तरफ यात्रा है; और दवा तुम्हारे दर्द का ही अंतिम निचोड़ है। वह तुम्हारे दर्द का ही इत्र है।

हजारों-हजारों फूलों जैसे इत्र निचोड़ते हैं, ऐसे हजारों-हजारों दर्दो और घावों से दवा निचुड़ती है।

इसलिए जल्दी न करो।

कठिनाई तुम्हारी मैं समझता हूं।

जिसने पूछा है--कृष्ण वेदांत ने...। जब कृष्ण वेदांत नया-नया आया था, तो शायद उसे ईश्वर का कुछ बोध भी नहीं था। शायद ईश्वर को तलाशने आ गये हैं। किसी मित्र ने कहा; कहीं कोई किताब हाथ लग गई। कोई उत्सुकता जगी; कोई जिज्ञासा उठी। कुतूहल में बहुत आ गये हैं।

आ जाना तुम्हारे हाथ है; चले जाना फिर तुम्हारे हाथ नहीं। किस कारण पक्षी जाल में आ जाता है, यह पक्षी जाने; लेकिन एक बार जाल में आ गया, तो निकलना इतना आसान नहीं है।

वेदांत जब आया था, तो मुझे भली भांति याद है--कुतूहल से आ गया होगा। कोई ऐसी मुमुक्षा नहीं थी। मुमुक्षा है कहां? लोगों को मोक्ष की आकांक्षा कहां है! हो भी कैसे?

सुलाने वाले संतों की भीड़ है। जगाने की झंझट कोई लेना नहीं चाहता क्योंकि अगर लोगों को जगाने लगो, तो लोग नाराज होते हैं! जिसको जगाओ, वही तुम्हारा दुश्मन होने लगेगा। उतनी झंझट कौन ले! शिष्य सोया रहे--गुरु को भी सुविधा। वह भी सोया रहता है; शिष्य भी सोए रहते हैं। दोनों घुर्राते रहते हैं और एक दूसरे के स्वर में ताल मिलाते रहते हैं।

गुरु को भी यही आसान है कि लोग सांत्वना से राजी हो जाएं। सांत्वना बड़ी सस्ती है। लेकिन सांत्वना का कोई भी मूल्य नहीं है। सांत्वना माया की सेवा में तत्पर है। सांत्वना के कारण ही तुम संसार में हो।

तुम्हें जब भी चोट लगी, तुमने जल्दी से मरहम-पट्टी कर ली। चोट कभी इतनी गहरी न हो पायी, कि तुम संसार से छूट ही जाते, कि तुम टूट ही जाते। चोट कभी इतनी गहरी न हो पायी कि तुम्हारे जीवन में एक क्रांति आ जाती--तुम मुख मोड़ लेते और दूसरी यात्रा पर चल पड़ते।

चोट के आसपास तुमने बड़ा आयोजन कर लिया है, ताकि चोट लगे न; लग भी जाए, तो ढंकी रहे।

पर वेदांत को चोट लगनी शुरू हुई है--वह भी मैं दुख रहा हूं। आया था, हंसता युवक था।

दिल में एक दर्द उठा, आंख में आंसू भर आए।

बैठे बैठे हमें क्या जानिए, क्या याद आया।।

लेकिन अब उसकी आंखों में आंसू की थोड़ी-सी कोर दिखाई पड़ती है।

दिल में एक दर्द उठा, आंख में आंसू भर आये।

बैठे बैठे हमें क्या जानिए, क्या याद आया।।

छिन गई है कुछ चीज। अच्छी शुरुआत है। शुभ घड़ी है।

ले गया छीन के कौन, आज तेरा सब्र-ओ-करार।

बेकरारी मुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी।

छिन गया है कुछ। खो गया है कुछ। हाथ खाली हैं--इस बात की समझ आने लगी है। इसी से पीड़ा है। और परमात्मा दूर मालूम पड़ता है। कैसे पाएंगे? कैसे उस तक पहुंचेंगे?--करीब-करीब असंभव मालूम होता है। हमसे तो न हो सकेगा--ऐसा लगता है।

हमसे तो छोटे-छोटे काम नहीं होत पाते। छोटी-छोटी पहाड़ियां हम नहीं चढ़ा पाते; यह परमात्मा का गौरीशंकर हम कैसे चढ़ेंगे? और है, न छोर है। नदी नाले नहीं तैर पाते, यह परमात्मा का महासागर हम कैसे तैर पाएंगे?--और अकेले!--और अपने ही सहारे?

और इस तट पर अब कुछ सार नहीं मालूम होता; उस तट की बात सुनाई पड़ गई है।

सदगुरु का इतना ही अर्थ है कि उस तट की बात तुम्हें सुना दे। तुम लाख चाहो, न सुनो--लेकिन सुनाता जाए। और एक दिन तुम्हारे भीतर एक सपना जाग उठें; और तुम उस तट के सपने देखने लगो। और यह तट तुम्हें व्यर्थ मालूम होने लगे। और इस तट पर तुम्हें कुछ सार न दिखाई पड़े, फिर अड़चन होगी।

इस तट पर सार दिखाई पड़ता नहीं; यहां जीने में अर्थ मालूम होता नहीं। धन कमाने में अब रस नहीं। पद की दौड़ में अब प्रयोजन नहीं। अब संबंध भी सब बच्चों के खिलौने मालूम होते--पत्नी, पति, बेटे, बेटियां। अब बड़ी मुश्किल हुई।

अभी तक तो किसी तरह भुलाए भी थे अपने खिलौनों में, अब पता चला कि ये सब तो खिलौने हैं; असली तो उस पार है। यहां नकली में तो खूब भरमाए रहे। लेकिन अब कैसे...? लेकिन बीच में बड़ा सागर है। असली उस पर है और बीच में बड़ा सागर है। और पार करना अकेले--दुर्गम मालूम होता है। डूब जाने की ज्यादा संभावना है--बजाय पहुंचने के। इससे बड़ी घबड़ाहट होती है, संताप पैदा होता है।

वेदांत का सारा चैन और करार छिन गया है। अच्छा हुआ। यह पहला कदम है। फिर एक ऐसी घड़ी आयेगी, घाव इतने हो जाएंगे कि अगर डूब भी गये सागर में, तो कुछ हर्जा नहीं है। अभी तट बेकार हो गया। अब दूसरी घड़ी और घटेगी। और भी पीड़ा की घड़ी--तुम भी बेकार हो जाओगे।

अभी तुम बेकार नहीं हुए। अभी लगता है: यह किनारा तो बेकार हो गया, मैं सार्थक हूं; दूसरे किनारे पहुंच जाऊं, तो आनंद ही आनंद होगा। जल्दी ही वह घड़ी भी आएगी, कि घाव इतने गहरे हो जाएंगे कि तुम्हें लगेगा: यह किनारा तो बेकार है ही, मैं भी बेकार हूं, इसलिए अब डर क्या है! अगर डूब भी गये सागर में, तो क्या डूबेगा? कुछ है ही नहीं मुझमें, तो डुबने को क्या है! उसी दिन तुम उतरोगे।

और जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ गया कि मैं ना कुछ हूं, फिर देर नहीं परमात्मा से मिलने में। वही शर्त पूरी करनी है। मैं ना कुछ हूं; मैं शून्यवत हूं; मैं अपने को भी छोड़ने

को तत्पर हूं। परमात्मा न भी मिले, तो भी मेरे होने में कोई सार नहीं है--जिस दिन यह दिखाई पड़ जाएगा, उसी दिन फिर दांव पर लगाने में न डरोगे।

और अब कठिनाई में तो रहना पड़ेगा। मरहम-पट्टी मैं करने वाला नहीं। और मेरे मरीज की मरहम-पट्टी कोई दूसरा कर दे--यह संभव नहीं। यह असंभव है

तेरे बगैर बाग से फूल न खिल के हंस सके।

कोई बहार की सी बात अब के बहार में नहीं।।

अब तुम्हें यहां कोई बहार मालूम पड़ेगी नहीं। प्रभु की सुध जगने लगी है। अभी छोटी किरण है; अभी नन्हीं किरण है, बाल-किरण है; यही लपट बन जाएगी।

अभी तकलीफ हो रही है; और तकलीफ बढ़ेगी। तकलीफ उस सीमा पर आएगी, कि तुम करीब-करीब विक्षिप्त होने लगोगे।

जग सूना है तेरे बगैर, आंखों का क्या हाल हुआ।

जब भी दुनिया बसती थी, अब भी दुनिया बसती है।।

जग सूना है तेरे बगैर, आंखों का क्या हाल हुआ।

तो पहला तो काम यह है कि तुम्हारी आंखों से तुम्हारे जग के सपने छीन लूं। जो-जो तुम्हें सार्थक मालूम पड़ता है, वह व्यर्थ मालूम पड़ने लगे। असह्य पीड़ा में। डालूंगा; डालना ही पड़ेगा। और एक दफा असार असार दिखा जाए, तो फिर तुम्हें सार खोजना ही पड़ेगा। फिर कोई लाख तुम्हें सांत्वनाएं दे, तुम जानोगे कि सब सांत्वनाएं हैं। मरहम-पट्टी से कुछ काम न होगा। घाव छिप जाते होंगे--मिटते नहीं।

और यह घाव कुछ ऐसा नहीं है कि इसे मिटा लो, यह घाव तो सौभाग्य है। तुम धन्यभागी हो। कभी-कभी लाखों में, करोड़ों में किन्हीं लोगों के हृदय में ऐसे घाव बनते हैं, जो सिर्फ परमात्मा से ही भरे जा सकते हैं।

और कितने जन्मों से तुम खोज रहे हो--जाने अनजाने; होश में, बेहोशी में। तुम्हारे कदम चाहे लड़खड़ा के ही चल रहे हों, लेकिन किस तरफ जा रहे तुम: यात्रा क्या है; मंजिल क्या है; किस की तलाश कर रहे हो? सोए-सोए भी हम परमात्मा की तरफ ही तो अपने हाथों बढ़ा रहे हैं। टटोल रहे हैं अंधेरे में। मगर हम खोज उसी को रहे हैं: कहो आनंद, कहो मुक्ति--या जो नाम देना चाहो, दो। लेकिन हम खोज कुछ विराट रहे है, सीमा से मन भरता नहीं। क्षुद्र से तृप्ति होती नहीं। यह बूंद-बूंद सुख और प्यास को बढ़ा जाता है--घटाता नहीं; और गले को जला जाता है।

अब तो सागर ही चाहिए। अब तो पूरा-पूरा ऐसी ही तलाश चल रही हैं। और यह तलाश कोई नई नहीं है। लेकिन अब तक शायद धुंधली-धुंधली थी; अचेतन थी। मेरी चोटों से अगर थोड़ी चेतन बनने लगी है, तो बेचैनी आएगी। घबड़ाओ मत।

हुजूर वक्त की हजरत अजल से है मुझको।

खयाल कीजिए कब से उम्मीदवार हूं मैं।।

कब से खड़े हो तुम पंक्ति में। पंक्ति में ही खड़े रहना है? सांत्वना करके जाओगे कहां मरहम-पट्टी करके होगा क्या? फिर इसी किनारे पर बस जाओगे। फिर कोई नया सपना रचा लोगे। मरहम-पट्टी यानी सपना चाहते हो! कोई झूठ चाहते हो।

फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा है: आदमी इतना कमजोर है कि बिना झूठ के जी नहीं सकता। उसने यह भी कहा है कि भले लोगों, आदमी से उसके झूठ मत छीन लेना अन्यथा आदमी पागल हो जाएगा। इस बात से मैं राजी हूं। यह बात सच है। आदमी झूठ से जीता है। तुम्हारे पीता तुम्हारे लिए। कहते थे कि बेटे के लिए जी रहा हूं। तुम अपने बेटे के लिए जिओगे। तुम्हारा बेटा उनके बेटे के लिए जीएगा। कोई नहीं जी रहा है; दूसरों के लिए जिए जा रहे हो!

तुम्हारे पिता अब नहीं हैं, छोड़ गये जो कमाया था। और जो छोड़ गये, उस में सारा जीवन गंवाया। ले जा न सके जरा भी--एक टुकड़ा भी, उसमें से। खाली हाथ गये; और सारा जीवन गंवा दिया। कमाई होगी संपत्ति; बैंक में छोड़ गये होंगे रुपए; लेकिन जो यहां का था, यहां पड़ा है। वे तो ऐसे आए और ऐसे ही चले गए। ऐसे ही तुम चले जाओगे। ऐसे ही तुम्हारे बेटे चले जाएंगे।

इस जगत में कोई कमा ही कहां पाता है? यहां तो सिर्फ गंवाना गंवाना है। पद पर पहुंच जाओगे। सांत्वना का अर्थ यही होता है; मरहम-पट्टी का अर्थ यही होता है: थोड़ा धन कमा लो; थोड़ी प्रतिष्ठा मिल जाए; आदर-सम्मान मिले; लोग मान्यता दें। और क्या चाहिए? सम्मान मिल गया, सब मिल गया। और क्या चाहिए?

लेकिन क्या इस के मिलने से कुछ भी मिलता है? इसके मिलने से कुछ भी नहीं मिलता। तुम दुनिया के बड़े-बड़े पद पर बैठ जाओ, तो भी तुम खाली के खाली ही रहोगे। कुर्सी बड़ी हो जाएगी, तुम छोटे के छोटे रहोगे।

जब यह बात दिखाई पड़ने लगती है; प्राणों में तीर सा चुभ जाता है कि अब करें क्या! यहां जो करने योग्य है, वह करने योग्य मालूम नहीं होता। जो किया जा सकता है, वह करने योग्य नहीं मालूम होता। और परमात्मा? यह तो शब्द ही बड़ा समझ में आता नहीं। यह तो बेबूझ है। यह तो कहां है? है भी या कवियों, रहस्यवादियों की कल्पना मात्र है? किसने जाना; किस ने देखा? दृश्य तो व्यर्थ हो गया और अदृश्य पर कैसे दांव लगाएं?

नीत्शे ठीक कहता है; आदमी झूठ के बिना नहीं जी सकता। और तुम्हारे घाव का मतलब यही है कि यहां मैं तुम से तुम्हारे झूठ छीन रहा हूं--एक के बाद एक।। और हर झूठ के छिनने पर तुम्हारा एक घाव उभरेगा। जब सब झूठ छिन जाएंगे, तो तुम घाव-मात्र रह जाओगे--नग्न घाव। लेकिन झूठ छिन ही जाना चाहिए। झूठ की पट्टियां अब और नहीं। जिस दिन तुम्हारे ऊपर कोई मरहम-पट्टी न रह जाएगी, तुम एक उघड़े घाव हो जाओगे--घाव-मात्र, उस पीड़ा से जो प्रार्थना उठती है, उस असहाय अवस्था में जो पुकार उठती है, उस पुकार में प्राण होते हैं। वही पुकार सुनी जाती है। उसी दिन प्रभु दौड़ा चला चला आता है।

तुम गड्ढे की तरह हो गए; तुम घाव हो गए, प्रभु उसे भरने दौड़ा चला आता है।

तो मरहम-पट्टी तो मांगो ही मत। मांगो--कि मैं और तुम पर चोट करूं। मांगो--कि जो घाव लगे गए हैं, वे किसी तरह भर न जाएं। मांगो--कि इतना बल मिले कि तुम इन घावों को सहने में समर्थ रहो।

और नये घावों की तैयारी करनी है। यह तो अभी शुरुआत है। अभी घबड़ा गए और भाग गए, तो मंजिल तक कैसे चलोगे? अभी तो पहले कदम उठाए हैं; अभी तो बहुत यात्रा-पथ शेष है।

दूर क्षितिज पर बादल छाए
लोचन मेरे क्यों भर आए
सोनजुही सी धूप शरद की
छिप-छिप रहती ओट दर्द की
आंख मिचौली सा यह जीवन
धूप-छांह बन-बन भरमाए
खुशियां रखी तुम्हारे आगे
दर्द मिला मुझको बिना मांगे
कैसी यह बेरहम बेकसी
तड़पतड़प कर मन रह जाए
यह सतरंगी स्वप्न तुम्हारे
मेरी सीमाओं से हारे
सुन सकते हो, तो सुन लो तुम
दर्द तुम्हारा रह-रह जाए।

जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का दर्द रह कर गाने लगेगा, तब बाबा मलूकदास की बात तुम्हें समझ में आयेगी।

कहते मलूकदास कि न तो मैं अब नाम लेता जिह्वा से राम का, न पूछा-पाठ, न प्रार्थना। अब सब छोड़-छाड़ दिया। अब तो हरि स्वयं मेरा भजन करते हैं। अब तो वे मेरी याद करते हैं।

जिस दिन तुम सब दांव पर लगा दोगे, और कुछ भी बचाओगे ना, उसी दि क्रांति घटती है: परमात्मा तुम्हारी याद करने लगता है। उन याद को अर्जित करने के लिए पीड़ाओं से गुजरना जरूरी है। पीड़ाएं निखारती हैं; पीड़ाएं मांजती हैं। पीड़ा की अग्नि से गुजरे बिना कोई कभी स्वर्ण नहीं बन पाता है।

दूसरा प्रश्न: जीवन में इतनी उदासी और निराशा क्यों है?

जीवन में न तो उदासी है और न निराशा है। उदासी और निराशा होगी--तुममें। जीवन तो बड़ा उत्फुल्ल है। जीवन तो बड़ा उत्सव से भरा है। जीवन जीवन तो सब जगह--नृत्यमय है; नाच रहा है। उदास...?

तुमने किसी वृक्ष को उदास देखा? और तुमने किसी पक्षी को निराश देखा? चांदत्तारों में तुमने उदासी देखी? और अगर कभी देखी भी हो, तो खयाल रखनाः तुम अपनी ही उदासी को उनके ऊपर आरोपित करते हो।

तुम उदास हो, तो रात चांद भी उदास मालूम पड़ता है। तुम्हारा पड़ोसी उदास नहीं है, तो उस को उदास नहीं मालूम पड़ता। उस के लिए चांद नाचता हुआ मालूम पड़ता है। पड़ोसी को प्रियतमा आ गई है, तो चांद प्रफुल्ल मालूम होता है। तुम्हारी प्रियतमा चल बसी है, मर गई है, तो चांद रोता मालूम पड़ता है। यह तो तुम्हारी ही धारणा तुम चांद पर थोप रहे हो। जिस दिन तुम कोई धारणा न रखोगे, तुम पाओगे--सब तरफ उत्सव है।

देखते नहींः ये गुलमोहर के फूल, ये वृक्ष, यह हरियाली, यह पक्षियों के गीत--चारों तरफ जीवन अपूर्व उत्सव में लीन है। सिर्फ मनुष्य उदास मालूम होता है। क्या हो गया है? कौन सी दुर्घटना मनुष्य के जीवन में हो गई है?

जो पहली दुर्घटना समझने जैसी है, जिसके कारण मनुष्य उदास हो गया हैः वह है कि मनुष्य अकेला है, जिसने अपने को विराट से तोड़ लिया है। जो सोचता हैः मैं अलग-थलग। जिसने एक अस्मिता और अहंकार निर्मित कर लिया है।

इस अस्तित्व में कहीं भी अहंकार नहीं है--सिर्फ आदमी को छोड़कर। पशु-पक्षी हैं, पौधे हैं, पहाड़ हैं, चांदत्तारे हैं, लेकिन कोई अहंकार नहीं है। वे सब परमात्मा में जी रहे हैं; विराट के साथ एक हैं--तल्लीन हैं। सिर्फ आदमी टूट गया है--संगीत से। सिर्फ आदमी के सुरत्ताल बेसुरे हो गये हैं।

यह जो विराट संगीत का उत्सव चल रहा है, इसमें मनुष्य अकेला है, जो अपनी ढपली अलग बजाता है; जो कोशिश करता है कि मैं अपनी ढपली से ही आनंदित हो जाऊं--इसलिए उदासी है।

अहंकार है कारण--उदासी और निराशा का।

निराशा का क्या अर्थ होता है? निराशा का अर्थ होता हैः तुमने आशा बांधी होगी, वह टूट गई। अगर आशा न बांधते, तो निराशा न होती। निराशा आशा छी छाया है।

आदमी भर आया बांधता है; और तो कोई आशा बांधता ही नहीं। आदमी ही कल की सोचता है, परसों की सोचता है, भविष्य को सोचता है। सोचता है, आयोजन करता है बड़े कि कैसे विजय करूं, कैसे जीतूं? कैसे दुनिया की दिखा दूं कि मैं कुछ हूं? कैसे सिकंदर बन जाऊं? फिर नहीं होती जीत, तो निराशा हाथ आती है। सिकंदर भी निराश होकर मरता है; रोता हुआ मरता है।

जो भी आदमी आशा से जीएगा, वह निराश होगा। आशा का मतलब हैः भविष्य में जीना; अहंकार की योजनाएं बनाना; और अहंकार को स्थापित करने के विचार करना। फिर वे विचार असफल होए। अहंकार जीत नहीं सकता। उसकी जीत संभव नहीं है। उसकी जीत ऐसे ही असंभव है, जैसे सागर की एक लहर सागर के खिलाफ जीतना चाहे। जीतेगी? सागर की लहर सागर का हिस्सा है।

मेरा एक हाथ मेरे खिलाफ जीतना चाहे, कैसे जीतेगा? वह तो बात ही पागलपन की है। मेरे हाथ मेरी ऊर्जा है। हम लहरें हैं--एक ही परमात्मा की। जीत और हार का कहां सवाल है? या तो परमात्मा जीतता है, या परमात्मा हारता है। हमारी तो न कोई जीत है, न कोई हार है। चूंकि हम जीत के लिए उत्सुक हैं, इसलिए हार निराश करती है।

भक्त का इतना ही अर्थ है; भक्त कहता है: तू चाहे-जीत; तू चाहे--हार; और तुझे जो मेरा उपयोग करना है--कर ले। हम तो उपकरण हैं। हम तो बांस की पोंगरी हैं, तुझे जो गीत गाना हो--गा ले। गीत हमारा नहीं है। हम तो खाली पोंगरी हैं। गाना हो, तो ले। न गाना हो--तो न गा। तेरी मर्जी। न गा, तो सब ठीक; गा--तो सब ठीक।

ऐसी दशा में निराशा कैसे बनेगी? भक्त निराश नहीं होता। निराश हो ही नहीं सकता। उसने निराशा का सार इंतजाम तोड़ दिया। आशा ही न रखी, तो निराशा कैसे होगी?

अब तुम कहते हो: मन उदास क्यों होता है? जीवन में उदासी क्यों है? उदासी का अर्थ ही यही होता है कि तुम जो करना चाहते हो, नहीं कर पाते। जगह-जगह पड़ गया हूं। और मैं पागल हुआ जा रहा हूं कि यह सब तो मैं इकट्ठे तो बन नहीं सकता! और इस सब ऊहापोह में मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि मैं क्या बनना चाहता हूं!

मनुष्य के जीवन की अधिकतम उदासी का कारण यही है कि तुम सहज नहीं जी रहे हो। तुम्हारा हृदय जहां स्वभावतः जाता है, वहां नहीं जा रहे हो। तुमसे कुछ इतर लक्ष्य बना लिए हैं।

घिस गए अभी मंसूबे इस जीवन के
दफ्तर की सीढ़ी चढ़ते और उतरते।
जो काम किया, वह काम नहीं आएगा
इतिहास हमारा नाम न दोहराएगा
जब से सपनों को बेच खरीदी सुविधा
तब से ही मन में बनी हुई है दुविधा
हम भी कुछ अनगढ़ता तराश सकते थे
दो-चार साल समझौता अगर न करते।
पहले तो हमको लगा कि हम भी कुछ हैं
अस्तित्व नहीं है मिथ्या हम सचमुच हैं
पर अकस्मात ही टूट गया यह संभ्रम
ज्यों बस आ जाने पर भीड़ों का संयम
हम उन कागजी गुलाबों से शाश्वत हैं
जो खिलते कभी नहीं हैं, कभी न झरते।
हम हो न सके वह जो कि हमें होना था
रह गई संजोते वही कि जो खोना था
यह निर्उद्देश्य, यह निरानंद जीवन-क्रम

यह स्वादहीन दिनचर्या, विफल परिश्रम।

प्रत्येक व्यक्ति को इतनी आस्था परमात्मा में चाहिए कि वह जहां ले जाएगा, ठीक ले जाएगा। आदमियों की मत सुनो--परमात्मा की सुनो। लेकिन परमात्मा की सुनने के लिए तुम्हें थोड़ा ध्यानस्थ होना जरूरी है, ताकि उसकी आवाज तुम तक पहुंच सके। थोड़ा प्रार्थना में लीन होना जरूरी है, ताकि उसकी मंदिम-मंदिम आवाज तुम सुन सको; उसका धीमा सा स्वर तुम्हारे कोलाहल में व्याप्त हो सके।

आदमी को सदा अगर आनंद से जीना हो, तो संदेश परमात्मा से लेने चाहिए--आदमियों से नहीं। और हमने आदमियों से सब कुछ सीख लिया है और परमात्मा से सीखना हम भूल ही गए हैं। हमारे हाथ में कुंजी ही नहीं रही कि हम कैसे उसका द्वार खोलें; कैसे उसमें पूछें।

तो कोई धन कमाने में लगा है--बिना सोचे हुए--क्यों! पड़ोसी धन कमा रहे हैं, इसलिए तुम भी धन कमाने लगे हुए हो! एक दौड़ है, जिसमें सब दौड़े जा रहे हैं। और तुम भी धक्कम-धक्की में दौड़े चले जा रहे हो। तुम भेड़ हो गये हो, इसलिए जीवन में दुःख है। आदमी बनो।

आदमी बनने से मेरा मतलब है: अपने भीतर से अपने जीवन का स्वर खोजो। अपने भीतर को सुनो; अपने भीतर की गुनो। फिर कुछ दांव पर लगाना हो, तो लगा दो; डरो मत।

जरा सोचो: यह आदमी जो सर्जन हो गया इतना बड़ा, यह कभी भी हिम्मत करके नर्तक हो सकता था। लेकिन हिम्मत न जुटा पाया। और अब जीवन को अंतिम घड़ी में विषाद से भी क्या होगा? अब पछताए होत का, चिड़िया चुग गई खेत।

तुम्हें क्या होना है? तुम्हारे प्राण कुछ कहते हैं? तुम्हारे प्राण सुगबुगाते हैं किसी बात के लिए--कि यह मुझे होना है? इस दिशा में जाऊंगा, तो मेरी तृप्ति होगी

हम बच्चों को विकृत करते हैं। हर बच्चा अपने भीतर स्पष्ट दिशा ले कर आता है। हम उसे दिग्भ्रांत करते हैं; हम उसकी दिशा छीन लेते हैं। हम जल्दी से उसको खोपड़ी पर सवार हो जाते हैं। और हम जल्दी से उसे बताने लगते हैं: उसे कैसे होना है; क्या होना है? हम कभी सुनते नहीं कि उसकी भी सुनें; कि उसकी भी गुने; कि उससे ही पूछें कि तुझे क्या बनना है--तुझे क्या होना है। और सहारा दें। जो बनना चाहे, उसके लिए सहारा दें।

सम्यक शिक्षा वही होगी, जब हम प्रत्येक व्यक्ति को वही बनाने में सहारा देंगे, जो वह बनना चाहता है। अगर वह बढ़ई बनना चाहता है, तो खुशी की बात है, बढ़ई बने। यह बात सच है कि बढ़ई बन कर वह कोई बहुत बड़ा धनपति न बन जाएगा। लेकिन धन होगा क्या? शायद बन कर तृप्त हो जाए।

लकड़हारा बनना चाहता है, तो लकड़हार बन जाए।

लेकिन हम बच्चों को कहते हैं: पढ़ोगे, लिखोगे, होओगे नवाब? लेकिन नवाब बनकर बनना क्या है? करना क्या है? नवाबों की दुर्दशा देखते हैं! लेकिन हर एक को नवाब के लिए हम लगे हुए हैं!

आदमी को वही होना चाहिए, जो होने की सहज संभावना हो, तो उदासी कम हो जाएगी।

और मजा यह है कि अगर आदमी सहज वही होने लगे--जो होने को बना है, तो उसके जीवन में अहंकार कभी भी न उठेगा। अहंकार उठता ही है विकृति से। अहंकार उठता ही है--कुछ और बनने की चेष्टा में। और बनने की चेष्टा अहंकार के बिना हो ही नहीं सकती।

हम बच्चे को कहते हैं: तुम बड़े धनी बनो, नहीं तो तुम दो कौड़ी के हो। अगर धन है, तो सब है; धन नहीं है, तो कुछ भी नहीं है। हम उसके अहंकार को फुसला रहे हैं। हम कहते हैं: तुम सिद्ध करो कि तुम हो कुछ। तो धन से ही सिद्ध होगा! कि जब तक तुम प्रधानमंत्री न हो जाओगे देश के, तब तक तुम कुछ भी नहीं हो। तुम दो कौड़ी के हो। हम उस में पागलपन पैदा कर रहे हैं। हम उसके अहंकार को फुसला रहे हैं। हम जहर डाल रहे हैं। वह दौड़ में लग जाएगा।

बच्चे भोले हैं, उनको विकृत करने में जरा भी कठिनाई नहीं है। तुम विकृत किए गए हो। और अब तुम्हें याद भी नहीं पड़ता कि तुम कहां जा रहे हो। तुम कौन हो--यह भी याद नहीं पड़ता। तुम कहां से आ रहे हो--यह भी शायद याद नहीं पड़ता।

किस ओर मैं? किस ओर में?

है एक ओर असित निशा

है एक ओर अरुण दिशा

पर आज स्वप्नों में फंसा, यह भी नहीं मैं जानता--

किस ओर मैं? किस ओर मैं?

है एक ओर अगम्य जल

है एक ओर सुरम्य थल

पर आज लहरों से ग्रसा यह भी नहीं मैं जानता--

किस ओर मैं? कि ओर मैं?

है हार एक तरफ पड़ी

है जोत एक तरफ खड़ी

संघर्ष जीवन में धंसा, यह भी नहीं मैं जानता--

किस और में? किस और मैं?

तुम्हारी सारी संभावना--चुनने की, समझने की, जागने की नष्ट कर दी गई है। इसलिए तुम उदास हो।

जीवन उदास नहीं है। बस, तुम उदास हो। तुम्हें अपने सूत्र फिर से पकड़ने होंगे; तुम्हें फिर अपने बचपन को दोहराना होगा। तुम्हें जो-जो सिखाया गया है, उससे तुम्हें मुक्त होना होगा। तुम्हें बच्चे की निर्दोष दशा में फिर से आना होगा। वहां से सब गड़बड़ हो गई है। तुम्हें उस चौराहे तक फिर लौटना होगा, और उस चौराहे से फिर तुम्हें नई दिशा पकड़नी होगी।

इसलिए संन्यास का मौलिक अर्थ है: हम फिर से नया जन्म लेने की तैयारी दिखलाते हैं। हम कहते हैं: अब हम फिर से सोचेंगे; पुनर्विचार करेंगे। और इस बार थोथी बातों के चक्कर

में न पड़ेंगे। अपने हृदय की सुनेंगे। फिर जहां ले जाए, और जो परिणाम हो; जो दिशा भीतर से आये, उसी पर चल पड़ेंगे।

इस सहज स्वाभाविक क्रम का नाम है--संन्यास।

संन्यास कुछ पाने की आकांक्षा नहीं है। संन्यास बस, वही होने की आकांक्षा है, जो हम हैं, जो हमें परमात्मा ने बनाया है। जो प्रतिमा उसने हमारे भीतर गढ़ी थी, उसको ही निखारना है।

नहीं तो तुम निराश रहोगे; उदास रहोगे। कमा लोगे बहुत--पद-प्रतिष्ठा, लेकिन जीवन खाली का खाली रहेगा। रेत ही रेत हाथ लगेगी--आखिर में। धुआं ही धुआं हाथ लगेगा--आखिर में। संपदा से तो तुम वंचित रह जाओगे।

धन्यभागी हैं वे लोग, जो वही हो जाते हैं--जा होने को बने थे। इसलिए थोड़े से लोग ही इस जगत में फलों को उपलब्ध होते हैं--कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, कोई सुकरात, कोई कबीर, कोई मलूक--थोड़े से लोग। मगर इन लोगों की हिम्मत को खयाल रखना। ये बगावती लोग हैं।

बुद्ध के बाप तो चाहते थे कि बेटा सम्राट हो जाए; बेटा भिखारी हो गया! महावीर को मां तो चाहती थी--कि बेटा महल में रहे; बेटा नग्न हो कर जंगलों में भटकने लगा!

तुमने कभी यह बात गौर की--कि ये सारे लोग, जो इस जगत में किसी आनंद को उपलब्ध हुए हैं, ये सब बगावती और विद्रोही थे। विद्रोह इनका मौलिक लक्षण है।

शंकराचार्य संन्यस्त होना चाहते थे--नौ वर्ष के थे, तब संन्यस्त होना चाहते थे! स्वभावतः मां दुःखी थी। मां नहीं चाहती थी--यह हो। कौन मां चाहेगी कि बेटा संन्यस्त हो जाए। कौन पिता चाहेगा कि बेटा संन्यस्त हो जाए!

लेकिन इन लोगों ने, जो होना था, वही हुए। और कोई दूसरे व्यवधान बीच में न पड़ने दिए प्रत्येक व्यक्ति इसी ऊंचाई पर पहुंच सकता है लेकिन हम इतनी हिम्मत नहीं जुटाते। हम दांव नहीं लगाते। हम बड़े हिसाबी-किताबी हैं। हम चाहते हैं: बुद्ध जैसा आनंद तो हमें उपलब्ध हो जाए, लेकिन बुद्ध उस आनंद के लिए जो दांव पर लगाते हैं, वह हम कभी लगाते नहीं। हम चाहते है: महावीर जैसी निष्कलंक दशा हमारी हो जाए, लेकिन महावीर ने जो दांव लगाया है, वह हम लगाते है?

हम दांव कुछ भी नहीं लगाना चाहते। हम मुफ्त में आनंद पाना चाहते हैं। आनंद की कीमत चुकानी पड़ती है। और बड़ी से बड़ी कीमत यही है कि जहां प्रतिष्ठा मिलती हो, धन मिलता हो, पद मिलता हो, उस सब यात्रा को छोड़कर उस दिशा में चल पड़ना, जहां पता नहीं, प्रतिष्ठा मिले--न मिले; पद मिले--न मिले। अपमान मिले; कौन जाने: सूली लगे; जहर मिले।

जो व्यक्ति अपने भीतर के निसर्ग को सुन लेता है और उसके साथ चल पड़ता है, उसके जीवन में कभी उदासी और निराशा नहीं होती।

तीसरा प्रश्नः भगवान, मैंने संन्यास क्यों लिया है? श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूं?

पूछा है--प्रेम अजिता ने।

ऐसा बहुत बार हो जाता हैः तुम्हें भी ठीक-ठीक पता नहीं होता; तुम्हें भी साफ-साफ होश नहीं होता कि तुमने संन्यास क्यों लिया है। लिया है, तो भीतर जरूर कोई छिपी हुई लहर होगी। लिया है, तो भीतर कोई दबी हुई आग होगी। हो सकता हैः अंगार राख में दब गई हो। राख की पर्त-पर्त हो और अंगारा बहु। भीतर खो गया हो। कुरेद कर भी तुम्हें पता न चलता हो कि कहीं कोई अंगारा है। लेकिन अकारण तो यह नहीं होगा, क्योंकि संन्यास उपद्रव मोल लेना है। आदमी लेने वक्त हजार बार सोचता है। फिर मेरा संन्यास तो आपने आपको झंझट में डालना है! कोई सुविधा तो इससे मिलेगी नहीं; असुविधाएं हजार खड़ी हो जाएगी। इससे कोई पद-प्रतिष्ठा तो मिलेगी नहीं; इससे तो कुछ पद प्रतिष्ठा होगी वह भी छूट जाएगी। इससे तो उपद्रव ही आने वाले हैं। इससे तो तुमने उपद्रव और तूफान के लिए दरवाजा तो खोला है।

तो कोई अकारण तो ले नहीं सकता लिया है अजिता, तो जरूर भीतर कारण होगा। थोड़ा अपने को और कुरेदना।

झेन फकीर रिंझाई के पास एक युवक आया और उस युवक ने कहा कि मैं बहुत खोजता हूं, लेकिन मुझे मेरे भीतर आत्मा का कुछ पता नहीं चलता। और सभी सदगुरु कहते हैंः आत्मा को जानो; आत्मा को पहचानो; आत्मा में रमो। किस में रमें? किसको पहचानें? किसको जानें? मैं तो भीतर खोजता हूं, मुझे कुछ मिलता नहीं।

सांझ थी--सर्दी की सांझ और रिंझाई गुरसी में आग जलाये ताप रहा था, लेकिन आग करीब-करीब बुझ चुकी थी; राख ही राख थी। उसने उस युवक से कहा। बैठ। पहले जरा देख कि इस गुरसी में कुछ आग बची या नहीं? क्योंकि तुझसे बात करनी पड़ेगी; रात बहुत सर्द है; आग जला लेनी जरूरी है। जरा देख कि कुछ आग बची है या नहीं।

उसने पास में पड़ी हुई लकड़ी को उठा कर आग को कुरेदाः राख ही राख थी। उसने जल्दी ही कह दिया कि नहीं; कुछ आग वगैरह नहीं है। राख ही राख बची है। आप भी राख के सामने हाथ किए बैठे हैं! माना कि राख गरम है, लेकिन आग बिलकुल नहीं है।

फिर रिंझाई ने बहुत गौर से राख को कुरेदा और एक छोटे से अंगारे को नीचे दबा पड़ा था, निकाल कर उसे बताया कि देख, आग है। तूने बहुत जल्दी की। तूने ऐसे ही लकड़ी एक-दो बार घुमाई और तूने कहा--आग नहीं है। जो तूने यहां किया गुरसी के साथ वही तू अपने साथ भी कर रहा है, रिंझाई ने कहा, तू भीतर जाता है, मगर जल्दी लौट आता है।

जन्मों-जन्मों की राख है; अंगार कहीं होगी तो। बिना अंगार के राख होती ही नहीं। और यह बाहर की अंगार तो बुझ भी जाए, भीतर की अंगार तो बुझती ही नहीं। यह तो शाश्वत अंगार है। यह तो आग शाश्वत है।

ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके मन में कभी न कभी संन्यास का भाव न उठता हो--चाहे वह समझता हो, चाहे न समझता हो। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके मन में यह बात उठती हो--कि छूटें इस जंजाल से; कि छोड़ें यह सब उपद्रव; कि छोड़ें सब राग-रंग; कि उठें ऊपर; कि खोजें उसे, जो सदा है--सदा था, सदा रहेगा। ऐसा आदमी खोजना कठिन है।

पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से अन्वेषणों के बाद यह तथ्य खोजा है कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो कभी जीवन में एक-दो बार, चार बार आत्महत्या का विचार न करता हो। अभी पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों को संन्यास की कोई खबर नहीं है। लेकिन अगर हम आदमी को गौर से खोजें, तो ऐसी बात भी संभव नहीं है कि कोई आदमी जीवन में कभी संन्यस्त होने का भाव न करता हो। असल में जो आदमी आत्महत्या का भाव करता है, वही आदमी संन्यस्त होने का भी भाव करता है। संन्यास आत्महत्या का एक बड़ा कारगर उपाय है।

आत्म-हत्या और आत्म साधन में बड़ी निकटता है। आत्महत्या कोई क्यों करना चाहता है? जीवन से ऊब गया; जीवन व्यर्थ हो गया। देख लिया सब, पाया कुछ भी नहीं। सब तरफ भटक कर देख लिया, कहीं कोई राह नहीं मिली; कहीं कोई सुराग नहीं मिला--सुगंध नहीं मिली। पुनरुक्ति है। वही वही दोहराता जाता है। इस पुनरुक्ति में क्यों पड़े रहें? एक दिन आदमी सोचता है: इससे तो बेहतर समाप्त ही कर दें शरीर को। लेकिन शरीर को समाप्त करने से तो कुछ समाप्त होता नहीं। फिर लौट आओगे--नए शरीर में लौट आओगे। फिर उपद्रव का जाल शुरू हो जाएगा।

पूरब ने संन्यास खोजा, क्योंकि संन्यास वास्तविक आत्महत्या है। जो ठीक से संन्यस्त है; गया--सो गया। जहर खा कर मर गये; फिर लौट आओगे, क्योंकि जहर खाने से केवल शरीर मरता है; तुम्हारा अहंकार हनीं मरता, तुम्हारा मन नहीं मरता; फिर लौट आओगे।

संन्यास ऐसा जहर है, कि अहंकार मर जाता है। और जहां अहंकार मर जाता है, वहीं परमात्मा का आविर्भाव होता है। अहंकार की ओट में ही छिपी है आत्मा।

तो संन्यास का भाव तो उठता ही है। और जो लोग पूरब में पैदा हुए है, उन्हें न उठे, यह तो असंभव है। पश्चिम में शायद न भी उठे; उठे भी तो शायद वे उसको ठीक-ठीक शब्द न दे पाए कि यह कैसा भाव है। उनके पास परिभाषा भी नहीं है।

संन्यास पूर्वीय घटना है। पूर्वीय है। तो पूरब में तो यह असंभव है कि संन्यास का भाव न उठे।

बुद्ध का जब जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने बुद्ध के पिता को कहा कि "इस बेटे को थोड़ा सम्हाल कर रखना, क्योंकि या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा--अगर घर में बना रहा, तो सारी पृथ्वी का सम्राट बनेगा। और अगर इसने घर का त्याग कर दिया, तो यह एक महासंन्यासी होगा।

तो पिता ने पूछाः इसे हम कैसे रोके रखें? क्या करें? क्योंकि मैं चाहता नहीं कि यह संन्यासी हो। मैं चाहता हूं यह महाप्रतापी सम्राट बने। तो उन्होंने चार बातें कहींः उन्होंने कहा कि एक तो यह खयाल रखना कि यह जब बड़ी हो जाए, तो कभी भी भूलकर भी इसके सामने बीमारी, रोग, बुढ़ापा--इनका इसे पता न चले। इसे इस तरह सम्हाल कर रखना, छिपा कर रखना कि इसे यह पता ही न चले कि बीमारी है, रोग है, बुढ़ापा है। दूसरी बातः खयाल रखना, इसे कभी पता न चले कि मृत्यु है। और तीसरी बात खयाल रखनाः यह कभी किसी संन्यासी को न देखे। चौथी बातः इसको उलझाए रखना--जितने राग-रंग में बन सकें। इसको क्षण भर खाली मत छोड़ना; क्योंकि खाली क्षणों में आदमी विचार करने लगता है। और यह बड़ा तेजस्वी है।

तो यही पिता ने किया। राग-रंग का खूब इंतजाम कर दिया। छोड़ते ही नहीं थे उसे। सुंदर से सुंदर स्त्रियां जुटा दीं। सुंदर महल बना दिए। महल से बाहर जाने की जरूरत न थी। आज्ञा दे रखी थी बगीचे में मालियों को कि सूखा पता बुद्ध को दिखाई न पड़े। बूढ़ा आदमी प्रवेश न करे बीमार आदमी की इसे खबर न हो। कभी इसको खबर न चले कि कोई मरता है। कोई पशु-पक्षी मर जाए जंगल में, इसके बगीचे में--हटा देना। इसे खबर नहीं होनी चाहिए; इसका बड़ा आयोजन किया था। और आयोजन किया था कि कोई संन्यासी कभी इसे आसपास दूर तक भी आए ना। क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर यह संन्यासियों को देखेगा, तो इसके भीतर जन्मों-जन्मों की जो दबी आकांक्षा पड़ी है, संन्यस्त हो जाने की, वह त्वरा से जग जाएगी, वह लपट बन जाएगी।

लेकिन यह कब तक हो सकता था! कैसे छिपाओगे? यह सारा जीवन रोग से भरा है। कैसे छिपाओगे--बुढ़ापे से? बाप भी बूढ़ा हो गया। कैसे छिपाओगे? फूल कुम्हलाते हैं; पत्ते सूख जाते हैं। फिर कब तक इसे बंद रखोगे; कभी तो यह बाहर निकलेगा। बुद्ध जब युवा हो गये और बाहर निकलने लगे, तो एक दिन एक साथ घटनाएं घट गई।

एक बूढ़े को देखा लकड़ी टेकते हुए और पूछा अपने सारथी को--इसे क्या हो गया है! शायद अगर बचपन से ही देखा होता बूढ़ों को लकड़ी टेकते, तो न भी पूछते। अगर मुझसे बुद्ध के पिता ने सलाह ली होती, तो जो ज्योतिषियों ने सलाह दी, वह मैं कभी नहीं देता। मैं उनसे कहताः इसको बचपन से ही जितने बूढ़े, बीमार...। इसको अस्पताल में ही रख, दो। यह ठीक से परिचित होता रहेगा, तो प्रश्न नहीं उठेगा। जिससे हम परिचित होते हैं, उसके बाबत प्रश्न नहीं उठता।

लेकिन इतनी उम्र हो गई, जवान हो गया और इसने कभी बूढ़ा आदमी नहीं देखा। तो जब पहली दफा बूढ़ा देखा...। जरा सोचोः पचीस साल तक बूढ़ा न देखा हो, फिर एकदम से बूढ़ा देखा, तो बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया। उसने पूछाः यह क्या हो गया है; उस आदमी को क्या हो गया है?

सारथी तो झूठ बोलने को था; सारथी तो जानता था कि यह बात बतानी नहीं है...तो कथा बड़ी प्यारी है। कथा कहती है कि देवता सारथी में प्रवेश कर गये और उन्होंने सारथी से सच

कहलवा दिया। सच है: जहां से सच आये, वहीं देवता का वास है। जहां से सा आए, वहीं भगवान का वास है।

यह कथा बड़ी प्यारी है कि देवताओं ने देखा कि सारथी झूठ बोले दे रहा है; सारथी कुछ समझाने को जा रहा था कि खास बात नहीं हो गई है--ऐसा हो गया है, वैसा हो गया है। लेकिन देवता प्रविष्ट हो गये--उसकी जबान पर। और सारथी को कहना पड़ा कि यह आदमी बूढ़ा हो गया है; और हर एक को इसी तरह बूढ़ा हो जाना पड़ता है। आप भी इसी तरह बूढ़े होंगे। बुढ़ापे से बचना असंभव है।

बुद्ध एकदम उदास हो गये। और इसके पीछे ही एक अर्थी निकली; और बुद्ध ने पूछा: यह क्या हुआ? और सारथी ने कहा: यह उसके आगे की घड़ी है; वह जो बूढ़ा गया, उसके आगे का कदम। ये मरघट ले जाए जा रहे हैं। और पीछे चला आता था एक संन्यासी--गैरिक वस्त्रों में। बुद्ध ने पूछा: इस आदमी को क्या हुआ है? यह गैरिक वस्त्र क्यों पहने हुए है? सारथी ने कहा: इस आदमी को वे दोनों बातें समझ में आ गई हैं कि आदमी बूढ़ा हो जाता है--और आदमी मर जाता है। तो इसने गैरिक वस्त्र क्यों पहन रखे हैं? बुद्ध ने पूछा। सारथी ने कहा: यह आदमी चेष्टा कर रहा है, उस जीवन-सत्य को जानने की, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और कभी मरता नहीं। यह खोज में लगा है।

बुद्ध ने कहा: रथ वापस घर लौटा लो।

उसी रात वे घर से भाग गये।

तो अजिता, पूछती हो: संन्यास मैंने क्यों लिया है? कहीं छिपी होगा--जन्मों-जन्मों से कोई बात छिपी होगी; अंगार दबी होगी--राख में। अचानक यहां आ कर हवा के झोंके लगे, राख उड़ गई; अंगार साफ हो गई। और यह इतने आकस्मिक रूप से हुआ है कि इसके लिए बुद्धिगत उत्तर तुम्हारे पास नहीं है कि क्यों...। सोच-विचार कर तुमने लिया भी नहीं है। सोच-विचार कर कोई संन्यास लेता भी नहीं है।

संन्यास तो एक दांव है। जुआरी का काम है--दुकानदार का नहीं। दुकानदार तो सोचने में ही समय गंवा देता है। वह तो हानि-लाभ सोचता रहता है: कितनी हानि होगी; कितना लाभ होगा! लें तो क्या होगा, न लें तो क्या होगा? बिना लिए नहीं चलेगा? भीतर का ले लें; बाहर की क्या जरूरत है? दुकानदार ऐसी हजार बातें सोचता। है। हिम्मत नहीं है। हिम्मत न होने के कारण न मालूम कितने तर्क अपने को देता है!--कि कपड़े बदलने से क्या होगा? कि माला पहनने से क्या होगा? अरे, यह तो भीतर की बात है। और भीतर तो करना नहीं है कुछ। तो यह भीतर के नाम पर खूब बचाव हो गया। बाहर से बच गये, भीतर के नाम पर। भीतर कुछ करना नहीं है। भीतर जैसे हैं, वैसे के वैसे रहेंगे।

लेकिन जुआरी अगर कभी कोई मेरे पास आ जाता है, तो फिर हिम्मत हो जाती है। वह एक छलांग ले लेता है।

ऐसी ही अजिता तेरी छलांग हुई।

श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूं? मेरे पास उन्हीं के लिए मार्ग नहीं है, जिनके पास श्रद्धा और भक्ति है। मेरे पास उनके लिए भी मार्ग है, जिनके पास श्रद्धा और भक्ति बिलकुल नहीं है। सच तो यह है कि जिनके पास श्रद्धा--भक्ति बिलकुल नहीं है, उनके लिए मेरे अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

जो संदेह से घिरे हैं, जो नास्तिकता में पगे हैं, जिनकी बुद्धि निष्णात हो गई है तर्क में, उनके लिए मेरे अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। और मैं तो मानता ही यह हूं कि जब नास्तिक को बदलने की घटना न घटे, तब तक कोई घटना ही नहीं घटती। नास्तिक को मेरे पास विरोध नहीं है, इनकार नहीं है। नास्तिक को मेरे पास निमंत्रण है।

मैं यह नहीं कहता कि पहले आस्तिक बनो, फिर संन्यास दूंगा। मैं कहता हूं: संन्यास तो लो, आस्तिकता इत्यादि चला आयेगी। मैं नास्तिक को भी संन्यास देता हूं। जो कहता है: मुझे ईश्वर में भरोसा नहीं है। मैं कहता हूं: जाने दो ईश्वर को। तुम्हें अपने पर भरोसा है? चलेगा।

जो कहता है: मुझे श्रद्धा नहीं है; मैं कहता हूं: कोई फिक्र नहीं है। संदेह तो है। इससे भी काम ले लेंगे। संदेह को इतना बढ़ाएंगे कि संदेह को खींचना असंभव हो जाए। संदेह को इतना प्रगाढ़ करेंगे कि संदेह पर भी संदेह आने लगे; उसी दिन श्रद्धा का जन्म हो जाएगा।

और इस दुनिया में।--आज की दुनिया में श्रद्धा-भक्ति से शुरुआत तो की नहीं जा सकती। फिर श्रद्धा-भक्ति से शुरुआत करनी हो, तो हमें कोई हजार साल पीछे लौटना पड़े। उसका कोई उपाय नहीं है।

भविष्य में जो धर्म होगा, वह संदेह से डर कर भोगा नहीं। वह श्रद्धा को पहली शर्त नहीं बनाएगा। वह कहेगा: संदेह--तो संदेह। संदेह के पत्थर की सीढ़ी बनाएंगे और श्रद्धा तक चलेंगे।

श्रद्धा इतनी बड़ी है कि संदेह को भी जीत लेती है। होना ही चाहिए ऐसा।

अजिता डॉक्टर है; पढ़ी-लिखी है। तर्क और विचार से परिचित है। तो मैं अपेक्षा भी नहीं करता कि श्रद्धा-भक्ति से आओ। आते भर रहो। यह बीमारी संक्रामक है। आते--भर रहो--लग जाएगी। यहां आते रहे, तो रंगी ही जाओगे।

पूछा है:श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूं? तो श्रद्धा-भक्ति से भी बड़ी कोई बात भीतर हो रही है। मुझसे कुछ लगाव बन रहा है। मुझसे कुछ प्रेम का नाता बन रहा है।

मेरा भरोसा प्रेम पर ज्यादा है--श्रद्धा-भक्ति के बजाए। श्रद्धा-भक्ति तो प्रेम के ही रूपांतरण हैं; पीछे हो लेगा। सोना हाथ में आ जाए, तो फिर गहने तो उसके हम कोई भी बना लेंगे; कोई अड़चन नहीं है।

प्रेम सोना है--खालिस सोना है। श्रद्धा तो उसका गहना है। भक्ति उसका दूसरा गहना है।

मुझसे लगाव बन गया; मुझसे ऐसा लगाव बन जाए कि श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी आना पड़े, तो बस, काम हो गया। श्रद्धा भक्ति के कारण जो आते हैं, वे शायद आते भी न हों।

उनका मुझसे शायद कोई लगाव भी न हो। वे शायद मेरे पास आते भी न हों। वे तो सिर्फ इसलिए आते हों कि चलो, कहीं भी चलें; किसी भी संत के पास--ऐसे ही चले आते हों।

इस देश में लोग को खयाल है कि संतों के पास ही गये; उनकी बात सुनी--न सुनी; बैठे रहे वहां, तो भी मुक्ति हो जाएगी। इतनी सस्ती मुक्ति नहीं है।

तो मैं तुमसे सस्ती श्रद्धा नहीं मांगता और न सस्ती भक्ति मांगता हूं। मैं तुमसे सस्ता कुछ मांगता ही नहीं। मैं तुमसे इतना ही चाहता हूं कि अगर तुम्हारा मुझसे लगाव बन गया है...। मेरे विरोध में ही रहो--कोई फिक्र नहीं। लगाव बन गया है, तो आते रहो, जाते रहो। धीरे-धीरे घटना घट जाएगी।

रोते हैं तो भीग न पाता, आंखों का रेतीलापन।

मुसकाते हैं तो खिल पाते, अधरों पर जलजात नहीं

लेकिन कोई शिखा अभी तक, जीवित है सुनसानों में

जिसे बुझा पाने में सक्षम, कोई झंझावात नहीं।

जरूर भीतर कोई शिखा जल रही है, जिसे जन्मों-जन्मों के झंझावात भी बुझा नहीं पाये हैं; अश्रद्धा, अभक्ति भी नहीं बुझा पाई; तर्क के जाल भी नहीं बुझा पाए हैं।

लेकिन कोई शिखा अभी तक, जीवित है सुनसानों में

जिस बुझा पाने में सक्षम, कोई झंझावात नहीं।

उसी शिखा को प्रगाढ़ कर लेंगे; उसी को जगा लेंगे, उकसा लेंगे। उसको ही ईंधन देंगे:

सत्संग का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कोई शिखा दबी पड़ी हो, तो सत्संग में उभर आएगी, प्रकट हो जाएगी; जो भीतर है--बाहर आ जाएगी।

श्रद्धा, भक्ति आज के मनुष्य से मांगी नहीं जा सकती; मांगनी भी नहीं चाहिए। मैं तुमसे कहता भी नहीं कि तुम ईश्वर को मान लो। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि तुम आनंद तो चाहते हो न; बस, काफी है। आनंद की खोज में लग जाओ। आनंद को खोजते-खोजते तुम ईश्वर पर पहुंच ही जाओगे। क्योंकि ईश्वर और आनंद एक ही घटना के दो नाम हैं।

मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि जाने बिना मान लो। पर इतना तो तुम स्वीकार करोगे न कि अगर जान लिया, तो फिर तो मानोगे न! तो मैं जानने की बात पहले करता हूं; मानने की बात पहले नहीं करता। मैं नहीं कहता कि मानो, फिर खोजो। मैं कहता हूं--जानो।

ध्यान है; कोई श्रद्धा की आवश्यकता नहीं है। ध्यान तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। ध्यान करो। ध्यान कहता नहीं कि ईश्वर को मानना जरूरी है। बुद्ध ने ध्यान किया--ईश्वर को बिना माने। महावीर ने ध्यान किया--ईश्वर को बिना माने।

जिनके जीवन में श्रद्धा-भक्ति सहज नहीं है, उनके लिए ध्यान का मार्ग है। ध्यान तो वैज्ञानिक प्रयोग है। जैसे कोई व्यायाम करे, तो शरीर अशक्त होता जाता है। और जब शरीर अशक्त होने लगता है, तो उसे भरोसा भी आने लगता है कि व्यायाम का परिणाम हो रहा है। ऐसी ही ध्यान है।

ध्यान कोई पूर्व-अपेक्षा नहीं करता। तुम ध्यान करो, आत्मा सशक्त होती है। और जैसे-जैसे आत्मा सशक्त होती है, बलशाली होती है, वैसे-वैसे तुम पाते हो कि तुम श्रद्धा में तत्पर होने लगे। श्रद्धा छाया की तरह आती है;

आमतौर से जिसको हम श्रद्धा कहते हैं, वह कमजोरों में पाई जाती है। वह श्रद्धा असली नहीं है; वह कमजोर की श्रद्धा है; वह नपुंसक की श्रद्धा है। क्योंकि वह तर्क नहीं कर सकता या तर्क करने में डरता है; या तर्क में कुशल नहीं है, शिक्षित नहीं है। या भयभीत है कि तर्क करेंगे, तो कहीं श्रद्धा खंडित न हो जाए। तो मान कर बैठा हुआ है। यह जो मान कर बैठा हुआ है, इसका परमात्मा सच नहीं है। माना हुआ परमात्मा सच होगा भी कैसे? और इसके भीतर कहीं गहरे में संदेह मौजूद रहेगा ही।

इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि मान लो। हां, अगर तुम्हारे बिना संदेह के मानना सहज घटता हो--सौभाग्य। न घटता हो, तो जबरदस्ती घटाने की कोई जरूरत नहीं है। खोज में लगो। खोजो। ध्यान ध्यान में उतरो। भक्ति की बात ही छोड़ दो। फिर मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं।

लेकिन मैं मलूकदास पर समाप्त नहीं होता। मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं; मैं तुम्हारे लिए हूं। मलूकदास को छोड़ो। मलूकदास तो कहते हैं। श्रद्धा पहले चाहिए; भक्ति पहले चाहिए। मैं नहीं कहता। मैं तो तुमसे कहता हूं: जो तुम्हारे पास हो, तुम जो ले आए हो...। श्रद्धा ले आए, तो श्रद्धा से काम चला लेंगे। संदेह ले आए, तो संदेह से भी काम चला लेंगे।

मेरा परमात्मा बहुत मजबूत है। संदेह से जरा भी भयभीत नहीं होता। और तुम्हें तर्क करने में मजा हो, तो मुझे भी तर्क करने में काफी मजा आता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। इनमें जरा भी अड़चन नहीं है।

मेरी परमात्मा की धारणा को कोई तर्क न तो सिद्ध करता है--और न असिद्ध करता है। तर्क तो खेल है। तर्क का खेल थोड़ा चलाना हो, तो चलाया जा सकता है। उससे कुछ हाथ आता नहीं। लेकिन तुम्हें जब अनुभव में आ जाएगा, कि उससे कुछ हाथ नहीं आता, तो तर्क अपने आप छूट जाएगा।

और जब तर्क अनुभव से छूटता है, तो ही छूटता है। फिर एक श्रद्धा पैदा होती है, जो बड़ी और ही ढंग की श्रद्धा है। उस श्रद्धा को विश्वास नहीं कह सकते। उस श्रद्धा और विश्वास से फर्क है। विश्वास का अर्थ है: संदेह तो भीतर है, ऊपर से श्रद्धा पोते ली।

श्रद्धा का अर्थ है: निःसंदिग्ध हो गये; संदेह बचा ही नहीं; पोतने की जरूरत न रही।

निष्फल नहीं साधना होती

यह विश्वास लिए बैठी हूं

जग की जीत पराजय मेरी

होती रहे सदा जय तेरी

मेरी सबसे बड़ी जीत है

तेरी बीन बजे लय मेरी

तेरा-मेरा भेद मिटा कर ही
संन्यास लिए बैठी हूं
निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूं।
ऐसा मैं नहीं कहता। विश्वास लेकर बैठने से कुछ भी न होगा।
आशा और निराशा दोनों ने मिलकर था बहुत रुलाया
धीरे-धीरे थपकी देकर चिर-निद्रा में उन्हें सुलाया
अब हो दिन या रात आंख में
मैं आकाश लिए बैठी हूं
निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूं
यह विश्वास बहुत काम नहीं आयेगा। यह मन को मना लेना है। यह अपने को समझा लेना है। यह सांत्वना ही है।
अंतिम श्वासों तक लो मुझसे
जितनी चाहो कठिन परीक्षा
सदा सत्य की जय होती है
केवल मुझको यही प्रतीक्षा
इसीलिए सखि अश्रु भुला कर
मधुमय हास लिए बैठी हूं
निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूं।
तुम कितना ही हंसो--आंसुओं को भुलाकर, लेकिन आंसू तुम्हारी आंखों में डबडबाते रहेंगे। इसीलिए सखि अश्रु भुलाकर, मधुमय हास लिए बैठी हूं। भुला कर...। जिन्हें भुला दिया हैं, वे मिट नहीं गए हैं। निष्फल नहीं साधना होती, यह विश्वास लिए बैठी हूं। यह विश्वास बहुत काम न आएगा। यह कमजोर का विश्वास है। ऐसे विश्वास का मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो तुमसे कहता हूं--जानो।
सुबह सूरज उगता है; तो तुम सुबह के सूरज में विश्वास थोड़ी ही करते हो। तुम यह थोड़े ही कहते हो कि मुझे विश्वास है कि सूरज उग गया। इसमें कोई विश्वास करने की तो जरूरत नहीं होती। जो है--जिसका अनुभव हो रहा है--उसमें कैसे विश्वास करोगे!
विश्वास तो उसमें करना होता है, जिसका अनुभव नहीं हो रहा है। आकांक्षा के वश, वासना वेश विश्वास कर लेते हैं; डर के वश, भय के वश विश्वास कर लेते हैं; लोभ के वश विश्वास कर लेते हैं।

तुम्हारा भगवान भय का ही मूर्तिमान रूप है। तुम्हारा भगवान तुम्हारे लोभ का ही विस्तार है। इस भगवान में मेरी कोई श्रद्धा नहीं है। और इस भगवान को मैं तुम्हारे ऊपर थोपना भी नहीं चाहता। इस भगवान को थोपने के कारण ही मनुष्य जाति इतनी अधार्मिक हो गई है।

एक बात सुनिश्चित जानो: ईमानदार नास्तिक, बेईमान आस्तिक से बेहतर है। जिसे साफ-साफ पता है कि मुझे भरोसा नहीं है, और जो स्वीकार करता है कि मुझे भरोसा नहीं है, यह कम से कम प्रामाणिक तो है! सच्चा तो है।

सत्य इतना है, तो फिर सत्य को और बड़ा किया जा सकता है। लेकिन जो आदमी भीतर से जो जानता है कि ईश्वर वगैरह का मुझे कुछ पता नहीं है और ऊपर से दोहराता है कि मुझे भरोसा है...।

अकसर ऐसा होता है कि जितने जोर से तुम दोहराते हो कि मुझे भरोसा है, उतना ही तुम्हें संदेह होता है। जोर से दोहराकर तुम अपने की ही झुठलाना चाहते हो।

तुम छाती पीट कर दोहराते हो कि मुझे ईश्वर में भरोसा है। वह छाती पीटना बताता है कि तुम्हें भरोसा नहीं है। अन्यथा छाती पीटने की जरूरत ही न थी।

मेरे पास कोई आ जाता है कभी, कहता है: मुझे ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। मैं कहता हूं: विश्वास से ही काम चल जाता; दृढ़ क्या लगा रहे हो! दृढ़ का मतलब क्या?

जब कोई किसी से कहता है: मुझे तुमसे पूरा-पूरा प्रेम है। में उससे कहता हूं पूरा-पूरा काहे के लिए गला रहे हो! प्रेम काफी नहीं है? प्रेम में कुछ अधूरा भी होता है? प्रेम--और पूरा?--होता ही है। इसलिए पूरे को जोड़ना प्रेम में खतरनाक है। उसका मतलब साफ है कि है नहीं; सिर्फ दिखला रहे हो। और कही ऐसा न हो--किसी को शक न हो जाए, इसलिए बार-बार दोहराते हो: पूरा-पूरा; दृढ़ विश्वास।

यह जो गीत है, यह ऐसा ही गीत है: निष्फल नहीं साधना होती, यह विश्वास लिए बैठी हूं। निष्फल न हो--ऐसी वासना है मन में। कहीं साधना निष्फल न हो जाए, इसलिए अपने को झुठला रहे हैं कि नहीं, नहीं; कभी नहीं होती। साधना कहीं निष्फल होती है?--कभी नहीं होती। मगर डर तो भीतर लगा है। जग की जीत पराजय मेरी

होती रहे सदा जय तेरी

मेरी सबसे बड़ी जीत है

तेरी बन बजे लय मेरी

तेरा-मेरा भेद मिटा कर ही

संन्यास लिए बैठी हूं

निष्फल नहीं साधना होती

यह विश्वास लिए बैठी हूं।

यह विश्वास वास्तविक नहीं है। इसमें भीतर आकांक्षा तो है--अनुभूति नहीं है। और मेरा सारा जोर अनुभूति पर है।

जो अजित को मैं कहूंगा कि कोई जल्दी नहीं है--श्रद्धा और भक्ति की। जब समय पकेगा, ऋतु आयेगी--श्रद्धा भी आएगी। संदेह है--चलो, संदेह से शुरू करें। चिंतन-मनन उठता है--चिंतन-मनन से शुरू करें।

भक्ति की झंझट में पड़ो ही मत। उपाय है। परमात्मा तक पहुंचने का प्रत्येक के लिए उपाय है; जो जहां है, वहीं से राह मिलेगी। और वही से राह मिल सकती है; वहीं और से राह मिलेगी भी नहीं।

तुम वहीं से तो चलोगे न, जहां तुम खड़े हो। अगर तुम संदेह में खड़े हो, तो संदेह से ही चलना होगा। यह तो इतनी सीधी बात है। तुम जहां खड़े हो वहीं से तो यात्रा शुरू होती न!

बाबा मलूकदास जहां खड़े हैं, वहां तुम खड़े हो भी कैसे सकते हो? तुम्हें तो अपनी जगह से ही यात्रा का पहला कदम उठाना पड़ेगा। तुम अगर संदेह भरे हो, तो संदेह से ही चलना होगा। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं: संदेह के साथ भी परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है। और जिसने परमात्मा की कभी नहीं नहीं कहा, उसकी हां में कभी बल नहीं होता।

नहीं कहो; डरो मत। परमात्मा से क्या डरना! हम उसके हैं अगर है कहीं, तो डरना क्या। और नहीं है, तब तो डरने की कोई बात ही नहीं है। नहीं कहां; हिम्मत से नहीं कहो; बलपूर्वक नहीं कहो। तुम्हारे नहीं से ही धीरे-धीरे अनुभव बढ़ेगा। इनकार कर-करके तुम पाओगे: इनकार हो नहीं पाता। लाख उपाय करो भुलाने का, लेकिन संदेह से भी गहरा तुम्हें अनुभव में आना शुरू होगा--कहीं श्रद्धा का स्वर है।

क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है, तो श्रद्धा लेकर आता है; संदेह तो बाद में सीखता है। बच्चा पैदा होता है, तब कोई संदेह नहीं होता उसमें। हो नहीं सकता। संदेह आयेगा। कहां से?

मां के स्तन से दूध पीता है, तो संदेह थोड़े ही करता है कि पता नहीं--जहर हो; कि कोई बीमारी हो। दूध पीता है। कोई परमश्रद्धा है भीतर कि पौष्टिक होगा दूध।। कोई अनजाने ही भीतर गहरा भाव है। कि दूध भोजन है। पहले कभी पिया भी नहीं; पहले कभी स्तन देखे भी नहीं। लेकिन कोई अपूर्व घटना घटती है और बच्चा स्तन से दूध पीने लगता है; चूसने लगता है दूध: पहल कभी चूसा नहीं, तो यह विचार से घट नहीं सकता, संदेह से घट नहीं सकता: तर्क से घट नहीं सकता। यह तो किसी श्रद्धा से घट रहा है।

मां पर भरोसा कर लेता है। मां मार डालेगी--ऐसा संदेह तो नहीं करता। और ऐसा भी नहीं है कि माताओं ने कभी बच्चे न मारे हों। मारे हैं। लेकिन फिर भी हर बच्चा जब आता है, तब संदेह नहीं करता--फिर श्रद्धा करता है।

श्रद्धा स्वाभाविक है; फिर हम संदेह सीखते हैं। तो श्रद्धा तो हमारा पहला केंद्र है। संदेह उसे ऊपर परिधि की तरह लग जाता है। फिर जीवन के अनुभव हमें संदेह सिखा देते हैं। अपने को बचाने के लिए, सुरक्षा के लिए हम संदेह करते हैं--श्रद्धा नहीं करते। क्योंकि काई धोखा दे जाए; कोई धन छीन ले; कोई कुछ नुकसान पहुंचा दे, तो हम संदेह करते हैं।

संदेह हमारे जीवन के अनुभव में से निकलता है। श्रद्धा हम ले कर आते हैं। फिर संदेह के साथ-साथ हम विश्वास सीखते हैं। संसार के प्रति संदेह सीखते हैं; और फिर मां-बाप सिखाते

हैं: हिंदू मुसलमान बन जाओ; ईसाई बन जाओ; जैन बन जाओ। तो विश्वास सिखाते हैं। अब यह समझो तुम। पहली पर्त: स्वाभाविक श्रद्धा की; उसके ऊपर एक अनुभव की पर्त--संदेह की। और फिर उस संदेह के ऊपर एक विश्वास की पर्त। तो जो विश्वास है उसके नीचे संदेह है। और जो संदेह है, उसके नीचे श्रद्धा है।

तो मैं तुमसे विश्वास के लिए तो कहता ही नहीं। उससे कुछ होगी भी नहीं; वह तो बड़ी ऊपर-ऊपर है। वह तो ऐसा ही है जैसे कि जहर की गोली हमें किसी को खिलानी हो, तो शक्कर की पर्त लगा देते हैं, बस। है तो संदेह, ऊपर से श्रद्धा पोत दी। पोती हुई श्रद्धा यानी विश्वास। और जब तुम अपने भीतर खोद कर, अपने संदेह की पर्त को तोड़ कर अपने भीतर के झरने को मुक्त करोगे--तो श्रद्धा।

इसलिए मैं कहता हूं: ध्यान करो। तोड़ अपने संदेह की पर्त। वह सिखावन है; उसका कोई मूल्य नहीं है; वह टूट जाएगी। वह कोई बहुत गहरी भी नहीं है। उसके टूटते ही श्रद्धा का झरना फूटता है। तब तुम ऐसा कहते हो कि परमात्मा है; मैं नहीं हूं। विश्वास का कोई सवाल नहीं है।

ठहरो भी, मन चंचल न करो।...

तो अजिता को इतना ही करना चाहता हूं: संन्यासिनी भी तू हो गई; श्रद्धा भक्ति भी नहीं है, फिर भी तू दौड़ी चली आती है। जिनमें श्रद्धा-भक्ति है, उनसे थोड़ी ज्यादा ही आती है!

ठहरो भी, मन चंचल न करो!

सम्मोहन-सागर-सी आंखें

रस-पांखी की मदरिक पांखें

पलक-मानसर उतरें खंजन

उछरी लाख-लाख अभिलाखें

पर संकोच खड़ा दृग पथ में

लज्जा गड़ती गति-शलथ-अथ में

इतना क्या कम हुआ बावरे

समझो भी, प्रण दुर्बल न करो!

मन चंचल न करो !!

इतना भी हो गया संदेह के साथ--कि संन्यास हो गया!

इतना क्या कम हुआ बावरे

समझो भी, प्रण दुर्बल न करो

मन चंचल न करो

रोम-रोम तन्मय कर बैठा

अब तो जो होना है हो ले

मैं तो दृढ? निश्चय कर बैठा

पाणिग्रहण कर राह दिखाओ

पास रहो, अब दूर न जाओ

युग-युग पर साधना फली है

यह जीवन भी निष्फल न करो!

मन चंचल न करो!!

संन्यास घट गया; शायद अनजाने घट गया। शायद तुम्हें पता भी न चला: कब घट गया, कैसे घट गया! मुझसे लगाव भी बन गया। श्रद्धा नहीं थी, मुक्ति नहीं थी, फिर भी लगाव बन गया। तो अब इस लगाव को कोई तोड़ न सकेगा।

श्रद्धा-भक्ति से बना होता, तो शायद किसी दिन अश्रद्धा आ जाती, अभक्ति आ जाती, तो टूट जाता। अब तो कैसे टूटेगा! अब तो अश्रद्धा अभक्ति आ जाए, तो भी टूटने का कोई कारण नहीं है। श्रद्धा-भक्ति के कारण जो बना नहीं, वह अश्रद्धा अभक्ति से टूटेगा भी नहीं।

अब थोड़ा खोज में उतरो। खोज के लिए, मैं सदा कहता हूं--दो मार्ग हैं; एक प्रेम का, प्रेम में श्रद्धा पहला कदम है। दूसरा मार्ग है: ध्यान का में श्रद्धा पहला कदम नहीं है--अंतिम चरण है।

तो जिनको श्रद्धा सहज हो, वे चल पड़े भक्ति में; और जिनको श्रद्धा में जरा तभी अड़चन मालूम पड़ती हो, कोई कारण नहीं है परेशान होने का। वे डूबने लगें ध्यान में। अंतिम घड़ी में दोनों एक ही जगह पहुंच जाते हैं। मंजिल एक है--मार्ग अनेक हैं।

और अब मैं जाने भी न दूंगा।

चांदनी से किसी ने पखारे चरण

धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!

और एक बार भी तुमने अगर मेरे प्रेम में थोड़ा स्नान किया, और थोड़ी सी भी तुम्हें मेरी किरण छू गई, और थोड़ी सी भी तुम्हें सुगंध छू गई; तुम्हारे नासापुट थोड़े मेरे सुगंध से भर गये, तो बहुत कठिन हो जाएगा--तुम्हें कहीं और जाना।

चांदनी से किसी ने पखारे चरण

धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!

मुश्किल हो जायेगा।

बेड़ियों के बिना ही बंधे पांव हैं

स्नेह की बदलियों की सजल छांव है।

यहां तुम्हें कोई बेड़ियां और जंजीरें नहीं पहनाई जा रही हैं। यहां तो स्वतंत्रता से ही तुम्हें बांधा जा रहा है। तुम, बंधन होते, तो शायद तोड़ कर भाग भी जाते; यहां बंधन हैं ही नहीं। संन्यास यानी स्वतंत्रता।

बेड़ियों के बिना ही बंधे पांव हैं

स्नेह की बदलियों की सजल छांव है

मुक्ति संन्यासिनी बंधनों की शरण

धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!

शायद आकस्मिक रूप से संन्यस्त होना हो गया है। शायद अचेतन कि किसी गहरी आकांक्षा ने संन्यास में कदम उठवा दिया है। सोच-विचार कर नहीं भी लिया है; तो भी।

मुक्ति संन्यासिनी बंधनों की शरण
धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!

संसार अब तुम्हें लुभा न सकेगा। एक नई पुकार उठ गई है। एक नया आह्वान मिला है।

झुक रहा नील अंबर सितारों जड़ा
मुस्कुराता हुआ शशि बरजता खड़ा
मैं चलूं तो लिपटनी हठीली किरन
धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!
मैं चलूं तो लिपटती हठीली किरन
धूल की राह पर गांव कैसे धरूं!
जग रही रातरानी सुगंधों भरी
है सजल केतकी की मृदुल पांखुरी
शूल आंचल गहे, राह रोंके सुमन
धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!
समुंदर सजाया सजल पुतलियों मग
कि आंचल दबाया विकल अंगुलियों में
द्वार रोके खड़े प्रभु भीगे नयन
धूल की राह पर पांव कैसे धरूं!

कठिन हो जाएगा अब। जाने को कोई उपाय नहीं है। लेकिन जाने की बात अगर मन में उठती हो, तो उस सुविधा के कारण, जो विकास हो सकता है, वह अवरुद्ध होगा। लौट तो नहीं सकते, लेकिन अगर लौटने का खयाल मन में आता रहे, तो आगे गढ़ना रुक जाएगा। अटक जाओगे।

उठा लिया है एक कदम, अब दूसरा भी उठाने की हिम्मत करो। संन्यास तो ले लिया, अब ध्यान में डूबो। ध्यान से ही गति मिलेगी, दिशा साफ होगी। और ध्यान से हो थिरता आयेगी। और ध्यान से ही तुम्हारी जड़ें जमीन में उतरेंगी। और ध्यान से ही तुम पर हरे पत्ते फूटेंगे और कलियां निकलेंगी--और फूल खिलेंगे।

आखिरी प्रश्न: क्या देख और समझ कर आपने मेरे जैसे मूढ का भी आश्रम में स्थान दिया? किसलिए?

प्रश्न है कृष्ण प्रिया का। इसीलिए।

मूढ़ता का जिसे बोध हो जाए, जिसे ऐसा साफ लगने लगे कि मैं मूढ हूं, वह फिर मूढ नहीं रहा। मूढ तो वे ही हैं, जिन्हें यह खयाल है कि वे ज्ञानी हैं; जिन्हें यह खयाल है कि वे जानते हैं।

जिसे यह स्मरण आ जाए कि मैं मूढ़ हूं उसके जीवन में किरण उतरने लगी; उसके जीवन में प्रभात आने के करीब हो गया; रातें टूटने लगी।

मैं नहीं जानता हूं--यह जानने का पहला कदम है। मैं जानता हूं--इसमें अवरोध पड़ जाता है। इसलिए पंडित कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते। सरल हृदय लोग, सीधे-सादे लोग, जिनका कोई दावा नहीं है, जिन्हें शास्त्रों का कोई सहारा नहीं है, जिन्हें सिद्धांतों की कोई पकड़ नहीं है; जो कहते हैं: हमें कुछ भी पता नहीं है--ऐसे जो लोग हैं, वे जल्दी पहुंच जाते हैं।

पूछती हो: क्या देख और समझ कर आपने मेरे जैसे मूढ़ को भी आश्रम में स्थान दिया? यही देख कर--कि पंडित नहीं हो।

और मूढ़ता का पता है, तो मूढ़ता टूट जाएगी। कुछ चीजें हैं, जो बोध से मर जाती हैं। जैसे अंधेरे में अगर तुम दीया ले आओ, तो अंधेरा समाप्त हो जाता है। ऐसे ही मूढ़ता में अगर थोड?ा होश आ जाए; होश का दीया जल जाए--कि मैं मूढ़ हूं--तो मूढ़ता समाप्त हो जाती है।

यह होश असली ज्ञान है। इसलिए यहां जो प्रयोग चल रहा है, वह इसी बात का है; तुमसे पाप तो कम छीनने हैं, तुमसे पांडित्य ज्यादा छीनना है। पाप से कोई आदमी इतना नहीं भटका हुआ है, जितना पांडित्य से भटक हुआ है।

तुमने क्या किया है, उससे बहुत बाधा नहीं है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे पाप के आधार पर नहीं टिका है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे पाप के आधार पर नहीं टिका है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे ज्ञान के आधार पर टिका है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे वेद, कुरान, बाइबिल पर टिका है।

तुम्हारे जीवन से सारे शास्त्र हट जाएं; तुम फिर से निर्दोष बच्चों की भांति हो जाओ; तुम्हारे मन की स्लेट खाली हो जाए, उस पर कुछ लिखावट न रह जाए, उसी घड़ी क्रांति घट जाएगी।

इधर तुम शून्य हुए कि इधर पूर्ण तुममें उतरना शुरू हुआ। शून्यता पूर्णता को पाने की पात्रता है।

आज इतना ही।

उधार धर्म से मुक्ति

नौवां प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १९ मई, १९७७

देवल पूजे कि देवता, की पूजे पाहाड़।

पूजन को जांता भला, जो पीस खाय संसार।।

मक्का, मदिना, द्वारका, बदरी अरु केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार।।
सब कोउ साहेब बंदते, हिंदू मुसलमान।
साहेब तिसको बंदता, जिसका ठौर इमान।।
दया धर्म हिरदे बसै, बोले अमरित बैन।
तेई ऊंचे जानिए, जिसके नीचे नैन।।
जेते सुख संसार के, इकट्ठे किए बटोर।
कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।
मलूक कोटा झांझरा, भीत परी महराए।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय।।
प्रभुताई को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोई।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होइ।।

बाबा मलूकदास एक विद्रोही हैं। और विद्रोह धर्म की आत्मा है। विद्रोह का अर्थ है: समाज से, संस्कार से, शास्त्र से, सिद्धांत से, शब्द से मुक्ति।

आदमी का मन तो प्याज जैसा है, जिस पर पर्त-पर्त संस्कार जम गए हैं। और इन परतों के भीतर खो गया है--आदमी का स्व। जैसे प्याज को कोई उधेड़ता है, एक-एक पर्त को अलग करता है, ऐसे ही मनुष्य के मन की परतें भी अलग करनी होती हैं।

जब तक सार संस्कारों से छुटकारा न हो जाए, तब तक स्व का कोई साक्षात नहीं है। और संस्कारों से छुटकारा कठिन बात है। कपड़े उतारने जैसा नहीं, चमड़ी छीलने जैसा है। क्योंकि संस्कार बहुत गहरे गले गये है। संस्कारों के जोड़ का नाम ही हमारा अहंकार है। संस्कारों के सारे समूह का नाम ही हमारा मन हैं। विद्रोह का अर्थ ई--मन को तोड़ डालना। मन बना है: समाज से। मन है--समाज की देना। तुम तो हो परमात्मा से; तुम्हारा मन है--समाज से। और जब तक तुम्हारा मन सब तरह से समाप्त न हो जाए, तब तक तुम्हें उसका कोई पता न चलेगा, जो तुम परमात्मा से हो--जैसे तुम परमात्मा से हो।

इसलिए विद्रोह--समाज, संस्कार, सभ्यता, संस्कृति--इन सब से विद्रोह धर्म का मौलिक आधा है।

धर्म शुद्ध विद्रोह है। याद रहे: विद्रोह से अर्थ क्रांति का नहीं है। क्रांति--तो फिर संगठन। विद्रोह वैयक्तिक है। क्रांति में तो फिर संगठन है। क्रांति में तो फिर समाज का नया ढांचा बदलेगी क्रांति, लेकिन नए ढांचे को स्थापित कर देगी। पुराना समाज तोड़ेगी, लेकिन नए समाज को बना देगी। क्रांति में तो समाज फिर पीछे के द्वार से वापस आ जाता है।

परमात्मा के सामने तो अकेले होने का साहस करना होगा; भीड़-भाड़ नहीं चलेगी। परमात्मा के सामने तो नग्न और निपट अकेले खड़े होने का साहस करना होगा। परमात्मा के सामने तो तुम जैसे हो--अकेले असहाय--वैसा ही अपने को छोड़ देना होगा। कोई लाग-लगाव नहीं, कोई छिपाव नहीं, कोई पाखंड नहीं।

क्रांति समाज को बदलती है--व्यक्ति को नहीं बदलती; व्यक्ति वैसा का वैसा बना रहता है। उन्नीस सौ सत्रह में रूस में बड़ी क्रांति हुई। समाज बदल गया; व्यक्ति वही के वही हैं। पहले व्यक्ति धर्म को मानता था, क्योंकि जार धर्म को मानता था। अब व्यक्ति धर्म को नहीं मानता, साम्यवाद को मानता था; क्योंकि सरकार साम्यवाद को मानती है। पहले व्यक्ति बाइबिल को पूजता था; अब दास कैपिटल को पूजता है। पहले मूसा और जीसस महत्वपूर्ण थे; अब मार्क्स, एन्जिल और लेनिन महत्वपूर्ण हो गये। मगर व्यक्ति उतना ही सोया हुआ है, जितना पहले था। उसकी नींद में कोई भेद नहीं हुआ है। शायद बिस्तर बदल गया--नींद जारी है। कमरा बदल गया--बेहोशी जारी है।

क्रांति से व्यक्ति नहीं बदलता; क्रांति से समाज बदलता है। और धर्म व्यक्ति के जीवन में बदलाहट का आधार है।

तो धर्म विद्रोह--वैयक्तिक विद्रोह है।

और एक विरोधाभासी

और एक विरोधाभासी बात याद रख लेना: परमात्मा एक है, इसलिए तुम एक हो कर ही उससे मिल सकोगे। परमात्मा दो नहीं है। परमात्माओं की कोई भीड़ नहीं है। इसलिए तुम भी भीड़ की तरह उससे न मिल सकोगे। उस जैसे ही हो जाओगे, तो मिल सकोगे।

यह भी ध्यान रखने के लिए जरूरी है कि परमात्मा समष्टि नहीं है; परमात्मा सार्वभौमता है। समष्टि तो व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। परमात्मा निरवैयक्तिक है। परमात्मा में सब माया है। परमात्मा सब का जोड़ नहीं है। परमात्मा सब का आधार है। तुम्हारा भी उतना ही आधार है--जितना मेरा; जितना पहाड़ों का, जितना वृक्षों का। अगर हम अपनी जड़ों मग उतर जाएं, तो हम अपने आधार को पा लेंगे। व्यक्ति जब अपनी जड़ों में उतरता है, तो परमात्मा का साक्षात्कार होता है। स्वयं को जान कर ही सत्य जाना जाता है। स्वयं को ही ठीक से पहचान लिया, तो सब पहचान लिया। स्वयं के पहचानते पहचानते ही स्वयं मिट जाता है और सर्व प्रकट हो जाता है। इसलिए मैंने कहा--विरोधाभास। जो स्वयं को जानते नहीं और भीड़ के साथ अपने संबंध जोड़ते रहते हैं, वे बाहर ही बाहर भटकते रहते हैं। धर्म है--अंतर्यात्रा।

सभी संत विद्रोही थे; होना ही होगा। संत हो--और विद्रोही न हो, यह संभव नहीं है। क्योंकि धर्म से बचने की कई तरकीबें आदमी ने निकाल ली हैं और उन सब तरकीबों को तोड़ना पड़ेगा।

सब से बड़ी तरकीब तो आदमी ने यह निकाली है कि उसने झूठे धर्म गढ़ लिए है; उसने नकली सिक्के बना लिए हैं। नकली सिक्कों को हाथ में लेकर चलता रहता है, तो असली सिक्कों की याद भी नहीं आती। नकली परिपूरक हो गये हैं।

परमात्मा का तो कोई पता नहीं है, हमने मंदिर में एक प्रतिमा बना ली है। प्रतिमा हमारी बनाई हुई है। हमें-जिन्हें कि परमात्मा का कोई पता नहीं है। हम ही प्रतिमा को गढ़ लिए हैं; हमने प्रतिमा के सामने खड़े होने के नियम बना लिए हैं। कैसे प्रार्थना करनी, किन शब्दों में

करनी, वे भी हमने गढ़ लिए हैं। हमने ही पुजारी तैनात कर रखा है। हम किस भ्रांति में पड़े हैं! न हमें परमात्मा का पता; न हमें स्तुति का पता। हमें अपना ही पता नहीं है। लेकिन यह जो मंदिर की झूठी प्रतिमा है, इस प्रतिमा के कारण एक भ्रम पैदा होता है कि शायद हमने पूजा कर ली, प्रार्थना कर ली। अब और क्या करें! परमात्मा को जाकर स्तुति कर आये, निवेदन कर आए और हम वैसे के वैसे बने रहते हैं, क्योंकि मिथ्या से कोई रूपांतरण नहीं होता; सत्य से रूपांतरण होता है।

ऐसा समझो कि अंधेरा कमरा है, और तुम एक दीया जलाओ, तो प्रकाश हो जाएगा। लेकिन तुम दीए को एक तस्वीर ले आओ, तो प्रकाश नहीं होगा। दीए की तस्वीर भला कितनी ही दीए जैसी लगे; दीए की तस्वीर तस्वीर है। मूर्ति मूर्ति है। मूर्ति भगवान नहीं है, तस्वीर है।

यह तो ऐसा ही हुआ कि तुम किसी होटल में जाओ और मेनू को ही खाने लगो! मेनू में भोजन के संबंध में जानकारी है; मेनू भोजन नहीं है।

शास्त्र में सत्य के संबंध में जानकारी है। शास्त्र में सत्य नहीं है। शब्दों और सिद्धांतों में तो केवल छाया है; बड़ी दूर की छाया है; उसी को सब कुछ मत मान लेना।

एक झेन फकीर रिंझाई अपने शिष्यों के साथ बैठा था और एक अजनबी, जो पहली दफा ही उसके दर्शन को आया था, उसने कहा कि मुझे एक सवाल पूछना है। बंधनों में पड़ता कौन है? क्योंकि आप सदा कहते हैं, बंधन से छुटो; मुक्त हो जाओ; निर्वाण खोजो यह बंधन में पड़ा कौन है?

रिंझाई ने कहाः दूसरा चांद। वह आदमी कुछ समझा नहीं। दूसरा चांद? उसने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। तो रिंझाई ने कहाः तू बाहर जाकर देख।

रिंझाई का आश्रम एक झील पर है। रात है और चांद निकला है। रिंझाई ने कहाः तू बाहर जाकर देख। एक चांद तो आकाश में है और एक दूसरा चांद झील में है। वह झील में जो चांद है, वही फंसा है। प्रतिबिंब उलझा है। असली तो उलझा ही नहीं है।

बड़ी अदभुत बात कही--दूसरा चांद!

तुमने जो, जहां-जहां दूसरे को पकड़ लिया है, वही-वही उलझन है। सत्य को तो तुमने पकड़ा नहीं है। सत्य को पकड़ो, तो मुक्त हो जाओ। तुमने सत्य की प्रतिध्वनियां पकड़ी ली हैं। तुमने परमात्मा को तो नहीं पकड़ा है; तुमने परमात्मा की प्रतिमाएं पकड़ा ली हैं। तुमने संतों को तो नहीं पकड़ा; तुमने संतों के शब्द पकड़ लिए हैं; शास्त्र पकड़ लिए हैं। तुम हमेशा नंबर दो को पकड़ लेते हो।

वह जो दूसरा चांद है, वही तुम्हारे जीवन में बंधन है। और दूसरे चांद से मुक्त होना होगा, अगर आंखें असली चांद की तरफ उठानी हो।

इसलिए सभी संत तुम्हारे तथाकथित धर्म के विपरीत हैं। तुम्हारे मंदिर, तुम्हारे मस्जिद, तुम्हारी काशी, तुम्हारा केदार, तुम्हारे मक्का-मदीना, तुम्हारे बाइबिल, तुम्हारे वेद, तुम्हारे कुरान--इनके विपरीत हैं। इनके विपरीत होने का कारण है। क्योंकि सभी संत चाहते

हैं कि तुम्हें नारद धर्म उपलब्ध हो जाए। ये उधारी की क्या बातें कर रहे हो! और कब से कर रहे हो? और कब तक करते रहोगे? काफी हो चुका। झूठ के साथ काफी गंवा लिया। मूल को खोजो।

तो विद्रोह का अर्थ है: उधार धर्म से मुक्ति; नगद धर्म की खोज। विद्रोह का अर्थ है: औपचारिक धर्म से मुक्ति; वास्तविक धर्म की खोज।

एक औपचारिक धर्म है। तुम्हारी मां है, तो तुम पैर छूते हो, चाहे पैर छूने का कोई भाव हृदय में उठता न हो; चाहे पैर छूने की कोई भावना न हो। शायद पैर छूना तो दूर, क्रोध हो मन में। शायद मां को क्षमा करने की भी क्षमता तुममें न हो। लेकिन तुम पैर छूते हो। एक औपचारिक, एक व्यवहारिक बात है। छूना चाहिए--मां है।

ऐसी ही तुम मंदिर जाते हो। ऐसे ही तुम शास्त्र पढ़ लेते हो। ऐसे ही तुम प्रार्थना कर लेते हो। तुम्हारा हृदय अछूता ही रह जाता है। तुम्हारे हृदय में कोई तरंगें नहीं उठती; संगीत नहीं गूंजता; कोई नाद नहीं उठता। तुम्हारी हृदय की वीणा अकंपित ही रह जाती है। बस, औपचारिक; करना था--कर लिया--ऐसे करते जाते हो, जैसे तुम्हें प्रयोजन ही नहीं है।

तूने मंदिर जाते लोगों को देखा! तुमने अपने पर खुद विचार किया, जब तुम सुबह उठ कर बैठ कर गीत पढ़ लेते हो; या पूजा कर लेते हो; या घंटी बजा देते हो, पानी ढाल देते हो! सब यंत्रवत! न तो तुम्हें रोमांच होता परमात्मा पर पानी ढालते वक्तः न तुम्हारी आंख से आनंद के अश्रु बहते। भगवान को भोग लगाते वक्त तुम्हारे हृदय में कोई उत्सव होता; न तुम गीत गुनगुनाते। बस उपचार।

उपचार अगर धर्म है, तो तुम अधर्म को छुपा रहे हो। औपचारिक धर्म अधर्म को छिपाने की बड़ी कारगर तरकीब है। इस तरह पता भी नहीं चलता कि मैं अधार्मिक हूं और आदमी अधार्मिक बना रहता है।

धार्मिक होना हो, तो हार्दिक होना जरूरी है। विद्रोह का अर्थ है: जीवन में हार्दिकता आए। वही करो, जो तुम्हारा हृदय करना चाहता है। रुको; अगर अभी सच्ची प्रार्थना पैदा नहीं हुई है, तो कोई जरूरत नहीं है--झूठी प्रार्थना के साथ मन बहलाने का। किसको धोखा दोगे? परमात्मा को तो धोखा नहीं दे सकते। अपने को ही धोखा दे रहे हो। तो व्यर्थ क्यों समय खोते हो?

खतरा यह है कि कहीं झूठी प्रार्थना याद हो जाए, कंठस्थ हो जाए, तो फिर ऐसा न हो कि कंठ अवरुद्ध हो जाए--झूठी प्रार्थना से और असली प्रार्थना के जन्म का स्रोत ही न खुल सके; असली प्रार्थना को बहने की जगह न रहे। कम से कम स्लेट खाली रखो; झूठ तो मत लिखो। झूठ लिखी स्लेट तो खाली स्लेट बेहतर है। कम से कम सत्य किसी दिन उतरेगा, तो तुम उसको अंगीकार तो कर सकोगे।

इसलिए मैं कहता हूं कि पंडित परमात्मा को नहीं समझ पाए हैं।

ताहा हुसैन की एक छोटी-सी कहानी है कि भगवान ने सब जानकर बनाए, पृथ्वी बनाई, चांदत्तारें बनाए, तभी उसने गदहा भी बनाया। गदहा सीधा-सादा जानवर है; निर्दोष, भोला-

भाला। और परमात्मा को गदहे से बड़ा प्रेम था। वह उसे अपने पास ही रखता था। उसकी सादगी उसे पसंद थी। और परमात्मा किताब लिख रहा था एक--मनुष्य-जाति को निर्दोष भेजने के लिए--कि कैसे आदमी जीए। वृक्ष के पत्तों पर वह किताब लिखता था और पत्तों को सम्हाल कर रखता जा रहा था। गह्दा यह देखता था: गदहे को एक बात खयाल में आई कि अगर मैं ये सारे पत्ते चबा जाऊं, तो मैं परमज्ञानी हो जाऊंगा।

गदहा आखिर गदहा! परमात्मा एक दिन दोपहर में सोया था थका मांदा--किताब करीब-करीब पूरी हो गई थी--कि गदहा उस किताब को चर गया। अब परमात्मा ने आंख खोली, तो किताब तो नदारद थी और गदहा बड़ा प्रसन्न खड़ा था! उसने कहा: आप फिक्र मत करो, सब मेरे भीतर है। अब किताब के भेजने की जरूरत नहीं है; मुझे दुनिया में भेज दो।

वैसे भी परमात्मा नाराज था; उसे स्वर्ग से निकालना तो था ही; उसने कहा: अच्छा तू दुनिया में जा। गदहा बड़ा प्रसन्न पृथ्वी पर उतरा। सोचता था कि मेरी पूजा होगी। पूजा हुई--डंडों से हुई। क्योंकि जहां भी गदहा गया, उसने समझाने की कोशिश की लोगों को--कि सुनो, मैं धर्म लेकर आया हूं।

एक तो उसकी आवाज...! उसके रेंकने का स्वर। उसकी भाषा किसी को समझ में न आए। और दूसरा उसका यह दावा! उसने लाख समझाने की कोशिश की कि सब मेरे पेट में पड़ा है; पूरी किताब पी गया हूं पागलों ; सुनो तो सही। मगर कोई उसकी सुने ना। जिसको भी वह सुलझाने समझाने की कोशिश करे, वही उसको डंडे मारे। और कहते हैं--तभी से गदहे की यह हालत है। तब से वह भोला-भाला भी नहीं समझा जाता। अब तो उसको लोग गदहा ही समझते हैं।

ताहा हुसैन की इस कहानी का इशारा पंडित की तरफ है। पंडित का अर्थ है--जो किताब पी गया; किताब चबा गया, किताब जिसके पेट में पड़ी है--या जिसको खोपड़ी में पड़ी है। वह सोचता है। सब मुझे मालूम है और मालूम उसे कुछ भी नहीं है। किताब चबाने से कहीं कुछ मालूम पड़ता है! जीवन को जीने से, अनुभव से, अनुभूति से--शब्द जाल से नहीं, तर्क जाल से नहीं।

तो सारे संतों की बगावत किताबी लोगों के खिलाफ है। सारे संतों की बगावत बुद्धि से हृदय की तरफ जीवन-ऊर्जा को बदलने की है, विचार-मात्र से अनुभव की तरफ से ले जाने की है। तुम्हारी ऊर्जा खोपड़ी में ही गूंजती रहे, तो तुम परमात्मा तक न पहुंच पाओगे। तुम्हारी ऊर्जा हृदय पर बरसे; तुम्हारा हृदय तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का एक सरोवर बन जाए, तो कुछ घटना घट सकती है।

आज के सूत्र अंतिम सूत्र हैं; सीधे-सरल, पर बड़े महत्वपूर्ण।

देवल पूजे कि देवता, की पूजे पाहाड़।

पूजन को जांता भला, जो पीस खाए संसार।।

मलूकदास सीधे-सादे आदमी हैं--ग्रामीण, ग्राम्य; पढ़े-लिख भी नहीं। जो कहते हैं, वह लोक-भाषा है। देवल पूजे कि देवता...कि तुम मंदिर पूजो, कि तुम मंदिर में बैठे देवता को

पूजो, इतने से ही कुछ नहीं--तुम चाहो, तो पूरे पहाड़ों को पूज डालो। मंदिर भी पत्थर से बना हैं; तुम्हारे देवता भी पत्थर से बने हैं; इनसे तो कुछ होगा ही नहीं। तुम चाहो तो पूरे हिमालय को पूजो; पूरे पहाड़ों को पूजो, तो भी कुछ न होगा।

पत्थर की पूजा से खतरा यही है कि कहीं तुम भी पथरीले न हो जाओ। यही हुआ है: पत्थर की पूजा करते-करते लोग पथरीले हो गए हैं। पत्थर की पूजा करते-करते लोग पत्थर हो गये हैं; उनके हृदय पाषाण हो गये हैं। इसीलिए तो हिंदू मुसलमान को काट सकता है; मुलाकात हिंदू को काट सकता है। ईसाई मुसलमान को मार सकते हैं; मुसलमान ईसाई को मार सकते हैं।

मनुष्य जाति का पूरा इतिहास तुम्हारे तथाकथित धार्मिक आदमियों की कठोरता का इतिहास है; हिंसा और रक्तपात का इतिहास है। धार्मिक यह कैसे कर सके? पत्थर हो गये होंगे।

इसमें कुछ मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। हम जिसको पूजेंगे, वैसे ही हो जाएंगे। हमारी पूजा हमें निर्मित करती है। जिसके साथ रहोगे, वैसे हो जाओगे। पत्थरों का बहुत संग-साथ मत करना। पत्थरों पत्थरों में ही रहे, तो धीरे-धीरे तुम भी पत्थर हो जाओगे। क्योंकि हम वैसे ही हो जाते हैं, जिनके हम साथ रहते हैं।

अपने से श्रेष्ठ का साथ खोजो। अगर पूजना ही हो,तो कहीं किसी जीवित संत को पूजना। किसी को पूजना, जिसकी तरफ आंखें ऊपर उठानी पड़ती हो। किसी को पूजना, जो तुमसे कहीं ज्यादा ऊंचाई पर हो। चाहे एक कदम ही आगे, तुमसे क्यों न हो। किसी को पूजना, जिसकी चेतना तुमसे ज्यादा प्रगाढ़ हो; तुमसे ज्यादा उज्ज्वलतर हो।

पत्थर! जड़--जहां चैतन्य नाम-मात्र को नहीं है, उसे तुम पूजने चले? तुमने परमात्मा की पूजा के लिए ठीक परमात्मा से विपरीत चीज खोज ली--पत्थर। इससे तो बेहतर था: वृक्ष को पूज लेते: कम से कम जीवंत तो था, बढ़ता तो था। लेकिन वह पूजा भी ठीक नहीं है। क्योंकि वृक्ष तुमसे बहुत पीछे है। पूजा करो अपने से आगे की। क्योंकि पूजा तो इशारा है। पूजा तो हम उसकी करते हैं, जो हम होना चाहते हैं। तुम पत्थर होना चाहते हो?--तो पत्थर की पूजा करो।

पूजा का तो अर्थ ही इतना हुआ कि यह हमारी अभिलाषा है; हम भी चाहेंगे कि कभी ऐसे हो जाएं। ठीक है, राम को पूजा, समझ में आया। कृष्ण को पूजा, समझ में आया। बुद्ध को पूजा, महावीर को पूजा--समझ में आया। लेकिन पत्थर को पूजा?

कोई बुद्ध मिल जाए, तो पूज लेना। लेकिन बुद्ध तो कभी-कभी होते हैं। और जब बुद्ध होते हैं, जब हमें पहचान में नहीं आते हैं। और जब बुद्ध होते हैं, तो हमें उनसे डर भी लगता है। क्योंकि बुद्ध के पास जाना, खतरे से खाली नहीं है। बुद्ध के पास जाने का मतलब ही यह हुआ कि बदलना पड़ेगा। गये--कि मिटे। बुद्धत्व संक्रामक है। जैसे रोग पकड़ता है, ऐसे अध्यात्म भी पकड़ता है। और रोग का तो इलाज है; अध्यात्म का कोई इलाज नहीं है। बुद्ध के पास जाने का मतलब हुआ कि तुम्हें वह दूर पार की पुकार पकड़ लेगी, प्यास पकड़ लेगी। फिर जब तक तुम पहुंच ही न जाओ उस मंजिल तक, तब तक तुम्हें रोना ही रोना

है। विरह की अग्नि पकड़ लेगी। तब तुम जहां हो, वहां सब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा और जहां तुम्हें सार्थक दिखाई पड़ेगा, वह बहुत देर है। तब बेचैनी होगी ही। तब तुम रोओगे ही। तुम्हारा सब खूब-चैन छिन जाएगा। तुम्हारे सारे सपने टूट जाएंगे।

तुम तूफान समझ पाओगे?
गीले बादल, पीले रजकण
सूखे पत्ते, सूख तृण घन
ले कर चलता करता हर-हर
इसका गान समझ पाओगे?
तुम तूफान समझ पाओगे?
गंध भरा यह मंद पवन था
लहराता इसमें मधुवन था
सहसा इसका टूट गया जो
स्वप्न महान, समझ पाओगे?
तुम तूफान समझ पाओगे?

बुद्धों के पास होने का अर्थ है: तूफान के पास होना। और वह जो तुम सपना देख रहे थे: धन का, पद का, प्रतिष्ठा का, मद-मत्सर का--वह सब सपना टूट जाएगा। उस तूफान में तुम्हारी वासनाएं झकझोर कर बिखर जाएंगी। उस तूफान में तुम वही न रह जाओगे, जो तुम कल तक थे। तुम्हारे बनाए भक्त भूमिसात हो जाएंगे। तुम्हारी तैराई हुई नावें डूब जाएंगी। और तुमने अब तक जो जाना था, वह सब व्यर्थ और झूठा मालूम होगा। इसलिए बुद्धों से तो लोग बचते हैं। हां, बुद्ध जब मर जाते हैं, तो उनकी प्रतिमा बनाते हैं।

तुम जानकर चकित होओगे कि अरबी में, उर्दू में प्रतिमा के लिए जो शब्द है बुत , वह बुद्ध का ही रूपांतरण है। बुद्ध की इतनी प्रतिमाएं बनीं, कि जब पहली दफा मध्य एशिया के मूल्य बुद्ध की प्रतिमाओं से परिचित हुए, तो उन्होंने पूछा: यह क्या है? लोगों ने कहा: यह बुद्ध हैं। तुम बुत शब्द प्रतिमा का ही प्रतीक हो गया। बुत बुद्ध का ही रूपांतरण है।

करोड़ों प्रतिमाएं बनीं बुद्ध की। जिन्होंने कभी बुद्ध को उनके जीते जी नहीं पूजा, वे प्रतिमाओं को पूजने लगे।

प्रतिमा को पूजने में आसानी है। प्रतिमा तुम्हें नहीं बदलती; तुम्हें बदल नहीं सकती। प्रतिमा के तो तुम ही मालिक होते हो। जब चाहो, पट खोलो मंदिर के; और जब चाहो, तब आराध्य लगाओ। जब चाहो तब अर्चना करो। जब चाहो, तब भोग लगाओ; जो लगना हो--लगाओ। न लगाना हो--न लगाओ। नहलाना हो--नहला दो; न नहलाना हो--न नहलाओ। जो तुम्हारी मरजी; तुम्हारी मौज!

मैं पंजाब जाता था, तो घर में ठहरा हुआ था। सुबह उठकर जब मैं अपने कमरे से बाथरूम की तरफ पीछे उनके आंगन में जा रहा था, तो बीच के कमरे से गुजरा, तो मैंने देखा कि वहां गुरु-ग्रंथ साहब को एक प्रतिमा की तरह सजा कर रखा हुआ है। चलो, कोई हरजा नहीं।

लेकिन सामने ही एक लोटा भर रखा है और एक दातौन रखी है! तो मैंने पूछा कि यह मामला क्या है! तो उन्होंने कहा कि गुरु-ग्रंथ साहब के लिए दातौन।

पानी भर के लोटा रख दिया है और दातौन रख दी है। तो मैंने कहाः भले मानुषों, कम से कम टूथ ब्रश रखा होता! कुछ तो सदव्यवहार करो। अब दातौन कौन करता है? तुम दातौन करते हो? उन्होंने कहा कि नहीं। तो मैंने कहाः तुम जो नहीं करते, कम से कम वह तो मत करवाओ। मगर तुम्हारी मौज है। गुरु-ग्रंथ से जो करवाना हो करवाओ। चाहे दातौन करवाओ; चाहे टूट ब्रश रखो। और न रखो, तो गुरु-ग्रंथ कुछ कर न लेंगे।

अब नानक ने प्रतिमा का विरोध किया है। लेकिन प्रतिमा से क्या होता है? हम किताब ही प्रतिमा बना लेंगे!

अब कोई राम की प्रतिमा के सामने अगर दातौन रखता हो, तो थोड़ी बात समझ में भी आती है; लेकिन किताब के सामने दातौन--तो बात ही बिलकुल मूढता की हो गई। यह तो आखिरी हद्द हो गई। हो तो पंजाबी ही कर सकता है।

अगर आदमी कुछ ऐसा है...। प्रतिमा तुम्हारे वश में हो जाती है। तुम जो चाहो, जैसा चाहो--करो।

बुद्ध के पास जाओगे, तो तुम्हें बुद्ध के वश मग होना पड़ेगा।

अगर खयाल रखनाः तुम जिसे पूजोगे, जाने अनजाने, तुम वही होने लगोगे। किताब पूजोगे, तो किताबी हो जाओगे। पत्थर पूजोगे, पथरीले हो जाओगे। अगर पूजना ही हो, तो चैतन्य को पूजो। पूजना ही हो, तो चेतना के नए-नए अवतारों को पूजो। पूजना ही हो, तो उठाओ आंख ऊपर की तरफ। कम से कम इतना तो होगा कि तुम्हारी पूजा तुम्हें ऊपर खींच सकेगी।

कहावत हैः संग-साथ सोच कर करना चाहिए। जिनके साथ तुम रहते हो, उन जैसे हो जाते हो।

अकसर ऐसा होता है कि जो लोग मशीनों में ही काम करते हैं, वे मशीनों जैसे हो जाते हैं; यंत्रवत हो जाते हैं। पश्चिम में यह घट रहा है। लोग चूंकि मशीनों के साथ ही दिनभर काम में लगे रहते हैं; कभी एक मशीन, कभी दूसरी मशीन, तो धीरे-धीरे तुम्हारे चीत का मशीनी करण हो जाता है।

कलकत्ता मैं जाता था, तो एक घर में मेहमान होता था। जिनके घर मेहमान होता था, वे हाईकोर्ट के न्यायाधीश थे। उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि मेरे पति आपको इतना मानते हैं, आप कम से कम इनको इतना तो कहो कि कम से कम घर में आकर न्यायाधीशी न किया करें। दफ्तर में इन्हें जो करना हो--करें।

मैंने उनसे पूछा कि क्या ये घर में भी न्यायाधीश बने रहते हैं? उन्होंने कहाः आपसे क्या छिपाना। घर की तो बात छोड़ो, रात बिस्तर पर भी ये न्यायाधीश ही रहते हैं। आर हम सब ऐसे डरे रहते हैं, जैसे मुजरिम हैं! हर बात में कानून! और हर बात में वही अकड़, जो न्यायाधीश की--अदालत में होती है। हम तंग आ गये हैं। हम घबड़ा गये हैं। बच्चे इनको

देखकर भाग जाते हैं बाहर। जब तक ये घर में रहते हैं, कोई बच्चा घर में खेलता नहीं। क्योंकि हर चीज में इनको गलती दिखाई पड़ती है। हर चीज में नियम का उल्लंघन दिखाई पड़ता है।

यह हो जाता है। जो आदमी जा कर आठ घंटे चौराहे पर पुलिस का काम करता है, वह घर लौट कर भी पुलिसवाला ही रहता है। इतना आसान थोड़े ही है; इतनी बुद्धिमत्ता कहां तुमसे कि तुम दफ्तर से आओ, दफ्तर को दफ्तर में ही छोड़ आओ। इतना आसान नहीं है। दफ्तर साथ चला आता है! क्लर्क के दिमाग में फाइलें चला आती हैं तैरती। वह घर भी बैठ कर फाइलों की ही सोचता है। भोजन भी करता है, तब भी भीतर फाइलें पलटता रहता है। राम सोता भी है, तो सपने उन्हीं के देखता है।

हम जिनके साथ रहते हैं, वैसे हो जाते हैं। तो यह तो बड़ा खतरनाक और दुर्भाग्यपूर्ण चुनाव है कि आदमी ने भगवान पत्थर के बना लिए है। इससे आदमी पथरीला हो गया है।

कहते हैं मलूकदासः देवल पूजे की देवता, कि पूजे पाहाड़। तुम चाहो तो पहाड़ पूजने लगो, इससे कुछ भी न होगा। पूजन को जांता भला, जो पीस खाए संसार। लेकिन अगर पत्थर से बहुत मोह लग गया हो, कि पत्थर के बिना चलना ही न हो, तो फिर तुम चक्की के पत्थर को पूजो। कम से कम इतना तो होगाः पूजन को जांता भला, जो पीस खाए संसार। कम से कम पीस तो सकेंगे लोग उससे; कुछ तो हो सकेगा। कुछ काम तो आ जाएंगे।

तुम्हारे भगवान तो बिलकुल बेकाम हैं। बेकाम ही नहीं हैं, खतरनाक भी हैं। मंदिर, मस्जिद का सारा काम ही राजनीति है; उपद्रव है; आदमी आदमी को लड़ना है।

ठीक कहते हैं मलूकः पूजन को जांता भला जांता यानी चक्की। तो चक्की के दो पाट हैं, वे ही भले हैं। कम से कम इतना तो होगाः जो पीस खाए संसार अगर पत्थर ही पूजता है, तो चक्की पूजो; किसी काम आ जाएगी कम से कम लड़ाएगी तो ना; भूखे का पेट भर देगी। शायद चक्की को पीसते-पीसते तुम्हारे मन में भी भूखे के प्रति दया आ जाए। शायद तुम्हारे मन में भी प्रेम का अंकुरण हो। शायद प्यासे और भूखे के प्रति तुम्हारे मन में भी करुणा का आविर्भाव हो।

यह तो व्यंग में कह रहे हैं मलूकदास--कि अब तुम्हें पत्थर से ही मोह लग गया हो, तो चक्की के पत्थर अच्छे।

मगर आदमी अदभुत है। मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। वहां एक मंदिर है, उसका नाम है--पिसनहारी की मढ़िया। मैं उत्सुक हुआ कि यह पिसनहारी की मढ़ियां क्या है! तो मैं गया। किसी पिसनहारी ने कभी पांच सात सौ साल पहले पीस-पीस के पैसे इकट्ठे करके यह मंदिर बनाया। तो लोगों ने उसकी याददाश्त में क्यों किया? उस मंदिर के शिखर पर उसकी चक्की लटका दी। अब उसकी पूजा हो रही है।

जब मैं पिसनहारी की मढ़िया गया, तो मैंने सोचा कि बाबा मलूकदास, तुमने अगर पिसनहारी की मढ़िया देखी होती, तो तुम कभी न कहतेः पूजन को जांता भला, तो पीस खाए संसार!

लोग चक्की की भी पूजा कर रहे हैं; उसमें फूल चढ़ा रहे हैं! मंदिर में भोग लगता है; पुजारी है। चक्की की भी पूजा चल रही है!

तो बाबा मलूकदास शायद फिर व्यंग में भी कहने की यह हिम्मत न जुटाते। आदमी ऐसा मूढ़ है कि इस व्यंग को भी शायद समझे।

असली बात खयाल में लेने की है कि तुम्हारी भीतर परमात्मा बैठ है। तुम जब भी किसी की पूजा करोगे, तभी तुम अपने भीतर के परमात्मा का अपमान कर रहे हो। जब तक कि तुम्हें परमात्मा ही उपलब्ध न हो जाए, तब तक किसी की भी पूजा का कोई अर्थ नहीं है।

फिर अगर बिना पूजा किए चलता ही न हो, तो किन्हीं ऐसे व्यक्तियों का पूजन करना, जिनके भीतर से तुम्हें ज्योतिर्मय का कोई आविर्भाव होता हुआ मालूम पड़ता हो; जिनके भीतर दीया जलता हुआ मालूम पड़ता हो। इन्हीं को हमने तीर्थंकर कहा, अवतार कहा, भगवान कहा।

किसी ऐसे व्यक्ति को पूज लेना। मगर यह भी मजबूरी ही हो पूजने की तो। आवश्यक नहीं है। आवश्यक तो इतना ही कि तुम अपने भीतर ही देखना शुरू कर दो। तुम मंदिर हो। और तुम जिसकी तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

मक्का मदिना द्वारका, बदरी अरु केदार।

बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार।।

तो मलूक कहते हैं: एक सूत्र की बात समझ लो कि दया सूत्र है। तुम्हारी पूजा-प्रार्थना से तुममें दया बढ़े, तो ठीक। तुम्हारे मंदिर मस्जिद से दया बढ़े, तो ठीक। तुम दया को कसौटी समझो, मापदंड समझो, यह तराजू है; इस पर तौल लेना।

दुनिया के सभी संतों ने यही कहा महावीर कहते हैं--अहिंसा। वह दया के लिए उनका नाम है। बुद्ध कहते हैं--करुणा। वह दया के लिए उनका नाम है। जीसस कहते हैं--सेवा। वह दया के लिए उनका नाम है। दया कहो, सेवा कहो, करुणा कहो, अहिंसा कहो--ये नाम भर के भेद हैं। लेकिन एक बात खयाल रखना: चारों शब्द स्त्री वाची हैं। दया, करुणा, अहिंसा, सेवा--सब स्त्रैण हैं। यह बात समझने जैसी है।

भाषा भी अकारण नहीं बनती। भाषा भी धीरे-धीरे किन्हीं कारणों से निर्मित होती है।

पुरुष का हृदय कठोर है। इसलिए कठोरता को हम पुरुषता कहते हैं। पुरुष का अर्थ होता है--कठोर। वह पुरुष ने बना हुआ शब्द है। पुरुष का चित्त आक्रामक है; हिंसात्मक है। पुरुष की सारी आकांक्षा दूसरों पर कब्जा कर लेने की है, मालकियत कर लेने की है। राज्य फैले, साम्राज्य बने।

पुरुष बड़ा मजा लेता है--शक्तिशाली होने में। उसकी सारी खोज शक्ति की है। कितनी मेरी सत्ता हो--कि प्रधानमंत्री, कि राष्ट्रपति--कि कितनी मेरी सत्ता हो, कि सारी पृथ्वी पर मेरा राज्य हो जाए--ऐसी पुरुष की आकांक्षा है। स्वभावतः जब तुम दूसरे पर सत्ता करोगे, तो दया न कर सकोगे। सत्ताधिकारी दयावान नहीं हो सकता--हो ही नहीं सकता। सत्ता के आधार ही हिंसा पर खड़े हैं। जब दूसरे की मालकियत करनी हो, तो दूसरे को मिटाना पड़ेगा।

दुनिया में दो ही बातें हैंः या तो तुम दूसरे के ऊपर चढ़ जाओ, नहीं तो दूसरा तुम्हारे ऊपर चढ़ जाएगा। इसके पहले कि दूसरा तुम्हारे ऊपर चढ़ जाए, तुम दूसरे पर चढ़ जाओ। यही तो मैक्यावेली ने कहा कि है कि अगर तुमने न लूटा तो लूटे जाओगे। इसके पहले कि कोई लूटे, तुम लूट लोः क्योंकि जो पहल लेता है, वही फायदे में रहता है।

पुरुष का शास्त्र तो मैक्यावेली का शास्त्र है। आक्रमण, हिंसा, बल, सत्ता, शक्ति। पुरुष तो धर्म में भी उत्सुक होता है, तो इसीलिए उत्सुक होता है कि शायद परमात्मा को पाकर सिद्धियां मिल जाए। शायद ध्यान लग जाए, तो चमत्कार की शक्ति आ जाए; जो अभी नहीं कर सकता हूं, कल कर सकूं। लेकिन उसका जोर सदा दुनिया को दिखलाने में है कि मैं कुछ हूं।

पुरुष का मौलिक आधार अहंकार है। जितने भी कोमल गुण हैं, वे स्त्री के गुण हैंः दया, ममता, करुणा, अहिंसा, सेवा--वे स्त्रैण गुण हैं। और तुम जान कर चकित होओगे कि हमने इस बात को स्वीकार किया--बहुत रूपों में।

तुमने बुद्ध के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ देखी? या महावीर के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ देखी? जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में किसी को भी दाढ़ी-मूंछ नहीं है। न राम को, न कृष्ण की। तुमने दढ़ियल राम देखे? कि कृष्ण देखे? मामला क्या हुआ? इन सब में कुछ हार्मोन की कमी थी? मुखन्नस थे? क्या बात थी? इसमें कुछ कमी थी! एकाध में होती तो चल जाती। लेकिन ये सब के सब?

नहीं; इनको भी दाढ़ी थी। इनको भी मूंछें ऊगी थी। लेकिन हमने एक बात का प्रतीक चुना कि उनका चेहरा पुरुष जैसा हमने नहीं बनाया। क्योंकि इनके भीतर से पुरुषता समाप्त हो गई थी। इसके भीतर स्त्रैण तत्व का उदय हुआ था। इस सत्य की घोषणा के लिए हमने दाढ़ी-मूंछ बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम की नहीं बनाई। बहुत सोचकर...। ये यथार्थवादी मूर्तियां नहीं हैं; ये आदर्शवादी मूर्तियां हैं।

यह मत सोचना कि बुद्ध ऐसे लगते थे, जैसी उनकी मूर्ति है। न ऐसी बुद्धि के भीतर की अवस्था थी। उस भीतर की अवस्था को हमने चित्रित करने की को कोशिश की है। ये फोटोग्राफ नहीं हैं। इनका यथार्थ से कोई संबंध नहीं है। इनके भीतर जो घटना घटी थी, उसका इंगित है। इसलिए बुद्ध के चेहरे को देख कर तुम्हें स्त्रैण लगेगा। हाथ-पैर भी गोलाई लिए हैं, जैसे स्त्री के होते हैं। मस्कुलर नहीं है जैसे पुरुष का शरीर होता है, ऐसा नहीं है। क्षत्रिय थे; शरीर तो बलिष्ठ रहा होगा। सभी क्षत्रिय थे--कृष्ण, और राम, और बुद्ध, और महावीर, और सारे तीर्थंकर तो शरीर तो बलिष्ठ रहा होगा। शरीर तो जैसा पुरुष का शरीर होना चाहिए, वैसा रहा होगा। लेकिन हमने चित्रित किया है इस भांति, जैसे स्त्रैण हो। भीतर को कोमलता को इंगित किया है।

बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार।

तुम्हारे भीतर जितने भी पुरुष गुण हैं, वे कठोर गुण हैं, वे शांत हो जाए और जितने स्त्रैण गुण हैं, वे जग जाए, बस, तो तुम्हारे जीवन में धर्म की शुरुआत हुई।

तो पत्थर की पूजा की जगह, फूल की पूजा ज्यादा अच्छी होगी। अब तू देखो, हम उलटा करते हैं। हम फूल तो तोड़ लेते हैं, पत्थर पर चढ़ा देते हैं। करना ऐसा चाहिए कि पत्थर को उठा कर फूल पर चढ़ा दें।

फूल कोमल है, उसको जा कर कठोर पर चढ़ा आते हैं। उस दिन बड़े सौभाग्य का दिन होगा, जिस दिन हम पत्थर को उठा कर फूल पर चढ़ा आएंगे। उस दिन हमने कोमल के प्रति ज्यादा सम्मान दिखाया। अभी हम कोमल को तोड़ते रहे हैं।

दया कसौटी है। तुम हिंदू हो या मुसलमान, कि ईसाई, कि जैन कि बौद्ध--दो कौड़ी की बात है। दयावान हो--तो बस, सब ठीक है: हिंदू हो, तो ठीक; मुसलमान हो, तो ठीक; ईसाई हो, तो ठीक। और दयावान नहीं हो, तो सब व्यर्थ है।

मोहम्मद एक गुफा में छिपने को आये हैं। उनका एक शिष्य उनके साथ है। दुश्मन उनके पीछे लगे हैं। बड़ा खतरनाक है क्षण। घोड़ों की आवाज पीछे से आ रही है। और वे गुफा के भीतर प्रवेश करने को ही हैं कि मोहम्मद ठिठक गये और उन्होंने अपने मित्र को भी कहा कि रुक, भीतर मत जा। उसने कहा: यह रुकने का वक्त नहीं है। भीतर चलें। किसी तरह छिप जाए। यह गुफा कारगर है; समय पर आ गई; भगवान की कृपा है।

मोहम्मद ने कहा: वह तो ठीक है। लेकिन देखता है--गुफा के द्वार पर मकड़ी ने अभी-अभी जाला बुना है--ताजा जाला है; मकड़ी अभी बुन ही रही है, उसे तोड़ना उचित नहीं है।

मित्र तो चकित हुआ। उसने कहा कि मकड़ी के जाले को मैं साफ किए देता हूं। इसमें तोड़ने की क्या बात है! पर मोहम्मद ने कहा: उसने बड़ी मेहनत से बनाया है। देखते हो! हम कोई आर गुफा खोज लेंगे। लेकिन मकड़ी के साथ कठोरता करना उचित नहीं है।

यह मुसलमान का लक्षण हुआ। यह ठीक अर्थों में धार्मिक का लक्षण हुआ। कठोरता जहां न रह जाए, जहां हृदय कोमल हो; पत्थर जैसा न हो, नवनीत जैसा हो--कोमल हो, फूल जैसा हो।

मक्का मदिना द्वारका, बदरी अरु केदार।

बिना दया सब झूठ है, कहे मलूक विचार।।

मलूक कहते हैं: तुम जाओ बदरी, तुम जाओ केदार--मक्का, मदीना, द्वारका, तुम भटको सारी दुनिया में--कुछ भी न होगा। तुम दया के मंदिर में प्रवेश कर जाओ और सब हो जाएगा।

कहै मलूक विचार, खयाल रखना: यहां विचार का वही अर्थ नहीं होता, जो तुम्हारे विचार का होता है। तुमने तो कभी विचार किया ही नहीं है। हां बहुत विचार तुम्हारी खोपड़ी से गुजरते हैं--यह बात सच है। मगर विचार तुमने कभी नहीं किया है। विचार करने के लिए जितना होश चाहिए, उतना होश तुममें नहीं है।

तुम्हारे भीतर तो दूसरों के विचार तैरते रहते हैं। किसी ने कुछ कह दिया, वह तुम्हारी खोपड़ी में समा जाता है। कहीं कुछ पढ़ लिया, वह समा गया। फिर इन्हीं के साथ तुम

डांवाडोल होते रहते हो। तुमने कभी खुद कुछ विचारा है? तुम्हारे पास एक भी ऐसा विचार है, जो तुम्हारा हो? जो तुम कह सको प्रामाणिक रूप से--मेरा है!

तुम बड़े हैरान हो जाओगे; अगर तुम अपनी विचार की राशि में खोजने जाओगे तो तुम्हें शायद ही एकाध विचार मिले, जो तुम्हारा है--प्रामाणिक रूप से तुम्हारा है। तुम पाओगे--सब है; सब बासा है; सब किसी और का है। और अगर कभी तुम कोई एकाध विचार ऐसा भी पाओगे, जिसे तुम कह सको: मेरा है, तो वह भी तुम गौर करोगे, तो अनुभव में आ जाएगा कि वह भी दूसरों के विचारों का जोड़त्तोड़ है। कहीं से टांग ले ली, कहीं से हाथ ले लिया, कहीं से सिर ले लिया; एक पुतला खड़ा कर दिया।

लेकिन मौलिक विचार तो तभी संभव होता है, जब सब विचार रोकने की क्षमता तुममें आ जाती है; सब विचार रोक देने की क्षमता तुममें आ जाती है। जब तुम निर्विचार होने में कुशल हो जाते हो, तब तुम विचार करने में सफल होते हो। यह बात विरोधाभासी है, लेकिन ऐसा ही है।

जिस दिन तुम निर्विचार होने में समर्थ हो गये; जिस दिन तुम चाहो, तो समय बीतता जाए और तुम्हारे भीतर विचार की तरंग भी न उठेगी; जिस दिन तुम मालिक हो गए इस बात के...। अभी तो तुम मालिक नहीं हो। अभी तो तुम लाख चाहते हो--विचार न उठे, मगर विचार चलते चले जाते हैं। तुम उनसे कहते भी हो कि भाई, क्षमा करो; अब जाओ भी; अब जरा मुझे सो लेने दो। मगर वे तुम्हारी सुनते नहीं। वे मालिक बन बैठे हैं; तुम तो गुलाम हो। जब चले जाते हैं, तो ठीक। न जाए--तो न जाए; तुम्हारा कोई बस नहीं है। तुम बड़े बेबस हो।

जब मलूक कहते हैं--कहै मलूक विचार, तो वे यह कह रहे हैं कि जब निर्विचार शांत चित्त की दशा में मैंने देखा; जब मैंने आंख गड़ाई--जीवन के सत्य पर; जब मैंने निर्विचार चित्त के दर्पण में जीवन की झलक पाई, तो मैंने पाया: बिना दया सब झूठ है।

तो तुम्हारे मंदिर, मस्जिद, तुम्हारी पूजा-प्रार्थना-अर्चना सब झूठ है; तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे वेद, कुरान--सब झूठ हैं। बिना दया सब झूठ है।

एक दया तुम्हारे भीतर आ जाए, तो परमात्मा का पहला चरण तुम्हारे भीतर पड़ा। एक दया तुम्हारे भीतर जा आए, तो तुम्हारा पहला संबंध परमात्मा से हुआ।

दया का अर्थ होता है: इस बात की प्रतीति कि जैसा मैं हूं, वैसे ही दूसरे भी है। जितना मूल्यवान मैं हूं, उतने ही मूल्यवान दूसरे भी हैं। अब मैं किसी का साधन की तरह उपयोग न करूंगा। सभी परम साध्य हैं; कोई साधन नहीं है। मैं अपनी पत्नी की उपयोग साधन की तरह अब न करूंगा। मैं अपने पति का उपयोग अब साधन की तरह न करूंगी। मैं अपने बेटे का उपयोग साधन की तरह न करूंगा। क्योंकि जिसका भी हमने साधन की तरह उपयोग किया, हमने उसके साथ अनैतिक संबंध जोड़े। जिसका हमने साधन की तरफ उपयोग किया, हमने उसके भीतर बैठे हुए परमात्मा की गरिमा स्वीकार नहीं की।

इमेनुएल कान्ट ने नीति की परिभाषा में यह कहा है कि वही कृत्य नैतिक है, जिसमें तुम दूसरे का साधन की तरह व्यवहार नहीं करते; जिसमें दूसरा स्वयं साध्य है--ऐण्ड इन इटसेल्फ; जिसमें दूसरा स्वयं साध्य है।

दया का अर्थ होता है: मैं जितना मूल्यवान, उतने ही मूल्यवान तुम हो--न जरा कम, न जरा ज्यादा। जिस दिन तुम देखते हो कि मेरा मूल्य सारे अस्तित्व का मूल्य है; जो मैं अपने लिए चाहता हूं, वही मैं दूसरे के लिए भी चाहूं।...

यहूदी फकीर हुआ--हिलले। एक नास्तिक हिलेल के पास आया और उस नास्तिक ने कहा कि सुनो...। और वह नास्तिक एक पैर पर खड़ा हो गया और उसने कहा। सुनो। मैंने सुना है कि तुम बड़े ज्ञानी हो। मैं ज्यादा बकवास में नहीं पड़ना चाहता। मैं नास्तिक हूं। मैं संक्षिप्त उत्तर चाहता हूं। मैं जितनी देर एक पैर पर खड़ा रहूं, उतनी देर में तुम उत्तर दे दो कि धर्म का सार क्या है?

हिलेल ने कहा: धर्म का सार इतना ही है--जैसा तुम अपने साथ व्यवहार करते हो, वैसा दूसरे के साथ करो। बस, इतना ही।

बात तो पूरी हो जाती है। इसमें ज्यादा धर्म का कोई सार नहीं है: बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार। फिर तुम भूल भी जाओ परमात्मा को, तो कोई हरजा नहीं; परमात्मा तुम्हें नहीं भूलेगा। और अभी तुम लाख परमात्मा को याद करो, तुम्हारे सब याद व्यर्थ है। परमात्मा तुम्हें याद नहीं करेगा। तुम्हारी एक ही पूजा स्वीकृत होगी; वही पूजा जिसमें दया सम्मिलित है। तुम्हारी एक ही पूजा अंगीकार होगी। फूलों के द्वारा नहीं; तुम्हारे हृदय की करुणा के द्वारा। करुणा के फूल तुम चढ़ाओ--परमात्मा के चरणों में। तुम्हारा जीवन ऐसा हो कि उससे किसी को चोट न पहुंचे।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारा जीवन ऐसा हो कि तुम सदा इसका ही खयाल करते रहो कि किसी को चोट न पहुंच जाए। तुम्हारा जीवन ऐसा हो कि किसी को चोप न पहुंचे, तो भी दूसरों को चोट पहुंच सकती है, वह दूसरी बात है।

जीसस से बहुत लोगों को चोट पहुंची, नहीं तो वे सूली पर नहीं लटकाए जाते। यद्यपि जीसस ने किसी को चोट नहीं पहुंचानी चाही थी। बुद्ध पर भी लोगों ने पत्थर फेंके हैं, यद्यपि बुद्ध ने किसी को चोट नहीं पहुंचानी चाही थी।

तुम किसी को चोट न पहुंचाना चाहो, बस, इतना काफी है। तुम इतना ध्यान रखो कि सब का मूल्य आत्यन्तिक है। फिर भी किसी को चोट पहुंच सकती है। बहुत बार तो ऐसा होता है: तुम्हारा आनंदित होना ही दूसरों को चोट पहुंचाने के लिए काफी हो जाता है। लोग इतने दुःखी हैं कि तुम्हें आनंदित देखकर उनके बरदाश्त के बाहर हो जाता है। लोग इतने अंधेरे में खड़े हैं, और तुम्हारी आंखों में रोशनी? वे तुम्हारी आंखें फोड़ देने को उत्सुक होते हैं। लोग इतने परेशान हैं और तुम निश्चिंत बैठे हो--समाधिस्थ! यह बरदास्त के बाहर हो जाता है।

लोग नहीं कहते कि तुम उनकी नींद तोड़ो; वे अपने सपनों में खोए हैं। और तुम चाहते हो, उनके हित में--उनकी नींद टूट जाए। उनके ही हित के लिए तुम प्रयास करते हो!

बुद्ध का एक भिक्षु पूर्ण बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। और बुद्ध ने उसे कहाः अब मेरे पास रहने की तुझे कोई जरूरत नहीं, क्योंकि अब तो तू वही हो गया है--जो मैं हूं। अब तू जा। दूर--दूर-जहां-जहां सोए लोग हैं, वहां-वहां जा। जागने की खबर ले जा। यह सुगंध, जो तुझे मिली है--बिखरा हवाओं में; पहुंचने दे अधिकतम लोगों तक। यह जो ज्योति तेरे भीतर जगी है, उसकी किरणें जितने लोगों को मिल जाए, उतना अच्छा। जा तू कहां जाना चाहेगा--पूर्ण!

तो उसे पूर्ण ने कहा...। बिहार का एक हिस्सा था, जहां कोई भिक्षु जाता नहीं था; दुष्ट लोग थे वहां के। उस हिस्से का नाम था--सूखा। भूखे लोग थे वहां के; जिनके हृदय बिलकुल सूख चुके थे; जिसमें रस-धार थी ही नहीं।

उसने कहाः मैं सूखा प्रांत जाऊंगा। बुद्ध ने कहाः वहां न जा, तो अच्छा। यहां के लोग बड़े दुष्ट हैं; वे तुझे सताएंगे। उसने कहाः इसलिए तो उनको मेरी जरूरत है; कोई जाए, उनको जगाए। बुद्ध ने कहाः तेरा इरादा तो अच्छा मेरी जरूरत है; कोई जाए, उनको जगाए। बुद्ध ने कहाः तेरा इरादा तो अच्छा है, लेकिन मैं तीन प्रश्न पूछना चाहता हूं। पहला प्रश्न--तू जा कर उनसे भली बातें कहेगा। लेकिन वे भली बातें उन्हें जैसी लगेगी। वे तुझे गालियां देंगे। वे तेरा अपमान करेंगे। वे तेरी दुर्दशा करेंगे। जब वे तुझे गालियां देंगे, तो तुझे क्या होगा पूर्ण ? पहल तू मुझे इसका उत्तर दे।

पूर्ण ने कहाः इसमें होने की क्या बात है! आप जानते हैं; उत्तर क्या देना है? दे मुझे गालियां देंगे, तो मैं सोचूंगा--कितने भले लोग हैं, गालियां ही देते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे।

बुद्ध ने कहाः चल, दूसरे प्रश्न। अगर वे तुझे मारें, फिर? उसने कहाः आप भी क्या पूछते हैं! आपको पता है। जब वे मुझे मारेंगे, तो मैं उन्हें धन्यवाद दूंगा--कि कितने भले लोग हैं; सिर्फ मारते हैं--मार ही नहीं डालते! मार भी डाल सकते थे।

बुद्ध ने कहाः चल यह भी जाने दे। अब तीसरा आखिरी सवाल। अगर वे तुझे मार ही डालें, तो मरते-मरते मुझे क्या होगा? पूर्ण ने कहाः आप फिजूल की बातें पूछते हैं। आपको पता है कि मुझे क्या होगा। मरते वक्त मैं सोचूंगा--कितने भले लोग है; उस जीवन से छुटकारा दिला दिया, जिसमें कोई भूल चूक हो सकती थी।

यह दया की आखिरी पराकाष्ठा है।

तो जब मैं तुमसे कहता हूं कि दूसरे को चोट न पहुंचे, तो इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे को चोट नहीं ही पहुंचेगी। तुम मत पहुंचाना। तुम्हारा अभिप्राय न हो। बस, फिर भी पहुंच सकती है। पहुंचेगी ही। सुकरात से पहुंची। जीसस से पहुंची। मंसूर से पहुंची। पहुंचेगी ही।

लोग पागल हैं। और जब किसी व्यक्ति के जीवन में विक्षिप्तता समाप्त होती है, तो वह इतना अजनबी मालूम पड़ने लगता है--लोगों को कि कि उसे बरदाश्त करना मुश्किल हो जाता है।

उसकी मौजूदगी खलने लगती है। अगर वह सही है, तो फिर हम सब गलत हैं। यह मुश्किल हो जाता है।

सुकरात जो जहर दिलाना पड़ा, क्योंकि सुकरात की मौजूदगी अखरने लगी। सुकरात अगर सच है, तो फिर सारे लोग झूठ हैं। यह बात ही स्वीकार करना बहुत कठिन होता है कि मैं झूठ हूं।

बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार। तो तुम अपने जीवन में एक कसौटी पकड़ लो: तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी पूजा-प्रार्थना, तुम्हारी भक्ति अगर दया बढ़ाती हो, तो समझना कि तुम मार्ग पर हो, तो इशारा ठीक जगह पड़ रहा है। अगर तुम्हारी दया घटती हो, तो समझना कि गलत हो रहा है।

मोहम्मद एक दिन युवक को लेकर मस्जिद गये। पहली दफा युवक मस्जिद गया। सुबह की प्रार्थना, नमाज पढ़ने के बाद जब वापस लौटने लगे, तो उस युवक ने कहा: हजरत देखते हैं कि लोग कितने पापी हैं--अभी तक बिस्तरों में पड़े हैं! कई तो अभी तक सो रहे हैं, घुर्रा रहे हैं। इनका क्यो होगा हजरत? ये लोग नरक में पड़ेंगे?

मोहम्मद ठिठक कर खड़े हो गये। उन्होंने कहा। मुझसे बड़ी भूल हो गई कि तुझे मैं मस्जिद ले गया। तू रोज सोया रहता था, तो कम से कम ऐसा तो नहीं सोचता था कि लोग पापी हैं। यह तो फायदा न हुआ, नुकसान हो गया। आज तू पहली दफा मस्जिद क्या हो आया, तेरे मन में यह खयाल उठने लगा कि लोग पापी है और तू पुण्यात्मा है! उस युवक से कहा: भाई, तू जा और सो जा और भूल जा यह बात, और फिर मस्जिद जाता हूं। उसने पूछा: अब आप किसलिए जाते हैं? उन्होंने कहा: मुझे दुबारा फिर नमाज पढ़नी पड़ेगी और परमात्मा से क्षमा भी मांगनी पड़ेगी कि मुझसे बड़ी भूल हो गई कि इस आदमी को मैं उठा लाया। यह अच्छा भला था--सोता था। कम से कम दूसरों के प्रति अनादर तो न था, कठोरता तो न थी। अब यह उनको नरक में डालने की सोच रहा है! इसने एक प्रार्थना की है और इसके इरादे देखो!

जब भी तुम किसी आदमी में ऐसा देखो कि उसका धर्म उसके अहंकार को बढ़ा रहा है, तो समझना--भूल हो गई। जब तू अपन भीतर ऐसा देखो कि तुम्हारा धर्म तुम्हारी दया को कम कर रहा है, तो समझना कि भूल हो गई। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम्हारे सौ तथाकथित महात्माओं में निन्यानबे महात्मा नहीं हैं। उनके इरादे बड़े गहरे हैं--तुमको नरक में डालने के। वे बड़े हिसाब लगा रहे हैं कि कैसी-कैसी आग में जलाए जाओगे। कैसे-कैसे कड़ाहों में डाले जाओगे।

जिन्होंने शास्त्रों में नरक के विवरण लिखे हैं, वे भले लोग नहीं हो सकते। उनके भीतर दृष्टता रही होगी। दया उनके भीतर नहीं होगी। अगर दया का जरा भी स्वर होता, तो नरक की धारणा ही नहीं बनती। स्वर्ग तो उन्होंने अपने लिए रखा है, और नरक सबके लिए रखा है। नरक उन सबके लिए, जो उनसे राजी नहीं हैं--वे सब नरक में सड़ाए जाएंगे। ये ऊपर से कितने ही महात्मा दिखाई पड़ते हों, भीतर ये शैतान के शिष्य हैं--महात्मा नहीं हैं।

अब यह दूसरी बात है कि तुम किस भांति लोगों से बदला लेते हो; किस तरह उन्हें सताते हो। नरक में डाल कर सताओगे, लेकिन सताने की इच्छा कायम है। दया तुम्हारे भीतर जरा भी नहीं है। इसको स्मरण रखना।

सब कोउ साहेब बंदते, हिंदू मुसलमान।

साहेब तिसको बंदता, जिसका ठौर इमान।।

और कहते मलूकः जिसके हृदय में दया आ गई, वह फिर परमात्मा को न भी बंदगी करे, तो चलेगा। उसकी बंदगी तो प्रतिक्षण हो रही है। उसकी दया ही उसकी बंदगी है। वही उसकी नमाज है। वह झुका ही है नमाज में।

और साहेब तिसको बंदता...। और एक अपूर्व घटना घटती है कि फिर भक्त भगवान को नहीं भजता; भगवान भक्त को भजता है--साहेब तिसको बंदता।

जिस दिन तुम्हारे जीवन में दया ही दया होती है, उस दिन परमात्मा तुम्हारी याद करता है।

तुम्हारे याद किए क्या होगा? जब तक तुम्हें याद नहीं करे--मिलन नहीं होगा। जब तक यह सारा अस्तित्व तुम्हारे लिए आतुर न हो जाए--स्वागत के लिए, तुमसे मिलने को तत्पर न हो जाए, तब तक कुछ भी न होगा।

सब कोउ बंदते, हिंदू मुसलमान। यह बंदगी तो चलती है--औपचारिक है। साहेब तिसको बंदता, जिसका ठौर इमान।

इन शब्दों पर ध्यान देना--जिसका ठौर इमान; जिसकी श्रद्धा ठहर गई; जिसके चित्त का दर्पण अब विचारों से चंचल नहीं होता; जिसका ईमान कंपित नहीं होता--अकंप हो गया; जिसके भीतर की चेतना निष्कंप जलती है। जिसका ठौर ईमान।

मन तो चंचल है। मन तो ऐसा है, जैसे हवा के झोंकों में दीए की ज्योति डोलती रहती है--कभी इधर, कभी उधर; डोलती ही रहती है; एक क्षण को भी थिर नहीं। इस अथिर मन के साथ कैसी शांति! इस अथिर मन के साथ कैसा सुख? इस अथिर मन के साथ जो जुड़े हैं, उनके जीवन में कभी आनंद का कोई स्वाद संभव नहीं है। दुःख ही वे पाएंगे।

पर एक ऐसी दशा भी है चैतन्य की, जब चित्त ठहर जाता है। जब कोई तरंगें नहीं उठती; झील शांत होती है। एक लहर भी नहीं उठती। झील बिलकुल शांत हो जाती है। उस शांत झील में ही प्रभु का प्रतिबिंब बनता है, प्रभु की छबि बनती, प्रभु की छबि उभरती।

मंदिरों में नहीं बैठा है प्रभु; तुम्हारी श्रद्धा जब ठहर जाएगी, तब तुम उसे अपने भीतर बैठा हुआ पाओगे।

और ठीक कहते हैं मलूकदास--साहेब तिसको बंदता--उस दिन तुम पाओगे कि साहब तुम्हारी बंदगी कर रहा है। क्योंकि तुम साहब ही हो। तुम एक क्षण को भी कुछ और नहीं हो। तुम्हारे अपना स्मरण भूल गया है अन्यथा तुम परमात्मा हो।

तुम्हें अपनी याद भूल गई है। तुम भूल ही गए कि तुम कौन हो। और जब तक यह मन कंप रहा है, तब तक तुम पहचान भी न सकोगे कि तुम कौन हो। इस कंपते मन पहचानना बहुत मुश्किल है।

ऐसा ही समझो कि तुम एक साथ में कैमरा लेकर यहां तस्वीर उतारने आ जाओ, और तुम्हारे दोनों हाथ कंप रहे हैं, तो तस्वीर तो बनेगी ही नहीं। और जब तुम फिल्म को साफ करके तैयार करोगे, तो तुम पाओगेः कुछ समझ में नहीं आता; रंग ही रंग छितरे हैं। सब खंड-खंड छितरे हैं। कोई तस्वीर साफ नहीं बनती।

मन इतना कंप रहा है, कि सत्य तो सामने खड़ा है, लेकिन तस्वीर कैसे बने! यह मन थोड़ा ठहरे, यह श्रद्धा थोड़ी रुके, थोड़ा शांत हो, तो तस्वीर अभी बन जाए।

तुमने देखा न, झील पर जब अंधड़ चलता है, और बहुत लहरें होती हैं; आकाश में चांद भी हो, तो भी चांद का प्रतिबिंब नहीं बनता। खंड-खंड चांद बिखर जाता है--पूरी झील पर। पूरी झीन पर चांदी हो जाती है। मगर तुम पकड़ न पाओगे कि चांद कहां है। जब झील शांत हो जाएगी, तब सारी चांदी सिकुड़ कर आ जायेगी एक जगह; चांद बन जाएगी।

परमात्मा सब तरफ छितरा हुआ मालूम पड़ता है, इसलिए उसे हम देख नहीं पाते हैं; उसकी प्रतिमा बन नहीं पाती।

परमात्मा को खोजने जाने की कहीं भी जरूरत नहीं है; सिर्फ चित्त की थिरता खोजनी है।

जिसका ठौर इमान...। कृष्ण ने जिसको स्थितप्रज्ञ कहा है--जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, उसी के लिए मलूकदास कहते हैं: जिसका ठौर इमान।

दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमरित बन।

तेई ऊंचे जानिए, जिसके नीचे नैन।।

दया धर्म हिरदे बसै बोलै अमरित बैन। और जिसकी वाणी में अमृत है...। लेकिन अमृत होता तभी, जब दया धर्म हृदय में होता है। जब करुणा का सागर हृदय में होता है, तब वाणी में अमृत होता है।

वाणी का अमृत कोई वकृतत्व की कला नहीं है। वाणी के अमृत से अर्थ--कोई बहुत वक्ता है--ऐसा हनीं है। वाणी में अमृत का अर्थ होता हैः जिसके शब्दों में निःशब्द का स्वर है; जिसके शब्द खाली देह-मात्र नहीं हैं, जिसके शब्द के भीतर आत्मा भी ज्योतिर्मय है। जिसके शब्द केवल शब्द नहीं हैं, जिसके शब्दों में छिपा शून्य भी है।

जैसे तुम्हारी देह है; आज भीतर विराजमान है परमात्मा, तो तुम जीवंत हो। कल सांस उड़ जाएगी, पखेरू जा चुका होगा, देह यही होगी, लेकिन प्रियजन जल्दी से अर्थी तैयार करने लगेंगेः सब कुछ वही है; जरा सी बात बदल गईः भीतर जो रहता था, अब नहीं है, तो लाश हो गई। कल तक प्यारी देह थी, आज अर्थी पर रखने योग्य हो गई।

शब्दों के साथ भी ऐसा ही है। पंडित बोलता है, तो उसके शब्दों में केवल लाश होती है। उसका अपना अनुभव तो नहीं होता, जिससे वह आत्मा डाल दे। ज्ञानी जब बोलता है, तो उसके शब्द में अमृत होता है। अमृत का अर्थ हैः उसके शब्द निष्प्राण नहीं होते, सप्राण

होता हैं। उसके शब्द धड़कते हैं। उसको शब्दों में श्वास होती है। उसके शब्दों में जीवन होता है। उसके शब्द को तुम छुओगे, तो तुम्हें पता चलेगा। उसके शब्द मुरदा नहीं हैं।
बोलै अमरित बैन, दया धर्म हिरदे बसै...। लेकिन यह तभी संभव होता है, जब भीतर करुणा का जन्म हो गया हो। तब उस करुणा में डूब कर आते हुए शब्द अमृत हो जाते हैं। इन्हीं अमृत वचनों को हमने शास्त्रों में इकट्ठा किया है--उपनिषद में, कुरान में, ताओत्तेह-किंग में, गीता में हमने इन्हीं अमृत वचनों को इकट्ठा किया है। लेकिन मुश्किल यह है कि जैसे ही तुम इकट्ठा करते हो, वह अमृत नहीं रह जाते।
कृष्ण ने जब अर्जुन से बोल, तब अमृत थे; कृष्ण के कारण अमृत थे। कृष्ण की मौजूदगी उन शब्दों में डोल रही थी। कृष्ण का रूप-रंग उन शब्दों को लगा था। कृष्ण के भीतर से अभी आए थे; अभी जाते थे। अभी कृष्ण की सुगंध उन शब्दों के आसपास तैर रही थी। अर्जुन ने जब उन्हें सुने, तो वे ताजे थे। अब जब तुम गीता में पढ़ते हो, तब मुरदा हैं।
इसलिए सदा से एक बात महत्वपूर्ण रही है कि अगर तुम जीवित सदगुरु को खोज सको, तो सब शास्त्रों को छोड़ कर जीवित सदगुरु को खोज लेना। क्योंकि वहां अभी शास्त्र जीवित है। सदगुरु का इतना ही अर्थ होता है कि जहां अभी शास्त्र जीवित है। और शास्त्र का इतना ही अर्थ होता है: किसी सदगुरु के वचन, जो अब जीवित नहीं रहे। लेकिन रह गई है, सांप चला गया है।
दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमरित बैन।
तेई ऊंचे जानिए, जिनके नीचे नैन।।
और उन्हीं को समझना कि पहुंच गए, जिनको पहुंचने का दंभ ही न हो। निरअहंकार में जो जीते हों...। अब इसे समझना। यह थोड़ा जटिल मामला है। क्योंकि आदमी ने इतने झूठे सिक्के पैदा किए हैं, इसलिए बातें बहुत उलझ गई हैं।
तीन शब्द खयाल करना। एक शब्द है अहंकार; दूसरा शब्द है विनम्रता; और तीसरा शब्द है--निरअहंकार। विनम्रता झूठा, थोथा शब्द है। विनम्र का आदमी होता है। विनम्र आदमी कहता है: मैं ना कुछ। लेकिन तुम्हारी आंखों की तरफ देखता है कि देखो, मैं ना कुछ! स्वीकार करो--कि मैं ना कुछ। सुनते हो--कि मैं ना कुछ। और अगर तुम उससे कहो कि मैं तो आपसे भी बड़ा ना कुछ, तो वही नाराज हो जाता है; वहीं परेशान हो जाता है।
ना कुछ में भी होड़ लगी है। ना होने के दावे में भी अहंकार पीछे के दरवाजे से प्रवेश कर रहा है।
विनम्र आदमी निरहंकारी नहीं होता। विनम्रता अहंकार को दबा लेती है, अहंकार की जहर पर खूब मीठी शक्कर को परतें चढ़ा देती है। इसलिए विनम्र आदमी में तुम सादा अहंकार पाओगे--छिपा हुआ, प्रकट, भूमिगत हो गया, अंडरग्राउंड चला गया; मगर मौजूद है।
निरहंकार का अर्थ होता है: न अहंकार रहा, न विनम्रता रही। क्योंकि अहंकार ही न रहा, तो अहंकार के साथ जुड़ी हुई विनम्रता भी नहीं रह जाएगी।

फिर मलूकदास क्यों कहते हैं: जिनके नीचे नैन? क्योंकि विनम्रता का आमतौर से हम यही अर्थ करते हैं--जो सदा नीचे देखते हैं, जो नीचा नैन रखते हैं। नीचे नैन अगर तुम इसलिए रखते हो कि चेष्टा कर रहे हो, तो विनम्रता। और नीचे नैन अगर सहज हो गए हैं--तो निरहंकार। दोनों में फर्क है।

अगर चेष्टा करके तुम नीचे नैन रख रहे हो, प्रयास करना पड़ रहा है, दबाए बैठे हो किसी चीज को, तो फिर झूठ बात है। अनायास सहज हो गया है...। और रखो भी कहां नैन को! नीचे न रखो? जैसे देखा, कभी वृक्ष पर जब फल लग जाते हैं। और फलों से डाल भर जाती है, तो डाल झुक जाती है। यह झुकना बड़ा और है। ऐसे ही आंख जब भर जाती है--प्रभु के दर्शन से, तो झुक जाती है।

जब आंख भरपूर हो जाती है प्रभु से, तो फिर अब क्या आंख उठाने को जगह रही! आंख झुक जाती है। यह झुकाव ऐसा ही है, जैसे वृक्ष की डाली झुक जाती है--फलों से लादकर। तेई ऊंचे जानिए, जिनके नीचे नैन।

जेते सुख संसार ले, इकट्ठे किए बटोर।

कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।

बड़ा प्यारा सूत्र है: जेते सुख संसार के, इकट्ठे किए बटोर। कहते मलूकदास: सब सुख देख लिए; सब बटोर कर देख लिए--यह बात खयाल रखना। बहुत लोग हैं--इस देश में कम से कम, खास करके--जो सदपुरुषों की वाणी सुनकर भाग खड़े होते हैं संसार से। अभी उन्होंने सब सुख बटोर कर देखे भी नहीं थे। ये जो कच्चे भाग जाते हैं, इनका मन बड़ा तड़फता है--वापस लौट आने को। ये चले जाए हिमालय पर, लेकिन सोचेंगे बाजार की। ये बैठ जाए गुफा में, लेकिन सोचेंगे--पत्नी-बच्चों की। ये कहीं भी चले जाए, कुछ फर्क न पड़ेगा।

मैं भर्तृहरि के जीवन में एक उल्लेख पढ़ता था। भर्तृहरि सम्राट हुए। सम्राट होते ही इन्होंने अपने वजीरों को बुलाया और एक बड़ी अनूठी आज्ञा दी। आज्ञा यह थी कि जितने भी सुख संभव हो संसार में, मैं सब भोगना चाहता हूं। वजीरों ने सोचा: खूब भोगी--सम्राट हो गया है। पहले दिन ही सिंहासन पर बैठा है और कहता है: जितने सुख हो संसार में, सब भोग लेना है! एक भी छोड़ना नहीं है।

उन्होंने कहा: महाराज, जो भी बन सकेगा, हम करेंगे। सब सुख जुटा देंगे। आप मालिक हैं। आप आज्ञा दें।

दूसरी बात भर्तृहरि ने कही; दूसरी यह कि एक सुख एक ही बार देखना है--दुबारा नहीं, क्योंकि फिर क्या सार है! तो खयाल रहे: जो वस्त्र मुझे एक दफा पहनने दिए जाए, दुबारा न दिए जाए। और जो स्त्री एक बार मेरे पास लाई जाए, दुबारा न लाई जाए। और जो भोजन मुझे एक बार परोसा जाए, दुबारा न परोसा जाए।

वजीरों ने कहा: ऐसा ही होगा। थोड़े तो दिक्कत में पड़े। और महीने दो महीने में दिक्कत बहुत साफ हो गई। अब कहां रोज-रोज नए भोजन लाओ! जो सब्जी दफे खाली--खतम हो गई। जो फल एक बार चख लिया--समाप्त हो गया।

साल बीतते-बीतते तो वजीर पागल होने लगे कि कहां से इंतजाम करो! लाओ कहां से? सब छान डाले उन्होंने। दूर-दूर प्रांत, जहां-जहां जो मिल सकता था। न मालूम कितनी स्त्रियां लाए; कितने वस्त्र लाए; न मालूम कितने भोजन लाए। लेकिन सब चुकने लगा। साल पूरा होते-होते वजीरों ने कहाः महाराज, क्षमा करें। हम पागल हुए जा रहे हैं। रोज-रोज नया कहां से लाए?

तो भर्तृहरि ने कहाः सब चुक गया? उन्होंने कहाः सब चुक गया। अब हमें कुछ नहीं सूझता। तो भर्तृहरि कहा कि बस, ठीक है; बात समाप्त हो गई; अब मैं जंगल जाता हूं।

उन्होंने कहाः क्यों? भर्तृहरि ने कहाः देख लिया। और एक दफा चख लिया; अब दुबारा उसी को चखने से क्या मिलेगा? जब एक बार चखने से नहीं मिला, तो दुबारा उसी को चखने से क्या मिलेगा? जो मिलना होता, तो पहली बार में मिल आता। अब दुबारा मैं वही हूं, चीज भी वही है, अब इसको पुनरुक्त करते रहने से क्या सार है? इस व्यर्थ की दौड़?-धूप में कोई अर्थ नहीं है। अब मैं जंगल जाता हूं।

तब तो वजीर बड़े हैरान हुए। वे तो सोचते थेः कहां का भोगी राजा मिल गया! तब उनको पता चला कि इस भोग के पीछे कोई अनूठी त्याग की प्रक्रिया छिपी थी। किसी बड़े सूत्र पर भर्तृहरि काम कर रहा था।

भर्तृहरि ने दो शास्त्र लिखे हैं। पहला शास्त्र लिया--शृंगार शतक--शृंगार के सूत्र। ऐसे सूत्र किसी ने नहीं लिखे, क्योंकि किसी ने ऐसा शृंगार जाना नहीं।

मलूकदास यही कह रहे हैंः जेते सुख संसार के इकट्ठे किए बटोर। सब बटोर लिया और सब सुख भोग लिए--तो शृंगार शतक लिखा। और फिर जब सब छोड़ कर गए, तो दूसरा शास्त्र लिखा--वैराग्य शतक। शृंगार से ही वैराग्य का जन्म हुआ। भोग से योग का जन्म हुआ।

संसार को देखने से ही, पहचानने से ही परमात्मा की स्मृति आनी शुरू होती है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः भागना मत। मैं अपने संन्यासी को कहता हूं--भाग कर कहीं जाना मत। जहां खड़े हो, वहां जो उपलब्ध है, उसे ठीक-ठीक भोग लो। भोग में ही मुक्ति है; भोग से ही मुक्ति है।

भोग ओर योग विपरीत नहीं हैं। योग का जन्म भोग की अंतरतम अवस्था में पैदा होता है। इसलिए भागो मत। भाग कर कहीं कोई सार नहीं है। भगोड़े मत बनो। भागो नहीं--जानो। जो भोग रहे हो--उसे जाग कर भोगो, ताकि पुनरुक्ति न हो; ताकि बार-बार उसी-उसी में न दोहराते रहो। गाड़ी के चाक की तरह मत घूमो। हर अनुभव से तुम बोध ले लो और जल्दी ही तुम पाओगे कि ठीक कहते हैं :

जेते सुख, संसार के, इकट्ठे किए बटोर।

कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।

खूब...जैसे स्त्रियां सूप में साफ करती है ना--चावल, गेहूं--देखा फटक पछोर; ऐसा सूप में--बुद्धि के, होश के सूप में सब फटक पछोर कर देख लियाः कन थोरे कांकर घने। कन तो

कहीं-कहीं हैं, सुख तो कहीं-कहीं है और कंकड़ ही कंकड़ ज्यादा हैं। कन थोरे कांकर घने...। सूख तो क्षणभंगुर है, दुःख की लंबी कतारें लगी हैं।

यह बात भी समझने जैसी है कि मलूकदास की सचाई के प्रति ऐसी निष्ठा है कि अतिशयोक्ति नहीं करते। आमतौर से ज्ञानी कहेंगे: संसार से बिलकुल सुख नहीं है। मलूक ने यह नहीं कहा। यह एक बच्चे आदमी की परख है।

आमतौर से महात्मा कहते हैं: संसार में सुख है ही नहीं। अतिशयोक्ति हो गई यह। अगर संसार में सुख बिलकुल न हो, तो इतने लोग कब तक भटके रहें--कैसे भटके रहें! कुछ तो होना ही चाहिए। कन थोरे कांकर घने। माना कि कंकड़-पत्थर बहुत हैं, लेकिन यहां थोड़ी-थोड़ी सुख की भी बूंदें पड़ती हैं; ऐसा नहीं कि नहीं पड़ती। इसको मैं कहता हूं: बड़ी निष्ठा, बड़ी ईमानदारी। नहीं तो सहज यही होता है मन में कि अब क्या रखा है संसार में! सब व्यर्थ; सब दुःख।

इस दृष्टि से मलूकदास के वचनों में बुद्ध के वचनों से भी ज्यादा सचाई है। बुद्ध कहते हैं--सब दुःख है: जन्म दुःख, जरा दुःख, जीवन दुःख, मरण दुःख--सब दुःख। यहां दुःख ही दुःख है।

यह अतिशयोक्ति है। यह बात सच नहीं है। शायद उन्होंने करुणावश ही कही है; शायद तुम्हें देखकर कही है--कि तुमसे अगर यह कहा जाए कि थोड़ा भी यहां सुख है तो शायद तुम उस थोड़े के लिए अटके रह जाओ। तुम कहो: थोड़ा तो है न! तो फिर ठीक है, कन थोरे कांकर घने, तो कांकर अलग कर देंगे और कन-कन भोग लेंगे। तो ठीक से फटकेंगे, पछोरेंगे; तो बाबा मलूकदास, दिखता है: आपने ठीक से नहीं फटका-पछोरा! हम बीन लेंगे--ठीक से बीन लेंगे। कंकड़ कंकड़ अलग कर देंगे, कन कन बीन लेंगे सुख के और मजा कर लेंगे।

तो छोड़ने की क्या जरूरत है?

शायद बुद्ध ने इस करुणावश, इस बात को ध्यान में रखकर कहा होगे: सब दुःख है। लेकिन यह बात सच नहीं है। यहां सब दुःख नहीं है; थोड़ा-थोड़ा सुख भी है। उसी सुख के सहारे तो दुःख चल रहा है। अगर दुःख ही दुःख हो, तो सभी के सभी आदमी एकदम छलांग लगाकर बाहर हो जाए।

यहां कुछ न कुछ सुख की प्रतीति होती है। झलक ही सही, मगर मिलती है। क्षण भर को सही, मगर सुख उतरता है। पूरा सूरज न भी आता हो, तो भी किरण आती है। और उसी किरण की आशा मग आदमी बंधा रह जाता है। उसी एक किरण के सहारे सोचता है कि किरण आ गई, तो कल सूरज भी आ जाएगा। कण आया, तो सागर भी आ जाएगा। थोड़ी प्रतीक्षा करो; थोड़ा और श्रम करो; थोड़ा और आयोजन करो।

लेकिन मलूकदास का वचन सत्य के प्रति बिलकुल साफ है। वे कहते हैं: ऐसा नहीं है कि नहीं ही यहां सुख हैं; कन थोरे कांकर घने। लेकिन कंकड़ बहुत हैं; इतने ज्यादा हैं कि इतने थोड़े से कणों के लिए इतने कंकड़ झेलना नासमझी है।

और फिर अगर इनके जरा ऊपर उठो, तो आनंद ही आनंद है--जहां कंकड़ हैं ही नहीं।

एकाध फूल कभी, और हजारों-लाखों कांटे हैं। इस एक फूल के लिए इतने कांटे झेलना बुद्धिमानी नहीं है। फूल है; मगर एकाध और कभी कभार।

तुम जरा सोचोः तुम्हारी जिंदगी में कब सुख आया? पीछे लौट कर देखो। पचास साल जी लिए, चालीस साल जी लिए, कब सुख आया? धोखा मत देना; ऐसा मान मत लेना कि फलां दफा आया था। नहीं गौर से ही देख लेना। क्योंकि आदमी धोखा देने में भी कुशल है। यह सोचता हैः देखो, उस बार आया था, इस बार आया था। सिर्फ इसलिए कह लेता है, ताकि अपने सामने कम से कम अपनी बुद्धिमानी तो बनी रहे; नहीं तो बड़े मूरख हो जाएंगे--कि पचास साल जिए और सूख आए ही नहीं! तो क्या कर रहे थे? तो क्यों सिर मारते रहे पचास साल?

मेरे पास लोग आते हैं। कोई कहता है कि मैं बीस साल से संन्यासी हूं। योग साधता, ध्यान साधता। मैं उनसे पूछता हूंः कुछ मिला? वे कहते हैंः हां, कुछ कुछ मिला। मैंने कहाः ईमानदारी से...? क्योंकि बीस साल जिसने योग साधा है, वह यह भी तो नहीं कह सकता कि कुछ नहीं मिला, नहीं तो बीस साल क्या...! बिलकुल जड़बुद्धि हो? क्यों बर रहे थे बीस साल?

नहीं, वह कहता हैः कुछ कुछ। और जब मैं उसे कुरेदता हूं, खोदता हूं, तो थोड़ी देर में वह कह देता है कि नहीं, मिला तो कुछ भी नहीं। फिर क्यों कहते हो कि कुछ-कुछ?

तुम जरा लौट कर देखना अपने पीछे। पचास साल जी लिए कि साठ साल जी लिए, इसमें कितने क्षण आये थे, जिनको तुम सुख के कह सकोगे? और जो भी क्षण तुम्हें मालूम पड़े कि सुख के थे, उनकी खूब जांच-परख करना; सब तरफ से घूम कर जांच-परख करना। थे--या मान लिए थे? शायद कभी तुम एकाध दो क्षण पाओ। तब तुम्हें बाबा मलूकदास का वचन समझ में आएगा। और उन थोड़े क्षणों के लिए तुमने कितने कांटे झेले हैं। कितना दुःख पाया है! दोनों में कोई अनुपात नहीं है।

ऐसा ही समझा कि एक आदमी हजारों मील चले मरुस्थल में और फिर एक घास के पत्ते पर एक ओस की बूंद मिले पीने को। जरा चख भी न पाए कि गई! जीभ से लगी नहीं कि गई। कंठ तक भी पहुंच पाएगी। एक बूंद कहां तक पहुंचेगी! बस, जरा सा स्वाद आया, खयाल आया और गया!

संभोग में ऐसा ही सुख है। धन-पद प्रतिष्ठा में ऐसा ही सुख है। श्रम तो बहुत है; श्रम के अनुपात में कुछ नहीं मिलता। मगर है। मलूकदास की सत्य के प्रति निष्ठा अपूर्व है। कहते हैंः मगर है।

जेते सुख संसार के, इकट्ठे किए कटोर।
कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।
मलूक कोटा झांझरा, भीत परी भहराए।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आए।।
मलूक कोटा झांझरा, भीत परी भहराय।

ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आए।।

मलूक कोटा झांझरा...। और मलूक कहते हैं: इन सब थोड़े से कणों की खोज में मैं झांझरा हो गया, जर्जर हो गया। मलूक कोटा झांझरा--यह जो मलूक नाम का कमान था, यह खंडहर हो गया। दौड़ते-धापते आपा-धापी में मिला कुछ भी नहीं, हाथ कुछ भी न लगा। थोड़े सपने थे, थोड़ी झलक आई; दुःख बहुत भोगा।

मलूक कोटा झांझरा...। और अब हालत यह है कि मैं सिर्फ एक खंडहर हो कर रह गया हूं। भीतर परी भहराए--और दीवालें गिरनी जाती हैं। ऐसा कोई ना मिला...। और इस पूरे संसार में मित्र थे, सगे थे, संबंधी थे, अपने थे--ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आए। और ये जो भीतर गिरती जा रही हैं, दीवालें गिरती जा रही हैं, यह जो भवन खंडहर होता जा रहा है, ऐसा कोई भी न मिला, जो इस खंडहर को फिर सहारा दे दे और उठा ले।

रूप की इस कांपती लौ के चले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?
नील-सर में नींद को नीली लहर
खोजती है भोर का तट रात-भर
किंतु आता प्रात जब जाती उषी
बूंद बन कर हर लहर जाती बिखर
प्राप्ति ही जब मृत्यु है अस्तित्व की
यह हृदय-व्यापार कितने दिन चलेगा?
रूप की इस कांपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?
विश्व-भर में जो सुबह लाती किरण
सांझ देती है वही तम को शरण
ज्योति सत्य, असत्य तम फिर भी सदा
है किया करता दिवस निशि को वरण
सत्य भी जब थिर नहीं निज रूप में
स्वप्न का संसार कितने दिन चलेगा?
रूप की इस कांपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

हम सभी जर्जर होते जाते हैं। रोज-रोज मौत करीब आती जाती है। जिनको तुम जन्म दिन कहते हो, वे तुम्हारे मौज के पड़ाव हैं। एक जन्म दिन आया, एक साल और रिक्त हो गया; हाथ से और इतना समय जा चुका। रोना चाहिए जन्म-दिन पर; उत्सव मनाते हो! जिंदगी कम हो गई। जीवन बढ़ता नहीं--जन्म-दिन पर। उतना और जीवन कम हुआ।

मौत रोज करीब आती है! प्रतिपल करीब आती है। यहां कुछ मिलने को नहीं है। मिलना है जो, वह बहुत सपने जैसा है; इंद्रधनुषों जैसा है। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं; पास जाकर

सब व्यर्थ हो जाते हैं। मिलता कुछ भी नहीं, जीवन खोता चला जाता है। और यह कुछ समय ऐसा है कि दुबारा इसे लौटाया न जा सकेगा। और यह जा खंडहर एक बार खंडहर हो गया, तो हो गया!

इसके पहले कि तुम खंडहर हो जाओ, इस मकान को परमात्मा का मंदिर बना लो। उसके साथ शाश्वत जीवन हो सकता है--उसके साथ ही शाश्वत जीवन हे सकता है। और तो सब जीवन क्षण-भंगुर है।

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान
कब्र है धरती, कफन है आसमान।
हर पखेरू का यहां है नीड़ मरघट पर
है बंधी हक एक नैया मृत्यु के तट पर
खुद बखुद चलती हुई यह देह अर्थी है
प्राण है प्यासा पथिक संसार-पनघट पर
किसलिए फिर प्यास का अपमान?
जी रहा है प्यास पी-पी कर जहान।
मत करो प्रिय! रूप का अभिमान
कब्र है धरती, कफन है आसमान।
रंक-राजा, मूर्ख-खंडित, रूपवान-कुरूप
सांझ के आधीन सबकी जिंदगी की धूप
आखिरी सबकी यहां पर है चिता ही सेज
धूल ही शृंगार अंतिम अंत-रूप अनूप
किसलिए फिर धूप का अपमान?
धूल हम, तुम, धूल है सबकी समान।
मत करो प्रिय! का अभिमान।
कब्र है धरती, कफन है आसमान।
प्राण! जीवन क्या क्षणिक बस सांस का व्यापार
देह की दुकान जिस पर काल का अधिकार
रात को होगा सभी जब लेन-देन समाप्त
तब स्वयं उठ जाएगा यह रूप का बाजार
किसलिए फिर रूप का अभिमान?
फूल के शव पर खड़ा है बागवान।
मत करो प्रिय! रूप का अभिमान
कब्र है धरती, कफन है आसमान।

जीवन को देखो। सुख से भागो मत; सुख के भीतर गहरी आंख डालो, तो तुम पाओगेः दुख बहुत, सुख ना कुछ। इतने से सुख के लिए इतना दुःख झेलना कुछ बुद्धिमान नहीं है।

मौत बहुत--जीवन ना कुछ। जीवन तो ऐसी, जैसी छोटी सी किरण; और मौत ऐसी, जैसी अंधेरी रात। इतनी अंधेरी रात में, इतनी सी किरण के लिए जीने का कोई प्रयोजन नहीं हैं। यह बहुत मूल्य चुकाना हो रहा है।

और फिर जब यह देह जर्जर हो जाएगी, और जब कोई सहारा देने वाला न मिलेगा, तब तुम परमात्मा को पुकारोगे भी। लेकिन अकसर बहुत देर हो गई होती है। क्योंकि परमात्मा को पुकारने के लिए भी जो ऊर्जा चाहिए, वह भी समाप्त हो गई होती है। उस ऊर्जा को तो धन को पुकारने में लगा दिया; पद को पुकारने में लगा दिया; पत्नी और पति को पुकारने में लगा दिया। उस ऊर्जा को तो न्योछावर कर दिया--व्यर्थ में। और जब परमात्मा को पुकारने की घड़ी, तुम सोचते होः आई, तब ऊर्जा नहीं बचती; पंख टूट गए; अब उड़ने की क्षमता नहीं रही।

लोग बूढे हो कर धर्म की तरफ जाते हैं। तुम मंदिरों और मस्जिदों में बूढे बुढ़ियों को देखोगे। यह आकस्मिक नहीं है। जवान वहां दिखाई नहीं पड़ते। और जहां जवान न दिखाई पड़े, समझना कि वहां धर्म वास्तविक नहीं हो सकता। जवान ही दिखाई पड़े जहां, वहीं समझना कि धर्म जीवंत है।

जब बुद्ध चले पृथ्वी पर तो जवानों ने संन्यास लियाः जब महावीर चले पृथ्वी पर, तो युवक आए और संन्यस्त हुए। जो बूढे भी आए, वे बहुत युवा-मन लोग थे; वे भी बूढे नहीं थे। लेकिन बड़ी मात्रा युवकों की थी।

जब भी धर्म जीवंत होता है, तो युवक को आकर्षित करता है। युवक के पास क्षमता है, ऊर्जा है; अभी सब विकृत नहीं हो गया है; अभी कुछ पूंजी बची है। और पूंजी को परमात्मा के लिए दांव पर लगाया जा सकता है।

एक बात खयाल रखनाः

जब न तूम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले व्यर्थ है।

एक बात खयाल रखनाः परमात्मा न मिला, तो कुछ मिल जाए, व्यर्थ है।

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले व्यर्थ है।
दीप को रात भर जल सुबह मिल गई
चिर कुमारी उषा की किरन-पालकी
सूर्य ने चल दिवस भर अग्नि पंथ पर
रात, लट चूम ली चांद के भाल की
जिंदगी में सभी को सदा मिल गया
प्राण का गीत और सारथी राह का
एक मैं ही अकेला जिसे आज तक
मिल न पाया सहारा किसी बांह का

बेसहारे हुई अब कि जब जिंदगी
साथ संसार सारा चले--व्यर्थ है।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिल--व्यर्थ है।
जिंदगी भर लोग साथ हैं, और अर्थी में भी सब तुम्हारे साथ जाएंगे मरघट तक; विदा कर आएंगे। मगर परमात्मा न मिला, तो कुछ भी न मिला। यह सब संग-साथ झूठा है; धोखा है।
बेसहारे हुई अब कि जब जिंदगी
साथ संसार सारा चले--व्यर्थ है।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
नाश के इस नगर में तुम्हें एक थे
खोजता जिसे मैं आ गया था यहां
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहां, मन भटकता कहां
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक
मैं सिसकता रहा, शब्द में गान में
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शव बना
मैं भटकता रहा रोज शमशान में
पर तुम्हीं सब न मेरी पियो प्यास तो
ओठ पर भी हिमालय गले--व्यर्थ है
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
फूल से भी बहुत दिन किया प्यार पर
दर्द दिल का कभी मुस्कुराया नहीं
चांद से भी बहुत मन लगाया मगर
प्राण को चैन मेरे आया कहीं
किंतु उस रोज तुम पुकारा कि जब
मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा
एक जादू न जाने किया कौन सा
औ मुझे रोशनी अब तुम्हीं दो न तो
पास सारे सितारे जले--व्यर्थ हैं
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।

इस जगत में जिसे हम जीवन कहते हैं, वह अंततः मृत्यु में परिणत हो जाता है। इस जगत में जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मृत्यु ही है छिपी हुई; वह मौत का ही विस्तार है। और परमात्मा में जो आदमी प्रविष्ट होने को राजी होता है, उसे करीब-करीब मरने की तैयारी दिखानी पड़ती है।

पुराने दिनों में जब संन्यास देते थे लोगों को तो उन्हें चिता पर लिटाते थे। चिता सजाते थे। सिर मुंड़ देते थे, जैसा कि मुरदे का मुंड़ देते हैं। नए कपड़े पहनाते थे। नाम बदल देते थे। चिता पर लिटाते थे। गुरु चिता में आग लगाता था और कहता था कि तुम्हारा जो पुराना रूप था जल, गया; तुम मर गये। और उठाता था नए व्यक्ति को कि अब तुम उठा। अब तुम नए हुए।

इसलिए पुराना संन्यासी...। अगर तुम उससे पूछोः किस गांव के रहने वाले थे संन्यास के पहले, तो नहीं बताएगा। वह कहेगा--वह आदमी मर चूका। पूछोः किस घर से आए; क्या तुम्हारा नाम था!--नहीं बताएगा। कहेगा; वह आदमी मर चूका।

एक जीवन है, जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मृत्यु ही सिद्ध होता है। एक मृत्यु है--परमात्मा में मृत्यु--जो परम जीवन का द्वार बन जाती है।

मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा
किंतु उस रोज तुमने पुकारा कि जब
एक जादू जाने किया कौन सा
आग की गोद में अश्रु मुस्का उठा
औ रोशनी अब तुम्हीं दो न तो
पास सारे सितारे जलें--व्यर्थ है।
जब न तुम ही मिलें राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मंदिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया
खैर पर यह हुई, उम्र की दौड़ में
खयाल मैंने कुछ पत्थरों का किया
पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बांह डाली कली ने गले में मचल
एक तस्वीर तेरी लिए किंतु मैं
साफ दामन बचा कर गया ही निकल
और फिर भी न यदि तुम मिलो तो कहो
जन्म किस अर्थ है, मृत्यु किस अर्थ है।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।

कन थोरे कांकर घने

इन पंक्तियों ध्यान करना:

खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में

मंदिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया।

मंदिर भटकाते हैं; मस्जिद भटकाती है।

खैर पर यह हुई उम्र की दौड़ में

खयाल मैंने न कुछ पत्थरों का किया।

अगर तुम पत्थरों से बच गए, तो तुम सौभाग्यशाली हो।

पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण

बांह डाली कली ने गले में मचल

एक तस्वीर तेरी लिए किंतु मैं

साफ दामन बचा कर गया कि निकल।

बहुत उलझनें हैं। बहुत धोखे हैं। बहुत भुलावे हैं। तुम एक परमात्मा की याद को अपने हृदय में संजोए हुए बचा कर निकलते रहना।

एक तस्वीर तेरी लिए किंतु मैं

साफ दामन बचा कर गया ही निकल

और फिर भी न यदि तुम मिलो तो कहो

जन्म किस अर्थ है, मृत्यु किस अर्थ है

जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे

स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।

एक प्रार्थना तुम्हारे भीतर उठती रहे; जलती रहे एक ज्योति; और तुम उस ज्योति में और प्रार्थना में जीवन के अनुभवों को कसते रहो। देखते रहो--क्या कन है, क्या कंकड़? क्या सार है--क्या असार। क्या चिन्मय है--क्या मृण्मय है। क्या व्यर्थ है--क्या अर्थवान।

जेते सुख संसार के इकट्ठे किए बटोर।

कन थोरे कांकर घने देखा फटक पछोर।

मलूक कोटा झांझरा, भीत परी भहराए।

ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आए।

प्रभुताई को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोए।

जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होए।

इस अंतिम सूत्र को हृदय में खूब सम्हाल कर रख लेना।

प्रभुताई को सब मरैं...। सभी चाहते हैं कि प्रभुता मिले, पद मिले, सत्ता मिले, इसके लिए मारन को भी तैयार हैं, मारने को भी तैयार है। प्रभुताई को मरै न कोए। लेकिन प्रभु को पाने के लिए कोई चेष्टा करता हुआ नहीं मालूम पड़ता। और सूत्र ऐसा है: जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होए।। और जो प्रभु के लिए मरने को तैयार हैं, प्रभुता उसकी उदासी हो जा जाती है।

जो प्रभु को पा लेता, वह सब पा लेता। इक साधे सब सधे। जीसस से किसी ने पूछा हैः मैं क्या करूं कि धनी हो जाऊं; मैं क्या करूं कि परवाना हो जाऊं? तो जीसस ने कहा कि तू एक काम कर--सीक यी फर्स्ट द किंगडम ऑफ गॉड दैन ऑल एल्स शैल बी एडेड अन टू यू--तू प्रभु का राज्य खोज और शेष सब अपने आप मिल जाएगा। एक प्रभु को खोज ले, शेष सब अपने से आ जाता है।

उस एक छोड़ कर हम सब खोजते हैं। सब तो मिलता ही नहीं; वह जो एक अपना था और मिल सकता था, वह भी खो जाता है।

जीवन को जाग कर जीओ। मलूकदास भगोड़े बनाने के पक्ष में नहीं हैं। इसलिए इन्होंने कहाः घर में रहे उदासी। हृदय में दया हो, धर्म हो। और अपने ही घर में चुपचाप संन्यस्त हो कर रहे। किसी को बताने की भी कोई जरूरत नहीं है।

भगवान सब जगह है; तुम्हारे घर में भी उतना ही, जितना काबा और काशी में है। अगर तुमने आंखें खोल कर देखा, तो कहीं भी मिल जाएगा।

एक ही बात याद रखना कि उसे पाना हो, तो अपने को गंवाने की तैयारी रखनी पड़ती है। जो उसे पाना चाहता है, उसे मिटाना होता है।

प्रभुताई को सब मरैं प्रभु को मरै न कोए।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होए।।

आज इतना ही।

अवधूत का अर्थ परंपरा का झूठ परख-बुद्धि
प्रेम का त्याग आंसू की भाषा
अशांति का स्वीकार पारलौकिक प्रेम
दसवां प्रवचन
श्री रजनीश आश्रम, पूना प्रातः दिनांक २० मई १९७७

प्रश्न-सार
अवधूत का क्या अर्थ है?
मलूकदास भक्त हो कर भी मूर्तिपूजा का मजाक क्यों उड़ाते हैं?
कन थोरे कांकर घने की परख-बुद्धि कैसे पायें?
प्रेम और त्याग में किसका महत्व बढ़कर है?
आपसे कैसे कहूं दिल की बात? आपको कैसे धन्यवाद दूं? आंसू बहते हैं!
जीवन में कोई अभिलाषा पूरी नहीं हुई; विषाद में डूबा हूं; अब मन कैसे शांत हो?
दूर जा रही हूं--पता नहीं कब आपके दर्शन हों! आशीष दें।

पहला प्रश्न: आपने बाबा मलूकदास को अवधूत कहा। अवधूत का क्या अर्थ है?

अवधूत बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। अर्थ ऐसा है:

अ का अर्थ है--अक्षरत्व को उपलब्ध कर लेना; जो कभी मिटे नहीं; जो सदा है।

क्षण-भंगुर है संसार--अक्षर है परमात्मा। क्षण-भंगुर को छोड़कर शाश्वत की डोर पकड़ लेनी। शाश्वत का आंचल जिसके हाथ में आ गया, वही अवधूत। यह अवधूत के अ का अर्थ है।

हम तो पकड़े हैं--पानी के बुदबुदों को; पकड़ भी नहीं पाते कि फूट जाते हैं। हम तो दौड़ते हैं मृग-मरीचिका के पीछे। बार-बार हारते हैं, फिर-फिर उठते हैं, फिर-फिर दौड़ते हैं। हम अपनी हारों से कुछ सीखते नहीं। क्षण-भंगुर का भ्रम हम पर बहुत गहरा है।

माया से जो जागे--क्षण की माया से जो जागे, वही अवधूत। यह पहला अर्थ। व का अर्थ है जो वरण करे अक्षर को--बात ही न करे। जो अक्षर को सोचे ही नहीं--जिये। जो अमृत को चिन्मय में नहीं--जीवन में जाने। जिसकी श्वास-श्वास में अक्षर का वरण हो जाए। पंडित न बन जाए, प्रज्ञावान बने।

यह दूसरों की उधार बात न हो--कि अक्षर है। यह अपना निज अनुभव हो; यह स्व-अनुभूति हो।

परमात्मा की बात तो बहुत करते हैं लोग; परमात्मा पर किताबें लिखी जाती हैं, लेकिन जो बड़ी बड़ी किताबें भी लिखते हैं परमात्मा पर, उनके जीवन में भी खोज कर परमात्मा की किरण शायद ही मिले।

परमात्मा का सिद्धांत मनोरम है, और उस सिद्धांत में बड़ी सुविधाएं हैं, और उस सिद्धांत को फैलाने के लिए काफी उपाय हैं। लेकिन अनुभव? अनुभव महंगी बात है; सिद्धांत सस्ती बात है।

परमात्मा को वरण तो वही करे, जो अपने को मिटाने को राजी हो। कहा कबीर ने--घर फूंकै जो आपना, चलै हमारे साथ। जिसकी तैयारी हो, आपने को राख कर लेने की, वही उसे वरण करे। उसके वरण करने में अहंकार का त्याग समाविष्ट है। छोड़ोगे अपने को, तो उसे पा सकोगे।

इसलिए अवधूत का दूसरा अर्थ है: अक्षर की बात ही न करे, अक्षर जिसके रोयें-रोयें में, श्वास-श्वास में समाया हो; अक्षर जिसकी सुगंध हो गया हो, जिसके जीवन का छंद हो गया हो।

और धू का अर्थ है: संसार को धूल समझे, असार समझे, ना-कुछ समझे। और यह समझ ऊपर-ऊपर न हो। यह समझ ऐसी न हो कि समझे तो ऊपर-ऊपर कि धूल है और भीतर-भीतर धूल को पकड़े। यह समझ वस्तुतः हो। यह परिधि से लेकर केंद्र तक फैल जाए। यह प्राणों के प्राण में समाविष्ट हो जाए। यह समझ जागने में रहे; उठने-बैठने में रहे; मंदिर में रहे, बाजार में रहे; हर घड़ी रहे। यह तुम्हारी छाया की तरह हो जाए--कि संसार धूल है। यह अवधूत का तीसरा अर्थ है। और स्वभावतः जो जानेगा कि परमात्मा सत्य है, वह जान

ही लेगा कि संसार धूल है। ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तो संसार को धूल समझे--वह अवधूत।

और चौथा अर्थ है: तत्वमसि; त का अर्थ है--तत्वमकस। जो ऐसा ही न समझे कि मैंने परमात्मा को जाना, जो ऐसा ही न समझे कि मैं परमात्मा को जीता हूं, जो ऐसा ही न समझे कि मैं परमात्मा हूं, बल्कि समझे कि सभी--प्रत्येक परमात्मा है। जो प्रत्येक को कह सके कि तुम भी वही हो।

नहीं तो परमात्मा का अनुभव भी बड़ा अहंकार का आधार बन सकता है। मैं कहूं कि मैं परमात्मा हूं, तुम परमात्मा नहीं हो, तो यह खबर होगी कि मैं अवधूत नहीं। जो कहे: मैं परमात्मा हूं और दूसरा परमात्मा नहीं, उसे कुछ भी नहीं दिखा; उसकी आंखें अंधी हैं; उसके कान बहरे हैं। उसने न सुना है, न देखा है। उसने परमात्मा के सहारे अपने अहंकार की यात्रा शुरू कर दी है।

तो अवधूत का चौथा अर्थ है--तत्वमसि --तुम भी वही हो। और तुममें--ध्यान रहे--सब समाविष्ट है; पत्थर-पहाड़, वृक्ष-पौधे-पक्षी, स्त्री-पुरुष सब समाविष्ट है। यह जो त्वम् है, यह जो तू है, इस तू में मुझसे अतिरिक्त सब समाविष्ट है। यह जो त्वम् है, यह जो तू है, इस तू में मुझसे अतिरिक्त सब समाविष्ट है।

तो मैं परमात्मा हूं--ऐसा जो जाने और साथ ही ऐसा भी जाने कि परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है--ऐसी चित्त-दशा का नाम है अवधूत। यह शब्द बड़ा प्यारा है।

दूसरा प्रश्न: बाबा मलूकदास भक्त है और मूर्तिपूजा का मजाक उड़ाते हैं। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि भक्ति परंपरा ने ही मूर्तिपूजा को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दी है?

परंपरा ने दी है--भक्तों ने नहीं। और परंपरा धर्म नहीं है। परंपरा तो, जहां से धर्म गुजर गया, वहां धूल पर पड़े चरण-चिन्हों का नाम है। जहां से धर्म कभी गुजरा था, वहां लकीरें छूट गई हैं, उन लकीरों का नाम परंपरा है।

हम चल कर आए, रास्ते पर तुम्हारे चरण-चिन्ह छूट गए। वे चरण-चिन्ह तुम बही हो। तुम तो दूर, तुम्हारे चरण-चिन्ह में तुम्हारा जूता भी नहीं है--जिसके कि चिन्ह बने हैं; वह भी चला आया है। खाली धूल पर पड़े निशान रह गए हैं, उन निशानों से परंपरा बनती है। चरण-चिन्हों से परंपरा बनती है।

धर्म तो जीवंत घटना है। धर्म तो सदा वर्तमान में है। धर्म का कोई अतीत नहीं है और धर्म का कोई भविष्य नहीं है। धर्म तो अभी है--यहां है।

मलूकदास जब जीवित है, तब धर्म है। जब मलूकदास जा चुके और उनके चरण-चिन्हों की लोग पूजा करने लगे--तब परंपरा है।

परंपरा धर्म-विरोधी होती है। धर्म की कोई परंपरा हो ही नहीं सकती। क्योंकि धर्म और परंपरा विपरीत घटनाएं हैं। परंपरा होती मृत की और धर्म है सदा जीवंत। जीवंत की कैसे परंपरा होगी?

धर्म है--सदा उपस्थित और परंपरा उसकी होती है, जो कभी था उपस्थित और जा चुका। कठिनाई ऐसी है कि जैसे दीया जलता हो, और फिर दीया बुझ जाए। और फिर तुम बुझे दीए की पूजा करते रहो। जलता दीया तो बाबा मलूकदास; बुझा दीया--परंपरा।

अब तुम बुझे दीए की पूजा करते रहो।

ऐसा समझो कि बाबा मलूकदास को तुमने जलते दीए के आसपास नाचते देखा। तुम्हें तो ज्योति दिखाई नहीं पड़ती दीए की, क्योंकि तुम अंधे हो। तुम तो टटोल कर देखते हो, तो तुम्हें दीया पकड़ में आता है; ज्योति तो पकड़ में आती नहीं। ज्योति को तो आंख से ही देखने का उपाय है। और तुम्हारी आंख भीतर की बंद है और यह भीतर की ज्योति की बात हो रही है।

तो तुम टटोल कर देख लेते हो कि बाबा मलूकदास किसलिए नाच रहे हैं; क्या मामला है; किस चीज के आसपास नाच रहे हैं? दीया पकड़ में आता है। फिर बाबा मलूकदास चले गए, अब तुम दीए के आसपास नाच रहे हो।

एक शराबी रात देर से घर लौटा। रास्ते में बड़ी झंझटें आईं। दीवालों से टकरा गया; चलते लोगों से टकरा गया; राह पर खड़े भैंस-बैलों से टकरा गया। बार-बार उसने अपनी लालटेन उठा कर देखी; उसने कहा: बात क्या है! साथ में लालटेन लिए है। फिर एक नाली में गिर पड़ा--अपनी लालटेन सहित; कोई उसे उठाकर उसके घर पहुंचा गया।

दूसरे दिन सुबह बैठा है: कुछ-कुछ धुंधली-धुंधली याद आ रही है रात की। सिर में भी चोट है; पैर में भी चोट है। वह सोच रहा है कि मामला क्या हुआ! लालटेन मेरे हाथ में थी, मैं इतना टकराया क्या? और तभी शराबघर का मालिक आया और उसने कहा कि भई, यह तुम्हारा लालटेन लो। तुम कल शराबघर में छोड़ आए थे। तुम मेरा तोते का पिंजड़ा उठा लाए। मेरा तोते का पिंजड़ा कहां है?

अब शराबी आदमी; बेहोशी में हो गया। लालटेन जैसा ही जंचा होगा--तोते का पिंजड़ा। पकड़ने में भी लालटेन जैसा मालूम पड़ा होगा। चल पड़ा!

बेहोशी में तुम जो पकड़ लेते हो, उससे बनती है परंपरा। होश में तुम जो जानते हो, वह है धर्म।

धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। परंपरा में कोई धर्म नहीं होता। इसलिए हिंदू को मैं धार्मिक नहीं कहता? मुसलमान को धार्मिक नहीं कहता। ईसाई को, जैन को धार्मिक नहीं कहता। धर्म का इनसे क्या संबंध! ये तो तोते के पिंजड़े हैं।

महावीर के हाथ में लालटेन थी; जैन के हाथ में तोते का पिंजड़ा है। कृष्ण के हाथ में लालटेन थी; हिंदू के हाथ में तोते का पिंजड़ा है। अब तुम तोते के पिंजड़े की कितनी ही पूजा करो; लाख नाचो गीत गाओ; तोते का पिंजड़ा, तोते का पिंजड़ा है; उससे प्रकाश नहीं मिल सकता। उसमें प्रकाश नहीं है।

ऐसा हुआ: सूफी फकीर बायजीद किसी गांव से गुजरता था। अनूठा फकीर था बायजीद। उसने देखा कि उसके पीछे ही उसके चरण-चिन्हों पर--ठीक चरण-चिन्हों पर पैर रखता हुआ एक

युवक चला आ रहा है। इधर-उधर पैर नहीं रखता! जहां-जहां बायजीद के चरण पड़ते हैं, वहीं पैर रखता है। बायजीद बाएं मुड़ता, तो वह बायें मुड़ता है, बायजीद दाएं मुड़ता है, तो वह दाएं मुड़ता है। थोड़ा उसका मजा लेने के लिए बायजीद काफी गोल-गोल चलने लगा। मगर वह युवक भी धुन का पक्का है। वह ठीक पीछे लगा है--छाया की तरह। वह ठीक चरण-चिन्हों पर ही पैर रखता है!

अंत में उसने बायजीद से कहा कि देखते हैं, आपके चरण-चिन्हों पर चल रहा हूं; बड़ आनंद मिला। आपके सत्संग से बड़ा रस आया। अब एक काम करें; आपके कपड़े का एक टुकड़ा मुझे फाड़ कर दे दें, उसकी मैं ताबीज बना लूंगा।

बहुत से देशों में ऐसा खयाल है कि संत के कपड़े का टुकड़ा मिल जाए, तो ताबीज बन जाएगा। संत मिलने को तैयार है, तुम कपड़ा ही मांग कर आ जाते हो! जहां हीरे मिल सकते थे, वहां तुम कौड़ी मांग कर आ जाते हो। तुम बड़े दया योग्य हो।

अब यह बायजीद के पास पहुंच गया है। बायजीद से तो जो मिल सकता है इस जीवन में, वह सब मिल सकता था; मगर यह मांग रहा है कपड़े का एक टुकड़ा--कि एक कपड़े का टुकड़ा दे दो। बायजीद ने कहा कि सुन, तू कपड़े का टुकड़ा क्या, अगर मेरे चमड़े का टुकड़ा भी ले जाए, तो भी ताबीज न बनेगा। बदबू आएगी उस ताबीज में। मेरे चमड़े के टुकड़े से मेरा क्या संबंध। मेरा संबंध नहीं मेरे चमड़े से, तो मेरे कपड़े से तो मेरा क्या संबंध है! पागल हुआ है?

लेकिन यह युवक जिद्द पर अड़ा रहा। उसने कहाः नहीं; आपका आशीर्वाद तो चाहिए ही। बायजीद ने कहाः मेरा आशीर्वाद चाहिए हो तो मेरी सुन। मैं जो कहता हूं, उसको सुन। मेरा आशीर्वाद चाहिए हो, तो मेरे पैरों के चिन्हों पर चलने से कुछ न होगा; मैं जिस दिशा में इशारे कर रहा हूं, उस दिशा में आंखें उठा। मेरा आशीर्वाद चाहिए, तो कुछ मुझ जैसा बन। नकल करने से कुछ भी न होगा।

हम कार्बन कापियां बन गए हैं। हमारा मूल स्वर खो ही गया है।

परंपरा का अर्थ होता है--प्रतिलिपि। प्रतिलिपि का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य तो मूल का है। धर्म जब भी होता है जगत में, तब किसी व्यक्ति के हृदय में झरने की तरह बहता है। हां, बुद्ध होते हैं, तो होता है। महावीर होते हैं, तो होता है जीसस होते हैं, तो होता है। नानक होते हैं, तो होता है। मूलक, फरीद...।

जब कोई व्यक्ति जीवितरूप से परमात्मा को अपने भीतर जीता है, तो धर्म होता है। फिर वह आदमी तो चला जाता है; फिर लकीर पीटने वाले आते हैं और अकसर ये लकीर पीटने वाले बड़े कुशल लोग होते हैं--पंडित, पुरोहित। ये बड़ा शब्दों का जाल बिछाते हैं। ये बड़े सिद्धांत और तर्क फैलाते हैं। असली बात तो जा चुकी; अब बात में से बात निकालते रहते हैं। हाथ में तो कुछ भी न रहा; राख रह गई। लेकिन राख के आधार पर सोचते रहते हैं कि जहां-

जहां राख है, वहां-वहां अंगारा भी होगा। जहां-जहां धुआं है, वहां-वहां आग भी होगी। इस तरह के हिसाब लगाते रहते हैं।

धर्म परंपरा है; धर्म संस्कार नहीं है।

तो यह बात ठीक है कि मलूकदास भक्त है और मूर्तिपूजा का मजाक उड़ाते हैं। सिर्फ भक्त ही उड?ा सकता है। सिर्फ भक्त में ही इतनी हिम्मत हो सकती है। क्योंकि जिसने परमात्मा को जाना है, वह मूर्ति से थोड़े ही डरेगा। वह मूर्ति को उठाकर फेंक देगा।

तुम डरते हो मूर्ति से, क्योंकि तुम्हें भय लगता है कि कहीं परमात्मा नाराज न हो जाए। परमात्मा को तो तुम जानते नहीं; इसी मूर्ति को जाना है बचपन से। तुम घबड़ाते हो कि कहीं मूर्ति नाराज न हो जाए। मूर्ति क्या खाक नाराज होगी!

झेन फकीर इक्कू एक मंदिर में ठहरा। रात सर्द है और उसने उठा कर बुद्ध की एक लकड़ी की प्रतिमा जला ली। और ताप ली। आधी रात मंदिर में आग जलती देख कर मंदिर का पुजारी घबड़ाया हुआ आया, भागा हुआ आया और उसने कहा: तुम पागल हो! तुम यह क्या कर रहे हो? मैंने तो तुम्हें फकीर जान कर मंदिर में रात ठहरा लिया। यह तुमने क्या किया--बहुमूल्य मूर्ति जला दी-- भगवान की मूर्ति जला दी! इसका पाप बड़ा होगा। इसका प्रायश्चित्त भुगतना पड़ेगा। वह पुजारी तो थर-थर कांप रहा है।

सोच सकते हो तुम: तुमने जिसको भगवान माना हो, उसको कोई जला कर ताप रहा हो। तुम्हारे कृष्ण जी को कोई जला कर ताप रहा हो; कि तुम्हारे राम जी को कोई जला कर ताप रहा हो। तुमने तो बड़ी साज-संवार की राम जी की। जब जरूरत थी भोजन की--भोजन दिया। जब नींद की जरूरत थी, तब लिटा दिया; कपड़े बदले। पट लगा दिए कि अभी राम जी सो रहे हैं; अभी कोई बाधा न डालो। और यह नासमझ राम जी को जलाए बैठा है!

पुजारी तो थर-थर कांप रहा है। सर्द रात है, लेकिन उसके माथे से पसीना चू रहा है। वह कह रहा है कि मेरी भी भूल हो गई कि तुम्हें मैंने ठहराया। तुम्हारे इस पाप में मैं भी भागीदार हो गया। यह महापाप है।

इक्कू हंसता है। और एक लकड़ी उठा कर जो बुद्ध की मूर्ति जल गई है, अब सिर्फ राख रह गई है, उस राख में कुरेदता है। वह पुरोहित पूछता है: क्या कर रहे हो अब यह? वह कहता है: मैं जरा भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। अस्थियां? वह पुरोहित कहता है: तुम बिलकुल पागल हो। अरे, लकड़ी की मूर्ति में कहां अस्थियां? तो इक्कू कहता है: फिर तुम भी जानते हो कि लकड़ी की मूर्ति है। अस्थियां नहीं तो भगवान कहां? अभी रात बहुत बाकी है और तुम्हारे मंदिर में बहुत मूर्तियां हैं, दो एक और उठा लाओ। मैं तापता हूं, तुम भी तापो।

यह इक्कू की ही हिम्मत हो सकती है। यह जो भगवान को जानता है, यह जो बुद्ध को जानता है, आमने-सामने पहचानता है। जिसका साक्षात्कार हुआ है, यह डरेगा--लकड़ी-पत्थर से? यह भयभीत होगा? यह प्रश्न ही नहीं उठता।

हम भयभीत होते हैं, क्योंकि हमें असली का तो परिचय नहीं; नकली भी हमें डराता है। सच तो यह है कि असली से हम डरते ही नहीं; नकली से ही डरते हैं। असली से तो हमारी मुलाकात ही नहीं। अगर भगवान तुम्हारे सामने आकर खड़ा हो जाए, तुम उससे न डरोगे; पक्का मानो, तुम न डरोगे। क्योंकि तुम उसे पहचानोगे ही नहीं। न तो वह होगा--धनुर्धारी राम जैसा। न होगा वह --मोरमुकुट बांधे कृष्ण जैसा। तुम उसे पहचानोगे ही नहीं। तुम तो धक्का देकर उसको अलग कर दोगे--कि रास्ता छोड़ो, कहां बीच में खड़े हो!

तुम तो उनको पहचानोगे, जो तुम्हारे झूठ हैं, प्रचलित झूठ है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि राम में भगवान नहीं हैं। राम में भगवान कभी झलके थे। उस दीए में ज्योति कभी झलकी थी। जो राम के पास थे, उन्होंने झलक देखी होगी। जिनके पास आंख थी, उन्होंने पहचान लिया होगा। अंधे तो इनकार करते रहे तब भी-- कि अरे, इसमें क्या राख है? दशरथ का बेटा है।

कृष्ण में कभी भगवान झलके थे, कभी वह परम ज्योति, परात्पर ज्योति उतरी थी उस दीए में; वह मिट्टी धन्य हुई थी। कृष्ण तो मिट्टी हैं, लेकिन उस मिट्टी में कभी परमात्मा की सुगंध आई थी। जिनके पास नासापुट थे, जिनके पास थोड़ा होश था, वे मगन होकर नाचे थे। लेकिन दूसरों ने तो समझा था--यह कपटी, राजनीतिज्ञ, उपद्रवी। फिर वह ज्योति विदा हो गई। दीया पड़ा रह गया।

मिट्टी ही पड़ी रह जाती है यहां, फिर हम मिट्टी की पूजा करते रहते हैं। हम मिट्टी के मजार बना लेते हैं। फिर मजारों पर हम दीए जलाते रहते हैं। हजारों साल बीत जाते हैं, चरण-चिन्हों की पूजा करते रहते हैं।

मैंने सुना है कि राम जब युद्ध विजय के बाद अयोध्या लौटे, राजगद्दी पर बैठे, तो उन्होंने एक बड़ा दरबार किया और सभी को पदवियां दी, पुरस्कार बांटे, जिन-जिन ने भी युद्ध में साथ दिया था। लेकिन हनुमान को कुछ भी न दिया और हनुमान की सेवाएं सबसे ज्यादा थी।

सीता बड़े पसोपेश में पड़ी। वह कुछ समझ न पाई कि यह चूक कैसी हुई! छोटे-मोटों को भी मिल गया पुरस्कार। पद मिले, आभूषण मिले, बहुमूल्य हीरे मिले, राज्य मिले। हनुमान --जिनकी सेवाएं सबसे ज्यादा थीं, उनकी बात ही न उठी। वे कहीं आए ही नहीं बीच में। राम भूल गए! यह तो हो नहीं सकता। राम को याद दिलाई जाए, यह भी सीता को ठीक न लगा। याद दिलाने का तो मतलब होगाः शिकायत हो गई। तो उसने एक तरकीब की--कि कहीं हनुमान को बुरा न लगे, इसलिए उसने हनुमान को चुपचाप बुला कर अपने गले का मोतियों का बहुमूल्य हार उन्हें पहना दिया। और कहते हैंः हनुमान ने हार देखा, तो उसमें से एक-एक दाना मोती का तोड़त्तोड़ कर फेंकने लगे। सीता ने कहाः मूर्ख बंदर, अब मैं समझी कि राम ने तुझे क्यों कोई उपहार न दिया। यह तू क्या कर रहा है? ये बहुमूल्य मोती है। ये मिलने वाले मोती नहीं हैं, साधारण मोती नहीं हैं। हजारों साल में इस तरह के

मोती इकट्ठे किए जाते हैं, तब यह हार बना है। ये सब मोती बेजोड़ हैं। यह अमूल्य हार पहनने के लिए है। तू यह क्या करता है?
हनुमान बोले: यह हार पत्थर का है। इसे मूर्ख मनुष्य भला गले में पहन सकते हों, मैं तो रामनाम को ही पहनता हूं। और मैं एक-एक मोती को चख कर देख रहा हूं, इसमें रामनाम का कहीं स्वाद ही नहीं है। इसलिए फेंकता जा रहा हूं।
शायद राम ने इसीलिए कोई पुरस्कार हनुमान को नहीं दिया। क्योंकि हनुमान के हृदय में तो राम थे। पुरस्कार तो प्रतीक होगा। जिसके पास राम हैं, उसे क्या पुरस्कार?

जिनने प्रभु की थोड़ी-सी पहचान पाई है, उसे प्रतिमा की जरूरत नहीं है; उसे मंदिर की जरूरत नहीं है; उसे पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है। तब तो मलूकदास कहते हैं कि राम का नाम भी नहीं लेता मैं। अपनी मस्ती में मस्त हूं। अब तो राम मेरा नाम लेता है।
यह बात सच है कि बाबा मलूकदास भक्त है--परम भक्त है; बेजोड़ भक्त हैं, फिर भी मूर्तिपूजा का मजाक उड़ाया है। भक्त ही उड़ा सकता है, क्योंकि भक्त जानता है: मूर्ति में कहां भगवान! और कब तक तुम मूर्ति में उलझे रहोगे? तुम्हें चौंकाने का मजाक उड़ाया है। तुम्हें झकझोरने का मजाक उड़ाया है। संत पुरुष तुम्हें जबान चाहते हैं, इसलिए मजाक उड़ाया है। इसमें कुछ भगवान के प्रति निंदा नहीं है।
इक्कू ने जो बुद्ध की मूर्ति जलाई थी, तुम सोचते हो उसमें भगवान के प्रति नाद है? जरा भी नहीं है। क्योंकि यही इक्कू दूसरे दिन सुबह राह के किनारे हाथ जोड़े हुए बैठा है--मील के पत्थर के सामने। फूल चढ़ा रहा है-- मील के पत्थर पर। पुजारी ने कहा कि तू बिलकुल ही पागल है। रात तूने भगवान की मूर्ति जला दी, अब मील के पत्थर पर...! यह मील का पत्थर है नासमझ, इस पर कहां फूल चढ़ा रहा है! उसने कहा: जब भाव चढ़ाने का होता है, तो कहीं भी चढ़ा दो, उसी के चरणों में पहुंच जाते हैं।
एक तरफ मूर्ति जला देता है भक्त, दूसरी तरफ मील के पत्थर पर फूल चढ़ा देता है भक्त। भक्त की अनूठी दुनिया है। वह प्रेम की दुनिया है। वह अपूर्व जगत है।
हम जहां से सोचते हैं, वहां से हमें विरोधाभास दिखाई पड़ सकता है और हमें यह भी लग सकता है कि भक्त परंपरा ने ही तो मूर्तिपूजा को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दी है, फिर यह कैसा मजाक?
भक्त ने मूर्ति में भी भगवान को देखा है, क्योंकि भगवान ही सब जगह है। फर्क समझ लेना।
भक्त को तो मूर्ति में भी भगवान है, क्योंकि भगवान के अतिरिक्त तो कुछ और कहीं भी नहीं है। सभी कुछ भगवान है। इसलिए तुम्हारे मंदिर की मूर्ति में भी भगवान है।
मलूकदास यह नहीं कह रहे हैं कि मूर्ति में भगवान नहीं है। मलूकदास इतना ही कह रहे हैं कि मूर्ति में भगवान है--ऐसी भ्रांति में मत पड़ना, नहीं तो चूक जाओगे। भगवान ही है सब

जगह है; तो मूर्ति में भी है। लेकिन फिर मूर्ति के लिए विशेष आयोजन की कोई जरूरत नहीं है।

जिसको भगवान दिखा, से मूर्ति में भी दिखाई पड़ जाएगा। और जिसे मूर्ति में ही दिखाई पड़ता है, उसे तो दिखाई ही नहीं पड़ा है अभी, तो मूर्ति में कैसे दिखाई पड़ेगा?

नानक को काबा में सोया देख कर काबा के मौलवियों ने उठाया कौर कहा कि तुम नासमझ हो। हमने तो सुना है कि बड़ा दार्शनिक आया है भारत से। और तुम पैर किए हो--पवित्र काबा की तरफ! हटाओ यह पैर।

तो नानक ने कहा: ऐसा करो, तुम स्वयं हटा दो, क्योंकि मैं बहुत थक गया हूं। दिन भर का थका-मांदा हूं, मुझसे यह पर हटाए न हटेंगे; तुम ही हटा दो। और फिर मैंने सब तरफ पैर करके देख लिए, कोई सार नहीं। सभी तरफ वही है। और पैर कहीं तो करूंगा; भले मानुषों, कहीं तो पैर करूंगा! और सभी तरफ वही है, तो अब मैं करूं क्या? तुम हटा दो।

कहानी बड़ी मीठी है कि मौलवियों ने क्रोध में नानक के पैर हटाए और देखा कि जहां पैर हटाए, वहीं काबा हट गया।

काबा हटा हो या न हटा हो, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन यह अंतरदृष्टि इस कथा में जो है, बड़ी गहरी है।

सब तरफ परमात्मा है, कहां पैर करोगे? कहीं तो करोगे; जहां करोगे, वहीं परमात्मा है।

ऐसी ही कथा महाराष्ट्र में एकनाथ के बाबत है कि एकनाथ एक मंदिर में सोए हैं--शंकर जी की पिंडी पर पैर टेके हुए! और एक आदमी आया, एक नास्तिक आया। नास्तिक घबड़ा गया। नास्तिक है--और घबड़ा गया! ईश्वर को मानता नहीं; मानता है कि पिंडी इत्यादि सब पत्थर है। लेकिन फिर भी घबड़ा गया।

नास्तिक के भीतर भी डर तो बना रहता है कि पता नहीं, हो ही। कौन जाने! कहता है--नहीं है, मगर नहीं है, कभी पूरा नहीं हो सकता; भीतर संदेह तो बना रहता है। जैसा तुम्हारे हैं कहने में संदेह बना रहता है, ऐसा ही उसके नहीं कहने में भी संदेह बना रहता है।

संदेह से छुटकारा इतना आसान नहीं है। और आस्तिक तो कभी संदेह से मुक्त हो भी जाए, नास्तिक कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसने तो संदेह के साथ सगाई कर ली है; उसने तो भांवर पाड़ ली है; वह तो संदेह में मजा लेने लगा है।

तो नास्तिक डर गया! वह आया था कुछ प्रश्न पूछने, जिज्ञासा करने। लोगों ने भेजा था। उसने सोचा: इस आदमी से क्या जिज्ञासा होगी! यह तो मुझसे महानास्तिक मालूम पड़ता है! मैं भी पैर नहीं मार सकता शंकर जी को। जानता हूं कि कुछ भी नहीं है, मगर पैर मारने में मैं भी डर जाऊंगा। झंझट कौन ले? कौन जाने--कुछ हो ही। पीछे कुछ अड़चन आ जाए।

तो उसने हिलाया एकनाथ को और कहा: महाराज मैंने सुना है कि आप महात्मा हैं; आप यह क्या कर रहे हैं? शंकर जी पर पैर टेके हैं?

तो एकनाथ ने कहा: और कहां टेकूं? कहीं तो टेकूंगा। तू कोई ऐसी जगह बता सकता है, जहां शंकर जी न हों?

यह बड़ी गहरी दृष्टि है। यह भक्त की ही संभावना है। यह एकनाथ जैसा भक्त ही शंकर जी के ऊपर पैर टेक सकता है। और मलूकदास जैसा भक्त ही मूर्तिपूजा का मजाक उड़ा सकता है। इसमें भक्ति का विरोध नहीं है; इसमें भक्ति की घोषणा है।

तीसरा प्रश्नः कन थोड़े कांकर घने की परख-बुद्धि कैसे पाई जाती है?

बुद्धि तो है ही तुम्हारे पास, तुम उसका उपयोग नहीं कर रहे हो। सुनार के पास देखा है--सोने को कसने का पत्थर। यह तुम्हारी जेब में ही पड़ा है। लेकिन तुम अपने जीवन के सोने को उस पर कसते नहीं। दोनों का मेल नहीं हो पाता।

परख की बुद्धि तुम्हारे पास है; कहीं से लानी होती, तो फिर बहुत मुश्किल थी। परख की बुद्धि तुम्हारे पास न होती तो तुम खोजने भी कैसे जाते? किससे खोजते? कैसे खोजते? कैसे पहचानते?

परख की बुद्धि तुम्हारे पास है, लेकिन तुमने उसका उपयोग नहीं किया है। तुम भी जीवन के उन्हीं अनुभवों से गुजरते हो, जिनसे मलूकदास गुजरे होंगे। तुमने भी क्रोध किया, तुमने भी घृणा की, तुमने भी वैमनस्य किया, तुमने भी शत्रुता साधी, तुमने भी काम-भोग में अपने को उतारा। तुम भी पछताए, तुम भी हारे।

तुम भी उन्हीं अनुभवों से गुजरे, जिनसे मलूकदास गुजरे हैं। कोई अलग अनुभव तुम्हारे नहीं हैं। और मलूकदास के पास जो बुद्धि है, वह तुम्हारे पास भी है। परमात्मा ने इस संबंध में कोई पक्षपात नहीं किया है।

प्रत्येक के पास बुद्धि है; पर्याप्त बुद्धि है। फर्क क्या है फिर? मलूकदास ने अपनी बुद्धि को अपने जीवन के अनुभव पर लगाया। एक-एक अनुभव को कसा। क्रोध किया, फिर अपनी बुद्धि के साथ कस कर देखा--क्या पाया? कुछ पाया? कुछ मिला मुझे? आगे भी करने जैसा है--कि नहीं करने जैसा है?

तुम कभी कसते नहीं। तुम क्रोध कर लेते हो, फिर भूल जाते हो। तुम इस क्रोध से कुछ अनुभव, कोई सार-संचय नहीं निकालते। यह क्रोध तुम्हारे संपदा नहीं बनता, नहीं तो क्रोध भी सीढ़ी बन जाए। एक दफा किया, दो बार किया, तीन बार किया--कितनी बार किया! कुछ भी कभी नहीं पाया। लेकिन यह प्रतीति तुम्हारी गहरी नहीं हो पाई कि कुछ भी कभी नहीं मिला। तो अब जब दुबारा करो, तो थोड़ा झिझक कर करना कम से कम। मैं यह भी नहीं कहता कि मत करना। थोड़े झिझक कर करना। एक क्षण रुक कर करना। एक क्षण विचार कर करना। पहले आंख बंद कर लेना; अपने अतीत के सारे क्रोध के अनुभव को सोच लेना। इतनी बार किया; इतनी बार पछताए। इतनी बार कुछ भी न पाया। अब फिर घड़ी आ गई; अब फिर करने का मौका आ गया; करना है--या नहीं?

गुरजिएफ के दादा की मृत्यु हुई, तो गुरजिएफ का दादा उससे कह गया कि मेरे पास तुझे देने को कुछ भी नहीं है; मैं गरीब आदमी हूं। लेकिन एक चीज मेरे काम बहुत पड़ी जीवन में, तुझे दे जाता हूं; तुझे भी काम पड़ेगी।

नौ साल का था गुरजिएफ। उसके दादा ने कहाः अभी तू शायद समझ भी न पाए, लेकिन ठीक-ठीक याद कर ले, कभी समझ जाएगा। जब भी तुझे क्रोध आए, तो चौबीस घंटे का समय मांग लेना। कहनाः चौबीस घंटे बाद आ कर करूंगा। कोई गाली दे, तो तो उससे कहना कि भाई ठीक, तुमने गाली दे दी; मैं चौबीस घंटे बाद आ कर जवाब दे दूंगा।
गुरजिएफ ने लिखा है कि इस छोटे से सूत्र ने मेरा सारा जीवन बदल दिया। अब चौबीस घंटे बाद कोई क्रोध कर सकता है? यह तो तुरत-फुरत हो जाए तो हो जाए। क्रोध तो ऐसी आग है कि इसी वक्त जल जाए, तो जल जाए। थोड़ी देर बाद तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हें कह देगी कि क्या फिजूल की बातों में पड़े हो? क्या मरने-मारने की बातें सोच रहे हो!
गुरजिएफ ने लिखा हैः क्रोध तो फिर हुआ ही नहीं। चौबीस घंटे बाद या तो मुझे यह दिखाई पड़ जाता कि उसने जो कहा, ठीक ही कहा। जैसे किसी आदमी ने तुम्हें चार कह दिया। अब तुम लड़ने-मारने को तैयार हो गए। तुम पहले यह भी तो सोचोः हो सकता है--वह ठीक ही कह रहा हो, तो धन्यवाद देना चाहिए। उसने तुम्हें याद दिला दी; वह तुम्हारा मित्र है--शत्रु नहीं है।
तो यह तो ठीक कह रहा है, तब तो क्रोध का कोई कारण नहीं है। धन्यवाद देने गुरजिएफ को जाना पड़ता। गत कह रहा है--बिलकुल गलत कह रहा है; अब जो बिलकुल गलत कह रहा है, उस पर क्या क्रोध करना! झूठ पर कोई क्रोध होता है?
तुमने खयाल कियाः तुम्हारे संबंध में जब कोई ऐसी कोई बात कह देता है, जो कहीं खटकती है, तो उसका मतलब ही यह हुआ कि उसमें कुछ सचाई है। किसी ने तुम्हें चोर कह दिया तो खटकता है। किसी ने तुम्हें झूठा कह दिया, तो खटकता है। क्योंकि तुम जानते होः झूठ तुम बोले हो। तुम जानते होः चोरी तुमने की है; न भी की हो, तो कम से कम सोची है; करने के इरादे किए हैं।
खटकती है वही बात, जो सच होती है। तुम जब, कोई तुम्हारा अपमान करता है और क्रोधित हो जाते हो, तो तुम्हारे क्रोध से सही प्रमाण मिलता है कि उसने जो कहा, ठीक ही कहा था।
तो या तो ठीक ही कहा होगा, तो धन्यवाद दे आना। या व्यर्थ ही कहा होगा, तो दया आएगी कि बेचारे ने नाहक मेहनत की। कितना उतावला हो गया था! मरने-मारने को उतारू हो गया था--एक झूठ के लिए, जिससे मेरा कोई संबंध नहीं है; जो उसने किसी और के लिए कहा होगा; मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है। तब तो बात समाप्त हो गई।
तुमने क्रोध तो बहुत बार किया, लेकिन परख की बुद्धि का उपयोग नहीं किया। और परख की बुद्धि कैसे पाएं, यह पूछो मत; यह तरकीब है। परख-बुद्धि तुम्हारे पास है।
जब कांटा चुभता है, तो तुम्हें पता नहीं चलता कि पीड़ा हो रही है? तुम दुबारा फिर कांटों से बचकर नहीं चलने लगते? तुम्हारे हाथ में जब पहली दफा आग का स्पर्श होता है, तो फिर तुम दुबारा आग का स्पर्श करते झिझकते नहीं? वही तो परख-बुद्धि है। और परख-बुद्धि क्या है? तुमको पता चल जाता है कि यह कांटा है; यह दुखता है; इससे सावधान होकर

चलो। तुम्हें समझ आ जाता है: यह आग है, इसे मत छुओ। लेकिन जीवन की गहरी बातों में तुम प्रयोग नहीं करते।

कांटा है क्रोध। काम अग्नि है, जलाती है। वासना दुष्पूर है, कभी भरती नहीं। ऐसा ही समझो कि बाल्टी में पेंदी नहीं है और कुएं से पानी भर रहे हैं। पेंदी है ही नहीं बाल्टी में। खड़खड़ाहट बहुत मचती है। कुएं में जाकर बाल्टी गिरती है। जब तुम झांक कर देखते हो, तो बाल्टी में पानी भरा हुआ भी मालूम पड़ता है--जब बाल्टी पानी में डूबी होती है। फिर खींचो; खाली बाल्टी वापस आ जाती है।

कितनी बार तुमने काम-वासना के कुएं में अपने जीवन की बाल्टी डाली है! क्या पाया? सदा खाली लौट आई।

बुद्धि तुम्हारे पास है, शायद तुम उपयोग करना नहीं चाहते। शायद तुम डरते हो कि कहीं उपयोग किया, तो कहीं सचाइयां समझ में न आ जाएं।

मेरे एक मित्र थे, मौत से बहुत डरे हुए आदमी थे वे। एक ही डर उनकी लगा रहता था कि कहीं मौत न आ जाए। अब मौत आ ही रही है, इसमें डरने का कोई करण नहीं है। मैंने उनसे कहा, तुम ऐसी चीज से डर रहे हो, जिसमें डरने को कोई कारण नहीं है; मौत आ ही रही है; बचने का भी कोई उपाय नहीं है। कोई कभी बच नहीं पाया। आज तक नहीं बचा। तुम कैसे बच जाओगे! इसलिए जो होना ही है, उसे स्वीकार कर लो।

लेकिन वे तो मौत शब्द से भयभीत होते थे। हम भी मौत शब्द का कम प्रयोग करते हैं। कोई मर जाता है, तो हम कहते हैं: फलां व्यक्ति स्वर्गवासी हो गया। सीधा नहीं कहते कि मर गया। स्वर्गवासी! कहते हो कि फलां व्यक्ति स्वर्ग पधार गया; कि राम के प्यारे हो गए; प्रभु-प्यारे हो गए।

हम मौत शब्द का उपयोग करने में डरते हैं; कुछ घबड़ाहट आती है। कहते हैं कि भगवान ने उठा लिया। अब सभी मर कर स्वर्गवासी नहीं होते। तुम्हारे हिसाब से तो दिल्ली में जो मरते हैं, वे भी स्वर्गवासी हो जाते हैं! नहीं हो सकते। मगर तुमने कभी देखा: किसी ने बाबत अखबार में खबर छपी हो कि नरकवासी हो गए!

हम भयभीत हैं; हम मौत से भयभीत हैं। हम मौत शब्द का उपयोग नहीं करते। हम इसे अच्छे-अच्छे शब्दों में छिपा लेते हैं। हम मौत को कहते हैं--महायात्रा पर निकल गए। हमने तरकीबें निकाली हैं--ढंग से कहने की।

आदमी मर जाता है--जिंदगी भर कभी परमात्मा नहीं लिया--तब हम उसकी अर्थी के साथ: रामनाम सत्य है दोहराते हुए चलते हैं। उसकी जिंदगी से इसका कोई संबंध नहीं है। राम नाम असत्य था उसकी जिंदगी में; कभी सत्य नहीं था। और अब मर गया आदमी, लाश को ढो रहे हैं--और रामनाम सत्य है...!

हमने सारा जीवन झूठ कर रखा है--एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक।

वे मित्र बड़े परेशान थे। फिर उनको कुछ बीमारी लगी, तो वे डाक्टर के घर न जाएं! उसकी पत्नी मेरे पास आई, आप उन्हें कम से कम इतना ही समझा दें डाक्टर के घर चलें!

मैंने उन्हें बुलाया, तो उन्होंने कहाः जाऊं क्यों? बीमार ही नहीं हूं। डाक्टर के घर क्यों जाऊं? जब बीमार होऊं, तो ही जाऊं। तो मैंने उनसे कहाः देखो, तुम्हारा तर्क बिलकुल ठीक है। कालेज में प्रोफेसर थे वे। तुम्हारा तर्क बिलकुल ठीक है। लेकिन जब तुम बीमार ही नहीं हो, तो तुम डरते क्यों हो जाने से? चला मेरे साथ। जब तुम बीमार ही नहीं हो, तो बात खतम हो गई। पत्नी का मन रह जाएगा। काहे को झंझट करनी!

अब जरा वे मुश्किल में पड़े। बचने का रास्ता न रहा। जब बीमार ही नहीं तो मैंने कहा, डरना क्या। फीस मैं दूंगा। गाड़ी में मैं तुम्हें बिठा कर ले चलता हूं। घर तुम्हें मैं छोड़ दूंगा। तुम्हें डर क्या! तुम्हारी पत्नी भी राजी हो गई है और तुम बीमार हो ही नहीं। तुम बीमार हो क्या? उन्होंने कहाः नहीं।

लेकिन माथे पर पसीने की बूंदें हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि बीमार वे हैं। सीढ़ियां चढ़ते नहीं बनता उनसे। जरा में हांफने लगते हैं। हृदय दुर्बल हुआ है। उसी से तो डरते हैं वे कि कहीं कुछ मामला न हो जाए।

रास्ते में मुझसे कहने लगेः ऐसा कुछ जरूरी है क्या? मैंने कहाः जरूरी कुछ भी नहीं है, क्योंकि तुम बीमार हो ही नहीं। उन्होंने कहाः छोड़ो जी, यह बात क्या लगा रखी है कि बीमार हो ही नहीं। तुम्हें पता है कि मैं डर रहा हूं। और तुम्हें मालूम है कि मेरी हालत ठीक नहीं है। और मैं नहीं चाहता जानना। मुझे डर है कि मेरे पिता टी. बी. से मरे; मेरी मां टी. बी. से मरी; कहीं मुझे टी.बी. न हो!

पर मैंने कहाः डरने के कारण तो टी.बी. मिटेगा नहीं। सिर्फ झुठलाने से तो टी. बी. मिटेगा नहीं। अब तो टी.बी. का इलाज है; अब टी. बी. कोई बीमारी है? सर्दी-जुकाम से कमजोर बीमारी है टी.बी.। सर्दी-जुकाम नहीं मिटता; टी. बी. तो मिट जाती है; टी.बी. का तो इलाज है। सर्दी-जुकाम का कोई इलाज नहीं है। तो तुम कोई बड़ी खतरनाक बीमारी में नहीं पड़े हो। टी. बी. तो ठीक हो जाएगा। लेकिन अगर निदान से ही डर रहे हो, तो फिर कैसे होगा?

ऐसी हमारी दशा है।

टी. बी. कही निकला। और जब टी. बी निकला और वे घर पर लौटने लगे, तो मुझ पर बहुत नाराज थे कि मैंने पहले ही कहा था कि जाने की कोई जरूरत नहीं। अब उनको घबड़ाहट पकड़ी। टी. बी. है--इसको झुठला रहे थे।

जिनने प्रश्न पूछा है--सुखदेव महाराज ने--कन थोड़े कांकर घने की परख बुद्धि कैसे पाई जाती है? तुम्हारे पास बुद्धि है सुखदेव महाराज! बुद्धि भलीभांति है! तुम जानते भी हो। तुम्हें पहचान भी है, तुम बच रहे हो।

खुद को बदलाता था, आखिर खुद को बहलाता रहा।

मैं बई सोजे दरूं हंसता रहा, गाता रहा।

मुझको एहसासे-फरबे-रंगो बू खाता रहा।

खुदको बहलाता था, आखिर खुद को बहलाता रहा।

यह सब बहलाना है। तुम्हें असलियत का पता है; सब को पता है। मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा, जिसे असलियत का पता न हो। झुठला रहा है। आंख नहीं लगाता असलियत पर। आंखें यहां-वहां चुरा रहा है। आंखें बचाकर देख रहा है।

खुद को बहलाता था, आखिर खुद को बदलाता रहा। बहलाना है, तो बहलाते रहो। मैं बई सोजे दरूं हंसता रहा, गाता रहा। हृदय जल रहा था, लेकिन ऊपर से मुस्कुराते रहो।

मैं बई सोजे दरूं हंसता रहा, गाता रहा। जानता था--भीतर जलन हो रही है, और ऊपर से मुस्कुराते रहा। वे मुस्कुराहटें तुम्हारी, छिपाने के उपाय हैं, आत्मवंचनाएं हैं।

मुझको एहसासे-फरेबे रंगों बू होता रहा। मुझे दिखाई भी पड़ता रहा कि रंग और सुगंध की यह दुनिया सब छल है। मुझको एहसासे-फरेबे रंगो बू होता रहा। मुझे पता भी चलता रहा कि सब क्षण भंगुर है। मैं मगर फिर भी फरेबे-रंगों बू खाता रहा। लेकिन फिर भी इस भ्रम में बड़ी मिठास थी और मैं बार-बार यह भ्रम खाता रहा।

नहीं; परख-बुद्धि नहीं करनी होती। परख-बुद्धि परमात्मा ने दी है सिर्फ उपयोग करना है। सीखे में पड़ा है--कसन का पत्थर--तुम्हारे भीतर पड़ा है, उसे जरा जीवन के अनुभवों में उपयोग करने लगी। चलो, अब तक नहीं किया कोई फिक्र नहीं। अभी भी तो जीवन बहुत बाकी है, इतने में ही उपयोग करो।

अगर कोई व्यक्ति चौबीस घंटे भी अपनी परख-बुद्धि का उपयोग करे, तो दूसरा आदमी हो जाएगा। क्योंकि चौबीस घंटे में करीब-करीब सब बातें दोहर जाती हैं, जो पूरे जीवन में दोहराती हैं। क्रोध हो जाता, काम हो जाता; भूख लग आती, प्यास लग आती; मान-अपमान हो जाता; अहंकार पकड़ जाता, लोभ पकड़ जाता,र् ईष्या पकड़ जाती, जलन हो जाती। चौबीस घंट में सारी कथा दोहरा जाती। फिर तुम इसी को तो रोज-रोज पुनरुक्ति करते हो।

अगर तुम चौबीस घंटे भी जाग कर देख लो कि क्या हो रहा है...। और एक-एक चीज को गौर से देख लो, आंखें न बचाओ। आंखें गड़ाओ अपने अनुभव में तो काई अड़चन नहीं है। मुक्ति बहुत निकट है। सामान पूरा तैयार है। वीणा तुम्हारे पास पड़ी है, लेकिन तार छेड़ो।

तुम पूछते हो: वीणा कहां खोजें? मैं कहता हूं: वीणा तुम्हारे सामने रखी है। तुम जरा अंगुलियां चलाओ। वीणा भी है; अंगुलियां भी हैं; अंगुलियों के वीणा के तार पर पड़ते ही स्वर भी उठेगा। सब है। लेकिन पूछते हो: वीणा कहां है! यह तुम्हारी तरकीब है। तुम कहते हो: जब वीणा ही नहीं है, तो मैं संगीत कैसे उठाऊं! आंगन टेढ़ा नाचूं कैसे! लेकिन नाचना हो, तो आंगन के टेढ़े होने से कुछ फर्क पड़ता है! और न नाचना हो, तो आंगन कितना ही चौकोर हो, क्या फर्क पड़ेगा? फिर भी कोई फर्क न पड़ेगा।

चौथा प्रश्न: प्रेम और त्याग में किसका महत्व बढ़कर है?

ऐसा समझो: जैसे एक सिक्के के दो पहलू हैं, इनमें किसका महत्व बढ़ कर है? ऐसा समझो कि दिन और रात--इसमें किसका महत्व बढ़ कर है? ऐसा समझो कि अंडा या मुर्गी--इसमें किसका महत्व बढ़कर है? संयुक्त है; जुडे हैं। दो नहीं हैं असल में, एक ही है।

दिन और रात दो थोड़े ही हैं; एक ही चीज के दो पहलू हैं। अंडा और मुर्गी दो थोड़े ही हैं; एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं।

सदियों से वैज्ञानिक, दार्शनिक सोचते रहे हैं कि पहले कौन?--मुर्गी या अंडा? और ऐसे पागल भी हुए हैं, जिनने इस पर खूब विचार किया है! और इसका उत्तर भी देने की कोशिश की है। विवाद भी खड़े किए हैं। कोई कहता है: मुर्गी पहले, क्योंकि मुर्गी के बिना अंडा कैसे होगा? और उतने ही तर्क से कोई कहता है: अंडा पहले, क्यों अंडे के बिना मुर्गी कैसे होगी? और इनका विवाद चलता रह सकता है सदियों तक, इसका कोई अंत नहीं होगा, क्योंकि अंत हो ही नहीं सकता।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: न तो मुर्गी पहले है, न अंडा पहले है। मुर्गी और अंडा दो नहीं हैं। मुर्गी अंडे का एक रूप है, अंडा मुर्गी का एक रूप है। अंडा मुर्गी का प्राथमिक रूप है; मुर्गी अंडे की ही बढ़ी हुई अवस्था है। जैसे बचपन और बुढापा। बचपन ही बढ़ बढ़ कर बुढापा हो जाता है। जीवन ही बढ़ बढ़ कर मौत हो जाता है। और दिन ही बढ़ बढ़ कर रात हो जाता है। संयुक्त हैं।

ऐसा ही प्रेम और त्याग। अलग-अलग नहीं हैं।

जिसने त्याग जाना, उसने प्रेम जाना। जिसने प्रेम जाना, उसने त्याग जाना। जिसने बिना प्रेम के त्याग जाना, उसका त्याग झूठा। और जिसने बिना त्याग के प्रेम जाना, उसका प्रेम झूठा। अगर प्रेम सच्चा है, तो उसके साथ त्याग आएगा ही। अगर त्याग सच्चा है। तो उसके भीतर प्रेम की ज्योति जलती ही होगी।

अगर तुम कहो कि यह अंडा ऐसा है कि जो मुर्गी ने नहीं दिया तो समझना कि अंडा झूठा है। फिर किसी फैक्टरी में बना होगा। फिर प्लास्टिक का होगा। तुम कहो कि यह मुर्गी अंडे से नहीं आई, तो यह मुर्गी असली नहीं हो सकती। असली मुर्गी तो अंडे से ही आती है।

और दुनिया में ऐसा प्रेम पाया जाता है, जिसमें त्याग नहीं है। और दुनिया में ऐसा त्याग पाया जाता है, जिसमें प्रेम नहीं है। ये दोनों झूठे हैं, थोथे हैं, कृत्रिम हैं, ऊपरी हैं।

संत जिस प्रेम की बात कहते हैं, उसमें त्याग छाया की तरह आता है। और संत जिस त्याग की बात करते हैं, प्रेम उसकी आत्मा है।

अब समझने की कोशिश करो--ये दोनों जुड़ें क्यों हैं?

जब भी तुम प्रेम करोगे, तुम्हारे भीतर दान का भाव उठेगा। प्रेम देता है। प्रेम है ही क्या? देने की परम आकांक्षा है। प्रेम बांटता है। प्रेम के पास जो भी है,

लुटाता है। प्रेम बड़ा प्रसन्न होता है दे कर। प्रेम कंजूस नहीं है। इसलिए कंजूस प्रेमी नहीं होते। इसलिए कंजूस प्रेमी हो ही नहीं सकता। कंजूस से दोस्ती मत बनाना। कंजूस के पास देने की भावना ही नहीं है, इसलिए दोस्ती बन नहीं सकती। और प्रेमी कंजूस नहीं होते।

मनोवैज्ञानिक भी इस बात से राजी हैं कि जिनके जीवन में बहुत प्रेम है, वे कभी बहुत धन-संपत्ति पद इकट्ठा नहीं कर पाते। करेंगे कैसे! इधर आया नहीं कि गया नहीं! उनके हाथ सदा खुले हैं। मुक्त आकाश--बंटता रहता है। और जो धन-पद इकट्ठा कर पाते हैं, एक बात पकड़

लेना--उनसे जीवन में प्रेम नहीं पाओगे, प्रेम का स्वर ही नहीं पाओगे। वहां तो इकट्ठा करने की दौड़ इतनी है कि बांटने का सवाल ही कहां उठेगा? एक पैसा देने में भी घबड़ाहट होगी, बेचैनी होगी। एक पैसा कम हो गया! देने का मतलब वहां कम हो जाना है। और प्रेम की दुनिया में देने का मतलब और बढ़ जाना है। प्रेम जितना देता है, उतना बढ़ता है।

तो प्रेम का अर्थ ही होता है--अपने को बांटने की क्षमता। तो त्याग अपने आप आता है। लेकिन यह त्याग बड़ा अनूठा है। यह त्याग, जैन मुनि जैसा त्याग नहीं है। वह त्याग थोथा है। यह प्रेमी का त्याग है। यह मलूकदास का त्याग है। यह महावीर का त्याग है, लेकिन जैन मुनि का त्याग नहीं है। यह वैराग्य नहीं है। फर्क समझना।

एक आदमी धन छोड़ देता है, क्योंकि अगर धन को पकड़े रहेगा, तो नरक जाना पड़ेगा। यह भय के कारण धन छोड़ रहा है। और एक आदमी इसलिए धन छोड़ देता है कि दूसरों की जरूरत है। जिनको जरूरत है, उन्हें दे देता है। यह आदमी प्रेम के कारण धन छोड़ रहा है। दोनों धन छोड़ रहे हैं, लेकिन दोनों के छोड़ने की प्रक्रिया बड़ी अलग है और दोनों के परिणाम अलग हैं।

जिस आदमी ने धन नरक के डर से छोड़ा, इस आदमी ने त्याग तो किया, लेकिन इसके त्याग में प्रेम की आत्मा नहीं है। बुझा हुआ त्याग है। इसलिए अपने त्याग का गुणगान करेगा यह। यह कहेगा कि मैंने कितना छोड़ दिया! कितना छोड़ा! यह त्याग के ऊपर सिंहासन बना कर बैठ जाएगा। यह त्याग से अकड़ जाएगा...कि देखो, मैंने लाखों छोड़ दिए! इसने किसी को दिए नहीं हैं। इसने बांटे नहीं हैं, यह भागा है। यह भय से भागा है।

यह तो ऐसा ही समझो कि कोई तुम्हारी छाती पर पिस्तौल लगा दे और कहे कि खाली करो जेब। और तुम जल्दी से जेब खाली कर दो और कहो कि लो महाराज, सब त्याग कर दिया! यह त्याग हुआ?

नरक की पिस्तौल लगी है छाती पर और तुमने छोड़ दिया। यह त्याग हुआ? यह त्याग नहीं है।

त्याग बड़ी और बात है। त्याग का मतलब है: तुमने देखा--कि तुम्हें जितनी जरूरत है उससे ज्यादा जरूरत दूसरे की है। तुमने देखा कि इसे रोक रखने में तो कोई भी सार नहीं है; बहुत लोग वंचित रह जाएंगे। तुमने देखा कि यह धारा तो बहती रहे; यह सब की है; मेरा इसमें क्या है? हवा सब की, आकाश सब का--सब सब का है, इसमें मेरा क्या है? तुमने ममत्व न रखा, क्योंकि तुमने देखा कि सब पर सभी मालिक हैं। तुमने मालकियत न रखी--प्रेम के कारण, तो तुम्हारी त्याग में एक अनूठी गरिमा है, एक गौरव है। और तब तुम इस त्याग की बात ही न करोगे। तब तुम्हें इस त्याग का स्मरण भी न आएगा। यह त्याग तुम्हारे अहंकार का आभूषण न बनेगा। और अगर त्याग अहंकार का आभूषण बन जाए, तो चूक गए। तीर चूक गया। निशाना नहीं लगा।

त्याग का जब पता भी नहीं चलता, तभी...।

एक सूफी कथा है: एक सूफी फकीर परमात्मा की प्रार्थना में ऐसा गहरा तल्लीन हो गया कि एक फरिश्ता प्रगट हुआ और उसने कहा कि प्रभु ने मुझे भेजा है; तुम कुछ वरदान मांग लो। उसने कहा लेकिन मुझे कुछ कमी नहीं है। मुझे जो चाहिए--जरूरत से ज्यादा मिला है। उसका प्रेम मेरे प्रति अपार है। धन्यवाद। मुझे कुछ चाहिए नहीं। लेकिन फरिश्ते ने कहा: यह नियम के विपरीत है। जब भगवान किसी की आशीर्वाद देने के लिए भेजता है, तो लेना ही पड़ता है। यह तो अपमान हो जाएगा। तुम्हें लेना पड़ेगा। तो उसने कहा: बड़ी मुश्किल में डाल दिया। तो तुम्हीं सुझा दो, क्या लू लूं! क्योंकि मुझे कुछ याद ही नहीं पड़ता। मेरे पास जरूरत से ज्यादा है; मैं तो बांटता हूं। उसके प्रेम ने मुझे ऐसा भर दिया है कि मैं बांटता हूं और बढ़ता जाता है। जो मेरे पास है, बांटता रहता हूं। और कभी कुछ कमी होती नहीं। अब तुमने एक अजीब मुश्किल खड़ी कर दी। तो तुम्हीं बता दो।

तो उस फरिश्ते ने कहा कि कुछ भी ऐसी बात मांग लो, जिससे दूसरों का भला हो। समझो कि तुम्हारे छूने से कोई बीमार ठीक हो जाए। कि तुम्हारे छूने से कोई सूखा वृक्ष हरा हो जाए। ऐसी कुछ बात मांग लो कि तुम्हारे हाथ में संजीवनी का प्रभाव आ जाए।

उस फकीर ने कहा: यह तो ठीक है। लेकिन इसमें खतरा है। अभी मैं बिलकुल नहीं मिट गया हूं। इसमें अकड़ पैदा जाने का डर है कि मेरे छूने से सूखा झाड़ हरा हो गया; कि मेरे छूने से बेमौसम में फूल आ गए; कि मेरे छूने से मुरदा जाग गया। अभी मैं मरा नहीं हूं। अभी मैं थोड़ा-थोड़ा हूं। यह तो खतरनाक बात है। लेकिन तुम अगर जिद्द ही करते हो, तो ऐसा करो कि मेरी छाया को यह आशीर्वाद दे दो--कि मेरी छाया अगर सूखे वृक्ष पर पड़ जाए, तो वृक्ष हरा हो जाए; कि मेरी छाया अगर किसी मुरदे को छू ले, तो वह जीवित हो जाए।

फरिश्ते ने कहा: इससे क्या फर्क पड़ेगा? उसने कहा इससे फर्क पड़ेगा। मैं पीछे लौट कर कभी देखूंगा ही नहीं। तो छाया से जो होगा, छाया जाने। मेरा इससे कुछ संबंध न जुड़ेगा।

और तब कहते हैं: वह फकीर भागता रहता था--एक गांव से दूसरे गांव, एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले, एक आदमी से दूसरे आदमी। और उस फकीर ने जिंदगी में कभी पीछे लौट कर नहीं देखा। बस, वह दौड़ता रहता कि जितने ज्यादा लोगों को छाया उसकी लग जाए। तो कोई बीमार ठीक हो जाए; कोई मुर्दा उठ जाए; कोई वृक्ष सूखा था, हरा हो जाए; कोई पानी का स्रोत सूख गया था, तो झरना प्रगट हो जाए। मगर वह भागता रहता था। वह पीछे लौटकर नहीं देखता था। वह कभी एक गांव में नहीं रुकता था, क्योंकि जितने दूर-दूर भाग सके और जितने लोगों पर उसकी छाया पड़ जाए, उतना ही अच्छा। और उसे कभी याद भी नहीं पड़ा कि कौन-कौन ठीक हुए। उसने कुछ हिसाब भी न रखा। अगर तुम उससे पूछते जीवन के अंत में--खुद परमात्मा पूछता, तो वह नहीं बता सकता था--कितने मुर्दा जीए, कितने वृक्ष हरे हुए, कितने झरने बहे, कितनी बीमारियां मिटीं। उसके पास कोई हिसाब न होता।

प्रेम हिसाब जानता ही नहीं। प्रेम पीछे लौट कर देखता ही नहीं। प्रेम में गणित का उपाय ही नहीं है।

तो तुम पूछते हो: प्रेम और त्याग में किसका महत्व बढ़ कर है? यह महत्व बढ़ कर है--ऐसा प्रश्न ही उठाना गलत है।

प्रेम के पीछे त्याग आता; त्याग के साथ प्रेम आता।

लेकिन अगर तुम्हारे प्रश्न का यह अर्थ हो कि कहां से शुरू करें, तो मैं तुमसे कहूंगा--प्रेम से शुरू करो। क्योंकि त्याग से शुरू करने में भूल हो सकती है।

बहुतों ने तुम्हें यही समझाया है कि त्याग से शुरू करो। मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं--प्रेम से शुरू करो, क्योंकि प्रेम केंद्र है--त्याग परिधि है। कोई परिधि बिना केंद्र के नहीं होती, और कोई केंद्र बिना परिधि के नहीं होता, इसलिए जहां तक होने का संबंध है, दोनों का मूल्य बराबर है।

लेकिन अगर तुम्हें एक परिधि बनानी हो, तो पहले तो परलोक केंद्र पर जमानी पड़ती है। केंद्र से परिधि पैदा होती है। प्रेम केंद्र है।

तो पहले तुम प्रेम से भरो! त्याग आए अपने से, तो तुम्हारी छाया को बल मिल जाएगा, तुम्हारी छाया में संजीवनी का गुण आ जाएगा। लेकिन त्याग को घसीट कर आगे मत लाना। माना कि बैल और गाड़ी में दोनों महत्व के हैं: अकेला बैल हो, तो क्या गाड़ी चलेगी; अकेली गाड़ी हो, तो क्या बैल चलेगा! लेकिन बैलों को गाड़ी के पीछे मत जोतना। बैल आगे जूते, गाड़ी पीछे चले।

प्रेम आगे हो--त्याग पीछे चले।

इस अर्थ में प्रेम ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर साधक की दृष्टि से पूछते हो, तो प्रेम ज्यादा अर्थपूर्ण है, ज्यादा महत्वपूर्ण है। सिद्ध की दृष्टि में तो दोनों बराबर हैं।

पांचवां प्रश्नः आपसे बहुत कुछ कहना है, पर नहीं कह पाता। बहुत से धन्यवाद देने हैं, पर नहीं दे पाता। बस, आपकी ओर देखता हूं और रोता हूं।

इससे बेहतर कहने की और कोई तरकीब हो सकती है! जो शब्द नहीं कह पाते वे आंसू कह देते हैं। और जो आंसू कह पाते हैं,शब्द कभी भी नहीं कह पाते; शब्द बहुत असमर्थ और कमजोर हैं। और यह धन्यवाद कुछ ऐसा थोड़े ही है कि तुम दोगे, तब मुझ तक पहुंचेगा। यह धन्यवाद कहोगे, तो छोटा हो जाएगा। यह तो कहना ही मत। यह तो आंखें गीली होकर ज्यादा बेहतर ढंग से कह देती है।

शब्द की सीमाएं हैं; आंसुओं की कोई सीमा नहीं है। शब्द में विकृति है; आंसू निष्कलुष हैं। शब्द में कुछ कहा कि उतना नहीं रह जाता, जितना कहना चाहा था।

रवींद्रनाथ मृत्यु शय्या पर पड़े थे। उन्होंने अपने जीवन में छः हजार गीत लिखे; और एक मित्र मिलने आया था और मित्र ने कहा कि तुम तो धन्यभागी हो। तुम तो प्रभु को धन्यवाद दो कि तुमने छः हजार गीत लिखे! तुम महाकवि हो--सारी पृथ्वी के। अंग्रेजी में शैली को महाकवि कहा जाता है, उसने भी दो हजार गीत लिखे हैं। तुमने छः हजार गीत लिखे हैं।

रवींद्रनाथ ने आंख खोली और कहा: यह तुम क्या कहते हो! मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना कर रहा था कि यह क्या मामला हुआ! अभी कोई उठाने का वक्त है मुझे? अभी तो कहना

चाहा था कह ही नहीं पाया। ये छः हजार गीत तो मेरी असफलताओं की खबर है। मैंने छः हजार बार कहने की कोशिश की और छः हजार बार असफल हो गया। जब भी शब्दों में बांधा, तब देखा कि जो असली था, पीछे छूट गया।

तो मैं तो प्रभु से कह रहा थाः यह भी कोई बात हुई! यह कोई तुक की बात हुई? कि अब जरा मेरे हाथ कुशल हुए थे; शब्दों पर मेरी थोड़ी क्षमता बढ़ी थी; मेरी छेनी थोड़ी गहरी हुई थी; अब शायद कुछ निखार लेता; शायद कुछ मूर्ति बना लेता; शब्दों से शायद कुछ ढाल लेता; अब शायद कविता का जन्म हो जाता। अभी-अभी तो मैं अपने तबले को, अपनी वीणा की ठीक-ठीक के साज को बिठा पाया था। अभी गीत गाया कहां! और यह विदा का क्षण आ गया!

यह बात सच है, लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर रवींद्रनाथ हजार वर्ष भी जीएं, तो हजार वर्ष के बाद भी यह बात इतनी ही सच होगी। क्योंकि शब्द में भाव बंधता नहीं है।

तुम पूछते हो:आपसे बहुत कुछ कहना है, पर नहीं कह पाता।

यह कहना कुछ ऐसा है कि चुपचाप ही कहोगे, तो ही कहा जा सकेगा। शब्द की झंझट छोड़ो; मौन का सहारा पकड़ो। मौन भी कहता है। मौन भी बहुत प्रगाढ़ता से कहता है। मौन की बड़ी महिमा है। मौन कह भी देता है और सीमा भी नहीं बंधती। मौन आकाश जैसा है--असीम। शब्द तो छोटे छोटे आंगन हैं। तुम आंगन की जिद्द छोड़ो; तुम पूरे आकाश से ही कह दो।

और कहना क्या है! वह तुम्हें लगता है कि बहुत कहता है, क्योंकि तुम कह नहीं पाते, इसलिए लगता है कि बहुत कहना है। शायद कहने को कुछ नहीं है। शायद कोई एक छोटी-सी बात कहना है।

बहुत ही डरते डरते आज यह इजहार करता हूं।

मैं तुमको चाहता हूं, पूजता हूं, प्यार करता हूं।।

शायद कुछ इतनी सी बात कहने की हो। छोटा-सा इजहार करना हो--कि मैं तुमको चाहता हूं, पूजता हूं, प्यार करता हूं; बहुत ही डरते-डरते आज यह इजहार करता हूं।

क्योंकि प्रेम ही कुछ ऐसी बात है, जो नहीं कही जा सकती। और सब तो कहा जा सकता है। तुम्हारे भीतर उठता होगा कोई अपूर्व प्रेम। प्रेम ही ऐसा कुछ है, जिसके उठते ही बुद्धि अवाक रह जाती है। क्योंकि प्रेम बुद्धि का अंग नहीं है; प्रेम हृदय का अंग है।

और तुम्हारे ये आंसू हृदय से आते हैं। तुम्हारी आंखें तुम्हारी बुद्धि के कारण नहीं रोती--कभी नहीं रोतीं। बुद्धि के कारण कोई आंख कभी नहीं रोती। बुद्धि के कारण तो आंखें सूख जाती हैं, आंसू सूख जाते हैं। बुद्धि के कारण तो आंखें मरुस्थल हो जाती हैं। फिर हरियाली नहीं होती आंख में; झरने नहीं बहते; फूल नहीं लगते; पक्षी नहीं गाते।

मनुष्य बुरी तरह सूख गया है। पुरुष तो और भी बुरी तरह सूख गया है। क्योंकि सदियों से पुरुषों को समझाया गया है। रोओ मत। रोना स्त्रैण है। परमात्मा ने ऐसा कुछ भेद नहीं किया है। तुम्हारी आंखों में भी आंसुओं की उतनी ही ग्रंथियां हैं, जितनी स्त्रियों की आंखों में। जरा

भी फर्क नहीं है। तुम चाहो तो जाकर आंख के डाक्टर को पूछ लेना। दोनों की आंखों में आंसू बनाने की क्षमता बराबर दी है परमात्मा ने। इसलिए यह बात मूढ़तापूर्ण है कि तुम पुरुष हो--रोओ मत।

इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसका बड़े से बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि पुरुष ज्यादा पागल होते हैं; दुगनी संख्या में पागल होते हैं। पुरुष ज्यादा आत्महत्या करते हैं; दुगनी संख्या में आत्महत्या करते हैं।

और अगर हम पुरुषों के द्वारा किए गए युद्धों का भी हिसाब करें, तब तो फिर बिलकुल ही पागलपन साफ हो जाएगा। हर दस साल के बाद महायुद्ध चाहिए। इतने प्राण भर जाते हैं--दुख से, उदासी से, क्रोध से--कि विस्फोट होता है।

पांच हजार सालों में, कहते हैं, केवल कुछ दिनों को छोड़ कर युद्ध चलता ही रहा है पृथ्वी पर। वे कुछ दिन--सात सौ साल! सात सौ साल भी इकट्ठे नहीं। कभी दो दिन युद्ध नहीं चला, कभी दस दिन युद्ध नहीं चला। पांच हजार साल में सात सौ साल को छोड़ कर युद्ध चलता ही रहा है। आदमी बिलकुल पागल है!

आंसू आते हैं--हृदय से। और यहां हम जो अनूठा प्रयोग कर रहे हैं, यहां जो मिल-जुल कर एक यात्रा चल रही है, उस यात्रा का मौलिक प्रयोजन यही है कि तुम्हारी ऊर्जा बुद्धि से हट जाए और हृदय में प्रवाहित होने लगे।

तो अच्छा हो रहा है कि तुम कह नहीं पाते। कहने को कुछ है नहीं। हां कुछ निवेदन है; कुछ प्रेम है।

गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए
एक थी मन की कसक, जो साधनाओं में ढली, कल्पनाओं में पली
पंथ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की संकरी गली
बढ़ गए पग किंतु सहसा
और मन भी बढ़ गया
लोक-लीकों के सभी भ्रम, एक पल में ढह गए
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए
वह मधुर बेला प्रतीक्षा की, मधुर मनुहार थी
मैं चकित साभार थी
कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी
वेदना सुकुमार थी
मौन तो वाणी रही, पर
भेद मन का खुल गया
जो न कहना चाहती थी, ये नयन सब कह गए
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए

कल्पना जिसकी संजोई, समाने ही पा गई
वह घड़ी भी आ गई
छबि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई
देखते शरमा गई
कर सकी मनुहार भी कब
मैं स्वयं में खो गई
और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे से रह गए
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए।

तुम्हारे आंसुओं से जो घट रहा है, शुभ है, सत्य है, सुंदर है। यह तुम्हारा अब तक अपरिचित जगत है, जिससे तुम अभी तक अछूते रह गए, इसलिए बेचैनी होती होगी। इसलिए तुम कुछ कहना चाहते हो, क्योंकि तुमने अभी तक न कहने का मार्ग ही नहीं पकड़ा।

पंथ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की संकरी गली

डरो मत। और परेशान भी, चिंतित भी न होओ। प्रेम की गली निश्चित ही संकरी है, इतनी संकरी है कि वहां दो तो समाते ही नहीं। इतनी संकरी है कि वहां शब्द भी नहीं समाते, वहां निशब्द का ही प्रवेश है।

चलने दो यह कदम, बढ़ने दो हृदय की तरफ। सोच-विचार, भाषा और शब्द--सब मनुष्य निर्मित है। निर्विचार, मौन परमात्मा का दिया है।

बढ़ गए पग किंतु सहसा
और मन भी बढ़ गया
लोक-लीकों के सभी भ्रम, एक पल में ढह गए
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए।

बढ़ो; जरा साहस करो। एक पल में क्रांति घट जाती है।

वह मधुर बेला प्रतीक्षा की मधुर मनुहार थी
मैं चकित साभार थी
कह नहीं सकती, हृदय की जीत थी, या हार थी
वेदना सुकुमार थी
मौन तो वाणी रही, पर
भेद मन का खुल गया
जो न कहना चाहती थी, ये नयन सब कह गए
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गए।

वेदना शब्द बड़ा अनूठा है।

वह मधुर बेला प्रतीक्षा की मधुर अनाहार थी

मैं चकित साभार थी
कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी
वेदना सुकुमार थी।

वेदना अनूठे शब्दों में एक है। उसके दो अर्थ होते हैं--दुख और बोध दुख और ज्ञान वेदना उसी से बना, जिससे वेद; विद धातु से बना। वेद का अर्थ होता है--ज्ञान, बोध।

तो वेदना का एक अर्थ तो बोध और दूसरा अर्थ है दुख। यह बड़ी हैरानी की बात है कि ये दो विपरीत से अर्थ जिनमें कोई तालमेल नहीं है, एक ही शब्द के कैसे हैं! लेकिन महत्वपूर्ण है यह बात।

दुख का ही बोध होता है। और किसी चीज का बोध नहीं होता। पैर में कांटा गड़ता है, तो पैर का बोध होता है। पैर में कांटा न गड़े, तो पैर का भी बोध नहीं होता। सिर में दर्द होता है, तो सिर का बोध होता है; नहीं तो सिर का भी बोध नहीं होता।

हमें बोध ही उसका होता है, जहां वेदना होती है। परमात्मा का पहला बोध होता है--उसकी विरह की वेदना से। परमात्मा का पहला बोध होता है--वेदना से। कसकती है बात; खटकती है बात। कुछ खाली-खाली; कुछ चूका-चूका; जीवन कुछ अर्थहीन-अर्थहीन। करते सब हैं, लेकिन होता कुछ मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि हम जो भी करते हैं, सब बुद्धि से हो रहा है। और बुद्धि से कोई संबंध प्रभु से नहीं जुड़ता।

यही तो बाबा मलूकदास का पूरा संदेश है कि अगर संबंध जोड़ना हो प्रभु से, तो बनो मस्त--भाव में; डूबो हृदय में। और पहला सूत्र था मलूकदास का--कि पीड़ा दो तरह की है: एक विरह की पीड़ा है, और एक मिलन की पीड़ा है।

मिलन की पीड़ा बड़ी मधुर है; विरह की पीड़ा भी बड़ी मधुर है। भक्त दोनों भोगता है। विरह की पीड़ा भी प्रीतिकर है--कि प्रभु अभी मिले नहीं। इंतजार है, प्रतीक्षा है। द्वार खोल कर पलक-पांवड़े आंखें बिछाए बैठे हैं। यह भी सुखद है। आंसू बह रहे हैं।

प्रभु की प्रतीक्षा में आंसू बहें, तो बड़ा सुखद है। और क्या धन्यभाग होगा! और फिर एक घड़ी है कि प्रभु आ गए--और आंसू बह रहे हैं! क्योंकि आनंद इतना है कि अब सम्हाले नहीं सम्हलता। फिर भी विरह है, फिर भी पीड़ा है।

कल्पना जिसकी संजोई, सामने ही पा गई
वह घड़ी भी आ गई
छबि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई
देखते शरमा गई।

शायद तुम जो कहना चाहते हो, नहीं कह पाते; एक संकोच मन को पकड़ लेता है। कैसे कह सकोगे? सदा ही महत्वपूर्ण बातें कहने में संकोच आ जाता है।

किसी ने कभी कहा है: मुझे तुमसे प्रेम है? कितनी मुश्किल पड़ती है! कितना कठिन हो जाता है! हजार-हजार तरह से सोचते हैं कि इस तरह कह देंगे, कि इस तरह कह देंगे: प्रेमियों से पूछो...। कि आज तो कह ही देंगे। हजार भूमिकाएं प्रेमी बांधता है। चांदत्तारों की

बात करता है; सोचता है: अब ठीक पृष्ठभूमि आ गई, अब कह दूं कि मुझे तुमसे प्रेम है। और बस, वहीं सकुचा जाता है, वहीं शरमा जाता है। वहीं कोई चीज, बात अटक जाती है। प्रेम का शब्द इतना छोटा है कि प्रेम की अनुभूति को प्रगट नहीं कर पाता; ओछा है। चुप-चाप ही कहा जा सकता है।

कल्पना जिसकी संजोई, समाने ही पा गई

वह घड़ी भी आ गई

छबि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई

देखते शरमा गई

कर सकी मनुहार भी कब

मैं स्वयं में खो गई

और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे-से रह गए।

निश्चित ही प्रेम तुम्हारे भीतर जगा है; जगना ही चाहिए। न जगें--प्रेम के झरने, तो तुम अभागे हो। सौभाग्यशाली हो कि कुछ कहना चाहते हो और कह नहीं पाते।

और बहुत धन्यवाद देने हैं, पर नहीं दे पाता! नहीं; यह बात धन्यवाद देने से पूरी न होगी। यह तो तुम, जो मैंने तुम्हें दिया है, जब दूसरों को बांटोगे, तभी इसका धन्यवाद पूरा होगा। और कोई उपाय नहीं है।

इस ऋण से चुकने का एक ही उपाय है कि जो मैं तुम्हें दे रहा हूं, उसमें कंजूसी मत करना, उसे रोकना मत अपने भीतर, उसे बहने देना; उसे दूसरों तक जाने देना।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को: जाओ अब और मकानों की मुंडेर पर खड़े होकर चिल्लाओ, ताकि जो बहरे हैं वे सुन सकें। वही मैं तुमसे कहता हूं।

धन्यवाद देने की मुझे, कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारे बिना कहे धन्यवाद पहुंच गया। मैंने तुम्हारी आंख में देख लिया। तुम्हारे हृदय ने जो कहा वह मेरे भीतर सुनाई पड़ गया। जो तुम्हारे भीतर कह जाता है, वही मेरे भीतर भी कह गया।

तुमने पुरानी कहानी सुनी है ना: एक घुड़सवार--अपने घोड़े पर बैठा चला आ रहा है--राजपूत --अपनी तलवार लगाए: एक बूढ़ी राह पर चल रही है; होगी अस्सी साल की बूढ़ी; सिर पर एक गठरी रखे हुए; और उससे बोली कि बेटा मैं थक गई हूं। अगले गांव तक मुझे जाना है और तू भी वहां से तो गुजरेगा ही, यह पोटली ले ले, घोड़े पर रख ले और जो पहला ही झोपड़ा मिले गांव में, उसमें दे जाना। मैं उठा लूंगी।

उस घुड़सवार ने कहा: तूने समझा क्या है मुझे? मैं कोई तेरा गुलाम हूं? कि कोई नौकर-चाकर हूं? ऐसा कहकर उसने घोड़े को एड लगाई, आगे बढ़ गया।

कोई आधा मील गया होगा, तो उसे खयाल आया: पता नहीं बुढ़िया की गठरी में क्या हो! मैं नाहक छोड़ दिया। ले लेता। कौन सी देने की जरूरत थी कहीं? लिए चला जाता। पता नहीं कुछ मूल्यवान भी हो!

लौट आया। आ कर कहाः मां, भूल हो गई, क्षमा कर। ला, गठरी दे दे, मैं पहले ही झोपड़े पर दे जाऊंगा। उस बुढ़िया ने कहाः बेटा जो तुझसे कह गया, वह मुझसे भी कह गया।

कुछ बातें हैं, जो तैर जाती हैं। अब गठरी देने की, उस बुढ़िया ने कहा, कोई जरूरत नहीं है। अब मैं ढो लूंगी।

कुछ बातें हैं, जो तरंगित हो जाती हैं। और जीवन के भाव बड़ी आसानी से तरंगित हो जाते हैं, वह भी एक भाव था। बेईमानी का भाव था, लेकिन था भाव। इसकी तरंगें पहुंच गई।

बेईमान आदमी जब तुम्हारे पास होता है, या कोई तुम्हारे साथ बेईमानी करना चाहता है, अगर तुम सरल हृदय हो, तत्क्षण तुम पहचान जाओगे। अगर तुम भी बेईमान हो, तो शायद न पहचान पाओ।

अगर तुम्हारे हृदय में प्रेम है, तो तुम दूसरे के प्रेम की मनुहार समझ जाओगे-- उसने कही हो; न कही हो; बोला हो, न बोला हो। हां, अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं है, तो फिर तुम पास में ही कोई खड़ा रहे, प्रेम से भरा हुआ, तुम न समझ पाओगे।

तुम धन्यवाद की चिंता न करो। धन्यवाद पहुंच गया। इतना ही करो कि जो तुम्हें मिले, उसे बांटते रहना, उसे बढ़ाते रहना, उसे किसी को देते जाना।

आपकी ओर देखता हूं और रोता हूंः शुभ है। यहां जब मेरे पास बैठ कर रोते हो, उतना ही काफी नहीं है। जब दूर चले जाओ, अपने गांव लौट जाओ, वहां भी कभी-कभी आंख बंद करना, मुझे देखना और रोना। उसे रोने में ही तुम्हारी प्रार्थना के बीज पड़ जाएंगे।

मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं
अजनबी यह देश, अजनबी यहां की हर डगर है।
बात मेरी क्या--यहां कर एक खुद से बेखबर है।
किस तरह मुझको बना ले सेज का सिंदूर कोई
जब कि मुझको ही नहीं पहचानती मेरी नजर है
आंख में इसमें बसा कर मोहिनी सूरत तुम्हारी
मैं सदा को ही स्वयं को भूल जाना चाहता हूं
मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं।
दीप को अपना बनाने की पतंगा जल रहा है
बूंद बनने की समुंदर की, हिमालय गल रहा है
प्यार पाने को धरा का, मेघ है व्याकुल गगन में
चूमने को मृत्यु, निसि-दिन श्वास-पंथी चल रहा है
है न कोई भी अकेला राह पर गतिमय इसी से
मैं तुम्हारी आग में तन-मन जलाना चाहता हूं।
मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं।।

गुरु के साथ अपने को जोड़ लेना, पहला कदम है--परमात्मा की तरफ। गुरु के साथ अपने को एक मान लेना बड़ी महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि उसके बाद परमात्मा के साथ एक मान लेने में अड़चन न आएगी।

गुरु तो पाठ है--परमात्मा के प्रति समर्पण का। जाना तो परमात्मा में है, गुरु तो द्वार है। सिक्खों का शब्द गुरुद्वारा सुंदर है। मंदिर का नाम गुरुद्वारा--ठीक।

गुरु तो द्वार है, उसमें पार हो जाना है; उस पर अटक नहीं जाना। इसलिए मुझे धन्यवाद देने की जरूरत नहीं है। मेरे प्रति कुछ कहने की भी बात नहीं है। तुम्हें जो कहना हो, वह परमात्मा से कह देना। मुझसे पार हो जाओ।

कहने को वहां भी तुम कुछ न पाओगे। कहने को कुछ है ही नहीं। जो कहा जा सके, क्षुद्र है; जो न कहा जा सके, वही विराट है।

लाओत्सु ने कहा है कि जो कहा जा सके, वह सत्य नहीं है। जो न कहा जा सके, वही सत्य है।

छठवां प्रश्नः जीवन में कोई आकांक्षा-अभिलाषा पूरी नहीं हुई। सब भांति असफलता ही हाथ लगी। विषाद में डूबा हूं और अब तो बस, एक ही इच्छा है कि मन किसी भ्रांति शांत हो जाए। आप राह बताएं।

अब यह एक नई अभिलाषा तुम्हें पकड़ी। तुम सीखे नहीं। इतनी आकांक्षाएं कीं, इतनी अभिलाषाएं कीं, सब हार गईं; सबसे विषाद मिटा। अब तुम नई आशा कर रहे हो, नई अभिलाषा संजो रहे हो-- कि मन शांत हो जाए। तो तुम ठीक से समझे नहीं। पाठ गहरा नहीं उतरा।

मन के शांत होने का इतना ही अर्थ होता है कि अब हम और आकांक्षा न करेंगे। और क्या अर्थ होता है!

आकांक्षा करके देख लिया। आकांक्षा से मिली चिंता। चिंता से पैदा हुआ तनाव। और हर आकांक्षा असफलता में डुबा गई।

तुम्हारी कोई आकांक्षा पूरी हो ही नहीं सकती। क्योंकि तुम्हारी सब आकांक्षाएं परमात्मा के विपरीत हैं। अगर तुम्हारी आकांक्षा परमात्मा के विपरीत नहीं है, तो तुम्हें आकांक्षा करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

हम जब भी आकांक्षा करते हैं, तब नदी के विपरीत, धार में तैरने की कोशिश कर रहे हैं।

भक्त कहता हैः तेरी इच्छा पूरी हो। मेरी क्या इच्छा! मैं हूं कौन? तेरे सागर की एक छोटी-सी तरंग हूं; तू जहां जाए, हम भी चलेंगे। एक तिनका हूं; तू जहां बहे, हम भी बहेंगे।

जीसस ने सूली पर कहा हैः हे प्रभु मरजी पूरी हो। एक क्षण में उनको आकांक्षा जगी थी, खयाल आया था; एक क्षण तो नाराज होकर परमात्मा को कहा भी था कि यह मुझे क्या दिखा रहा है! क्या तूने मुझे छोड़ दिया? त्याग दिया? इस संकट की घड़ी में तू मेरे साथ

नहीं रहा? फिर समझ आई कि यह मैं क्या कह रहा हूं! इसका तो अर्थ हुआ कि मेरी कोई छिपी वासना है, कोई दबी वासना है-- कि भगवान ऐसा करे, तो ठीक।

जब भी तुमने आकांक्षा की, तो तुमने क्या चाहा? तुमने चाहा कि अस्तित्व तुम्हारे अनुकूल चले। यह इतना विराट अस्तित्व तुम्हारे अनुकूल चले तो कैसे चले!

तुम जरा सोचो तो; तुम्हारा अनुपात क्या है? ऐसा ही समझो कि एक छोटा-सा पत्ता इस गुलमोहर के वृक्ष में सोचने लगे कि सारा वृक्ष मेरे अनुकूल चले। जब मैं हिलूं, तो हिले। और जब मैं ठहरूं, तो ठहरे। और जब मैं सोऊं, तो सो जाए। और जब मैं जागूं, तो जागे। कैसे यह हो सकेगा? वृक्ष पत्ते की बात मान कर नहीं चल सकेगा। वृक्ष की बात ही मान कर पत्ते को चलना होगा। आंख की माननी पड़ेगी बात--अंशी की।

पूर्ण हमारी बात मान कर नहीं चल सकता है। लहरों की बात मान कर सागर चलेगा! कैसे यह होगा? वृक्ष जब हिलेगा, तो पत्ता हिलेगा। वृक्ष जब सो जाएगा, तो पत्ता सो जाएगा।

आदमी की तकलीफ यही है कि आदमी आकांक्षा करता है। आकांक्षा करता है--आकांक्षा का अर्थ हुआ कि वह सारे विराट को अपने अनुकूल चलाना चाहता है। यह नहीं हो पाता; नहीं हो पाता तो विषाद होता है। असफलता हाथ लगती है, तो दुख होता है, पीड़ा होती है। लगना है: सब मेरे दुश्मन हैं। सारा अस्तित्व मेरे विपरीत है। कोई तुम्हारे विपरीत नहीं है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने दरवाजे पर बैठा है। बरसा हो रही है, मूसलाधार और कोई भागा हुआ आया और उसने कहा कि बड़े मियां, क्या बैठे हो! तुम्हारी पत्नी नदी में गिर गई। अरे, भागो, बचाओ।

तो मुल्ला भागा। कपड़े पहने हुए ही नदी में कूद पड़ा, और जोर-जोर से हाथ मार कर नदी में उलटी धारा की तरफ तैरने की कोशिश करने लगा। किनारे पर खड़े लोग चिल्लाए कि बड़े मियां, कुछ अकल से काम लो। पत्नी बह गई, तो नीचे की तरफ जाएगी। तुम ऊपर की तरफ तैर रहे हो! मुल्ला ने कहा: तुम मेरी पत्नी को जानते हो कि मैं उसे जानता हूं? किसी और की पत्नी हो, तो नीचे जाए। मेरी पत्नी को मैं भलीभांति जानता हूं। वह तो विपरीत ही जाएगी। वह जरूर ऊपर की तरह गई होगी। जिंदगी भर का मेरा अनुभव ही यह है।

आदमी ऐसा ही है। तुम्हारी सारी आकांक्षाएं अभिलाषाएं जीवन की धार के विपरीत है। धार के विपरीत बहने में ही अहंकार का मजा भी आता है। धार के साथ बहने में अहंकार टिकेगा ही नहीं। फिर तुम बचे ही नहीं।

जब तुमने कहा: प्रभु तेरी मरजी पूरी हो, तो तुम कहां रहे? मैं कहां रहा? मैं तो तभी रहता है, जब मेरी मरजी पूरी हो। जब मैं सारे अस्तित्व को अपनी मरजी के अनुसार झुका लूं, तब मैं का मजा है। धार के साथ बहने में तो मैं विसर्जित हो जाता है।

तुम कहते हो: जीवन में कोई आकांक्षा-अभिलाषा पूरी नहीं हुई, होती ही नहीं; किसी की भी नहीं होती। और अगर कभी तुम्हें ऐसा लगता हो कि कोई आकांक्षा पूरी हो गई, तो उसका इतना ही अर्थ है कि संयोगवशात तुमने वही आकांक्षा की, जो अस्तित्व की आकांक्षा थी। वह संयोग की बात है। हार निश्चित है, जीत संयोग है।फिर दोहरा दूं। हार निश्चित है, जीत

संयोग है। यह ऐसा ही हुआ कि सोच रहा था कि मैं हिलूं और तभी आ गया हवा का झोंका और वृक्ष हिलने लगा और पत्ता भी हिल गया और पत्ते ने कहाः अरे, बड़ा गजब हो गया।

मैंने सुना हैः एक युवक अपनी प्रेयसी को लेकर समुद्र के तट पर बैठा है। प्रेयसी बड़ी मंत्रमुग्ध है युवक के प्रति। और जब कोई प्रेम में मंत्रमुग्ध होता है, तो फिर होश-हवाश नहीं रहता। तभी उस युवक ने एक कविता उदधृत की। कविता का अर्थ है कि हे समुद्र की लहरों, उठो और आओ मेरी तरफ। अब समुद्र की लहरें उठ ही रही थीं, आ ही रही थीं। उसने कहाः हे समुद्र की लहरों, उठो और आओ मेरी तरफ। और बड़ी-बड़ी लहरें आने लगीं। उसकी प्रेयसी बोली, अरे गजब, समुद्र भी तुम्हारी मानता है!

समुद्र किसकी मानता है! संयोग की बात होगी।

जीत सुनिश्चित नहीं है। हार सुनिश्चित है, जीत मात्र संयोग है। तो कभी-कभी तुम जब जीत जाते हो, तब व्यर्थ मत अकड़ जाना। यह संयोग की बात थी कि तुमने जो आकांक्षा की थी, वही विराट की भी आकांक्षा थी। पूरी हो गई। लेकिन सौ में निन्यानबे मौके पर ऐसा संयोग नहीं होगा। संयोग तो कभी-कभार होते हैं। निन्यानबे मौके पर तो तुम हारोगे।

तुम कहते होः जीवन में कोई आकांक्षा-अभिलाषा पूरी नहीं हुई, यह तुम्हारे ही साथ नहीं, सभी के साथ ऐसा है। किसी की भी पूरी नहीं हुई। अगर आकांक्षाएं-अभिलाषाएं ही पूरी होती होतीं, तो मलूकदास कहतेः कन थोड़े कांकर घने?

वह कन थोड़े का मतलबः वह जो एक प्रतिशत कभी-कभी पूरी हो जाती है। और कांकर घने--वह निन्यानबे प्रतिशत, जो कभी पूरी नहीं होती।

सब भांति असफलता हाथ लगी। अब तो कुछ सीखो। अब तो जागो। अब तो कोई आकांक्षा मत करो। अब तुम फिर नई आकांक्षा कर रहे हो। तुम कह रहे होः विषाद में डूबा हूं। बस, अब तो एक हो इच्छा है कि मन किसी भांति शांत हो जाए। अब तुमने नई आकांक्षा को--कि मन किसी भांति शांत हो जाए।

अकसर मेरे अनुभव में आया है कि जो लोग मन को शांत करने में लग जाते हैं--और अशांत हो जाते हैं। एक बड़ी झंझट की बात ले ली उन्होंनेः अब मन शांत होना चाहिए।

पहले धन पाना चाहते थे। धन शायद कोशिश करने से कभी मिल भी जाए। धन ऐसी तुच्छ चीज है कि मिल सकता है। कोई बड़ी भारी बात नहीं है। चोरी-चपाटी से भी मिल सकता है। बेईमानी से भी मिल सकता है। धोखे-धड़ी से भी मिल सकता है। और कभी संयोगवशात राह के किनारे पड़ा भी मिल सकता है।

कोई पद चाहता था। पद भी मिल सकता है।

अब तुमने एक बड़ी आकांक्षा की--मन शांत हो जाए। यह सारी आकांक्षाओं में बड़ी से बड़ी आकांक्षा है। तुम मुश्किल में पड़ोगे।

अकसर मैंने देखा है कि धार्मिक आदमी जितने अशांत हो जाते हैं, उतने अधार्मिक आदमी नहीं होते। धार्मिक आदमी तो बड़ी झंझट है।

एकांत आदमी घर में धार्मिक हो जाए, तो तुम जानते हो--घर भर झंझट में पड़ जाता है। अभी वे पूजा कर रहे हैं! अभी वे ध्यान कर रहे हैं! प्रार्थना कर रहे हैं! बच्चों शोरगुल मत करो। पत्नी वर्तन नहीं पक सकती; दरवाजे जोर से लगाए नहीं जा सकते। सारा घर मुश्किल में पड़ जाता है। और वे कुछ शांत हो नहीं रहे हैं! वे वहां बैठे हैं और उबल रहे हैं। प्रार्थना के नाम पर, पूजा के नाम पर वहां भीतर आग जल रही है।

वे यह मौका ही देख रहे हैं कि कोई दरवाजा जोर से खटका दे; कि बच्चा रो दे; कि पत्नी वर्तन गिरा दे, तो वे निकल कर बाहर आ जाएं कि मेरा ध्यान भंग कर दिया। कोई बहाना तो मिल जाए--कम से कम बाहर निकलने का। कम से कम यह तो हो जाए कि किसी दूसरे ने ध्यान भंग कर दिया।

जिनका ध्यान लगता है, उनका भंग होता ही नहीं। और जिनका भंग होता है, उनके पास ध्यान था ही नहीं, जो कि भंग हो जाए।

नहीं, तुम इस आकांक्षा से मत उलझो। अगर तुम्हें ठीक-ठीक समझ में आ गया कि सभी आकांक्षाएं दुख में डाल गई, तो अब नई आकांक्षाएं मत करो--और तुम पाओगे कि मन शांत हो गया।

मन की शांति प्रयास से नहीं होती; इसी जीवन के प्रगाढ़ अनुभवों का सार निचोड़ है--कि कोई आकांक्षा शांति में नहीं ले जाती, अशांत करती है।

तो अब यह नई आकांक्षा तो न करो। इतना तो कम से कम करो। अब बस, चुप हो जाओ। अब कह दो कि ठीक, जो होगा--होगा; मन अशांत होगा; हम क्या करेंगे! हमारे किए क्या हुआ? बाहर का नहीं सधा, भीतर का क्या सधेगा?

अब तो कह दो कि प्रभु, तेरी मर्जी। अशांत रखना हो, तो अशांत रख। पागल रखना हो, तो पागल रख। अब तू जैसा रखेगा, वैसा रहेंगे। तेरी राजी में रजा हैं। जिहि विधि राखैं राम, तिहि विधि रहिए। जैसा रखेंगे--वैसा रहेंगे। अशांत रखना है, तो जरूर तुम्हारी कोई मर्जी होगी। तुम मेरी अशांति से कुछ काम ले रहे होओगे। चलो, वही ठीक। इसमें भी मौज है।

तुम मेरी बात समझ रहे हो? अशांति में भी अगर तुम स्वीकार-भाव ले आओ, तो फिर कैसे अशांत रहोगे? अशांति में थी अगर राजी हो जाओ, तो शांत हो गए। अब और क्या शांति चाहिए। तुम्हारा तनाव विसर्जित हो जाएगा।

जीवन तो अपना है लेकिन, सपनों पर अधिकार नहीं है।

सुनोः

जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है
यूं तो बहुतेरे जलते हैं, कुंदन कौन यहां बन पाता
डूबे तो लाखों हैं लेकिन, मोती किसके हाथों आता
मैं अपनी डगमग नैया की, कैसे तट से पार निहारूं

सागर का आमंत्रण मुझको
लहरों को स्वीकार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है
अपना-अपना भाग्य, कहीं रसधार, कहीं पर बिजली गिरती
खिलता कोई फूल ओस में, कोई कली प्रथम दिन झरती
सावन के मेघों को प्यासे अधरों ने सौ बार निहारा
बादल किसके घर बरसें
जब अपना ही घर-बार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है
चित्र बड़ा मोहक है लेकिन, हल्दी की अल्पना नहीं है
यह शृंगार हाथ मेरे का है, कोई कल्पना नहीं है
रूप तुम्हारा सोने जैसा, प्रतिबिंबित मन के दर्पण पर
दरपन अपनाए भी तो क्या
छाया का आकार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है।
छोड़ो सपने। जीवन तुम्हारा है; सपने छोड़ो।
दरपन अपनाए भी तो क्या
छाया का आकार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है।

ये आकांक्षाएं सपने हैं--बस, सपने--कोरे सपने हैं। अब तुम नई आकांक्षा मत जगाओ--कि मन को शांत करना है; कि मोक्ष पाना है; कि निर्वाण उपलब्ध करना है; कि समाधि लगानी है। अब तुम नई आकांक्षाएं न जगाओ।

अगर तुम सारी आकांक्षाओं को गिर जाने दो, इस अनुभव के कारण--कि कोई आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती--हुई ही नहीं; तो क्या शेष रह जाएगा--तुम्हारे भीतर? जो शेष रह जाए, वही समाधि।

मन को शांत नहीं करना होता। मन को समझने से शांति आती है। शांति परिणाम है।

आखिरी प्रश्नः भगवान, मलूकवाणी सुनते-सुनते हृदय भर आया है; आंसू बहने लगे हैं और नींद भी जाती रही है। बहुत अनुगृहीत हूं। कल मैं आपसे दूर होनेवाली हूं। पता नहीं फिर कब आपके पावन-चरणों के दर्शन हों। मुझे आशीष दें।

पूछा है--धर्म मंजु ने। मंजु नैरोबी से है। काफी दिन से यहां थी, अब जाने का क्षण उसका आया।

अच्छा हुआ कि आंखों में खूब आंसू बहे। आंसुओं से ज्यादा पवित्र करनेवाली और कोई कीमिया नहीं है। और आंसू आंखों को जितना साफ-सुथरा कर जाते हैं, उतनी और किसी कला से आंखें साफ-सुथरी नहीं होतीं। और आंख साफ-सुथरी हो जाए, तो परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। और कमी ही क्या है?

सिर्फ आंखों पर धूल जमी है--विचारों की धूल। भाव के आंसू उस धूल को बहा दें, तो दर्पण साफ हो जाए। परमात्मा झलकने लगे।

ठीक हुआ। मलूकदास जैसे मस्ती की वाणी का इतना ही प्रयोजन है कि तुम रो सको; कि तुम हृदय भर रो सको; कि तुम सब लोक-लाज छोड़ कर रो सको; कि तुम सब ऊपर-ऊपर की बातचीत और ऊपर-ऊपर की औपचारिकताएं और नियम, व्यवस्थाएं--सबको भूल जाओ और रो सको।

आंसू बहे और नींद भी जाती रही है। ठीक ही हुआ। नींद सदा को ही टूट जाए। जो नींद रात लगती है, उसकी मैं बात नहीं कर रहा हूं। लेकिन उससे भी एक गहरी नींद लगी है। आध्यात्मिक रूप में हम सोए हुए हैं। वह नींद टूट जाए। तो संतों की वाणी ठीक हृदय पर चोट कर गई, तो तुम्हें जगा गई।

पूछा है: और मैं आपसे दूर होने वाली हूं कल। दूर होने का अब उपाय नहीं मंजु। समय और स्थान दूर नहीं करते हैं। यहां हो कि नैरोबी में, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा।

भाव अगर जुड़ा हो, तो दूर चांदत्तारों पर भी कोई हो, तो भी जुड़ा है। और भाव अगर न जुड़ा हो, तो कोई बिलकुल पास बैठा हो; देह से देह सटा कर बैठा हो, तो भी हजारों कोसों दूर है।

दूरी दूरी में हिसाब रखना। भाव जुड़ा हो, तो दूरी भी दूरी नहीं। भाव न जुड़ हो, तो निकटता भी दूरी है।

और नींद तो टूटनेवाली है; आंखें और भी आंसुओं से भरेंगी; और भी गीली होंगी।

सच कहा था जाहिद तूने, जहर कातिल है शराब।

हम भी कहते यही, जब तक बहार आई न थी।

बहुत हैं यहां, जिनको आंख नहीं भरती है। दूसरों की भरी आंख देख कर उन्हें हैरानी भी होती है कि पागल हैं क्या!

सच कहा था जाहिद तूने, जहर कातिल है शराब।

हम भी कहते थे यही, जब तक बहार आई न थी।

वे तब मुस्कुराएंगे तुम पर, जब तक बहार का उन्हें पता नहीं चला। जिस दिन उनका झोंका आ जाएगा, जिस दिन उनका वसंत आएगा, उस दिन से समझेंगे कि आंसुओं का मजा क्या है।

उनको देख कर आंसू रोकना मत। दूसरों की चिंता मत करना। कौन क्या कहता है--इसकी फिक्र मत करना। जिस व्यक्ति का परमात्मा की दिशा में जाना हो, उसे दूसरों के मंतव्य का ध्यान रखना छोड़ देना चाहिए।

यहां तू रोई, नैरोबी में भी रोना। जहां भी हो, वहां प्रभु के लिए रोते रहना।

रोने से कोई जितने करीब आया है प्रभु के और किसी तरकीब से नहीं आया।

रोना सुगमतम मार्ग है। कोई ठीक-ठीक रो सके, तो कुछ और करने की जरूरत नहीं है। फिर ठीक-ठीक हंसने का अविर्भाव होता है।

भक्ति की एक ऐसी घड़ी आ जाती है, जब रोना और हंसना साथ चलता है। पहले रोना। फिर नंबर दो पर घड़ी आती है, जब रोना-हंसना साथ चलता है।

तब बिलकुल मतवालापन हो जाता है, क्योंकि जब रोना-हंसना साथ चलता है, तो लोग समझते हैं--बिलकुल पागल है।

फिर तीसरी घड़ी जाती है, जब हंसना ही हंसना रह जाता है।

और फिर चौथी अंतिम अवस्था आती है--न हंसना रह जाता, न रोना रह जाता; वही परम शांति है।

पर दूर जाने का कोई उपाय नहीं है। पास जो आ गया, उसे दूर जाने का कोई उपाय नहीं है।

मयखाने की चौखट को जरा चूम लें साकीं।

मयखाने से आखिरी तो जुदा हो ही रहे हैं।

नहीं, यह मयखाना ऐसा नहीं है। इसकी चौखट को चूमने की जरूरत नहीं है। इसकी चौखट बड़ी है। जो इस मयखाने का साक्षीदार हो गया, जिसने यहां बैठकर थोड़ी शराब पी ली, वह फिर जहां भी रहे, वहीं इस शराब को पी सकेगा।

यह शराब सूक्ष्म है। बाहर पर निर्भर नहीं है। तुम्हारे भीतर की ही सुराही है। भरी है; तुम्हीं को ढालनी है।

दूर रहो या पास, याद जारी रहे

उठे कभी घबरा के तो मयखाना हो आए।

पी आए तो फिर बैठ रहै यादे खुदा में।।

बस, पीना। कभी होश रहे, तो याद कर लेना। कभी बेहोशी आ जाए, तो उसमें डुबकी लगा लेना।

उठे कभी घबरा के तो मयखाना हो आए।

पी आए तो फिर बैठ रहे याद खुदा में।।

समय और स्थान मूल्यवान नहीं है।

यह जो संबंध है--समय और स्थान से परे है। इस संबंध का नाम ही संन्यास है। संन्यास यानी एक ऐसा संबंध, जो समय और स्थान से परे है; एक ऐसा प्रेम जो न देह का है, न

मन का है; एक ऐसा लगाव, जो पारलौकिक है; एक ऐसा स्वाद, जो इस पृथ्वी का नहीं है।

और मंजु को वैसा स्वाद मिला है। उसकी आंखों में, उसके भाव में, उसके हृदय में उस स्वाद की तरंगें मैंने देखीं हैं, मैं आश्वस्त हूं।

आज इतना ही।